डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड : एक

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

मानव प्रबोधन प्रन्यास

शिवमठ, शिवबाड़ी, बीकानेर 334003

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र
राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड : एक

सम्पादक एवं संकलनकर्ता
स्वामी संवित् सुबोधगिरि

संकलन में सहयोगी
श्री वृजभूषण ओबराय

अंग्रेजी लेखों के हिन्दी अनुवादक
श्री चन्द्रप्रकाश ओबराय

आशीर्वचन
परम पूज्य गुरुदेव श्रीमत् स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज

परामर्श मण्डल
श्री नरेन्द्र कोहली • श्री इन्द्रेश कुमार
श्री बालकृष्ण नायक • श्री बालमुकुन्द
श्री रामेश्वर मिश्र 'पंकज' • डा. कुसुमलता केडिया
श्री आनन्द मिश्र 'अभय' • डा. मदनलाल ओबराय
श्री जुगलकिशोर जैथलिया • डा. बद्री प्रसाद पंचोली
श्री सीताराम महर्षि • श्री तोलाराम लाठ

प्रकाशक एवं मुख्य वितरक :
शिवार्चन प्रकाशन
मानव प्रबोधन प्रन्यास
श्रीलालेश्वर महादेव मन्दिर
शिवमठ, शिवबाड़ी, बीकानेर 334003
दूरभाष : 0151-2230982

अन्य प्राप्ति स्थान :
श्री बड़ा बाजार कुमार सभा पुस्तकालय
1-सी, मदनमोहन बर्मन स्ट्रीट (1 तल्ला)
कोलकाता 700007
टेलीफेक्स : 033-22688215
e-mail : kumarsabha@vsnl.net

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : 2010 ई.

प्रतियाँ : 1100

मूल्य : चार सौ रुपये मात्र

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स
विनायक शिखर, शिवबाड़ी रोड
बीकानेर 334003

Dr. Harbans Lal Oberai Samagra : Khand-1
Edited by Swami Samvit Subodhgiri ₹ 400



बाबू जुगलकिशोर बिड़ला
(1884-1967)
डॉ. ओबराय के प्राण प्रेरक

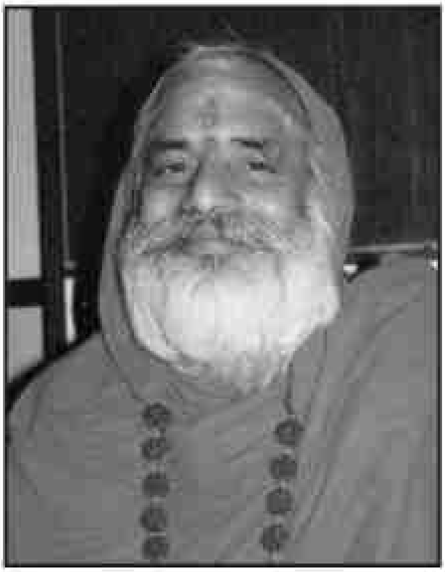
को यह कृति सादर समर्पित है।

प्रस्तुतकर्ता :
स्वामी संवित् सुबोधगिरि

ॐ श्रीदक्षिणामूर्तये नमः

आशीर्वचन

भारतीय संस्कृति का आधार सनातन धर्म है। सनातन का अर्थ है जो आदि और अन्त रहित है। अतः यह धर्म अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक रहेगा। इस धर्म को अपनाने वाले को भी यह धर्म 'सनातन' की प्राप्ति करा देता है। ब्रह्म को ही वेदों में सत्य या सनातन कहा है। सनातन धर्म पर आधारित होने के कारण भारतीय संस्कृति भी सनातन संस्कृति है। भारतीय संस्कृति ओंकार-मूलक है। ओंकार ही ब्रह्म है, ओंकार ही आत्मा है, ओंकार ही जगत् है, ओंकार से भिन्न और परे किसी अन्य की सत्ता ही नहीं है। ओंकार से ही सारे वेद प्रकट हुए हैं। वेद अपौरुषेय हैं, अनन्त हैं, सनातन हैं। संस्कृति का विस्तार वेदों में प्रतिपादित कर्मकाण्ड, उपासना-काण्ड और ज्ञानकाण्ड के अनुसार हुआ। संस्कृति के संवाहक ऋषियों ने मानव मात्र के अभ्युदय और निःश्रेयस को प्रदान करने वाले जीवन-दर्शन और जीवन-विज्ञान को सारे विश्व में फैलाया। भारत-भूमि को इस संस्कृति-प्राकट्य और प्रसार के मूल-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। इस संस्कृति-वीणा की दिव्य झंकार तो 14 भुवनों के आरपार होकर वैकुण्ठ, कैलास और मणिपूर व्यापिनी है।



असंख्य महाप्रलयों को, ब्रह्माओं को, कल्पों-मन्वन्तरों और युगों के रूप में प्रवाहित यह अनादि सृष्टि हर कालखण्ड में अपनी विशिष्ट साज-सज्जा को अनावृत करती है। जिस कालखण्ड में तम की शक्तियाँ प्रकाश की शक्तियों को पराजित कर अट्टहास करती हैं उसी कालखण्ड में तब अवतारों और महापुरुषों के रूप में परम-तत्त्व की मुक्त मुस्कान मानव को प्रेम, शान्ति और सुख का अनुभव कराती है—दिव्य-प्रकाश को फैलाती है।

अवतारों की लीलास्थली एवं ऋषियों की तपोभूमि भारत में संस्कृति का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। संकट के समय में जब इसका बाह्य रूप प्रक्षीण हुआ तब भी यह अन्तःपयस्विनी होकर सतत प्रवाहित होती रही।

प्रस्तुत ग्रंथ में संस्कृति की इस अमरता और इसके वैश्विक रूप का सम्यक् दर्शन होता है। प्रखर मनीषी और उद्‌भट विद्वान् प्रो. हरवंशलाल ओबराय एक चल-विश्वविद्यालय व चल-पुस्तकालय होने के साथ-साथ ब्रह्मविद्या के श्रेष्ठ विद्यार्थी भी थे। एक स्थान पर स्थिर होकर लेखन कार्य में संलग्न रहना उनके स्वभाव में नहीं था। उन्होंने स्वयं लिखने से अधिक लिखवाया और उससे भी अधिक प्रवचनों में अभिव्यक्त किया। उनके द्वारा अभिव्यक्त बहुमूल्य सामग्री को स्वामी श्री सुबोधगिरिजी ने वर्षों तक संभाल कर रखा। संन्यास के पूर्व वे अनेक वर्षों तक प्रो. ओबराय के शिष्य बन कर रहे। उन्होंने सत्-शिष्य बन कर प्रो. ओबराय की सेवा की, उपासना की और उनसे अध्यात्म, धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक एवं दुर्लभ ज्ञान प्राप्त किया। प्रो. ओबराय ने अपनी प्रखर प्रतिभा, अनुसंधानात्मक वृत्ति तथा संश्लेषक व विश्लेषक प्रज्ञा द्वारा भारतीय संस्कृति के अनेक अज्ञात पक्षों का पता लगाया था। उनकी बहुत कुछ सामग्री तो उनके पश्चात् बचाई नहीं जा सकी। किन्तु सुबोधगिरिजी ने अपने पास की सामग्री को तथा कई अन्य स्रोतों से भी उनकी रचनाओं को एकत्र करके उन्हें लोक कल्याण के लिये प्रकाशित करने के संकल्प को जीवित रखा। प्रभुकृपा से अब उनका संकल्प पूर्ण होने जा रहा है। यह प्रकाशन प्रो. ओबराय के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धांजलि है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे निरन्तर ज्ञानार्जन करते हुए ब्रह्मविद्या के आलोक को प्राप्त करें।

स्व. डा. हरवंशलाल ओबराय की रचनाओं को इन ग्रंथों के रूप में प्रस्तुत करने में उनके भ्रातात्रय (डॉ. मदनलाल ओबराय, श्री वृजभूषण ओबराय, श्री चन्द्रप्रकाश ओबराय) का सब प्रकार से श्लाघनीय सहयोग रहा है। उनके इस भावपूर्ण सहयोग के अभाव में ग्रंथों का प्रकाशन असंभव हो जाता। एतदर्थ वे साधुवाद के पात्र हैं। उन पर तथा उनके समूचे कुल पर प्रभु की कृपा बरसती रहे—यह शुभ कामना है।

—स्वामी संवित् सोमगिरि

सम्पादकीय

भारत एक सनातन राष्ट्र है, इसकी सीमायें भी प्राकृतिक है, इसकी संस्कृति सनातन है। इसके मूल में वेद हैं, ऋषि है, ईश्वर है। भारतीय परम्परा के अनुसार वेद सनातन और अपौरुषेय हैं। इसलिये वेद के काल मीमांसा के जितने प्रयास हुए हैं वे सब व्यर्थ सिद्ध हुए हैं। रामसेतु के प्रकटन ने भी वेद की सनातनता पर अपनी मुहर लगा दी है। ऋषि-परम्परा भी सनातन है। क्योंकि ब्रह्माजी ने पहले मानसिक सृष्टि की और ऋषियों को प्रकट किया। फिर मैथुनिक सृष्टि प्रारम्भ हुई।

मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ।। गीता 10/6

ईश्वर तो सनातन सत्य है ही। संस्कृत भाषा विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक, शुद्ध एवं समृद्धतम भाषा है, भारतीय विश्व की महानतम जाति है जिसने अपना आलोक सारी दुनिया को निःस्वार्थ भाव से विश्व-मंगल की भावना से अपने निष्कलंक चरित्र एवं निर्मल ज्ञान के द्वारा बिना किसी देश की राजनीतिक, आर्थिक व धार्मिक स्वाधीनता को छीने, बिना किसी देश की माँ-बहिनों के शील पर आघात किये बांटा। इस प्रकार भारत का इतिहास बड़ा ही उज्ज्वल, महान् व उदार है—भारत की परम्परा बड़ी महान् है। जिसकी पुष्टि स्वयं पश्चिम के मूर्धन्य मनीषी करते हैं। विश्वप्रसिद्ध अमरीकन इतिहासकार विल डूरेन्ट कहता है—भारत ही हमारी जाति की जन्मस्थली थी और संस्कृत ही हमारी यूरोप की सब भाषाओं की जननी, भारतमाता हमारे दर्शन की जननी थी, हमें अरब के माध्यम से प्राप्त गणित-ज्ञान की जननी थी, बुद्ध के माध्यम से ईसाई आदर्शों की जननी। ग्राम पंचायत परम्परा द्वारा आत्मानुशासन और लोकतंत्र की जननी। भारत अनेक दृष्टियों से सारे विश्व की माता है।

जर्मन दार्शनिक मैक्समूलर कहता है—'यदि मुझ से पूछा जाय किस गगन के नीचे मानव मन ने ऊँची से ऊँची प्रतिभाओं का विकास किया है? जीवन की बड़ी से बड़ी समस्याओं पर विचार करके ऐसे ऊँचे हल ढूंढ़े हैं जो प्लेटो और काण्ट का अध्ययन करने वाले विद्वानों के ध्यान को भी आकर्षित करने का अधिकार रखते हैं तो वह महान् देश भारत है। हम यूरोपवासी—जो अब तक केवल ग्रीक, रोमन तथा यहूदी विचार परम्परा में पलते रहे हैं, किस साहित्य से वह प्रेरणा ले सकते हैं जो हमारे भीतरी जीवन का परिशोध करे, उसे उन्नति के पथ पर अग्रसर करे, व्यापक बनाये, सही अर्थों में मानवीय बनाये, जिससे हमारे पार्थिव जीवन को ही नहीं हमारी सनातन आत्मा को भी शान्ति मिले? तो फिर मेरी उंगली भारत की ओर उठेगी।'

मैंने भारतदेश, यहाँ का धर्म-दर्शन, सभ्यता-संस्कृति, इतिहास-परम्परा का गौरवबोध लेकर ही कालेज जीवन में प्रवेश किया। इसके पूर्व जब नवमी-दसवीं-ग्यारहवीं

कक्षा में था तब स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, रमण महर्षि, महर्षि दयानन्द, लाल-बाल-पाल, मदनमोहन मालवीय, वासुदेव बलवन्त फड़के, रासबिहारी बोस, सुभाषचन्द्र बोस, वीर सावरकर, भाई परमानन्द, खुदीराम बोस, प्रफुल्ल चाकी, विनय बादल, दिनेश, जतीन बाघा, रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आजाद, दुर्गा भाभी, रानी लक्ष्मीबाई, रानी अहिल्याबाई, रानी दुर्गावती, माता जीजाबाई, माँ मदालसा, भगिनी निवेदिता, माँ शारदा, श्री माँ, गुरुनानक देव, गुरु गोविन्दसिंह, बंदा वैरागी, संत रविदास, डॉ. अम्बेडकर, श्यामाप्रसाद मुखर्जी, डॉ. हेडगेवार, माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर, तुलसीदास, मीराबाई, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, शचींद्रनाथ बख्शी आदि के जीवन एवं साहित्य से कुछ-कुछ परिचय हो गया था। इन्हीं सब आधारों पर यह गौरवबोध था। परन्तु रांची के मारवाड़ी महाविद्यालय में इससे भिन्न स्थिति पायी। वहाँ के छात्र-बंधु एवं अध्यापक वर्ग में भारतदेश, जाति, भाषा, धर्म-दर्शन, संस्कृति, इतिहास, महापुरुषों के प्रति गौरवबोध का अभाव ही नहीं, हेय भाव पाया। कभी-कभी तो मैं उनसे वाद-विवाद में भी उलझ जाता था और रांची विश्वविद्यालय में तो यह स्थिति और भी दयनीय पायी।

तब से भारतीय धर्म-दर्शन, इतिहास व संस्कृति के विषय में सम्यक् रूप से अध्ययन की इच्छा उत्पन्न हुई और यह भी जानने की इच्छा हुई कि हमारी विचार-परम्परा आज के आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के प्रसंग में सटीक एवं प्रासंगिक है या सेमेटिक परम्परा की तरह कालबाह्य हो गई। जिसका एक समय उपयोग रहा होगा पर आज के आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के समय में अब ये उपादेय नहीं रहे या आज भी प्रासंगिक हैं वरन् आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के विचारों में जो न्यूनता है उनको भी मार्गदर्शन देने की क्षमता रखती है। अतः भारतीय विचार-परम्परा चिर प्राचीन होते हुए भी नित्य नवीन है, आधुनिक है, शाश्वत है। केवल ऊपर-ऊपर धूल जम गई है, कुछ सामाजिक बुराइयाँ काल-प्रवाह में प्रवेश कर गयी, कुछ रूढ़ियाँ व अंधविश्वास छा गये हैं उनको दूर करके आज के संदर्भ में हमारी ज्ञान परम्परा की व्याख्या की जानी चाहिये। इस दृष्टि से मैं अध्ययन में प्रवृत्त हुआ और साहित्य जुटाने लगा।

इसी बीच सौभाग्य से 'संस्कृति विहार' रांची के संस्थापक और निदेशक डॉ. हरवंशलाल ओबराय से मेरा सम्पर्क हुआ। पहले ही मिलन में मुझे लगा उन्हें एक सेनानी की आवश्यकता है, रामकृष्ण परमहंस देव को एक विवेकानन्द की आवश्यकता है जिसकी पात्रता तो मेरे में नहीं है पर एक सैनिक की सेवा तो दे ही सकता हूँ और तब से दोनों एक-दूसरे से अधिक—अधिकतर जुड़ते चले गये क्योंकि मेरे को उनके जैसा कोई गुरु नहीं मिला और उनको मेरे जैसा कोई शिष्य नहीं मिला। मुझे लगता था उनके पास एक राष्ट्रीय सम्पत्ति है जो जन-प्रकाश में आनी ही चाहिये। इसके लिये मैंने उनके चरणों में अपने जीवन को समर्पित भी किया। केवल एक शर्त रखी—आप मुझे, प्रतिदिन दो घण्टा लिखवायेंगे जिसको मैं फेयर करके दूंगा और फिर उसके प्रकाशन की व्यवस्था करेंगे। पर

वे अपनी कार्यव्यस्तता के कारण चाहकर भी नहीं करवा पाते और मैं बार-बार निवेदन करता ही रह जाता। इस ढंग से तो यह सारा अध्ययन व शोधकार्य आपके साथ ही चला जाएगा। तब कहते, भगवान पर भरोसा रखो। तब मेरा मन खिन्न और दुःखी हो जाता था और कभी-कभी मैं उनसे रूठ जाता था। तब वे मुझे समझाते हुए कहते थे—'पुष्ट सदैव रहो, रुष्ट कभी-कभी और दुष्ट कभी नहीं।'

एक बार प्रातःस्मरण के पश्चात् मेरा हाथ लेकर आयु, विद्या और भाग्य-रेखा देखकर कहने लगे—आपकी आयु रेखा कटी हुई है। फिर अपनी आयु रेखा देखकर मुझे बताया कि मेरी भी आयु रेखा कटी हुई है। करीब साठ वर्ष की आयु में दुर्घटना (Accident) से मेरा शरीर शान्त हो सकता है और उससे बच गया तो सौ साल पूरे हो जाएँगे। फिर मुझे महामृत्युंजय मंत्र बताने लगे जिससे मेरी मृत्यु टल सकती है। तब मैंने कहा, आपका शरीर राष्ट्रीय महत्त्व का है। यह उपाय आप अपने लिये क्यों नहीं करते? तब उन्होंने कहा, 'मृत शरीर के लिये भगवान से क्या आवेदन करना!'

स्नान के पश्चात् वे गीता-पाठ करते थे। मुझसे भी करवाते थे। 10.9.83 को मैंने उनके साथ अन्तिम बार गीता-पाठ किया। गीता के प्रसंगों को स्पष्ट करते हुए वे हठात् मृत्यु विषय पर चर्चा करने लगे। प्रसंग मृत्यु का नहीं था। वे कहने लगे, 'मृत्यु दो प्रकार की होती है—एक होता है गिरकर मरना और एक होता है पड़कर मरना। गिर कर मरने का अर्थ है जो आजीवन कर्मसाधना में लगे रहते हैं, हठात् अपना शरीर त्यागकर परलोक चले जाते हैं या ब्रह्मलीन हो जाते हैं। पड़कर मरने का तात्पर्य बीमार पड़कर, शरीर के जवाब दे देने पर भी अपना शरीर त्यागना नहीं चाहते, उससे ही चिपके रहते हैं।' उन्होंने उदाहरण दिया था विनोबाजी एवं रूस के राष्ट्रपति ब्रेजनेव का, जिनकी मृत्यु प्रायः समान समय में हुई थी। विनोबाजी ने शरीर त्यागने के सात दिन पूर्व से ही अन्न-जल, दवा सभी का परित्याग कर दिया था। यह हुआ गिर कर मरना। ब्रेजनेव की मृत्यु के पश्चात् भी डाक्टर लोग कृत्रिम रूप से हृदय की गति को चालू करने का प्रयास करते रहे। इस प्रसंग द्वारा मुझे क्या पता था कि वे अपने ही प्रस्थान का पूर्वाभास दे रहे हैं। सचमुच सप्ताह भर पश्चात् काल द्वारा एक दुर्घटना में हमसे छीन लिये गये और उनके द्वारा लिखवाने का कार्य शेष ही रह गया।

डॉ. हरवंशलाल ओबराय का जन्म 21 अक्टूबर 1925 में रावलपिंडी (पश्चिमी पाकिस्तान) के एक पंजाबी पवित्र खत्री दम्पती श्री धर्मचन्द्र एवं श्रीमती रामकौर ओबराय के घर में हुआ था। आप 10 भाई-बहिनों में तीसरी संतान थे। बाल्यावस्था से ही इनमें विलक्षण प्रतिभा की ज्योति दृष्टिगोचर होने लगी थी। स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि एक बार किसी पुस्तक या विषयवस्तु पर दृष्टिपात करते ही उसका सम्पूर्ण पाठ तत्काल कंठस्थ हो जाता था। साथ ही सम्पूर्ण ग्रंथ के गहन से गहन भाव भी तत्काल ही सुस्पष्ट हो जाते थे। एक मेधावी तथा विचारक बालक के रूप में श्री सनातन धर्म हाईस्कूल रावलपिंडी में प्रथम श्रेणी से मैट्रिक में उत्तीर्ण होने के बाद गार्डन

कालेज रावलपिंडी से उन्होंने स्नातक की उपाधि प्राप्त की थी। भारत विभाजन के उपरान्त भारत की राजधानी दिल्ली आ गये और यहाँ पर उन्होंने दर्शन शास्त्र तथा हिन्दी में प्रथम श्रेणी में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात् पंजाब तथा हरियाणा के कई कालेजों में प्राध्यापक पद पर कार्य किया।

बाल्यकाल से ही वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्पर्क में आये और संघ के (द्वितीय वर्ष) प्रशिक्षित स्वयंसेवक थे। संघ के सम्पर्क में आने से उन्हें समाजसेवा का माध्यम मिला और उनके हृदय में राष्ट्रीय-कलिका खिल उठी। इसके पूर्व ये विद्या-अध्ययन में ही लगे रहते थे। उन्होंने एक कार्ड बना रखा था जिसमें लिखा था—भोजन की नागा हो सकती है पढ़ाई की नागा नहीं हो सकती। यह कार्ड उन्होंने मुझे भी दिखाया था। संघ के सम्पर्क में आने से उनका सर्वांगीण विकास हुआ। राष्ट्रभक्ति की भावना निरन्तर बढ़ती गयी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण, भारत विभाजन के समय रावलपिंडी में सभी स्वयंसेवकों को गुरुजी की आज्ञा थी कि सभी हिन्दुओं को सुरक्षित निकालने के बाद स्वयं भारत आयें। हिन्दुओं को अन्न-जल आदि पहुँचाना, मुसलमानी टोपी लगाकर कपड़े बेचना व सैनिकों द्वारा छुड़ाकर लाई गई लड़कियों के बयान लिखकर पुस्तक बनाना आदि कार्य किये। परन्तु पुस्तक भारत सरकार द्वारा जब्त कर ली गई। रावलपिंडी से मेरठ आये, वहाँ 3-4 दिन रहने के बाद दिल्ली आ गये। दिल्ली कैंट वर्कशाप में सालभर नौकरी की, उसी समय पेंटिंग का कार्य प्रारम्भ किया। उसके बाद Parliament में अपने छोटे भाई मदनलालजी के साथ आ गये। सन् 1948 में जब संघ पर प्रतिबंध लगा तब प्रतिबंध के विरोध में सत्याग्रह कर कारावास-वरण किया और वहाँ की अनेकानेक यातनायें सहर्ष सहन कीं। सन् 1960-1961 में लगातार दो बार अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष मनोनीत हुए। सक्रिय राजनीति से दूर रहते हुए भी आपने श्री जयप्रकाश नारायण के आन्दोलन का समर्थन किया था। पुनः आपातकाल (सन् 1975-77) में आपने 19 महीने 'मीसा' बन्दी के रूप में कारावास भोगा। कारावास में गीता एवं अन्य कक्षाएं चलाते थे जिसमें जेल सुपरिन्टैंडेंट आदि भी भाग लेते थे।

आप दिव्य जीवन संघ के संस्थापक परम पूज्य स्वामी शिवानन्दजी महाराज से दीक्षित थे। परम श्रद्धेय चिदानन्दजी महाराज, चिन्मय मिशन के संस्थापक चिन्मयानन्दजी महाराज, बिहार योग आश्रम (मुंगेर) के संस्थापक सत्यानन्दजी महाराज आपस में गुरु भाई थे। आप परमपूज्य प्रज्ञाचक्षु स्वामी गंगेश्वरानन्दजी महाराज से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे। आपकी भाभी और छोटे भ्राता डा. मदनलालजी, उनसे दीक्षित थे। गीता आश्रम के संस्थापक परमपूज्य स्वामी हरिहर महाराजजी अपना कार्यभार प्रो. ओबरायजी को सौंपना चाहते थे। आपके छोटे भ्राता श्री वृजभूषण ओबराय को तो गीता आश्रम, जोधपुर प्रदर्शनी लगाने हेतु अभी भी बुलाते रहते हैं। आप देवराहा बाबा, रांची के कमड़े बाबा से बहुत जुड़े हुए थे और उन दोनों का आशीर्वाद प्राप्त था।

सन् 1963 में जब वे डी.ए.वी. कालेज, जालंधर में दर्शनशास्त्र विभाग में अध्यक्ष पद पर थे तब उनकी प्रतिभा व मौलिक अन्वेषण कार्य से प्रभावित होकर संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान एवं सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) ने उन्हें यूरोप, अमेरिका, कनाडा और एशियाई देशों के विश्वविद्यालयों में हिन्दू संस्कृति एवं दर्शन विषय पर व्याख्यानमाला प्रस्तुत करने के लिये आमन्त्रित किया। विदेश जाने से पूर्व जब प्रो. ओबराय पूज्य बिड़लाजी से मिलने गये तो उन धर्मप्राण महापुरुष ने प्रो. ओबराय को पुलकित हृदय से आशीष दिया तथा भारतीय धर्म-संस्कृति पर अंग्रेजी भाषा में लिखी बहुत सी पुस्तकें विदेशी विद्वानों को उपहारस्वरूप देने हेतु दीं। प्रभु की कृपा से एवं गुरुजनों के आशीर्वाद से व्याख्यानमाला के कार्यक्रमों में यशस्वी होकर स्वदेश लौटे।

उन्होंने अपने जीवन काल में 106 देशों की यात्रा की। प्रत्येक बार वे व्याख्यानमाला के लिये आमंत्रित किये गये। उनकी विलक्षण प्रतिभा व विद्वत्ता से प्रभावित होकर उन्हें वहीं रहकर भारत से सौ गुणा अधिक वेतन लेकर शोध व अध्यापन कार्य के लिये प्रलोभित किया गया। पर वे देश की सेवा छोड़कर वहाँ सदा के लिये बसने को तैयार नहीं हुए। श्रीलंका की यात्रा में मैं भी उनके साथ सहयोगी के रूप में था। बैंकाक यात्रा उनकी अंतिम विदेश यात्रा सिद्ध हुई उसमें मैं तो नहीं जा पाया पर मेरे पूर्वाश्रम के पूज्य चाचाजी श्री तोलाराम लाठ साथ में गये थे। इन सब यात्राओं में भारतीय संस्कृति किस प्रकार सारे संसार में फैली और आज भी किस रूप में कितने अंश में सुरक्षित है—उसका विशेष अध्ययन किया। और उससे सम्बन्धित चित्रों, मूर्तियों, अभिलेखों की अनुकृतियों का संग्रह किया। Influence of Indian culture on Arabia शोध प्रबन्ध पर सन् 1982 में मद्रास विश्वविद्यालय से उन्हें डी.लिट. (वाचस्पति) की उपाधि भी मिली। वे कई भाषाओं के जानकार थे। वे देवभाषा संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी, अंग्रेजी, उर्दू, फ्रेंच व रूसी भाषा के तो प्रकाण्ड विद्वान थे। इन सब भाषाओं में भाषण देते थे। डा. ओबराय के व्याख्यान बड़े ही ओजस्वी, विद्वत्तापूर्ण पर साथ ही साथ बड़े सरल, सहज और हृदयस्पर्शी होते थे।

स्वामी विवेकानन्द के शिकागो भाषण (1893 ई.) की 70वीं वर्षगांठ पर संयुक्त राज्य अमेरिका में महा-सम्मेलन आयोजित हुआ जिसमें डा. ओबराय का भाषण सुनने के लिये बाबू जुगलकिशोर बिड़ला के भतीजे श्री चन्द्रकांत बिड़ला स्वयं उपस्थित थे। वे डा. ओबराय का भाषण सुनकर बहुत प्रभावित हुए और समाचार-पत्रों में छपी उनकी प्रशस्ति अपने चाचाजी के पास भेज दी थी। अब जब डा. ओबरायजी अपना कार्यक्रम समाप्त कर स्वदेश लौटे तब पुनः बिड़लाजी को धन्यवादपूर्वक नमन समर्पित करने गये। उन दिनों छोटानागपुर में विदेशी पादरियों द्वारा हिन्दुओं का सामूहिक धर्मान्तरण एवं पूर्वी बंगाल में हिन्दुओं पर होने वाले अमानवीय पैशाचिक अत्याचारों के समाचार वृत्त-पत्रों में छप रहे थे। बिड़लाजी ने अश्रु-पुलकित नेत्रों एवं करुण कातर

हृदय से कहा—मेरे समाज के अंग कट रहे हैं। क्या संस्कृति की सुधा द्वारा समाज को विदेशियों एवं विधर्मियों के अत्याचार से बचाया नहीं जा सकता? प्रो. ओबराय की दृष्टि समाज-धर्म के उस जीवन्त अवतार के चरणों में झुक गई। विद्या-व्यसनी प्राध्यापक ने अनुभव किया कि यदि भारतीय संस्कृति की सुरसरिता समाज के उद्धार के काम न आई तो वह केवल वाग्विलास अथवा बुद्धिविलास मात्र की वस्तु रह जायेगी। इसी संदर्भ में गुरुजी (श्रीमाधवराव सदाशिवराव गोलवलकरजी) से भी परामर्श किया। गुरुजी ने कहा—'यह कार्य अन्तरराष्ट्रीय महत्त्व का है, इसे अवश्य करें', कहकर अपना आशीर्वाद दिया।

प्रो. ओबराय को भारतीय प्राच्यविद्या के क्षेत्र में भारतीय संस्कृति के मूर्धन्यविद्वान् आचार्य डा. रघुवीर से महती प्रेरणा प्राप्त हुई थी। किन्तु 1963 ई. में प्रो. ओबराय के विदेश प्रवास के समय अचानक पीछे भारत में डा. रघुवीरजी का एक कार दुर्घटना में स्वर्गवास हो गया था। उससे प्रो. ओबराय के हृदय को बड़ा आघात लगा था। एक दिन पूज्य बिड़लाजी ने डा. रघुवीर का एक महान् ग्रंथ प्रो. ओबराय को भेंट करते हुए कहा—जैसे इस महापुरुष ने अपना समूचा जीवन भारतीय संस्कृति के लिये उत्सर्ग किया, उसके प्रति श्रद्धांजलि के रूप में आप छोटानागपुर में एक सांस्कृतिक संस्थान चलावें, जिसमें केवल शोधकार्य ही न होकर भारतीय संस्कृति पर अध्ययन, शोध एवं प्रचार—तीनों काम साथ-साथ हों। इसी बीच माननीय श्री ब्रजमोहन बिड़लाजी से परामर्श हुआ तथा उन्होंने प्रो. ओबराय को देश भर के बिड़ला शिक्षा संस्थानों में भाषणमाला हेतु आमंत्रित किया। अन्त में कई मास के विचार मंथन के उपरांत अप्रैल 1964 में निश्चय हुआ कि रांची में डा. रघुवीर के सरस्वती विहार के नाम के अनुरूप '**संस्कृति विहार**' स्थापित किया जाय जहाँ से शोधकर्ता, विद्वत्वर्ग, बुद्धिजीवी, नगरवासी एवं अपठित ग्रामवासी-वनवासी को समान रूप से संस्कृति का प्रकाश प्राप्त हो सके।

संस्कृति विहार की स्थापना के पूर्व बाबू जुगलकिशोर बिड़ला ने बी.आई.टी. मेसरा के अन्तर्गत दर्शन-मानविकी शास्त्र के स्वतंत्र संकाय की स्थापना कर डा. ओबराय को अध्यक्ष नियुक्त किया।

20 मई सन् 1965 को रांची के अपर बाजार में महामहोपाध्याय, गोपीनाथ कविराज के करकमलों से 'संस्कृति विहार' एकेडेमी आफ इण्डियन कल्चर का शुभारम्भ हुआ। उद्घाटन महोत्सव की अध्यक्षा श्री श्री माँ आनन्दमयी थीं। उक्त अवसर पर पूज्य स्वामी शरणानन्दजी (संस्थापक मानव सेवा संघ, वृंदावन) ने कहा—हमारी संस्कृति ही हमारे देश का प्राण है। सांस्कृतिक जीवनमूल्यों को अपनाने पर भारत जगत्गुरु के पद तक उठा। संस्कृति को भूलने पर भारत पददलित-पराधीन हो गया। हमारी संस्कृति के पावन संदेश को पुनः आत्मविस्मृत देशवासियों तक पहुँचाने हेतु संस्कृति विहार जैसी संस्था की नितान्त आवश्यकता थी। छोटानागपुर क्षेत्र के लिये तो यह बिड़ला परिवार का विशेष वरदान ही

सिद्ध होगा। तब से लगभग 18 वर्ष तक संस्कृति विहार के निदेशक पद पर रहते हुए डा. ओबराय ने कार्यभार संभाला। संस्कृति विहार के अध्यक्ष माननीय गंगाप्रसादजी बुधिया थे। इस संस्था ने अनेक कार्यक्रम चलाये जिसमें रात्रि-पाठशालाएं, चिकित्सा शिविर, गरीब व पिछड़े वर्गों एवं वनवासी बन्धुओं को आर्थिक सहायता, धार्मिक पर्वों गीता-गोष्ठियों, बाल एवं युवा शिविरों का आयोजन शामिल रहा है।

छोटानागपुर ईसाई गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र है। भारतीय समाज ग्रामवासी, नगरवासी व वनवासी—तीन स्तरों पर विकसित हुआ। हम 1200 वर्षों से विदेशी आक्रान्ताओं से संघर्षरत रहने से वनवासी समाज दुर्भाग्य से हमारी उपेक्षा का शिकार था। उसका अनुचित लाभ उठाते हुए ईसाई पादरियों ने वहाँ की भोली-भाली, अशिक्षित व निर्धन जनता को धन एवं शिक्षा का लालच देकर उन्हें अपने धर्म में सम्मिलित करने का अभियान चला रखा था। उन सबको समझा-बुझाकर अपने 18 साल के कार्यकाल में 6 हजार व्यक्तियों को शुद्धीकरण के माध्यम से वापस अपने स्वधर्म में लाये। इस पुनीत कार्य में परम पूज्य करपात्रीजी महाराज ने भी अपना आशीर्वाद प्रदान करते हुए शुद्धीकरण की क्रांतिकारी व्यवस्था दी। 'हमारे समाज के जिन बंधुओं की निर्धनता या अज्ञानता का अनुचित लाभ उठाकर विदेशी प्रचारक उन्हें फुसलाकर धर्मच्युत करते हैं वे बन्धु अपने मन से धर्म नहीं बदलते, उन्हें केवल विवशतावश विदेशी पादरियों के सम्मुख झुकना पड़ता है। धर्म तो मन की आस्था पर आधारित है। अतः जो मन से धर्म न बदलकर लोभ-लालच या विवशतावश धर्मान्तरित किये जाते हैं, शास्त्र की दृष्टि से वे हिन्दू ही हैं क्योंकि मन के बदले बिना धर्म बदला ही नहीं जा सकता। अतएव ऐसे सभी तथाकथित धर्मच्युत बंधुओं को हमें सरल शुद्धि-संस्कार द्वारा पुनः स्वधर्म में दीक्षित कर प्रीतिपूर्वक अपना लेना चाहिये।'

वनवासियों के बीच कार्य करने से उन्हें वनवासी जीवन की वास्तविकता को समझने का विशेष अवसर मिला। वनवासी समस्या पर उनके विशेष चिंतन, अध्ययन-अनुभव एवं उनके रचनात्मक सुझावों का लाभ उठाने के लिये अरुणाचल प्रदेश की तत्कालीन शान्ताकुमार की सरकार ने उन्हें आमंत्रित किया था। मुझे भी साथ चलने को प्रो. ओबरायजी ने कहा, पर मैं कुछ कार्यवश न जा सका।

आपने विदेशी पादरी निष्कासन का अभियान चलाया था। प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री के आगमन पर (दि. 19-12-1965) उन्हें संस्कृति विहार की ओर से ज्ञापन दिया कि वे गांधीजी के अरमान को पूरा करते हुए धर्मान्तरण पर प्रतिबंध लगावें। गांधीजी ने कहा था, 'भारत में ईसाई मिशनरी प्रयास का उद्देश्य है हिन्दुत्व को जड़-मूल से उखाड़कर उसके स्थान पर दूसरा मत थोपना...यदि मेरे पास विधान की शक्ति होती तो मैं निश्चित ही सभी प्रकार के धर्मान्तरण पर प्रतिबंध लगा देता। मैं भोले-भाले लोगों के प्रति ईसाई पादरियों के इस प्रकार के धर्मान्तरण के नीच प्रस्तावों का प्रबल विरोध करता हूँ।'

प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्रीजी ने आश्वासन दिया था कि वे ताशकंद से लौटने पर इस पर विचार करेंगे। किन्तु दुर्भाग्य...!

प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी को ज्ञापन—2 अक्टूबर 1968 को (गांधी शताब्दी वर्ष के आरम्भ पर) प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को उक्त विषय में मुद्रित ज्ञापन दिया गया, जिसमें मांग की गई कि वे गांधी शताब्दी वर्ष में गांधीजी के अरमानों को पूरा करने हेतु विदेशी धर्मान्तरण पर तुरंत रोक लगा देवें। ऐसा ही ज्ञापन मोरारजी देसाई के प्रधानमंत्रित्व-काल में उन्हें दिया गया।

विदेश प्रवास के दौरान पोप के पास जाकर अपना परिचय ओबरियो देकर भारत के विषय में आगामी योजना की पूरी जानकारी और कागजात प्राप्त कर भारत आकर उसका भण्डाफोड़ किया—'नागालैंड से केरल तक ईसाइस्तान बनाने के भीषण कुचक्र का।'

रांची के रोमन कैथोलिक मिशन को ब्रिटिश शासनकाल में सन् 1916 में पुरुलिया रोड पर लगभग 46 एकड़ भूमि 25 वर्ष के पट्टे (लीज) पर धार्मिक-शैक्षणिक एवं जनसेवी कार्यों के माध्यम से ईसाइयत के प्रचार-प्रसार के लिये दी गयी थी, मात्र 15 रुपये प्रति एकड़ प्रतिवर्ष की सस्ती दर पर। सन् 1941 में ब्रिटिश सरकार द्वारा पुनः वही जमीन अगले 25 वर्ष के लिये पट्टे पर दी गयी। उस पट्टे की अवधि 31 मार्च 1966 को समाप्त हो जाने पर भी अवैध कब्जा बनाये हुए थे। प्रो. ओबराय द्वारा संस्कृति विहार की ओर से मई 1968 में बिहार सरकार को आवेदन दिया गया कि सारी भूमि भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के निमित्त इस संस्था (संस्कृति विहार) को 25 वर्ष के लिये पट्टे पर दी जाय। संस्कृति विहार की ओर से दुगुना किराया तथा बिहार सरकार को 25 लाख रुपये सलामी देने का प्रस्ताव भी किया गया। पर दुर्भाग्य से वह सारी भूमि अभी भी अनिर्णीत अवस्था में उन्हीं के कब्जे में पड़ी हुई है।

प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के शासनकाल में ओमप्रकाश त्यागी ने धर्म स्वातंत्र्य विधेयक और गो-रक्षा विधेयक प्रस्तुत किया। इसका आपने स्वागत किया। इसके पक्ष में लिखा। विपक्ष को इसके सटीक, सतथ्य उत्तर दिये। यह अलग बात है कि मोरारजी देसाई की सरकार टिक नहीं पायी और विधेयक पास न हो सका। मदर टेरेसा का जब रांची में स्वागत किया जा रहा था तब आपने रांची की जनता से अपील की थी 'मदर टेरेसा' के स्वागत में विवेक से काम लें।

रोमन कैथोलिक मिशन का पादरी थोटंकल रांची में ईसाई धर्मप्रचारक के रूप में काम करता था। बाद में उसने पादरी के चोगे को भगवे रंग में रंगकर हिन्दू- बस्तियों एवं संस्थाओं में अपने-आपको स्वामी नरेन्द्रानन्द बताकर गरीब ब्राह्मण बच्चों को दिव्य ज्योति आश्रम में शिक्षा के नाम पर लाता था और बाद में उन्हें धीरे-धीरे ईसाई बनाने का उपक्रम प्रारम्भ करता था। इसका भी आपने सफल भण्डाफोड़ किया।

पादरी बुल्के जो रामकथा के मर्मज्ञ माने जाते हैं अपने शोधपत्र 'रामकथा उत्पत्ति और विकास' में शरारतपूर्ण तरीके से लिखा कि छोटानागपुर राक्षसों का निवास स्थल था, आदिवासी रामायण में वर्णित राक्षस हैं और रावण आदिवासी नृप था। ओराओ आदिवासी रावण के वंशज हैं। बुल्के महोदय कहते हैं रामकथा की उत्पत्ति और विकास खोजते-खोजते मैं तुलसीभक्त बन गया। वे बार-बार दोहराते हैं, मैं रामभक्त नहीं तुलसी का भक्त हूँ। इन सब विसंगतिपूर्ण स्थापनाओं का जोरदार खंडन मंचों पर और अपने लेखन द्वारा किया। इसके परिणामस्वरूप जिस मंच पर ओबरायजी आमंत्रित होते थे उस मंच पर बुल्के आने से मना कर देते थे। बुल्के सम्बन्धी लेख का संकलन ओबराय समग्र के तीसरे खण्ड के उपशीर्षक 'रामायण' के अन्तर्गत किया है।

इमाम अब्दुला बुखारी ने 'वीक एण्ड रिव्यू' पत्रिका नई दिल्ली के 7 जून 1980 के अंक में अपनी भेंटवार्त्ता में कहा था कि 'हिन्दुओं का कोई धर्म ही नहीं है।' इस पर प्रो. ओबरायजी ने इमाम बुखारी पर धर्म प्रतिष्ठाहनन का फौजदारी मामला दायर किया और न्यायालय से प्रार्थना की कि प्रतिष्ठाहनन के इस अपराध के लिये इमाम बुखारी को कठोरतम एवं शिक्षाप्रद दण्ड दिया जाय।

प्रो. ओबराय का कहना था—इस देश का मूल पुत्र समाज हिन्दू है जिसके कारण यह देश भारत है, हिन्दुस्तान है। Discovery of India में नेहरू जी स्वीकारते हैं—वेद, उपनिषद्, बौद्ध एवं जैन ग्रंथों से निर्मित दृष्टि ही भारतीय दृष्टि है। इन्दिरा गांधी ने सन् 1983 के नई दिल्ली में आयोजित रामकृष्ण, विवेकानन्द, युवा सम्मेलन में स्वीकार किया था, 'बहुत समय तक यूरोप में सभी धर्मों को हिन्दू में शामिल किया जाता था।' राजीव गाँधी (दिवंगत) जब प्रधानमंत्री बने तो शेष विश्व को भारत से परिचित कराने के लिए भारत उत्सव का आयोजन—मास्को में किया गया। उसका प्रारम्भ वैदिक गीत, भारतीय नृत्य से हुआ। उसमें प्रदर्शित वस्तुएँ हिन्दू धर्म-संस्कृति से संबन्धित थी। राजीव गाँधी ने कहा—ये सब भारतीय संस्कृति की प्रतिनिधि हैं। सन् 1957 में केरल में प्रथम बार वामपंथी सरकार बनी जिसमें मुख्यमंत्री ई. एम. एस. नम्बूद्रिपाद बने। शपथ ग्रहण समारोह में माओ (चीन से) आए तो उन्हें नटराज की मूर्ति भेंट करते हुए नम्बूद्रिपाद ने कहा—'यह भारत का प्रतीक है।' स्पष्ट है सबको भारत से परिचय कराने के लिए हिन्दुत्व का सहारा लेना पड़ता है। अतः इस देश का राष्ट्रीय समाज हिन्दू है, इस देश का राष्ट्रीय धर्म, संस्कृति हिन्दू है। हिन्दू समाज समझता है मैं अपने घर में हूँ अतः सुरक्षित हूँ। उसके मन में अन्य मतावलम्बियों के प्रति कोई दुर्भाव है नहीं। इसलिये हिन्दुओं के घर में एक लाठी भी नहीं मिलेगी। अधिकांश हिन्दुओं को ज्ञात ही नहीं है उनके विरुद्ध क्या-क्या षड्यंत्र चल रहे हैं और जिनको थोड़ा-बहुत ज्ञान है वह अपने आपको असहाय-अकेला समझकर उदासीन है। और जो हिन्दू संगठन इनके षड्यंत्रों के प्रति सचेत और समाज को सावधान, जागरूक और संगठित करने का प्रयास कर रहे हैं उनको साम्प्रदायिक, तुच्छ मनोवृत्ति के, समाज में

घृणा-विद्वेष, विघटन फैलाने वाले आदि कई विशेषण देकर उनके प्रति समाज में बुद्धिभेद निर्माण कर उनको समाज से अलग-थलग कर उनको गैर जिम्मेवार और महत्त्वहीन बना कर एक किनारे करने का प्रयास सतत चल रहा है। इसलिये बिना प्रतिरोध के ये सारे षड्यंत्र चल रहे हैं। अंग्रेजों के काल से इनको पोषण एवं राजनीतिक संरक्षण प्राप्त हो रहा है। दुर्भाग्य से स्वाधीन भारत के संविधान में उलटी गंगा बहायी गयी। जिस सम्प्रदाय के कारण भारत 1000 वर्ष तक पददलित एवं संघर्षरत रहा, जिस सम्प्रदाय के कारण देश पराधीन हुआ, जिन सम्प्रदायों की मिलीभगत से देश विभाजित हुआ और स्वाधीन भारत में भी जिनकी मिलीभगत से देश-विभाजन की प्रक्रिया निरंतर जारी है और जहाँ भी हिन्दू अल्पसंख्यक हुआ वह देश विदेश बन जाता है। इस प्रकार देश के अन्दर कितने ही विदेश बन गये, पाकिस्तान और ईसाई स्थान बन गये, पराये शत्रुस्थान बन गये, हिन्दुओं के लिये वर्जित हो गये हैं। वो दोनों सम्प्रदाय इस देश को न मातृभूमि, न पितृभूमि, न पुण्य भूमि, न धर्म भूमि वरन् इसे भोग भूमि, शत्रु भूमि (दारुलहर्ब) मानते हैं। और केवल अपने ही पंथ को एकमात्र सच्चा पंथ मानते हैं अन्य सबको मिथ्या-ढोंगी मानते हैं, काफिर मानते हैं। नष्ट होने योग्य मानते हैं। उनके पंथ के आधार में न तो दर्शन है, जो न विज्ञान सम्मत है, न वहाँ तर्क की गुंजाइश है, जो प्रकृति व पर्यावरण विरोधी है, नारी विरोधी है, उनका इतिहास कलंकित, मानवता को रक्त से स्नान कराने वाला है क्योंकि ये दोनों जहाँ-जहाँ भी गये उन देशों की पूर्व सभ्यता एवं संस्कृति को समूल नष्ट कर अपनी विदेशी (बर्बर-पाशविक सभ्यता) संस्कृति को थोप दिया, ईसाईयों ने कहीं-कहीं वहाँ के मूल वासियों को नष्ट कर स्वयं बस गये। जैसे अमेरीका आज गौरे लोगों की भोग भूमि बनी हुई है। वहाँ के मूलवासी रेड इंझियनों की समूल रूप से नष्ट कर दिया। उनका चरित्र अनुदार है, वो मानवता विरोधी हैं जो केवल मात्र विश्वास पर आधारित है, उनके सारे सिद्धांत आधे-अधूरे, विकृति को लिये हुए हैं। उन्हें ही अल्पसंख्यक मान कर उन्हें विशेष सुविधा और संरक्षण दिया गया। जबकि इन्होंने कभी अपने-आपको अल्पसंख्यक के रूप में, असुरक्षित रूप में परिचय न देकर स्वयं को उत्पाती, आक्रान्ता रूप में, उद्दंडी के रूप में ही परिचय दिया है और जहाँ ये अल्पसंख्यक होते हैं वहाँ विशेष सुविधा एवं संरक्षण चाहते हैं और जहाँ बहुसंख्यक होते हैं वहाँ असहिष्णु। यही कारण है कश्मीर से कश्मीरी पंडितों को निकाल बाहर किया। यही स्थिति ईसाई प्रधान राज्यों नागालैण्ड, मेघालय व मिजोरम की है जहाँ से हिन्दू या तो निकाल दिये गये या उनकी हत्या कर दी गयी या धर्मान्तरित कर लिये गये। दोनों सम्प्रदाय के राष्ट्रविरोधी कार्य निरन्तर जारी है और जितना-जितना अराष्ट्रीय कार्य उनके द्वारा हो रहा है उतनी-उतनी इन्हें सुविधायें और संरक्षण मिलना जारी है। इनके केवल अधिकार ही अधिकार हैं कर्तव्य कुछ नहीं। इस प्रकार आ बैल मुझे मार वाली स्थिति हमने स्वयं खड़ी कर रखी है। और जो इस देश का मूल पुत्रवत् राष्ट्रीय समाज है जिसके कारण भारत भारत है, हिन्दुस्तान है जिनके हृदय में मानव मात्र ही नहीं, जीव-मात्र ही नहीं, चराचर सृष्टि के लिये स्थान है, जिनका धर्म दर्शन पर आधारित है, विज्ञान, मनोविज्ञान, समाज विज्ञान से

सुसंगत है, जो पर्यावरण का मित्र है, नारी पूजक है जिन्होंने तर्क को भी उचित प्रतिष्ठा दी है, जिनका इतिहास उज्ज्वल है, मानवता की निःस्वार्थ भाव एवं विश्व मंगल की भावना से सदा सेवा की है जिनका चरित्र उदार है जो भावी विश्व की आशा है और जो निरन्तर देश के निर्माण में लगे हैं उन हिन्दुओं को ही संकीर्ण, साम्प्रदायिक मानकर उन्हें ही इन सुविधाओं से धर्मनिरपेक्षता के नाम पर वंचित रखा गया। मुस्लिम एवं ईसाई समाज के लिये संविधान धर्मसापेक्ष है वहीं हिन्दुओं के लिए धर्मनिरपेक्ष। इस प्रकार हिन्दू अपने एकमात्र देश में ही पराया, दो नम्बर का नागरिक बन गया है। दोहरे मापदण्ड का शिकार हो गया है। जहाँ हिन्दू बहुसंख्यक है वहाँ वह सामान्य नागरिक, दो नम्बर का नागरिक बना हुआ है और जहाँ अल्पसंख्यक है वहाँ उसे रहने की ही अनुमति नहीं यथा कश्मीर, नागालैण्ड, मिजोरम आदि। स्वाधीन भारत में भी गोवध रोकने, धर्मान्तरण रोकने, घुसपैठ रोकने, राम-जन्मभूमि पर भव्य मन्दिर बनाने, बमजिहाद, लभजिहाद (Love जिहाद) आतंकवाद से निबटने व रामसेतु के लिये निरन्तर आन्दोलन करना पड़ रहा है यह सारे विश्व के सामने बड़ी हास्यास्पद स्थिति है। सारा राष्ट्र व हिन्दू समाज पता नहीं कब इस लज्जाजनक स्थिति से मुक्त होगा। दुर्भाग्य से स्वाधीन भारत के संविधान ने अपनी जड़ें अपने मूल में, संस्कृति में डाली नहीं। हमारा बुद्धिजीवी-वर्ग, मीडिया, विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका हमारे मूल से, संस्कृति से, कटे हुए हैं। अंग्रेजों ने हमारी शिक्षा व्यवस्था से लेकर हमारी सारी परम्परागत व्यवस्थाओं को दूषित एवं नष्ट कर अपने स्वार्थ अनुकूल ढाला। गाँधी जी का स्पष्ट विचार था—भारत में अंग्रेज भले रहें, यहाँ से अंग्रेजियत जानी चाहिए। गाँधी जी स्पष्ट रूप से भारतीयता के, हिन्दुत्व के पक्षधर थे। पर इसके विपरीत नेहरू जी चाहते थे भारत से अंग्रेज भले चले जाएं पर यहाँ अंग्रेजियत रहनी चाहिए। नेहरू जी का स्वयं का कथन है मैं शिक्षा की दृष्टि से अंग्रेज, धर्म की दृष्टि से मुसलमान, केवल जन्मसूत्र के आधार पर यानी वे दुर्भाग्य से अपने को हिन्दू मानते थे। उन्हें पंडित कहलाने से भी वितृष्णा थी। उन्होंने जीवन भर हिन्दू धर्म-संस्कृति, हिन्दी भाषा, हिन्दुओं के श्रद्धाकेन्द्र तथा कृषि तंत्र-ऋषि तंत्र का आधार गाय का, हिन्दू विधि-विधानों का विरोध किया। इस प्रकार दुर्भाग्य से स्वयं नेहरू जी अंग्रेजों के मानसपुत्र एवं इस्लाम, ईसाइयत एवं मार्क्सवाद से प्रभावित होने के कारण वही स्थिति स्वाधीन भारत में कायम ही नहीं रही, और विकृत हुई क्योंकि अंग्रेजों ने जो व्यवस्था बनायी वह इस्लाम, ईसाई एवं मार्क्सवादियों के स्वार्थ के अनुकूल थी। और शिक्षामंत्री मौलाना अब्बुल कलाम आजाद फिर हुमांयु कबीर बने जिन्हें भारतीयता, भारतीय संस्कृति आदि से कोई लगाव या लेना-देना नहीं था। और देश की सारी बौद्धिक संस्थाओं पर कम्यूनिस्टों का प्रभाव स्थापित हो गया। फलतः आज हमारा बुद्धिजीवी-वर्ग, हमारा मीडिया, अपनी परम्परा, अपनी मूल संस्कृति से कटा हुआ, Money minded बन गया है, हमारी न्यायपालिका संविधान की धाराओं से बंधी होने के कारण असहाय है। हमारी विधायिका बहरी और कार्यपालिका लूली बनी हुई है। ये सब के सब अपने ही देश-धर्म-संस्कृति के मानबिन्दु, इतिहास, महापुरुष, भाषा अपने ही अस्तित्व

एवं आदर्श के विरुद्ध खड़े हैं। विश्व में एकमात्र देश भारत ही ऐसा है जो स्वाधीनता के पश्चात् भी अभी तक न अपनी राष्ट्रीयता, न अपना धर्म, न ही अपनी संस्कृति-अपनी जाति, न अपनी भाषा, महापुरुषों, श्रद्धाबिन्दु, तीर्थ, राष्ट्रीय ग्रंथ, राष्ट्रीय या जातीय लक्ष्य, कौन अपने, मित्र हैं, राष्ट्रीय है, कौन पराये हैं, शत्रु हैं, कौन दण्ड के पात्र हैं, कौन पुरस्कार के पात्र हैं आदि के मानदंड तय नहीं हो पाए है। इस देश की पहचान राम से है या बाबर से, गाँधी से है या जिन्ना से? इन सबके अभाव में कोई राष्ट्र कैसे विकास कर सकता है और कैसे सुरक्षित रह सकता है। जो इन मानदंडो के विरुद्ध चलता है उनको कैसे दण्डित कर सकता है? फलतः ये सब इन दोनों अराष्ट्रीय पंथों को दण्डित करने के स्थान पर उनके समर्थन में खड़े हैं, जो भारत के अस्तित्व को ही विश्व के मानचित्र से मिटाकर कोई ईसाइयत की, कोई इस्लाम की, तो कोई मार्क्स की झोली में डाल देना चाहते हैं। और जो संगठन (भारत के मूल राष्ट्रीय पुत्र समाज) देश के निर्माण में लगे हैं उनको पुरस्कृत करने के स्थान पर उनको बाधा देने में, उनके प्रति हिन्दू समाज में भ्रम निर्माण करने में, दण्डित करने में, आतंकवादी सिद्ध करने में, कटघरे में खड़े करने में लगे हुए हैं। यानी चोरी ऊपर से सीनाजोरी की स्थिति, चोर उल्टा कोतवाल को डाँटे की स्थिति गाँधीजी के समय बन गयी थी, नेहरूजी के समय बलवतर होते-होते अब चरम पर है। फलतः देश इन तीनों अराष्ट्रीय संगठनों के साथ-साथ ही अनेकानेक अन्तरराष्ट्रीय षड्यंत्रों का शिकार हो रहा है। इससे हिन्दू समाज के मन में निरन्तर एक निराशा की स्थिति, एक असहाय स्थिति घर करती जा रही है कि क्या हिन्दुत्व बचेगा, क्या भारतीय संस्कृति बचेगी? आगे आने वाली पीढ़ी का क्या होगा? क्या भारत, भारत के रूप में जीवित रहेगा या रोम, यूनान-मिस्र की तरह इतिहास की, भूगोल की, अजायबघर की वस्तु बनकर, एक अतीत की कहानी बनकर रह जायेगा?

अंग्रेजों के समय से ही असम को मुस्लिम बहुल बनाने का प्रयास चल रहा था और वह कार्य स्वाधीन भारत में भी चल रहा था उसके परिणाम से असम समस्या निर्माण हुई। जिसकी प्रामाणिक सामग्री आपने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पदाधिकारियों को दी।

'फूट डालो और शासन करो' के तहत अंग्रेज हिन्दू समाज को खण्ड-खण्ड करना चाहते थे, इसलिये उन्होंने कुटिलतापूर्वक यह प्रतिपादन किया कि सिक्ख समाज हिन्दू समाज का अंग नहीं है और यह विषवृक्ष स्वाधीन भारत में भी कांग्रेस सरकार के प्रश्रय में फलता-फूलता रहा। फलतः पंजाब समस्या का निर्माण हुआ। इस पर भी आपने छोटी पुस्तिका तैयार की। इस संदर्भ में निवर्तमान सरसंघचालक माननीय कुप.सी. सुदर्शनजी अपनी पुस्तक—'यों भटका पंजाब' के प्राक्कथन में कहते हैं कि पंजाब की समस्या जब सुलगनी शुरू हुई थी तभी प्राच्य शोध संस्थान रांची के निदेशक डा. हरवंशलाल ओबराय ने अपने एक लेख की पाण्डुलिपि मुझे दी थी। दुर्भाग्यवशात् उस लेख के प्रकाशित होने के पूर्व ही वे एक दुर्घटना में हम से बिछुड़ गये। किन्तु उनके इस लेख ने ही सर्वप्रथम इस समस्या के मूल में जाने की प्रेरणा दी।

भारत का नेतृत्ववर्ग आत्मगौरवशून्य हो जाने के कारण विश्व की तीन अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियाँ—विश्वव्यापी ईसाई शक्ति, विश्वव्यापी इस्लामी शक्ति एवं कम्यूनिज्म की शक्ति आज धर्मप्राण भारत को ही शिकार का लक्ष्य बनाकर बड़े भीषण रूप से क्रियाशील हैं। अतः भारत एवं भारतीयता की रक्षा हेतु विश्वव्यापी हिन्दुत्व की शक्ति के महाजागरण की आवश्यकता है। विदेशी षड्यन्त्रों से त्राण पाने के लिये वे सभी हिन्दुओं का आह्वान करते हुए कहा करते थे—'हे हिन्दू! तू बिन्दु-बिन्दु बनकर मत बिखर। तू बिन्दु-बिन्दु मिलकर सिंधु बन, वेग से बह, तब तुम्हारी धारा को कोई मोड़ नहीं सकेगा। हर हिन्दू जो आया है, उसको एक दिन मरना है, किन्तु हिन्दू समाज को मरना नहीं है। इसलिये हे हिन्दू! तू बिन्दु का जीवन छोड़कर सिंधु का जीवन जी। हे हिन्दू! तू सिंधु बन जा। धारा को अमर बना जा। हिन्दुओं के संगठित रहने से ही देश सुरक्षित रह सकता है'—ऐसा प्रो. ओबराय का स्पष्ट अभिमत था। डॉ. ओबराय का कहना था हिन्दुओं को बचना है तो डॉ. एनी बीसेंट की बात हर हिन्दू को गांठ बांध लेनी चाहिए—कि 'हिन्दुत्व के बिना, भारत का कोई भविष्य नहीं, कोई अस्तित्व नहीं....। हिन्दुत्व ही भारत का मूल है.... और इसकी रक्षा हिन्दुओं को ही करनी पड़ेगी।' और हिन्दुओं में जो जयचन्द की परम्परा निभा रहे हैं, तुच्छ स्वार्थ के वशीभूत होकर वे भविष्य में, इतिहास के कूड़ेदानी में फेंक दिये जायेंगे जैसा कि अतीत के जयचन्द, मानसिंह को नहीं पूजता, पृथ्वीराज और राणाप्रताप सर्वत्र पूजित हैं।

स्वाधीन भारत के अपने मूल और संस्कृति से निरन्तर कटते चले जाने से जो देश के वासियों का चारित्रिक पतन हुआ और सर्वत्र भ्रष्टाचार का बोलबाला हुआ इससे मिलावट की समस्या उभरी। डालडा (वनस्पति तेल) में गाय की चर्बी मिलायी जा रही थी। उसका आपने सफल भण्डाफोड़ किया। इस संदर्भ में आपने जनता के नाम अपील और लेख तैयार किया।

ईसाई समस्या, मुस्लिम समस्या एवं अन्य समस्या सम्बन्धी लेख 'राष्ट्रीय समस्या' शीर्षक के अन्तर्गत संकलित किया गया है।

अंग्रेजों ने भारत का तेजोभंग करने, राष्ट्रीयता के आधार पर चुनौती न मिल सके तथा अपने शासन को स्थायित्व एवं वैधता प्रदान करने के लिये इतिहास के नाम पर भारतीयों को यह कुसंस्कार का विष पिलाना प्रारंभ किया कि आर्य लोग भारत के मूल निवासी नहीं हैं, वे मध्य एशिया के मैदानों से आक्रान्ता बनकर भारत में आए। जबकि स्थिति यह है कि आर्य कहीं बाहर से नहीं आये। इसी देश के मूलवासी हैं और यहीं से सारे विश्व में फैले। डा. ओबरायजी का कहना है सारे विश्व में हिन्दू संस्कृति फैली थी और आज भी वह बहुत कुछ सुरक्षित है। 'मुझे विश्व का कोई भी ऐसा देश बताओ जो किसी न किसी ढंग से भारत का ऋणी नहीं है। मैं आपको उन्हीं के इतिहासों द्वारा सिद्ध कर दिखलाऊंगा कि कौन-कौन से दान उन्होंने हमसे प्राप्त किये हैं।' प्रो. ओबरायजी की यह चुनौती थी कि विश्व के इतिहास से चार पर्दे हटा दिये जायें तो विश्व में सर्वत्र हिन्दू संस्कृति फैली हुई थी। ईसा से पूर्व यूरोप, इस्लाम से पूर्व अरब, कोलम्बस से पूर्व अमरीका व फिलीप से पूर्व फिलिपाइन। अगर ये चार पर्दे हटा दिये जायें तो विश्व में सर्वत्र हिन्दू संस्कृति दिखेगी। ये

सारे लेख 'इतिहास' शीर्षक के नाम से संग्रहित किये गये हैं। इसी में चित्रावली भी संकलित है। जो भारत के जगद्गुरु के पद को सिद्ध करती है।

डा. ओबराय का विचार था आज लोगों को मोटे-मोटे ग्रंथ पढ़ने का न समय है और न रुचि। अतः छोटी-छोटी पुस्तिका और चित्र प्रदर्शनियों के द्वारा देश-धर्म-संस्कृति, हमारी परम्पराएं, हमारा दिग्विजयी सांस्कृतिक इतिहास एवं हमारे महापुरुषों के प्रति गौरवबोध जगाने के लिये अनेक चित्र प्रदर्शनियाँ बनायी जिसमें हिमालय रक्षा प्रदर्शनी, जगद्गुरु भारत प्रदर्शनी, गीता प्रदर्शनी, रामायण प्रदर्शनी, स्वामी विवेकानन्द प्रदर्शनी, ऋषि अरविन्द घोष प्रदर्शनी, शिवाजी प्रदर्शनी, वनवासी जीवन परम्परा प्रदर्शनी, सात्त्विक आहार-विहार प्रदर्शनी आदि अनेक प्रदर्शनियाँ बनायी जिसे वे देश-विदेश में व्याख्यान के प्रसंगों में साथ ले जाते थे। कभी-कभी केवल प्रदर्शनी आयोजित करने के निमित्त भी देश-विदेश में आमंत्रित किए जाते थे। डा. ओबराय ने देश-विदेश की यात्राओं में रामकथा के प्रसार से सम्बन्धित तथा हिन्दू धर्म, संस्कृति एवं दर्शन के प्रसार से सम्बन्धित अनेक साक्ष्य एकत्र किये थे। इसी प्रकार बौद्ध धर्म के विश्वव्यापी प्रसार के अनेक साक्ष्य संग्रहित किये। लगभग तीन हजार चित्रों, मूर्तियों और कलाकृतियों के रूप में 'संस्कृति विहार' रांची के सभागार में संचित थे और विषयवार रखे हुए थे जिसे कोई भी देखकर भारत के सांस्कृतिक दिग्विजय, हिन्दू धर्म-संस्कृति व बौद्ध धर्म के विश्वव्यापी रूप को समझ सकता था, अनुभव कर सकता था। संस्कृति विहार की स्थापना के प्रारम्भिक वर्षों में देश के प्रख्यात शिक्षाशास्त्री, पिलानी विश्वविद्यालय के संस्थापक कुलपति पूज्य श्री शुकदेवजी पाण्डे को कुछ कार्यक्रम विशेष में आमंत्रित किया गया था। वे लिखते हैं, 'संस्कृति विहार, रांची में भारतीय संस्कृति संग्रहालय देखने का मुझे अवसर मिला। इस संग्रहालय के अवलोकन से कोई भी भारतीय दर्शक अपनी संस्कृति का बाहर चीन, जापान, बर्मा, थाइलैण्ड, कम्बोडिया, दक्षिण अमेरिका, अफगानिस्तान, पाकिस्तान व अन्य देशों में प्रचार-प्रसार देखकर हर्ष व उल्लास से वंचित नहीं रह सकता। उसको गर्व होता है कि वह उस देश का नागरिक है जिसने अनेक देशों को सुसंस्कृत किया। संग्रह-कर्ताओं ने जो स्तुत्य प्रयत्न किया वह सर्वथा सार्थक हुआ।' चित्रावली सेट इसी की छोटी सी अनुकृति है, नमूना है।

हमारी संस्कृति के चिरंजीवी होने का रहस्य—

यूनानो मिस्र रोमां सब मिट गये जहाँ से,
बाकी है अब तलक भी, नामों निशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन, दौरें जमां हमारा।

—इकबाल

युग पर युग बीत गये, युग पर युग बीतते जा रहे हैं और युग पर युग बीत जायेंगे तब भी हमारी संस्कृति अजर-अमर बनकर खड़ी है, दुर्भाग्य की सबसे अधिक ठोकरें खाकर

भी चिरंजीवी बनी हुई है। जबकि अन्य संस्कृतियाँ छोटे-मोटे आघातों से सदा के लिये विलुप्त हो गयी हैं। आज उनको जानना है तो इतिहास के पृष्ठों में और अजायबघरों में जाना होगा।

तो भारतीय संस्कृति में ऐसी कौन-सी विशेषता है जिसके कारण आज भी चिरंजीवी बनी हुई है। सारे विश्व के विद्वान् इस पर आश्चर्यचकित हैं।

प्रत्येक युग का अपना एक स्वरूप होता है, उस युग की अपनी चुनौतियाँ होती हैं। उस युग व उसकी चुनौतियों को समझकर जो उसका उत्तर देने में समर्थ होती है वही संस्कृति चिरंजीवी होती है। वही समाज चिरंजीवी होता है।

अपने देश में हर युग में ऐसे युगपुरुष, अवतारी पुरुष, महापुरुषों का पदार्पण होता आया है, निर्माण होता आया है जिन्होंने युग की चुनौतियों को स्वीकार करते हुए इस देश का नेतृत्व किया है। भारतीय जातीय जीवन के प्रत्येक युग में ऐसे-ऐसे अध्यात्मिक दिग्गज हुए जिन्होंने न केवल देश को वरन् सारे विश्व को प्रभावित किया है।

सारे ऋषि, अवतार उत्तर भारत ने दिये। पूर्व-मध्यकाल में भारत पर संकट आया तब उत्तर भारत का उपकार चुकाने के लिये दक्षिण भारत ने आचार्य पैदा किये—शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्क, विष्णु स्वामी—सभी आचार्य दक्षिण भारत ने दिये।

मध्यकाल में संस्कृति पर जब पुनः संकट आया तो मध्य भारत, महाराष्ट्र, संयुक्तप्रांत आदि क्षेत्र ने सन्त-महात्मा पैदा किए—ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, गुरु एकनाथ, समर्थ गुरु रामदास, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा।

आधुनिक काल में भारतीय संस्कृति पर भीषणतम प्रहार पश्चिम से हुआ। अतः इस बार भारत का पूर्वांचल संस्कृति-रक्षण के पुनीत कर्तव्य के लिये आगे बढ़ा। आधुनिक नवोत्थान का अग्रदूत बंगाल बना।

पुराणों में बंगदेश वास को हीन माना है। वहाँ के वासियों को धर्म दृष्टि से कुछ घटिया स्थान दिया था। वहाँ के मांस भक्षण तथा कर्मकाण्ड की उपेक्षा के कारण भी उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था। उन सारे कलंकों को एकबारगी धोते हुए बंगाल ने आनन्दावतार चैतन्य महाप्रभु पैदा किया, धर्म के जीते-जागते स्वरूप रामकृष्ण परमहंस तथा विश्व विजेता स्वामी विवेकानन्द पैदा किए, वेदवाणी वन्दित योगीराज अरविन्द और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, राजा राममोहनराय तथा विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर पैदा किये। महापुरुष सारे भारत में पैदा हुए।

भारतीय संत परम्परा और सेमेटिक संत परम्परा में मूलभूत अंतर है। London Times ने गांधीजी को श्रद्धांजलि देते हुए कहा—

No country but India and no religion but Hinduism could have given birth to a Gandhi. यह बात केवल गांधीजी के प्रति ही नहीं भारत के सभी

महापुरुषों के विषय में कह सकते हैं। भारतीय परम्परा में संतहृदय को नवनीत के समान कहा है, रामचरितमानस के अमर गायक गोस्वामी तुलसीदास जी ने '**मुदमंगलमय संत समाजू**' कहकर वंदना करते हुए उन्हें संसार में चलते-फिरते तीर्थ की हृदयहारी एवं भावगर्भित उपमा दी है।

किन्तु यह बात सेमेटिक परम्परा के संतों के विषय में नहीं कह सकते हैं। उनके यहाँ तो काफिरों, हिडेनों से घृणा करने, उनके निर्मम वध को पुण्यकार्य, आदर्शकर्म और स्वर्गप्रद बताया गया है तथा अपने पंथ विस्तार के लिए जो भी उचित-अनुचित कार्य किया, जितना अधिक मानवता को रक्त से स्नान कराया, सर्वसंहार किया वे उनके आदर्श पुरुष हैं, संत हैं। जैसे फ्रैंसिस जेवियर ने गोवा में कैसा अमानुषिक अत्याचार किया। उसे पढ़ें तो रोंगटे खड़े हो जाएं, दिल दहल जाएगा। उसने घोषणा करवा दी कि सब जगह मन्दिर नष्ट कर दिये जाएं। सब मूर्तियाँ तोड़ दी जाएं। मैं नहीं जानता कि मन्दिरों के गिराये जाने और मूर्तियों के तोड़े जाने को प्रत्यक्ष देखकर जो मुझे प्रसन्नता होती है उसको शब्दों में कैसे वर्णन किया जा सकता है। एक जैसुइट की शपथ पढ़ें तो करुणा, मानवता से विश्वास उठ जायेगा। कोलम्बस ने अमेरिका में क्या अत्याचार नहीं किये? उस देश के मूलवासियों को समूल रूप से नष्ट कर दिया और वह फ्रैंसिस जेवियर, वह कोलम्बस उनके लिये महान् संत है, महान् पुरुष है, आदर्श पुरुष है, ईसाई संस्कृति के प्रतीक हैं।

इसके विपरीत भारतीय संस्कृति के प्रतीक भगवान बुद्ध जो त्याग और आत्मविजय के आदर्श हैं। इसकी तुलना में पश्चिम के गौरव का प्रतीक यूनानी राजा युलिसिस है जो द्वीप जीतने के अभियान में लड़ते-लड़ते मर गया। भारत में अशोक इसलिये महान् हुआ क्योंकि उसने राज्य सत्ता त्याग दी, भिक्षु बन गया। किन्तु पश्चिम में सिकन्दर, सीजर और नेपोलियन को इसलिये महान् माना गया क्योंकि वे सत्ता और वैभव के भूखे थे। भारत की महानता दान में है, तपस्या में है, निःस्वार्थ सेवा में, ज्ञानदान में है, परदुःखकातरता में है और पश्चिम की बहादुरी लूट-खसोट में है, अपने पंथ विस्तार में है चाहे उसके लिये सारी मानव-जाति का संहार हो जाय।

यही स्थिति इस्लाम की है। उनके आदर्श पुरुष हैं महमूद गजनवी जिसने कई बार सोमनाथ मन्दिर को लूटा, देव-प्रतिमाओं को तोड़ा, मानवता को अपमानित किया, स्त्री-पुरुषों को दास-दासी, रखेल बनाकर विदेशों में बेचा। उनके आदर्श पुरुष हैं मुहम्मद बिन कासिम जिसने सत्रह वर्ष की आयु में सिंध पर विजय प्राप्त की। उनके आदर्श पुरुष हैं मुहम्मद गोरी जिसने तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत पर आक्रमण किया। उनके लिये औरंगजेब महान् मुगल सम्राट है उसे वे जिन्दा पीर मानते हैं। जिन्ना उनके यहाँ महान् पुरुष है जिसने देश को विभाजित किया।

इस प्रकार भारतीय संत-परम्परा और सेमेटिक संत-परम्परा जिसमें ईसाई, मुसलमान व पश्चिमी देश आते हैं, भारतीय आदर्श पुरुष और सेमेटिक आदर्श पुरुष में मूलभूत अंतर

है। हमारे यहाँ जिनको असुर, दैत्य, राक्षस-पिशाच माना गया उनके यहाँ वे महान् पुरुष हैं, आदर्श पुरुष हैं, संत हैं। अतः सभी परम्पराओं के संत एक समान है इस भ्रम में न रहें। हमारे यहाँ भी रावण, कंस, हिरण्यकशिपु हुए हैं पर वे हमारे आदर्श पुरुष नहीं हैं, उन्हें विकृति माना गया और दण्ड के पात्र बने। पश्चिम में भी सुकरात, मुसलमानों में रहीम, दाराशिकोह, सूफी संत सरमद, रसखान, जायसी, उशाउल्लाखान, मुहम्मद करीम छागला, भूतपूर्व राष्ट्रपति डा.अब्दुल कलाम आदि के संतत्व, महानता का कारण भी उनका भारतीय विचार परम्परा के प्रभाव में आना और उसके अनुसार ढल जाना रहा। इसलिये वे मानवता के पुजारी और भारतभक्त बने।

आज भी मदरसे में जो शिक्षा दी जाती है, कोर्स चलते हैं, उनमें एक पाठ भी भारतीय महापुरुष पर नहीं है। गांधीजी मुसलमानों को मूल राष्ट्रीयधारा में लाने के लिए उनकी सारी अनुचित मांगें स्वीकारते रहे, अन्त में विभाजन को स्वीकार कर लिया और अपने प्राणों की आहुति देकर भी उनको अपना नहीं बना सके। पंडित नेहरूजी भी नहीं जो स्वयं को धर्म की दृष्टि से मुसलमान मानते थे। जो आजीवन उनके संरक्षक रहे वे भी उनके पाठ में नहीं हैं। सब मतांध मुसलमान ही उनके आदर्श पुरुष हैं। यही स्थिति परम्परागत ईसाइयों एवं पादरियों की है। अतः सभी परम्परा के महापुरुष एक से हैं इस भ्रम में न रहें। महापुरुषों संबंधी लेख दूसरे खण्ड में संग्रहित किये गये हैं।

जहाँ विश्व के अन्य देशों के धर्म-दर्शन-संस्कृति विज्ञान के सामने नतमस्तक हैं, हतप्रभ हैं, भयभीत हैं; वहाँ एकमात्र भारतीय धर्म-दर्शन एवं संस्कृति ही आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के लिये चुनौती बनकर ऊँचा मस्तिष्क कर खड़ी है।

18वीं शताब्दी तक धर्म-दर्शन-संस्कृति के क्षेत्र में भारत जगद्गुरु रहा है। कुछ काल से दिशा भ्रमित होने से अपने आदर्शों से च्युत प्रतीत होता है। इस काल में भी स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, ऋषि अरविन्द घोष, साधु वास्वानी, महर्षि रमण, रवीन्द्रनाथ टैगोर, डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती, माधवराव सदाशिवराव गोलवलकरजी, स्वामी अखण्डानन्दजी, भारती कृष्णतीर्थजी के कारण भारत का जगद्गुरुत्व बार-बार प्रमाणित हुआ है और आज भी भावी विश्व की आशा का केन्द्र भारत है।

प्रो. ओबराय को प्राचीन व अर्वाचीन भारतीय धर्म-दर्शन परम्परा का तथा पाश्चात्य परम्परा का प्रारम्भ से लेकर आज तक का विधिवत अध्ययन और आज की आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की परम्परा का सम्यक् ज्ञान था। फलतः आज के संदर्भ में हिन्दू धर्म-दर्शन-संस्कृति को प्रस्तुत किया है, व्याख्या की है।

प्रो. ओबराय का स्पष्ट अभिमत था कि दर्शन के क्षेत्र में भारत विश्व का शिरोमणि देश है। वास्तव में भारत ने अन्तर्जगत में डुबकी लगाकर जिन अमूल्य विचार रत्नों की उपलब्धि की है उसके सम्मुख शेष विश्व की समस्त सम्पदा फीकी पड़ जाती है। यह दुर्भाग्य की बात है कि पश्चिम में लिखित अधिकांश दर्शन के इतिहास अपनी

कथा यूनान से प्रारम्भ करते हैं। यूनान में छठी शताब्दी ई.पू. से दार्शनिक चिन्तन प्रारम्भ होता है। जबकि भारत में यह काल प्रखर दार्शनिक वाद-विवाद का भास्वर मध्याह्न काल है। पश्चिम में जब प्रथम दार्शनिक थेल्स अनुमान लगा रहा है कि सम्भवतः जल ही सृष्टि का परम सत्य है। उस समय तक भारत में वैदिक दर्शन, उपनिषदों का महानतम वेदान्त दर्शन, कल्पसूत्र, जैन एवं बौद्ध दर्शन सभी पूर्णतः विकसित एवं प्रतिष्ठित हो चुके थे। अतः संसार में दर्शनशास्त्र का इतिहास भारत से प्रारम्भ होना चाहिये न कि यूनान से।

शिव-गणेश-राम-कृष्ण हमारे देव-विग्रह ही नहीं अवतार विग्रह, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म परात्पर ही नहीं, हमारे राष्ट्रीय महापुरुष के साथ-साथ अन्तरराष्ट्रीय मैत्री व सौहार्द के आधार भी हैं। इसलिये राममनोहर लोहिया जो स्वयं नास्तिक होते हुए भी राम, कृष्ण, शिव की चर्चा करते हैं, उन्होंने ही अन्तरराष्ट्रीय रामायण मेला की योजना प्रस्तुत की और उसको प्रारम्भ कराया। गीता की विश्वव्यापी महत्ता को ध्यान में रखते हुए ही इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्रीशम्भूनाथ श्रीवास्तव ने अपने एक महत्त्वपूर्ण निर्णय '**श्यामल रंजन मुखर्जी बनाम निर्मल रंजन मुखर्जी, ए.आई.आर. 2007**' में केन्द्र सरकार से कहा है कि वह संविधान के अनुच्छेद 51 (क) मूल कर्तव्य के अन्तर्गत **भगवद्गीता को राष्ट्रीय धर्मशास्त्र** घोषित करे।

अतः रामायण केवल हिन्दुओं का धर्मग्रंथ ही नहीं भारत का राष्ट्रीय महाकाव्य है, साथ ही विश्व मानवता के मंगल का महाकाव्य भी। इसमें इतने ऊँचे नैतिक आदर्श और पारिवारिक मूल्यों का उपदेश है कि उसके बिना परिवार उजड़ जायेंगे और हमारा समाज नष्ट हो जाएगा।

सम्राट औरंगजेब के बड़े भाई दाराशिकोह भी अपने गुरु सरमद के पास बैठकर रामायण, गीता और उपनिषद् पढ़ा करते थे। गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन अब्दुर्रहीम खानखाना तथा पठान कवि रसखान भी रामायण के दीवाने थे। रहीम ने लिखा है—

रामचरित मानस विमल संतन जीवन प्राण,
हिन्दूआन को वेद सम यवनन प्रकट कुरान।

मलाया, इंडोनेशिया आदि देशों के मुसलमान आज तक बड़े चाव से रामायण पढ़ते हैं और बड़े उत्साह से रामलीला खेलते हैं। खुद मुहम्मद अली जिन्ना साहब ने जब वे कांग्रेस के मंत्री थे तब अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में भाषण करते हुए मुसलमान छात्रों से कहा था कि 'रामायण, महाभारत' हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय महाकाव्य हैं। इसको पढ़े-समझे बिना कोई हिन्दुस्तान को नहीं समझ सकता। और न ही भारत राष्ट्र के साथ एकात्म हो सकता है। अगर मुस्लिम बंधु इस नसीहत को मानते तो देश विभाजन की कल्पना भी नहीं उठ सकती थी।

प्रसिद्ध क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल की दूसरे क्रांतिकारी अश्फाक उल्ला से बड़ी दोस्ती थी, वे उसे अपना छोटा भाई मानते थे। उसे अपने घर साथ ले जाते और उसे लक्ष्मण कहकर पुकारते। सबकी नजर में वह राम-लखन की जोड़ी बहुत प्यारी थी। वे घर में साथ-साथ खाना खाते, साथ-साथ खेलते और साथ-साथ देशभक्ति का तराना गाते और अन्त में दोनों साथ-साथ फांसी चढ़ गये। एक बार अश्फाकउल्ला के पेट में भीषण दर्द हुआ। वे बेहोश हो गये, राम-राम चिल्लाने लगे। घरवालों ने कहा, अल्लाह-अल्लाह बोलो। किन्तु वे राम-राम चिल्लाते रहे। जब रामप्रसाद बिस्मिल पहुँचे तो वे उठकर उनके गले से लिपट गये और कहा, अब मेरा राम आ गया है। इस दृश्य को देखकर लोगों को रामायण में वर्णित लक्ष्मण की बेहोशी के बाद राम से पुनः मिलने की याद आ गई। तो यह संस्कृति का चमत्कार है जो हमारी नस-नस में है। इसने सबके दिल को जोड़ा है। अश्फाक और बिस्मिल के दिल को एक बना दिया है। इस राह पर चलने से देश पुनः एक हो सकता है।

आज प्रश्न उठता है कि भारत में मुसलमानों की समस्या का हल क्या है? क्या दाराशिकोह, रहीम, रसखान, अश्फाक उल्ला ने मार्गदर्शन नहीं किया? यदि भारत के मुसलमान मुसलमान रहते हुए भी रहीम, रसखान के समान भारत एवं भारतीयता के भक्त रहते तो क्या भारतमाता खण्डित हो पाती! जो स्वयं को भारतीय तो कहे पर भारतीयता को अस्वीकारे तो वह कैसे भारतीय हो सकता है? वह कैसे राष्ट्रीय नागरिक हो सकता है? प्रो. ओबराय कहते थे—भारत के मुसलमानो! भारतीयता को स्वीकार करो। भारतीयता को स्वीकारते ही खण्डित देश के पुनः अखण्ड होने की उज्ज्वल आशा भारत के क्षितिज पर मुस्कराने लगेगी।

संसार के सभी निष्पक्ष विचारकों एवं द्रष्टाओं का यही मत है कि धर्म तो केवल हिन्दू धर्म ही है, शेष सब पंथ, सम्प्रदाय और मजहब मात्र हैं जो नश्वर मानवों द्वारा धरती के भिन्न-भिन्न भूखण्डों में काल-सरिता की नश्वर तिथियों पर किसी सीमित लौकिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्थापित किये गये, न वे अनादि हैं और न शाश्वत। हिन्दू धर्म ही मानव धर्म है, भावी विश्व का धर्म है। शाश्वत और सनातन है। ऐसा प्रो. ओबराय का भी स्पष्ट अभिमत था।

संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है, भूखण्ड राष्ट्र का देह है, साहित्य उसकी दृष्टि है, भाषा उसकी वाणी है, सभ्यता उसका शृंगार है, कलायें उसका सौंदर्य है, विज्ञान उसका वैश्विक शोध है, अर्थ उसका भंडार है, संस्कृति उसका प्राण है। संस्कृति के बिना सब निष्प्राण हो जाएगा।

इकबाल का कथन है—

यूनानो मिस्र रोमां मिट गये जहाँ से

इसमें उन देशों के भूखण्ड अभी तक वर्तमान है किंतु उनकी संस्कृतियाँ मिट गयी।

भारत में राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है जबकि पश्चिमी राष्ट्र राजनीतिक इकाई से

बनता है। पूरे यूरोप का भू-खण्ड भारत जितना ही है। यूरोप के रूस से लेकर आयरलैण्ड तक संस्कृति लगभग समान किन्तु बीसियों राष्ट्र। भारत में सन् 1947 तक ब्रिटिश शासन में साढ़े पांच सौ रियासतें थी। उससे पूर्व देश में हजारों छोटे-छोटे राज्य रहे होंगे। मारवाड़-मेवाड़, चोल-चालुक्य आपस में लड़ते रहते थे। राज्य अनेक थे। किन्तु संस्कृति एक होने के कारण राष्ट्र एक था।

भारत की राजनीतिक एकता चाहे अनेक बार खंडित होती रही है, किन्तु हमारी सांस्कृतिक एकता सनातन काल से अभेद्य रही है। वास्तव में उत्थान-पतन के अनेक झंझावातों में तथा विदेशी आक्रमण के प्रचण्ड बवण्डरों में भारत को सदा भारत रखने वाली यही सांस्कृतिक एकता ही उसकी संजीवनी शक्ति थी।

भाषायें बांटती है, संस्कृति जोड़ती है। राजनीति तोड़ती है, संस्कृति जोड़ती है। जातियाँ बांटती है, संस्कृति जोड़ती है। वर्ण, आश्रम, जाति-उपजाति, प्रदेश, वेश-भूषा, आर्थिक स्तर आदि को संस्कृति ने जोड़ रखा है।

भारतीय समाज नगरवासी, ग्रामवासी तथा वनवासी—तीन स्तरों पर विकसित हुआ है। किन्तु सभी स्तरों पर एक ही महान् संस्कृति का स्वर्णिम सूत्र पूरे समाज को एकात्मता में बांधने में सहायक सिद्ध हुआ है। अतः राष्ट्र की एकता का स्वर्णिम सूत्र संस्कृति ही है। यह सूत्र टूटते ही भारत खण्ड-खण्ड हो जायेगा।

जो संस्कृति अपने देश में समन्वय का स्वर्णिम सूत्र है, वही संस्कृति भारत के सांस्कृतिक दिग्विजय एवं अन्तरराष्ट्रीय-सम्बन्धों की प्राणधारा है। संस्कृति के स्वर्णिम सूत्र ने भारत को जगत्गुरु के सिंहासन पर बिठाया है। यदि समस्त दक्षिण-पूर्व-उत्तर एशिया के पचासों देश भारत को पुण्यभूमि मानकर भारत की कपिलवस्तु, गया, हरिद्वार की धूलि को मस्तक पर चढ़ाते हैं, यदि फिजी, गियाना, मारीशस, सूरीनाम, ट्रिनिडाड के लोग गंगा स्नान के लिये हजारों मील दूर से भारत यात्रा पर आते हैं तो केवल सांस्कृतिक-सम्बन्धों के कारण।

इंडोनेशिया के मुसलमान रामलीला-कृष्णलीला को राष्ट्रीय महोत्सव के रूप में मानते हैं। अपने देश में सबसे पहले अन्तरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन आयोजित करते हैं तो केवल सांस्कृतिक सम्बन्धों के कारण।

भारतीय समाज उत्सवप्रिय समाज है। उत्सव की प्रियता और अधिकता भारत की समृद्धि को उसके ऊँचे सांस्कृतिक स्तर को सिद्ध करती है। भारत सचमुच रत्नगर्भा शस्य श्यामला देश है जो थोड़े से प्रयास से ही हमारी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर देता है। जिस देश के वासियों का सारा समय दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में लग जाता है उनके पास उत्सव पालन के लिए समय कहाँ? धन कहाँ? हमारे देश का सांस्कृतिक स्तर ऊँचा होने के कारण हमारे उत्सव मन को संस्कारित करने वाले, मन को ऊर्ध्वदिशा देने वाले, सत्य के प्रति निष्ठा जगाने वाले, देव विग्रह में, परब्रह्म परमात्मा में, आत्मा में निमज्जित करने वाले होते हैं। पर जिन देशों का सांस्कृतिक स्तर

निम्न होता है उनके उत्सव मन को कुपथ-गामी, अधोगामी, विषयी बनाने वाले होते हैं। जैसे रोम गुलामों की सबसे बड़ी मण्डी थी। जहाँ गुलामों को नग्न-अर्धनग्न रखा जाता था, उन्हें घर के दरवाजे या गली-कूचो में सोना पड़ता था। उनके जीवन में यदि कोई अपराध बन जाता था तो उनको जीवित समुद्र में मगरमच्छ के आगे डाल दिया जाता था, और निरपराध होने पर अपने मालिकों के मनोरंजनार्थ हिंस्र पशुओं से लड़ना पड़ता था। उनके हार जाने पर उनको मार कर उनके शव को रथ में बांध कर घसीटा जाता था। यही स्थिति इस्लाम-ईसाइयत आदि की है। रमजान के माह का पालन करने के पश्चात् काफिरों के घात का आदेश देते हैं उनके शास्त्र। पर हमारे देश का सांस्कृतिक स्तर ऊँचा होने के कारण हमारे मन में सत्य के प्रति अविचल निष्ठा को जगाती है, हमारे मन को अध्यात्मिक बनाने का प्रभुमय बनाने का प्रयास करती है, हमारे मन को सात्त्विक आनन्द से भर देती है। अतः भारतीय उत्सव हमारे राष्ट्रजीवन का प्राण है जो जन-जीवन में पुनः-पुनः प्राण संचार करता है और हमारे पूर्वजों की पुण्य परम्परा से, उसके कर्तृत्व-व्यक्तित्व से जोड़े रखता है।

विज्ञान का जनक पश्चिम नहीं भारत है। तीसरी शती ईसा-पूर्व के यूनानी वैज्ञानिक आर्कमिडीज से 17वीं सदी के ब्रिटिश वैज्ञानिक न्यूटन तक पश्चिम में लगभग 2000 वर्षों तक जब विज्ञान मर चुका था तब भी भारत में वैज्ञानिक प्रगति जारी थी। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, श्रीधर, लीलावती आदि अनेक वैज्ञानिक हुए। जहाँ पश्चिम में 17वीं शती में धरती को गोल कहने पर गैलिलियो को कारागार में सता-सता कर मारा गया वहीं भारत की वैदिक परम्परा में ही 'भूगोल' (भूमि गोल), खगोल, ब्रह्माण्ड, अखण्डमण्डलाकारम् शब्द ही भारत को विज्ञान का जनक घोषित कर रहा है।

मनुष्य अपने जीवन काल में पूर्णता लाभ कर सके, परमलक्ष्य तक पहुँच सके इसके लिए मन का स्वस्थ, सबल और चिंतामुक्त होना अति आवश्यक है। अतः चिंता के क्या कारण है, चिंता के क्या दुष्प्रभाव हैं और चिंता से कैसे मुक्त होकर मन को स्वस्थ-सबल बना सकते हैं। चिंता सबके जीवन में आती है। पर यदि मन सबल होता है तो वह उसे विचलित नहीं कर पाती और वह छोटी मालूम पड़ती है और उससे वह उबर जाता है। पर यदि मन दुर्बल है तो चिन्तायें बड़ी प्रबल लगती हैं और वह उसे लक्ष्यच्युत कर विपथगामी बना सकती है। इसलिये कहा गया है मन के जीते जीत है, मन के हारे हार। मन के भी कई स्तर हैं जिस पर अनेक शोध कार्य व विशेष अध्ययन हो रहे हैं मनोविज्ञान-परामनोविज्ञान के अन्तर्गत।

दर्शन, शिव, गणेश, रामायण, गीता, धर्म, संस्कृति, उत्सव, विज्ञान, मनोविज्ञान सम्बन्धी लेख तीसरे खण्ड में संकलित किये गये हैं।

डा. ओबराय बड़े निर्भीक वक्ता थे। जगजीवनराम उस समय खाद्यमंत्री बने नहीं थे बनने वाले थे। दिल्ली की एक सभा में जिसमें शंकराचार्य व साधु-संतों की उपस्थिति में

कहने लगे, मैं तो सबकुछ खाता हूँ। फल महंगे हैं और गाय का दूध भी एक प्रकार से रक्त है ऐसा रूसी वैज्ञानिक का मत है। ऐसी अनर्गल बातें आपको सह्य नहीं हुईं। आपने पर्ची मंच पर भेजकर समय लेकर इसका घोर प्रतिवाद करते हुए कहा—आपने माँ का दूध नहीं माँ का रक्त पीया है। दूध प्रकृति का दान है। दूध पीने से माँ प्रफुलित होती है, उससे वात्सल्य झरता है, और जब किसी का रक्त निकालते हैं उसे वेदना होती है, तड़पता है और शेष में दम तोड़ देता है। आपने पूछा, किस रूसी वैज्ञानिक ने कहा कि दूध एक प्रकार से रक्त है?

महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन ने एक ग्रंथ लिखा, 'वोल्गा से गंगा'। इसका प्रतिवाद आपने दिल्ली के एक मंच से उनकी उपस्थिति में किया। आपने मंच से स्पष्ट कहा—मार्क्स की भक्ति में बहकर आपने ऐसा प्रतिपादन किया है। जबकि रूसी भाषा में साहित्य का प्रारम्भ 13वीं सदी से हुआ है और रूसी भाषा के नमूने 11वीं सदी के मध्य के आस-पास के हैं। इसकी तुलना में भारतीय संस्कृत भाषा के ग्रंथ ईसा से हजारों वर्ष पूर्व के मिलते हैं। ऋग्वेद जो विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ है तथा कम से कम ईसा से 10 हजार वर्ष पुराना माना जाता है, उसमें आर्यों की मूल भूमि के रूप में सप्तसिंधु (उत्तर भारत) का वर्णन है। अतः स्पष्ट है—वोल्गा से गंगा नहीं, 'गंगा से वोल्गा' होना चाहिये।

ऐसे अनेकों प्रसंग मैंने प्रो. ओबरायजी के श्रीमुख से सुने हैं। एक प्रसंग को और उद्धृत करना चाहता हूँ। आप विदेश प्रवास में थे उस समय का प्रसंग है—

बाइबिल के अनुसार God ने 6 दिनों में सृष्टि की रचना की और सातवें दिन विश्राम किया। और वे दिन की गणना रविवार से प्रारम्भ करते हैं। तो इसके अनुसार 6 दिन शुक्रवार को पूरे हो जाते हैं। तब बाइबिल के अनुसार शनिवार को चर्च लगना चाहिये, इस विषय पर वाद-विवाद 8 दिनों से चल रहा था। इसमें भाग लेने की अनुमति प्रो. ओबरायजी ने चाही। सहर्ष अनुमति मिली और बड़े सम्मान के साथ उन्हें मंच पर बुलाया गया।

आपने कहा, भगवान् की पूजा तो प्रतिदिन-प्रतिपल होनी चाहिये। इस दृष्टि से चर्च रविवार को लगे या शनिवार को लगे यह विवाद ही व्यर्थ है। भगवान् कहते हैं, '**तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।**' सब समय मेरा स्मरण करता हुआ अपने कर्तव्य का पालन कर।

फिर आपके God ने 6 दिन में सृष्टि की और सातवें दिन विश्राम किया। इसका अर्थ है सृष्टि के पहले भी Days थे जिसका उपयोग God ने किया। तब प्रश्न है दिन किसने बनाये? यह हमारे God ने बनाये जिसका उपयोग आपके God ने किया।

फिर आपने स्पष्ट किया कि शनिवार और रविवार दोनों ही दिन क्या सभी दिनों में सब समय ईश्वर से अपना सम्बन्ध जोड़कर रखना चाहिये। आप लोग चर्च के दिन मानवता की रक्षा के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते हैं और उसके बाद ही से मानवता के संहार के लिये हर तरह के साधन जुटाने लग जाते हैं।

शनिवार को चर्च लगाना बाइबिल के अनुसार ठीक है और रविवार को चर्च लगाना इतिहास की दृष्टि से सही है। चूंकि सूर्योपासना रविवार को होती थी। वहाँ पर इसाई पादरियों ने छल-प्रपंच से प्रवेशकर सूर्योपासना के स्थान पर ईसाई पूजा प्रारम्भ की। अतः रविवार को चर्च लगाना इतिहाससिद्ध तथ्य है।

फिर आपने बाइबिल के सम्बन्ध में कुछ शंकाएं रखीं—God ने 6 दिनों में सृष्टि की और सातवें दिन विश्राम किया। वहीं हमारे ईश्वर के मन में संकल्प उठा और तत्क्षण कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों की सृष्टि हो गयी। तो तुम्हारा God बहुत आलसी है जिसे सृष्टि रचना में 6 दिन लग गये। इसका अर्थ तुम्हारा ईश्वर सर्वशक्तिमान नहीं है।

फिर ईश्वर को विश्राम की आवश्यकता क्यों? ईश्वर थकेगा किससे? थकने का अर्थ है अधमरा होना। जीवों की इन्द्रियाँ कार्य के पश्चात् थक जाती हैं, अधमरी हो जाती हैं तब शरीर को विश्राम देकर पुनर्जीवित किया जाता है। वस्तुतः जो वस्तु थकती है उसका धीरे-धीरे क्षय होता जाता है और एक दिन विलीन भी, नष्ट भी हो जाती है। इस तरह ईसाइयों के God थकने के कारण धीरे-धीरे क्षय को प्राप्त हो नष्ट हो जायेंगे।

आपसे अनेक देशी-विदेशी अध्येता अपने शोधकार्य के लिये फोन व पत्राचार द्वारा मार्गदर्शन पाते रहे हैं। जिसमें शिकागो के डेनियन बेन हारिन को भारतीय दर्शन के नव्य-वेदांत पर शोधकार्य के लिये पत्राचार द्वारा मार्गदर्शन दिया गया। टोकियो विश्वविद्यालय के श्री मिश्ताशी को 'जेनबुद्धिज्म' (Zen-Buddhism) अर्थात् बौद्धमत के ध्यान योग सिद्धांत में मार्गदर्शन दिया गया। यहाँ तक कि डा. ओबराय के पास अमेरिका के प्रथम बैप्टिस्ट चर्च के मिनिस्टर (बड़े पादरी) भी आध्यात्मिक मार्गदर्शन हेतु आया करते थे। डब्ल्यू.ई. डेइलचर ने ब्रौकपोर्ट (न्यूयॉर्क) से लिखा था कि उसने डा. ओबराय के सुन्दर पत्र का अंश अपने कार्य में उद्धृत किया था। डेइलचर के अनुसार डा. हरवंशलाल ओबरायजी की यह भावनायें कि 'भौतिक जीवन की सर्वांगीणता में आध्यात्मिक मार्गदर्शन अति आवश्यक है'—अत्यन्त ही यथा समय कही गई।

प्रो. ओबरायजी की दिनचर्या ब्रह्म मुहूर्त से प्रारम्भ होती थी—

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।

अपने माता-पिता, गुरुजनों को नित्य नमस्कार करने एवं सेवा करने वाले व्यक्ति के चार गुण सदा बढ़ते रहते हैं—आयु, विद्या, यश और बल। ब्राह्ममुहूर्त का बड़ा महत्त्व है, प्रकृति में इस समय सतोगुण प्रबल होता है। यही समय ध्यान, पूजा-पाठ एवं माता-पिता से आशीर्वाद प्राप्त करने का उत्तम समय है। इस समय हम ऋषि-मुनियों, साधु-सन्तों, महापुरुषों, गुरुजनों, पूज्यजनों के प्रभामण्डल से, उनकी चेतना से जुड़ जाते हैं। स्नान के पश्चात् गीता स्वाध्याय और रात्रि शयन—

शांताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्ण शुभांगम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर-ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरणं सर्वलोकैक-नाथम्।।

मंत्रपाठ से होता था। आपका जीवन बहुत सरल-सीधा एक खुली पुस्तक थी। देव भक्ति और राष्ट्र भक्ति से ओत-प्रोत था। एक बालक से लेकर वृद्ध तक सीधे आपके पास आ सकता था। आपके इष्टदेव भगवान् श्रीकृष्ण, इष्ट ग्रंथ भगवद्-गीता एवं रामचरितमानस थे। आपके इष्ट महापुरुष आद्यशंकराचार्य, छत्रपति शिवाजी, स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानन्द एवं गुरुजी थे।

इन तीनों खण्डों में संग्रहित लेखों में बहुत से लेख प्रकाशित हैं, कुछ अप्रकाशित हैं, कुछ उनके भाषण से संग्रहित हैं, और कुछ जो मैंने उनसे व्यक्तिगत रूप से पढ़ा है, शामिल हैं।

प्रो. ओबरायजी की दृष्टि से देखें तो यह बहुत अल्प सामग्री है। अधिकांश सामग्री तो उनके साथ ही चली गयी, बिना लेखन के। मेरा बार-बार उनसे निवेदन रहता था कि आप विधिवत लिखवायें अन्यथा ये सारा शोध व अध्ययन आपके साथ ही चला जाएगा। स्वयं प्रो. ओबरायजी की भी योजना 50 साल तक अध्ययन, उसके पश्चात् उसका विधिवत लेखन, सम्पादन एवं प्रकाशन की थी। इस दृष्टि से जब मैंने अपने आपको इस कार्य के लिये समर्पित किया तो उन्होंने सहर्ष स्वीकारा पर व्यवहार में परिणत नहीं हो सका। उनकी व्यस्तता के कारण, सरलता, अतिथि-परायणता के कारण। किसी को B.I.T. मेसरा में दाखिला चाहिये, किसी को अपने व्यवसाय में सहयोग चाहिये, किसी को सरकारी नौकरी में सहयोग चाहिये, किसी हिन्दू की बहू-बेटी मुसलमान भगाकर ले गया है, तो कोई ग्राम ईसाई पादरियों से पीड़ित है, धर्मान्तरण का शिकार है, तो किसी को अपने अध्ययन के लिये आर्थिक सहयोग चाहिये। इन कारणों से भी वे व्यस्त हो जाते और लेखन कार्य वहीं का वहीं धरा रह जाता।

इस प्रकार प्रो. ओबरायजी की हार्दिक इच्छा और मेरे सतत प्रयास के बाद भी लेखन व सम्पादन कार्य नहीं हो सका। 1983 ई. में इन्दौर विश्वविद्यालय में वेद और विज्ञान पर आयोजित सम्मेलन में उन्हें अपना शोध विचार रखना था। मुझे भी साथ चलने को कहा पर मैं साथ जा नहीं सका और आप 18 सितम्बर को रायपुर स्टेशन पर दुर्घटना-ग्रस्त होकर हम सबसे सदा के लिये छीन लिये गये।

यद्यपि उनके जीवनकाल में ही प्रायः सारी सामग्री संकलित कर ली थी। पर फिर भी कुछ सामग्री अवशिष्ट रह ही जाती है। अतः मैं जब-जब उनके छोटे भ्राता श्री ब्रजभूषण ओबरायजी के पास गया उन्होंने अवशिष्ट सामग्री संकलन के लिये पूरी आत्मीयता के साथ सहयोग दिया। प्रो. ओबरायजी मुझे अपना पुत्र ही मानते थे। मैं उनका पुत्रवत् शिष्य था। इस दृष्टि से मुझे अपने माता-पिता के तुल्य उनसे स्नेह, वात्सल्य, लाड़-प्यार मिला। पूज्य

माताश्री और निर्मला बहनजी का भी पूरा स्नेह मिला और जब-जब दिल्ली में डा. मदनलाल ओबरायजी से मिला उनका पूरा स्नेह मुझे मिला।

प्रो. ओबरायजी के बहुत से लेख अंग्रेजी भाषा में थे। उनके हिन्दी अनुवाद की समस्या थी। उस समय प्रो. ओबरायजी के छोटे भाई श्री चन्द्रप्रकाश ओबराय आगे आये। आपने छोटे-बड़े कुल मिलाकर 40 लेखों से अधिक का हिन्दी अनुवाद किया। जिसमें से 18 लेख इस संकलन में शामिल हैं। इसके पूर्व चार लेख प्रो. अमरपालसिंहजी ने हिन्दी अनुवाद करके दिये थे। पांच लेख श्री श्रवणकुमार सोलंकी जी ने अपनी अस्वस्थता के बावजूद अनुवाद करके दिये। प्रूफ रीडिंग में प्रो. मनोहर लाल ओहरी, श्री तोलाराम लाठ, श्री महावीरसिंह शेखावत, श्री अशोक परिहार और श्रीमती कौशल्या भाटी एवं श्री विनोदकुमारजी शर्मा से मदद मिली। मैं इन सबका हृदय से आभारी हूँ।

इसके प्रकाशन में भी लम्बी संघर्ष की गाथा है। प्रो. ओबरायजी के जाने के पश्चात् से ही जो भी सामग्री उपलब्ध है वह प्रकाशित हो, इसके लिये प्रयास प्रारम्भ कर दिया था, पर इसमें सफलता अब मिल रही है। प्रभु की कृपा से एवं परम पूज्य गुरुदेवजी श्रीमत् स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज के आशीर्वाद से तथा प्रो. हरवंशलाल ओबराय के छोटे भ्राता माननीय डा. मदनलालजी ओबराय, सुश्री (स्व.) निर्मला बहिनजी, माननीय श्री वृजभूषणजी ओबराय, माननीय श्री चन्द्रप्रकाशजी ओबराय एवं उनके समस्त परिवार के सहयोग से। पुस्तक अवश्य छपे और शीघ्र छपे इसके लिए निरंतर माननीय श्री जुगलकिशोरजी जैथलिया, माननीय श्री महावीरप्रसादजी बजाज, माननीय श्री रामेश्वरजी मिश्र 'पकंज', सुश्री कुसुमलता केडिया, माननीय श्री बालकृष्णजी नायक, माननीय श्री बालमुकुन्दजी, श्रद्धेय श्री पंडित शिवजी (गणेश धोरा) एवं माननीय श्री विपिनचन्द्रजी गोयल तथा माननीय श्री नन्दकिशोरजी आचार्य से निरन्तर प्रेरणा एवं नैतिक बल प्राप्त हुआ। मेरे पूर्वाश्रम के पूज्य माता-पिताजी पूज्य श्री सांवरमल लाठ, पूज्या श्रीमती गायत्री देवी लाठ, पूज्य बड़े चाचाजी श्री तोलाराम लाठ एवं सभी भाई-बहिनों से सदैव सब प्रकार का सहयोग प्राप्त हुआ, कभी भी किसी ने भी कोई बाधा खड़ी नहीं की, जिसके कारण ही मैं प्रो. ओबरायजी से निरंतर सम्पर्क बनाये रख सका, सामग्री संकलित कर पाया और अभी तक सुरक्षित रख पाया। ये लेख विविध अवसरों पर लिखे गए हैं फिर एक ही विषय पर कई बार कई लेख लिखे गए हैं अतः पुनरावृत्ति स्वाभाविक रूप से है। बहुत हद तक पुनरावृत्ति हटाने का प्रयास किया है फिर भी कुछ पुनरावृत्ति रह गयी है। और विशेषकर राष्ट्रीय समस्या और इतिहास (पहला खंड) में कई स्थानों पर पुनरावृत्ति हटायी नहीं जा सकी क्योंकि इससे विषय खंडित और अस्पष्ट रह जाता है। फिर जैसी प्रबुद्ध पाठक समाज की राय बनेगी उसके अनुसार अगले संस्करण में हटाने का प्रयास करूंगा।

Indias contribution to the Greaco-Roman world का हिन्दी अनुवाद 'यूनानी और रोमन जगत् को भारत की देन' यह लेख प्रो. ओबरायजी का है या नहीं

निश्चय नहीं हो पा रहा है। पर इसे उनके समग्र से बाद भी नहीं कर पाने के कारण जब तक स्पष्ट नहीं होता इस टिप्पणी के साथ संकलन में शामिल कर रहा हूँ।

पुस्तक प्रकाशन के निमित्त आर्थिक सहयोग श्री चन्द्रप्रकाश ओबराय (प्रो. ओबराय के छोटे भ्राता, पूर्व निदेशक, डायरेक्टर जनरल आर्फ फोरस्ट्स भारत सरकार 114, बसन्त विहार, फेज II, देहरादून, उत्तरांचल दूरभाष-01352766111, 09897076611) से 21 हजार रु., श्री बड़ा बाजार कुमारसभा पुस्तकालय कोलकाता से 10 हजार रु., राजस्थान परिषद कोलकाता से 11 हजार रु., श्री गिरधारीलाल दरगन से 11 हजार रु., श्री पन्नालाल लोहिया से 5 हजार रु., श्री श्याम सुन्दर शर्मा से 5 हजार रु., श्री चन्द्रप्रकाश महर्षि से 5 हजार रु., श्री जेठमल जी अरोड़ा से 51 सौ रु. एवं श्री मोहनलाल चौबे, पुरुलिया से 10000 रु. प्राप्त हुए। इन सबका हृदय से कृतज्ञ हूँ।

इस संकलन को तैयार करने में मैंने अपना पूरा तन-मन, धन एवं अपनी पूरी प्रज्ञाशक्ति लगायी है। 18 वर्ष की अवस्था में यह कार्य प्रारम्भ किया था जब मैंने I.A. में प्रवेश लिया था और आज 54वें वर्ष में प्रवेश करने जा रहा हूँ यानी 36, वर्षों का परिश्रम व तप इसमें सन्निहित है। अब पाठक वर्ग को इसका मूल्यांकन करना है कि कहाँ तक मैं सफल हो पाया हूँ। इसमें कई लेख अधूरे थे जिन्हें मैंने प्रो. ओबराय जी से प्राप्त गुरु दृष्टि व स्वभाव के आधार पर पूर्ण किया है। और उनके द्वारा प्रतिपादित तथ्यों को भी भारत एवं विश्वमनीषा के मंतव्यों के द्वारा और भी अधिक पुष्ट करने का प्रयास किया है। इसमें कोई त्रुटि या कमी है तो मनीषीवृन्दों के सुझावों का स्वागत है जिससे अगले संस्करण में उनका यथा योग्य समावेश किया जा सके।

हमेशा की तरह सांखला प्रिंटर्स ने पूर्ण सहयोग करते हुए, श्रेष्ठ सुझाव देते हुए तत्परता से मुद्रण कार्य को सुन्दरता से सम्पन्न किया। उनके प्रति विशेष आभार है।

शिवाकांक्षी

—स्वामी संवित् सुबोधगिरि

(सम्पादक व संकलनकर्ता)

संस्मरण

प्रो. ओबराय द्वारा मंत्र-सिद्धि

मेरा भतीजा मधुसूदन लाठ, बाल्यावस्था में हृदय-रोग से पीड़ित हो गया। उसके हृदय के दो वॉल्व एओर्टिक (Aortic) एवं माइट्रल (Mitral) अपना स्वाभाविक कार्य करने में आंशिक अक्षम हो गए। यह कोई सन् 1977-78 की बात रही होगी। अनेकों बार उसे दौरे-पड़ते एवं हम लोग उसकी चिकित्सा हेतु उसे लेकर रांची जाते रहते। इसी प्रकार वर्षों बीत गए। मधु के बड़े भाई 'सन्तोष' (अब स्वामी सुबोधगिरि महाराज) रांची में दर्शनशास्त्र के स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए रांची गए तब उनका सम्पर्क मेसरा अभियान्त्रिकी महाविद्यालय के व्याख्याता प्रो. डा. हरवंशलाल ओबराय से हुआ।

एक समय की बात है कि मधु को अचानक भीषण दौरा पड़ा। हम लोगों ने तत्काल उसे रांची के एक सामाजिक सेवा सदन में भरती कर चिकित्सा करवाने की व्यवस्था की। दौरा गंभीर था। मधु के चिकित्सक डा. बरमेश्वर प्रसाद, जो रांची आयुर्विज्ञान महाविद्यालय के औषध विभागाध्यक्ष थे, ने बताया कि अवस्था चिन्ताजनक है। वॉल्व बदलने आवश्यक हैं, वह काम रांची में होना संभव नहीं है। रोगी की अवस्था गंभीर है एवं इस अवस्था में रोगी को कहीं भी ले जाना संभव नहीं है। ईश्वर पर भरोसा रखते हुए हमें दवाओं के भरोसे रोगी के एक बार ठीक होने की प्रतीक्षा करने के अलावा कोई चारा नहीं है। दौरा इतना गंभीर था कि ईश्वर पर भरोसा करने के अलावा कुछ भी किया जाना संभव नहीं था। ऐसी स्थिति में हम सब निराश एवं उदास थे। अचानक प्रो. ओबराय शाम को पधारे। हम लोगों को ढाढ़स बंधाया एवं मधु के बिस्तर के पास बैठकर कई बार 'राम रक्षा-स्तोत्र' का पाठ किया। मधु को भी सुबह-शाम उस स्तोत्र का पाठ करने के लिए कहा एवं हम लोगों को ईश्वर पर भरोसा रखते हुए इस स्तोत्र का पाठ समय-समय पर करने की हिदायत दी।

प्रायः हर शाम प्रो. ओबराय अस्पताल आ जाते एवं राम रक्षा-स्तोत्र का पाठ करते। ईश्वर कृपा, चिकित्सकों के प्रयास एवं प्रो. ओबराय के मंत्र पाठ ने चमत्कार दिखाया और मधु धीरे-धीरे स्वस्थ हो गया। तत्पश्चात् मुंबई ले जाकर मधु का वॉल्व प्रत्यारोपित किया गया। आज उस घटना को घटे करीब 30 साल बीत चुके हैं। मधु अब दो सुन्दर कन्याओं का जनक, एक सफल रेलवे कान्ट्रेक्टर, अपने सम्पूर्ण परिवार के सुख-दुख में हर प्रकार से सहायक व्यक्ति है।

प्रो. ओबराय की मंत्र-सिद्धि का चमत्कार हो या ईश्वरीय कृपा किन्तु हमारा सारा परिवार प्रो. ओबराय के प्रति चिरऋणी है एवं रहेगा।

अयोध्या पहाड़ के वनवासियों के बीच प्रो. ओबराय

पश्चिम बंगाल के दक्षिण क्षेत्र का अन्तिम जिला पुरुलिया। पुरुलिया जिले की अधिकांश सीमा वर्तमान झारखण्ड प्रान्त से लगती है। इस जिले के बाघमुन्डी ब्लॉक में अवस्थित अयोध्या पहाड़ अत्यन्त रमणीक एवं पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र है। यहाँ के अधिवासी अधिकांश संथाल जाति के हैं। यह एक स्वीकृत जन-जाति है।

इस पहाड़ का नाम अयोध्या क्यों पड़ा, इससे जुड़ी एक अत्यन्त रोचक कथा एवं जन विश्वास है। उस क्षेत्र के वनवासियों का विश्वास है कि रामायण काल में भगवान राम, माता सीता एवं लक्ष्मण वनवास के दौरान इस क्षेत्र में आये थे। इस पहाड़ की एक चट्टान पर माता सीता ने अपना केश-विन्यास किया था। जिस क्षेत्र में यह चट्टान अवस्थित है वहाँ कुछ इस प्रकार के वृक्ष हैं जो केशनुमा रेशे समय-समय पर बिखेरते रहते हैं। उस क्षेत्र से कोई भी वनवासी यदि गुजरता है तो अत्यन्त श्रद्धापूर्वक एक छोटा-सा पत्थर उस चट्टान के नीचे रख कर, इस चट्टान को प्रणाम करके ही आगे बढ़ता है। संभवतः इन्हीं कारणों से वहाँ के वनवासियों ने इस स्थान का नाम 'अयोध्या' रख दिया होगा।

भारतीय वनवासी 'कल्याण आश्रम' नामक संस्था देश के वनवासी समाज एवं वनवासी क्षेत्रों के उन्नयन के प्रति समर्पित एक सामाजिक संस्था है। 'कल्याण आश्रम' ने उस क्षेत्र का व्यापक सर्वेक्षण कर पाया कि अयोध्या पहाड़ के वनवासी अत्यन्त निर्धन, अशिक्षित एवं विवश है। कल्याण आश्रम ने पहाड़ के नीचे बाघमुन्डी ग्राम में सन् 1978 में एक छात्रावास की स्थापना की और अयोध्या पहाड़ पर बसे विभिन्न ग्रामों से बच्चों को संग्रहित कर छात्रावास में निःशुल्क भोजन, आवास आदि की व्यवस्था की। साथ ही उन छात्रों को स्थानीय राजकीय विद्यालय में प्रवेश दिलवाकर उनके समुचित अध्ययन का दायित्व स्वीकार किया। सेवाव्रती कार्यकर्ताओं ने उन्हें हर प्रकार से योग्य बनाने का बीड़ा उठाया एवं उनमें राष्ट्रीयता एवं हिन्दुत्व के भावों को प्रतिष्ठापित करने के दायित्व का निर्वहन किया। यह प्रशंसनीय कार्य अभी भी किया जा रहा है।

अयोध्या पहाड़ के वनवासियों के मन में भगवान् राम एवं माता सीता के प्रति अगाध श्रद्धा को देखते हुए कल्याण आश्रम ने अयोध्या पहाड़ के प्रमुख ग्राम 'अयोध्या' में भगवान् राम का एक सुन्दर-सा मन्दिर बनवाया। हर वर्ष रामनवमी का उत्सव मनाना प्रारंभ किया एवं पहाड़ पर अवस्थित 36 ग्रामों के वनवासियों को आमंत्रित कर भगवान् राम के प्रसाद स्वरूप एक सहभोज का आयोजन प्रतिवर्ष करना प्रारंभ किया। इस कार्यक्रम में संथाली भाषा में रामायण के विभिन्न प्रसंगों का प्रवचन एवं बांग्ला भाषा में अन्य भक्तिमूलक गीत, भाषण आदि का आयोजन आज भी किया जाता है।

ऐसे ही एक कार्यक्रम में (संभवतः सन् 1981) में, भारतीय मनीषा एवं दर्शन के उद्भट विद्वान, रांची के संस्कृति विहार के निदेशक, बी.आई.टी. मेसरा के व्याख्याता

प्रो. डा. हरवंशलाल ओबराय मुख्य अतिथि के रूप में पधारे। उन्होंने 'कल्याण आश्रम' के कार्यक्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा की। सहभोज के दौरान स्वयं ही वनवासी बंधुओं को प्रसाद परिवेशन किया। उनके साथ बैठकर स्वयं भी प्रसाद ग्रहण किया। कार्यक्रम के दौरान होने वाले लोक-नृत्य में भी सहभागी बने एवं पूरे कार्यक्रम को एक अद्‌भुत श्रेष्ठता प्रदान की।

कार्यक्रम में, अपने भाषण के अन्तर्गत, मैंने सीता-चट्टान, सीता माता के केश-विन्यास आदि की चर्चा की। यद्यपि मेरा भाषण बांग्ला भाषा में हुआ, तथापि प्रो. ओबराय ने, बांग्ला भाषा का साधारण ज्ञान होने के बावजूद, मेरी बातों को पकड़ लिया और उस स्थान के दर्शन करवाने का आग्रह किया। स्थान, यद्यपि डेढ़ कि.मी. की दूरी पर ही था किन्तु मार्ग दुर्गम था। इन सब बातों की परवाह किए बिना प्रो. ओबराय उस स्थान पर गए। अतीव भक्ति एवं श्रद्धापूर्वक उस चट्टान का पूजन किया। वृक्षों से झरने वाले माता सीता के केशों का संग्रह किया एवं भविष्य में इस क्षेत्र एवं विषय पर व्यापक शोध करने हेतु, समुचित समय लेकर आने का वचन दिया।

विधाता को कुछ और ही स्वीकार था। सन् 1983 में रायपुर (छत्तीसगढ़) स्टेशन पर रेल दुर्घटना में भारतीय दर्शन का यह महान् पंडित, हिन्दू संस्कृति का यह महान् पुजारी, भारत का यह महान् देशभक्त हम से बिछुड़ गया। आज भी 'सीता-चट्टान' किसी अन्य 'ओबराय' की प्रतीक्षा कर रही है।

सन् 1983 में थाईदेश (श्यामदेश) के बैंकॉक शहर में आयोजित 'विश्व गीता सम्मेलन' का एक अविस्मरणीय संस्मरण

परम श्रद्धेय प्रो. डा. हरवंशलाल ओबराय के साथ हम अन्य 12 लोगों को भी उपरोक्त सम्मेलन में सहभागिता करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। रांची के 'संस्कृति विहार' से श्रीमद्‌भागवत गीता संबंधित एक चित्र प्रदर्शनी लेकर हम बैंकॉक हवाई अड्डे पर उतरे। सारी औपचारिकताएं पूरी होने के पश्चात् जब हमें पता चला कि हमारे सारे सामान (लगेज) एवं प्रदर्शनी के चित्र आदि भूलवश विमान से उतारे नहीं गए और सिंगापुर के लिए उड़ान भर चुके हैं। एयर इंडिया के अधिकारियों ने हमें क्षतिपूर्ति स्वरूप प्रति व्यक्ति 70 डालर (उस समय 1 डालर का मूल्य भारतीय मुद्रा में 9 रुपये था) देने की पेशकश की जिसे प्रो. ओबराय ने, शालीनता पूर्वक, लेने में असमर्थता प्रकट कर दी। कारण, एयर इंडिया के अधिकारियों ने हमें आश्वासन दिया था कि सारा सामान आगामी दिन प्रातः 9 बजे तक हमारे होटल में पहुँचा दिया जाएगा। ओबरायजी का कहना था कि उस वक्त तक हमें केवल टूथ ब्रश, टंग क्लीनर एवं टूथ पेस्ट की आवश्यकता होगी। टॉवेल, साबुन आदि होटल से मिल ही जाएंगे। अतः किसी प्रकार की क्षति जब नहीं हो रही है तो क्षतिपूर्ति स्वीकार करना अनुचित होगा। ऐसे थे प्रो. ओबराय।

—श्री तोलाराम लाठ

परामर्श मण्डल

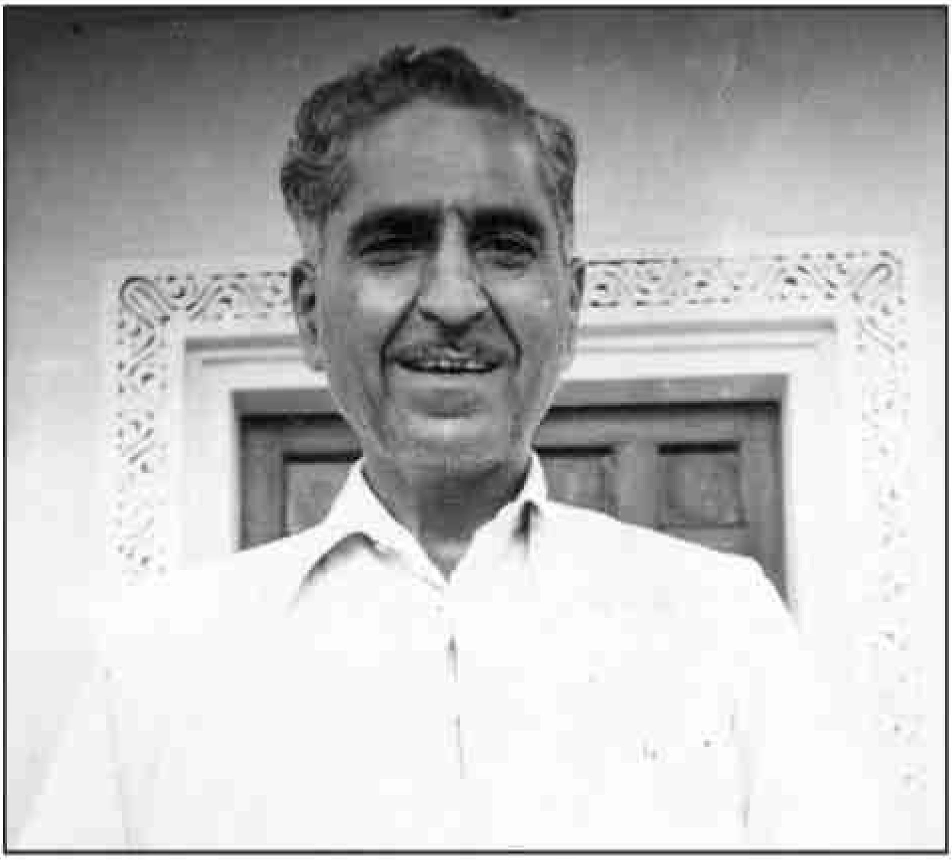
- **श्री नरेन्द्र कोहली**
  175, वैशाली, पीतमपुरा, नई दिल्ली-110034
  09871681382
- **श्री इन्द्रेश कुमार**
  R.S.S. की अखिल भारतीय कार्यकारिणी के सदस्य
  09818354177
- **श्री बालमुकुन्दजी संगठन सचिव**
  अ.भा.ई. संकलन योजना बाबा साहेब आपटे भवन, केशवकुंज, झण्डेवाला, नई दिल्ली-55
  09212447876
- **श्री बालकृष्ण नायक**
  केन्द्रीय उपाध्यक्ष (विश्व हिन्दू परिषद्) (हिन्दू-बौद्ध समन्वय प्रभारी)
  09313857322
- **श्री रामेश्वर प्रसाद मिश्र 'पंकज'**
  निदेशक, निराला सृजनपीठ, सी-165/1, प्रोफेसर कालोनी, भोपाल-462002 (म.प्र.)
  09425602596
- **प्रो. कुसुमलता केडिया**
  निदेशक-गांधी विद्या संस्थान, राजघाट, वाराणसी
  09235619406
- **श्री आनन्द मिश्र 'अभय'**
  संपादक, राष्ट्र धर्म (हिन्दी मासिक) संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ
  0522-4041494
- **डा. मदनलाल ओबराय**
  46, चन्द्रलोक इनक्लेव, पीतमपुरा नई दिल्ली-110034
  011-27195675, 47093166
- **श्री जुगलकिशोर जैथलिया**
  उपाध्यक्ष, भारतीय जनता पार्टी, पश्चिम बंगाल
  42, कालीकृष्णा टैगोर स्ट्रीट, कोलकाता-7
  09830341747
- **डा. बद्री प्रसाद पंचोली**
  बी-6, दातानगर, रेम्बल रोड, अजमेर-305006
  0145-2425664
- **श्री सीताराम महर्षि**
  कृष्ण कुटीर, रतनगढ़ 331022 (राज.)
  09413218586
- **श्री तोलाराम लाठ**
  राजस्थान कम्प्यूटर्स, बीकानेर
  09351688268

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

मूल्य : 1200 रु. (तीनों खण्ड) प्रत्येक 400 रु.

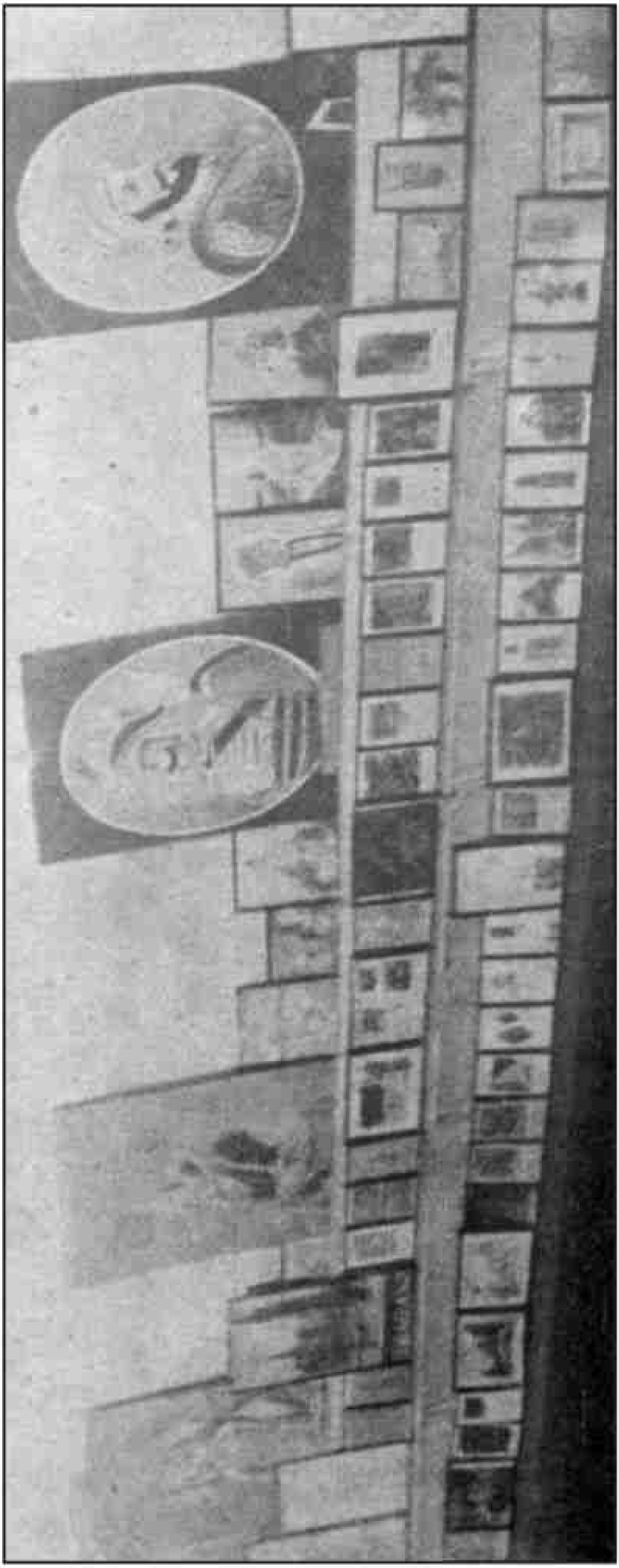


डॉ. हरवंशलाल ओबराय

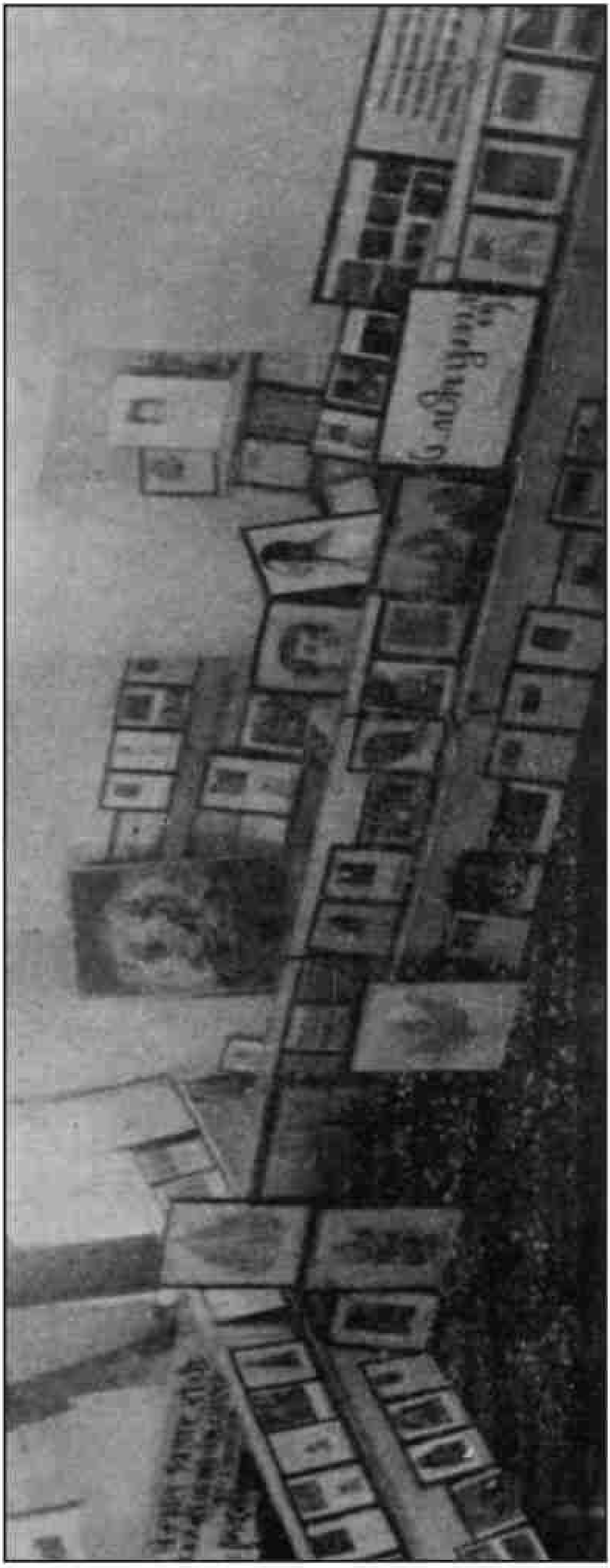


कोलकाता में आयोजित 'विदेशों में भारतीय संस्कृति' प्रदर्शनी का रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष, स्वामी श्री लोकेश्वरानन्दजी महाराज को अवलोकन कराते हुए डॉ. ओबराय साथ में हैं श्री बड़ा बाजार कुमार सभा पुस्तकालय के अधिकारीगण सर्वश्री शिवरतन जासू, जुगलकिशोर जैथलिया, रामगोपाल सोनी एवं महावीर बजाज प्रभृति।

बृहत्तर भारत प्रदर्शनी

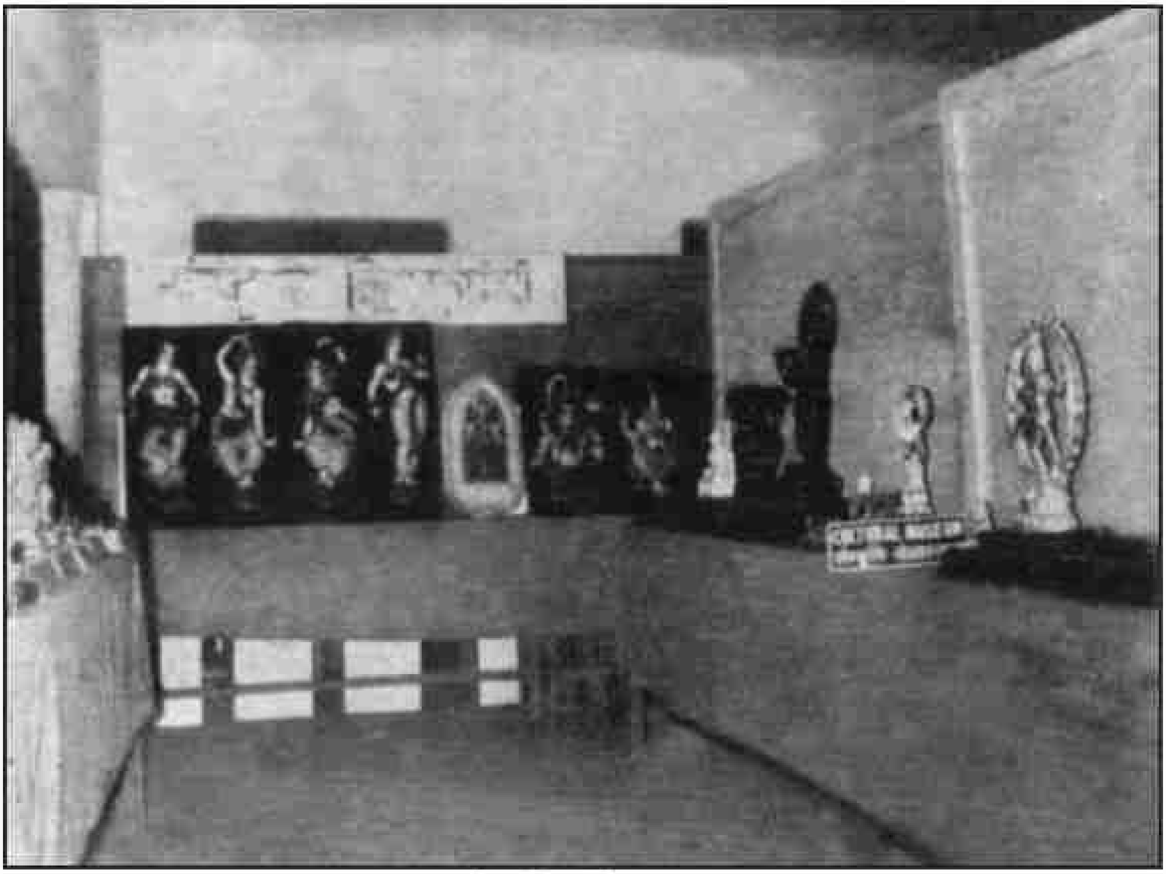


जगतगुरु भारत प्रदर्शनी





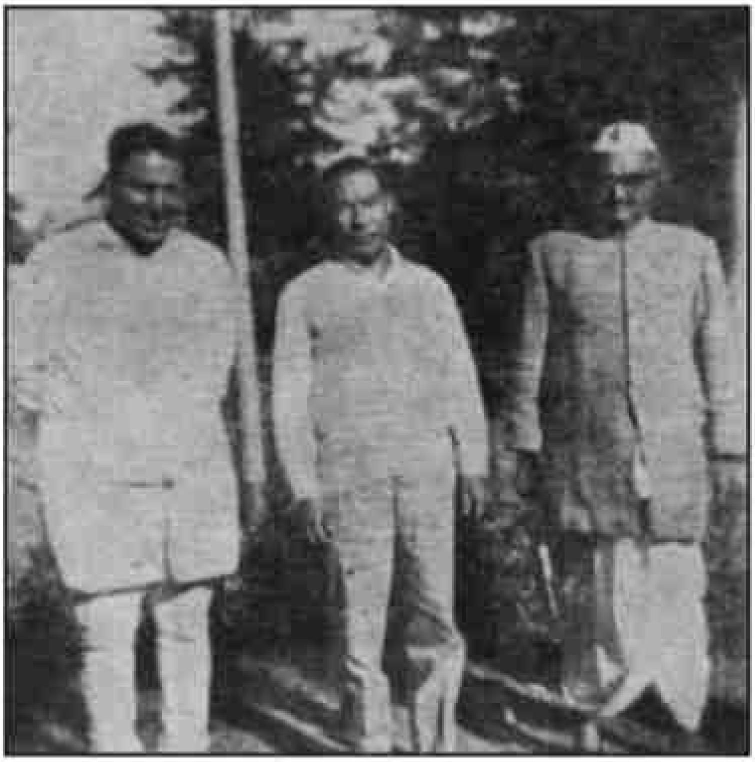
सभा भवन



संस्कृति संग्रहालय



संस्कृति संग्रहालय



Dialogue with Nagaland

In Jan., 1965, Prof. Oberai visited Nagaland for a first-hand study of the activities of foreign missionaries. Nagas are simple and honest people, being exploited by crooked foreign politicians in the garb of religious preachers. In Oct., 1967, Shri Shilo Ao, Ex-Chief Minister of Nagaland was invited to the Academy of Indian Culture for a fair and frank discussion about the Nagaland and Mizoland problems. Seen in the picture are Prof. H. L. Oberai, Shri Shilo Ao, Shri Narayan Ji, Secretary Adimjati Seva Mandal, Ranchi.

About 800 tribesmen of Mikir hills have offered to re-embrace Bharat Dharma. (V.H.P.)

अनुक्रम

राष्ट्रीय समस्याएँ

ईसाइयत मीठा जहर

जहाँ तक ईसाइयों का सम्बन्ध है सामान्य रूप से वे इसे न केवल पूर्णतया नुकसानरहित मानते हैं बल्कि इसे मानवता के प्रति सहानुभूति और प्रेम का प्रतिरूप समझते हैं। उनके भाषण सेवा और मानव मोक्ष के शब्दों से भरे हुए होते हैं जैसे कि ईश्वर ने मानवता के उत्थान के लिए उन्हें विशेषरूप से नियुक्त किया है। वे हर जगह विद्यालय और महाविद्यालय, अस्पताल और अनाथालय चलाते हैं। हमारे देश के साधारण और निर्दोष लोग इन चीजों के बहकावे में आ जाते हैं। परन्तु उनका इन सब गतिविधियों में करोड़ों रुपये खर्च करने का वास्तविक और अन्तिम उद्देश्य क्या है? क्या यह सिर्फ मानवता के विचार से है?

हमारे भूतपूर्व आदरणीय राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसाद एक बार असम गये। उन्होंने उन पहाड़ी इलाकों में इन ईसाई मिशनरी द्वारा स्थापित विद्यालयों और अस्पतालों का निरीक्षण किया। उन्होंने इसे सराहा। अन्त में उन्होंने उन्हें सलाह भी दी, 'आपने निःसन्देह बहुत अच्छा कार्य किया। परन्तु इन सब चीजों का उपयोग धर्मान्तरण के उद्देश्य से नहीं करना।' लेकिन मिशनरीज ने खुले तौर पर कहा, 'अगर हम इन सबके लिए मानवता के विचार से प्रेरित होते, हमें इतनी दूर यहाँ आने की क्या आवश्यकता थी? क्यूं हमने इतना सारा धन खर्च किया? हम यहाँ केवलमात्र इस कारण से आए हैं कि हम ईसामसीह के अनुयायियों की संख्या बढ़ा सकें।' वे इस मामले में बिल्कुल स्पष्ट थे।

इन तमाम मिशनरीज द्वारा धर्म सम्बन्धी विचार को जो बढ़ावा दिया गया वह भी चकित करने वाला है। सच्चे धर्म और ईश्वर के प्रति श्रद्धा का इसमें कोई स्थान नहीं है। एक बार मैं एक मिशनरी से मिला। उसने मुझे इंग्लैण्ड के आर्कबिशप द्वारा लिखित एक पुस्तक दी और कहा कि यह पुस्तक उनके द्वारा किये हुए कार्यों के स्वभाव को मेरे समक्ष स्पष्ट कर देगी। मैंने इसे पढ़ा। जब उसे मैंने इस पुस्तक को वापस लौटाया तो उसने मुझे पूर्ण रुचिपूर्वक पूछा, 'यह पुस्तक कैसी है?' मैंने जवाब दिया, 'अगर तुम्हारा आर्कबिशप ऐसा है तो तुम कैसे हो?' इस बात ने उसे चौंका दिया। मैंने उस पुस्तक के गद्यांशों की ओर इशारा किया। वहाँ लिखा हुआ

था, 'ईश्वर प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है कि कोई दिन में दो बार प्रार्थना करे और रविवार को चर्च में उपस्थित रहे। बाकी के समय में यदि वह किसी प्रकार की भौतिक खुशियाँ और मनोरंजन में व्यस्त रहे तो कोई नुकसान नहीं होता।' ये शब्द वास्तव में उस महान संत ईसामसीह की शिक्षाओं के विपरीत हैं। मैं स्वयं भी बाइबिल का पूर्णतया अध्ययन कर चुका हूँ। मैं वर्तमान के बहुत से ईसाई मिशनरीज से ज्यादा ज्ञान इस बाबत रखता हूँ। मेरा पूर्ण विश्वास है कि ईसाई मिशनरियों के क्रियाकलाप पूर्णतया धर्म-रहित हैं। जैसा कि उनके स्वयं के धर्मग्रन्थों में बताया गया है।

उनके क्रियाकलाप न केवल अधार्मिक हैं बल्कि वे राष्ट्रविरोधी भी हैं। एक बार मैंने एक ईसाई मिशनरी से पूछा कि वे हमारी धार्मिक पुस्तकों, देवी-देवताओं के प्रति अपशब्द क्यों कहते हैं? उनका जवाब अति महत्त्वपूर्ण था। 'हमार लक्ष्य है कि हम हिन्दुओं के हृदय से उनकी आस्थाओं को पूर्णतया निकाल देवें। जब उनकी आस्था पूर्णतया चकनाचूर हो जायेगी तो उनकी राष्ट्रीयता भी नष्ट हो जायेगी। उनके मन में एक खालीपन उत्पन्न हो जायेगा, तब उस खालीपन को ईसाइयत से भरना आसान होता है।' इस प्रकार उनका प्रयास है कि यहाँ की भूमि से जुड़े बच्चों को उनकी मातृभूमि का विरोधी बनाना। उनका कार्य न तो धार्मिक है न ही मानवीय। न केवल यही, यह अत्यधिक राष्ट्रविरोधी है।

कुछ वर्ष पूर्व मध्यप्रदेश की सरकार ने एक कमेटी को नियुक्त किया जो उसे ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों की जानकारी दे। कमेटी के चेयरमैन श्री नियोगी हाइकोर्ट के अति आदरणीय सेवानिवृत्त जज हैं जो कि किसी पार्टी या समूह से सम्बन्ध नहीं रखते हैं। उन्होंने पूरे मध्यप्रदेश का दौरा किया और धर्मांतरित ईसाइयों, मिशनरियों और अन्य लोगों से मुलाकात की। उन्होंने बहुत से चर्चों का भी निरीक्षण किया। इन तमाम व्यक्तिगत छानबीन के आधार पर उन्होंने एक लम्बा ब्योरा तैयार किया और उसे सरकार को सौंप दिया।

उस रिपोर्ट में उन्होंने कहा, 'ये तमाम आर्थिक प्रलोभन इन मिशनरियों का छुपाने का केवल एक मुखौटा है, जो वे धर्मान्तरण की गतिविधियाँ कर रहे हैं। कभी-कभी वे धमकाकर और कभी-कभी वे लालच देकर सरल ग्रामीण व्यक्तियों का धर्मान्तरण कर रहे हैं। इन क्रियाकलापों की जड़ में इनकी महत्त्वाकांक्षा है कि वे संख्या के आधार पर एक अलग ईसाई राज्य काटकर ले लें। वे यह असंख्य करोड़ रुपये इस एकमात्र उद्देश्य के लिये खर्च कर रहे हैं।'

यह उनकी गतिविधियों का वास्तविक स्वभाव है। वे पाकिस्तान के मुसलमानों द्वारा अलग किये गये टुकड़े की तरह एक अलग राज्य प्राप्त करने का स्वप्न संजो रहे हैं। नागा पहाड़ियों में सशस्त्र विरोध और अलग झारखण्ड के लिए

आंदोलन और एक अलग पर्वतीय असम राज्य। यह इसका स्पष्ट सबूत है कि उनके तमाम क्रिया-कलापों के पीछे का अंतिम उद्देश्य क्या है।

आपको ज्ञात है कि कुछ वर्ष पूर्व केरल के वामपंथी शासन को उखाड़ फेंकने का आंदोलन लोगों ने किया तो उस आंदोलन में शामिल होने वाले ईसाई नेताओं ने घोषित किया, 'हमें यह निश्चय करना है कि हम कैथोलिक ईसाई शासन चाहते हैं या वामपंथी शासन।' उनके प्रत्येक क्रियाकलाप में उनका इरादा कितना ज्यादा स्पष्ट है।

ईसाइयत कोई धर्म नहीं केवल राजनीति

हममें से कुछ को याद होगा कि बहुत से प्रमुख ईसाई मिशनरियों ने अपने विचारों में कहा था कि हम इस देश को ईसा के साम्राज्य का एक प्रान्त बनाना चाहते हैं। क्या अर्थ है इस वाक्य का? इसका अर्थ है कि इस देश के तमाम लोगों का ईसाइयत में धर्मान्तरण होना चाहिए। अर्थात् उनकी परम्परागत वंशानुगत धर्म, दर्शन और जीवन पद्धति का विनाश करना और उनको वैश्विक ईसाइयत के संघ में शामिल कर लेना। वे हमारे मित्र नहीं हैं–अर्थात् हिन्दू लोगों के लिए या हमारे वंशानुगत जीवन पद्धति के, हमारे दर्शन के, हमारी संस्कृति और हमारे धर्म के मित्र नहीं हैं। कभी-कभी मैं महसूस करता हूँ कि आधुनिक धर्मांतरित धर्म के अन्दर धर्म बहुत कम है। वे सब धर्म का उपयोग करने का प्रयास कर रहे हैं और ईश्वर और मसीही के नाम का उपयोग करने का प्रयास कर रहे हैं एक हथियार के रूप में अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा पूर्ण करने के लिए। यही कारण है कि मैं बहुत बार महसूस करता हूँ कि एक सच्चे धर्म में न कोई धर्मान्तरण की आवश्यकता है न ही श्रद्धा में परिवर्तन की आवश्यकता है और न पूजा-पद्धति में परिवर्तन की कोई आवश्यकता ही है। उदाहरणार्थ, हमारे ही देश में गौतम बुद्ध से भी काफी समय पूर्व हमारे प्राचीन पूर्वजों ने, जिन्होंने अपने राज्य का विस्तार विश्व के बड़े भू-भाग में स्थापित किया, वे जहाँ कहीं भी गये वहाँ के लोगों का बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन नहीं कराया। इसके विपरीत बिना अपना धर्म छोड़े उन्होंने प्रयास किया कि वे लोग अपने धर्म को और उच्च बनायें और उसको सही परिप्रेक्ष्य देवें और वह सही दर्शन दें जिससे कि उनके अन्दर अति महान सर्वव्यापी गुण, मन और हृदय में भर जायें और वे अपने ही प्रकार की पूजा में और श्रेष्ठ श्रद्धालु बनें।

वास्तव में यही सही धर्म था। धर्मान्तरण का यह मतलब नहीं है कि ईश्वर का नाम और मसीही का नाम और धर्म का उपयोग दुनियादारी की वस्तुएं प्राप्त करने में किया जाये।

एक अति स्पष्ट उदाहरण

इस प्रकार यह धर्मान्तरित धर्म जो हमारे देश में आया है उसका उद्देश्य बहुत कुछ राजनीतिक है। उदाहरण के लिए—असम में नागालैण्ड बनाये जाने का आंदोलन। किसने किया है यह? स्थानीय नागा लोगों ने नहीं किया। वे तो बहुत अच्छे लोग हैं। क्योंकि यह मैं जानता हूँ, मैंने हमारे देश के उस हिस्से को जाकर देखा है। परन्तु पिछले एक सौ या एक सौ पचास साल में ब्रिटिश शासन के दौरान ब्रिटिश मिशनरियों ने उन लोगों पर पकड़ बनाने का प्रयास किया और उनकी अज्ञानता और सरलता का फायदा उठा कर उन्हें अपने धर्म में शामिल कर लिया और ऐसे हालात उत्पन्न कर दिये जिससे वह अपने देश से कटकर एक अलग राज्य बन जाये। सन् 1947 में ब्रिटिश लोगों के जाने के बाद वे हताशा महसूस करने लगे और अपनी हताशा के कारण उन्होंने स्थानीय लोगों से विद्रोह करवाया। उनको हथियार और बारूद व नेता उपलब्ध करवाए और यह विद्रोह जारी रहा। तब हमारे देश के महान नेताओं ने सोचा कि उन लोगों की मांगें मान ली जाए और उन्हें एक नागालैण्ड दे दिया जाये। वे लोग अब भी कहते हैं कि नागालैण्ड अभी भी हमारे देश का हिस्सा है जो कि गवर्नर के अन्तर्गत है जो असम पर शासन करता है और हमारा संविधान है, आदि-आदि।

ये सब चीजें बिल्कुल ठीक हैं। परन्तु वहाँ एक अशुभ तथ्य है जिस पर हमें ध्यान देना चाहिए कि ये नागालैण्ड सीधा हमारी होम मिनिस्टरी के अंतर्गत रहना चाहिए न कि किसी विदेश मंत्रालय के अन्तर्गत। अगर नागा ये मांग करें तो हमें उनको यह कहना होगा कि वे हमारे देश के लोग हैं और हमारे देश की राजनीति से अलग होने की सोच रहे हैं। परन्तु नागालैण्ड वास्तव में विदेश मंत्रालय के अन्तर्गत है। यही अत्यधिक अशुभ है। हम यह भी जानते हैं कि दबाव व तनाव के अन्तर्गत जो छूट यहाँ के लोगों को दी गई वह अभी भी जारी है। यहाँ तक कि अलग नागालैण्ड बनाने के निश्चय के बाद हमारी योजनाओं में से एक को लागू करने से इन्कार कर दिया। दूसरी प्रकार का जो दबाव है वह अन्तरराष्ट्रीय है जिसके बारे में हमारे कुछ नेता थोड़ा ज्यादा जागरूक और संवेदनशील हैं परन्तु जितने होने चाहिएं उतने नहीं हैं। हम जानते हैं कि एक नेता जो कि ईसाई है वह पाकिस्तान और कुछ दूसरों की सहायता से गायब होकर इंग्लैण्ड चला गया। उसे वहाँ एक विशिष्ट ईसाई मिशनरीज के घर पर शरण दी गई और उसी ने उसको सहायता दी जिससे हमारी इज्जत को नुकसान पहुंचाने वाले कई वक्तव्य उस नेता ने दिये। हमारे कुछ नेता अन्तरराष्ट्रीय सम्मानों के प्रति अति संवेदनशील हैं। उन्होंने सोचा ये ज्यादा अच्छा है कि एक अलग नागालैण्ड दे दिया जाए बनिस्बत एक शान्ति स्थापक के रूप में अपने सम्मान की बलि देने के।

हमने अपने आपको शान्तिदूत बनाए रखने के लिए अपने देश के विभाजन

को एक बहुत सस्ता मूल्य देना उचित समझा है। इसलिए उन्होंने विद्रोहियों की तमाम बातें स्वीकार की क्योंकि अन्तरराष्ट्रीय दबाव उन पर लगातार बना हुआ था। हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि वह दिन दूर नहीं है जब नागालैण्ड एक पूर्णतया अलग राज्य होगा और एक स्वतंत्र राज्य होगा जिस पर ईसाई शासकों का आधिपत्य होगा। यह पूर्णतया राजनीतिक है, क्या ऐसा नहीं है? इसमें कोई धर्म नहीं है।

और अधिक उदाहरण

ऐसी ही एक मांग झारखण्ड की है। हम जानते हैं कि केरल के ईसाई नेता क्या कहते थे जब वहाँ वामपंथी शासन के विरुद्ध आंदोलन चल रहा था। वे कहते थे कि यह केरल के ईसाई मिशन के लिए जीवन और मृत्यु का संघर्ष है। वे तो इस हद तक भी कह गये कि 'केरल पर या तो ईसाई शासन करेंगे या वामपंथी करेंगे और हम शासन करना चाहेंगे।' यही वे करने का प्रयास कर रहे हैं।

मुझे यह भी याद है कि कुछ दिन पहले एक अन्तरराष्ट्रीय ईसाई पादरियों की सभा जो कहीं यूरोप में हुई उसमें एक पैंफलेट प्रकाशित हुआ था। मुझे इस सम्मेलन का स्थल याद नहीं है—जो कि 12-13 दिन चला था। उस पैंफलेट में उन्होंने एक योजना प्रस्तावित की कि वे पूरे विंध्य और सतपुड़ा की पहाड़ियों के आरपार तथा पूरे भारतीय उपमहाद्वीप को घेरते हुए समुद्री किनारों पर केवल मात्र ईसाई केन्द्रों की नींव डालेंगे। यह तो पहला उदाहरण है। दूसरे उदाहरण में पूरे हिमालय क्षेत्र में आधिपत्य स्थापित करने की घोषणा की।

हममें से कुछ को याद होगा, यद्यपि हमारा वर्तमान राजनीतिक स्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं है या कोई ज्ञान नहीं है, कि ये मिशन हमारे देश में गत 25-30 सालों से विकसित हो रहे हैं। हमें यह भी याद होगा कि हमारे देश के अन्दर स्थानीय मिशन और मुस्लिम लीग के बीच यह समझौता हुआ कि वह दोनों मिलकर विभाजन करेंगे पूरे देश का, जो विंध्याचल और हिमालय के बीच में है। सम्पूर्ण गंगा का मैदानी इलाका, पंजाब और मणिपुर मुस्लिमों को जाएगा तथा प्रायद्वीप व हिमालय ईसाइयों के हिस्से में आएंगे। यह समाचार किसी प्रकार अखबारों में उन दिनों आ गया। वास्तव में कहें तो हम यहाँ के भूमि-पुत्रों से ऐसी आशा नहीं कर सकते। इस कार्य को एक आक्रामक व्यवहार माना जाना चाहिए। वे केवल यहाँ के धार्मिक तथा सामाजिक ताने-बाने को ही ध्वस्त नहीं करना चाहते बल्कि यहाँ अपना कई स्थलों पर राजनीतिक बाहुल्य क्षेत्र स्थापित करना चाहते हैं, और सम्भव हो तो पूरे देश पर आधिपत्य चाहते हैं। यह निश्चित रूप से एक आक्रामक रवैया है और इसलिए हम कह सकते हैं कि वो इस धरती के पुत्र नहीं हैं।

ईसाई मिशनरी जहाँ भी जाते हैं मानव सेवा का बहाना लेकर ही जाते हैं, परन्तु कुछ वर्षों में वे क्या गुल खिलाते हैं, यह देखिये स्वतंत्र केनिया देश (अफ्रीका महाद्वीप) के प्रथम राष्ट्रपति जोमिया के न्याटो के शब्दों में, 'जब ईसाई मिशनरी हमारे देश में आये, उनके हाथ में बाइबिल थी। उन्होंने हमें बाइबिल दी और कहा—आंखें बन्द करो और प्रभु यीशू का ध्यान करो। हमने आँखें बन्द की और प्रभु का ध्यान किया। हमने आँखें खोली तो हमने देखा बाइबिल हमारे हाथ में है और देश की सारी भूमि मिशनरियों के हाथ में थी।

—प्रथम राष्ट्रपति केन्या (अफ्रीका)

रोमां रोलां कहता है कि पचीस साल पहले की बात है। मैं सुबह के समय घूमता हुआ एक गिरजे के सामने से गुजरा, पादरी प्रवचन पढ़ रहा था—

'ईश्वर! हमारे शत्रुओं का नाश करो, अधर्मियों के लिए नरक के द्वार खोल दो, हमारे देश को सुख-सम्पदा से भर दो, हमारे सम्राट को दिग्विजयी बनाओ...'

आज एक-चौथाई सदी बीतने पर भी हमारे गिरजाघरों में लगभग इसी प्रकार के प्रवचन पढ़े जाते हैं। उनके खयाल से मेरे मन में विद्रोह की आंधी आयी और मैं सोचता हूँ : कैसा है यह प्यारा ईश्वर? वह दया और सहानुभूति का ईश्वर नहीं। वह अनन्त प्रेम का ईश्वर नहीं, वरन् वह हिंसा का ईश्वर है, रक्तपात का ईश्वर है जो दो-दो विश्वयुद्धों को जन्म देकर शैतान की हंसी हंसता है।

पिछले पचीस सालों से मैं उस ईश्वर से घृणा करता आ रहा हूँ और अपनी कल्पना में ऐसे ईश्वर को साकार करता रहा हूँ जो मनुष्यों के अपार गौरव और महानता का प्रतीक हो। उस ईश्वर की खोज में मैंने संसार के सभी नये-पुराने दर्शनशास्त्र पढ़े हैं, परन्तु मुझे संतोष नहीं मिला।

हां, हिन्दुओं का वेदान्त पढ़ने पर मुझे जरूर कुछ संतोष हुआ है और मेरी कल्पना का ईश्वर साकार किया है। हिन्दू दर्शन कहता है—

मुझे घृणा से मुक्त कर दो, मुझे अजातशत्रु बनाओ और भावनाओं के तूफान में मुझे इस प्रकार अचल-अटल बनाओ कि मैं सबको समझ सकूं और प्यार कर सकूं।

हिन्दू धर्म एकमात्र नगद धर्म है जो साधना से इसी लोक में, इसी शरीर में प्रभु से मिलन करा देता है अन्य पंथ तो उधार हैं जो मरने के बाद कयामत के दिन के बाद बहिश्त जाने का, लम्बी—दूर अवधि का आश्वासन भर देते हैं।

हिन्दू धर्म प्रतिमुहूर्त का धर्म है जबकि ईसाइयत सप्ताह में एक घण्टे का धर्म है गिरजा में जाना। **—स्वामी रामतीर्थ**

झारखण्ड दर्पण

'झारखण्ड पार्टी' के अध्यक्ष श्री डेविड मुंजनी ने गत 19 मई '68 को पार्टी के अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि यदि अलग झारखण्ड राज्य की माँग नहीं मानी गई तो भारत सरकार को उसी स्थिति का सामना करना पड़ेगा जिसका वह नागालैण्ड और मिजो पहाड़ी जिलों में कर रही है। यह धमकी उस कुचक्र की संकेतक है जो भारत को पृथक्तावाद और विघटनवाद द्वारा अशक्त बनाने के लिए प्रकट व अप्रकट दोनों रूपों में एक लम्बे अरसे से चलाया जा रहा है।

नागालैण्ड में पादरी माइकल स्कॉट का दुश्चक्र

नागालैण्ड में विदेशी पादरी माइकल स्कॉट ने विद्रोही नागाओं का तथाकथित आध्यात्मिक व राजनीतिक नेता बनकर जो चालबाजियाँ कीं और विदेशों में भारत को बदनाम करने के लिए जो दुश्चक्र चलाया वह सर्वविदित है और उसी का यह परिणाम था कि ढुलमुल व तुष्टीकरण की नीति अपनाने वाली भारत सरकार को भी माइकल स्कॉट को भारत से चले जाने का आदेश देना पड़ा। विद्रोही नागाओं द्वारा इस समय की जा रही करतूतों से हर कोई परिचित हैं।

आज छोटानागपुर में आदिवासी विक्षोभ के बहाने पुनः जो झारखण्ड आन्दोलन चलाया जा रहा है उसका मूल ऐतिहासिक व तथ्यपूर्ण परिचय देना इसलिए समीचीन होगा ताकि इससे अनभिज्ञ व्यक्ति इसकी वास्तविकता व पृष्ठभूमि को जान सकें। इन तथ्योद्‌घाटनों से अवगत होने पर हमारे देशभक्त भारतीय चाहे वे किसी भी वर्ग, सम्प्रदाय या जाति के हों, सही मार्ग व युक्त-अयुक्त का निर्णय स्वयं कर सकेंगे।

विदेशी पादरियों और मुस्लिम लीग का संयुक्त षड्‌यन्त्र

'विदेशी पादरी बेल्जियम और जर्मनी से आए तथा बिहार और उड़ीसा, जशपुर में सन् 1834 में बस गये। वे बहुत से लोगों को ईसाई धर्म में दीक्षित करने में सफल हुए। अपनी सत्ता को बढ़ाने तथा संगठित करने और सम्भवतः इस भाग

में विदेशियों के पाँव जमाने के लिए यह कहा जाता था कि पादरी लोग आदिवासियों को अन्य जातियों से पृथक् रखने के सम्बन्ध में प्रचार किया करते थे और इस प्रकार झारखण्ड आन्दोलन का सूत्रपात हुआ।

आन्दोलन को आदिवासियों, स्थानीय ईसाइयों और मुसलमानों का समर्थन प्राप्त था। पादरियों ने इस आन्दोलन को अपने प्रभाव में रखने के लिए इसमें राष्ट्रवादी लोगों को सम्मिलित नहीं होने दिया। 1938 में पाकिस्तान की माँग के साथ-साथ आदिवासी-स्थान की माँग ने भी जोर पकड़ा। कहा जाता है कि मुस्लिम लीग ने इस प्रचार कार्य के लिये एक लाख रुपया प्रदान किया।'

—जस्टिस डॉ. भवानी शंकर नियोगी

(नियोगी कमीशन रिपोर्ट पृष्ठ 4, 5)

नागालैण्ड से नागपुर वाया छोटानागपुर

'जब भारत में स्वतन्त्रता का उदय हुआ तब आदिवासी-स्थान का आन्दोलन और भी तीव्र कर दिया गया, विशेषकर इस दृष्टि से कि पूर्वी बंगाल को हैदराबाद से संयुक्त करने के लिए एक कोरीडोर (गलियारा) प्राप्त किया जा सके और जिसका उपयोग भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध के समय एक सैनिक अंचल के रूप में किया जाय।' (नियोगी कमीशन रिपोर्ट पृ. 5)

मुस्लिम लीग तथा झारखण्ड पार्टी के बीच गुप्त पत्राचार

संस्कृति विहार के पास कलकत्ता जिला मुस्लिम लीग के महामन्त्री तथा कलकत्ता कारपोरेशन के तत्कालीन मेयर श्री एस. एम. उस्मान द्वारा प्रो. जे. सी. हेवर्ड के नाम लिखे सन् 1947 के गुप्त पत्रों की फोटोकापी है जिससे प्रमाणित होता है कि मुस्लिम लीग ने जयपाल सिंह को विशाल आर्थिक सहायता प्रदान की। देश की हत्या करने वाली मुस्लिम लीग से सहायता एवं आशीर्वाद पाने वाले झारखण्डी नेताओं की नीयत के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।

बिरसा भगवान एवं ईसाई पादरी

दुर्भाग्य की बात है कि जो ईसाई पादरी बिरसा भगवान एवं उनके कार्य का जीवन भर विरोध करते रहे तथा जिनके अत्याचार के विरुद्ध ही बिरसा भगवान ने अपना धनुष-बाण उठाया वे झारखण्ड आन्दोलन में बिरसा का नाम लेकर भोले-भाले वनवासियों को बहकाकर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं।

'The Christian missionaries took
Birsa and his preachers to be mad.'

—Life and Times of Birsa Bhagwan P. 84

By Surendra Prasad Sinha

Publisher : Bihar Tribal Research Institute, Ranchi

'ईसाई पादरी बिरसा और उसके प्रचारकों को पागल समझते थे।'

(लाइफ एण्ड टाइम्स आफ बिरसा भगवान पृ. 84)

जो ईसाई पादरी आदिवासियों के भगवान (बिरसा) को पागल कहते रहे, आज उन्हें बिरसा भगवान के नाम का दुरुपयोग कर आदिवासियों का नेतृत्व करने का क्या अधिकार है?

बिरसा भक्तों पर ईसाइयों का अत्याचार

'They (Mundas) were also demoralised by oppressions practiced upon them by the German Lutheran Mission, viz., arresting and dragging the Mundas, making them naked, snatching money from their possession and freeing some of them from wrongful confinement after getting some ransom, of looting the property of these victims and getting the Kabooleats signed from them and dispossessing them of their land, of cutting those trees which they worshipped.'

—Life and Times of Birsa Bhagwan, P. 41

'उन मुण्डा लोगों ने जर्मन लूथरन मिशन के निम्न अत्याचारों के विरुद्ध ज्ञापन दिया, यथा, मुण्डा लोगों को गिरफ्तार करना तथा घसीटना, उन्हें नंगा कर देना, उनके पास से धन छीनना, उनमें से कुछ से रिश्वत लेकर उन्हें अवैध गिरफ्तारी से छुड़वा देना, उनके घरों से सम्पत्ति लूट लेना तथा उनसे कबूलियत पर हस्ताक्षर करवा लेना, उनसे जमीन छीन लेना, तथा उन वृक्षों को कटवा देना जिनकी वे पूजा करते थे।'

—लाइफ एण्ड टाइम्स आफ बिरसा भगवान (पृष्ठ 41)

बिरसा भगवान की गिरफ्तारी एवं हत्या के दोषी

'The large scale slaughter of men, women and children by the British army made the local officers very panicky and the machinery of administration was fully mobilized to suppress this movement. The high officers of the executive and the police, reinforced by the military and assisted by some traitors, led to regular hunt in search of Birsa and his followers. The Christian informants were playing havoc in their respective areas and on slightest information Mundas were arrested. The villages were

surrounded and a thorough search was conducted. A reign of terror actually ensued.'

—Life and Times of Birsa Bhagwan, P. 100

'ब्रिटिश फौज द्वारा पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के कत्लेआम से स्थानीय अधिकारी बहुत आतंकित हो गये और शासनतन्त्र को इस आन्दोलन को कुचल डालने के लिये गतिशील किया गया। शासन एवं पुलिस के बड़े अधिकारियों ने, जिन्हें सेना से भी कुमुक मिल गई थी, कुछ गद्दारों से सहयोग प्राप्त कर बिरसा और उसके अनुयायियों की बाकायदा खोज की। ईसाई सूचनादाता अपने-अपने क्षेत्र में तबाही मचा रहे थे तथा सरकारी सूचना पर मुण्डा लोगों को गिरफ्तार कर लिया जाता था। गाँवों को घेर लिया जाता और एक-एक वस्तु की पूरी तलाशी ली जाती थी। इस तरह वास्तव में एक आतंक का राज्य प्रारम्भ हो गया था।'

—लाइफ एण्ड टाइम्स आफ बिरसा भगवान (पृष्ठ 100)

उक्त तथ्यों से प्रमाणित होता है कि ब्रिटिश शासन एवं ईसाई पादरियों ने मिलकर देवपुरुष बिरसा भगवान तथा उनके अनुयायियों पर भयंकर अत्याचार किए, उन्हें जी भर कर सताया तथा उनके ग्रामों में जाकर सैकड़ों निरपराध वनवासियों को गोली तथा तोपों का शिकार बनाया और अन्त में रांची जेल में विष देकर बिरसा भगवान के प्राण हरण कर लिये।

राष्ट्रवादी भारतीय सतर्क रहें

देश के प्रति निष्ठा रखने वाले भारतीयों को उन विदेशी मिशनरियों से सावधान रहना चाहिए जो धर्म की आड़ में राजनीति का खेल खेलते हुए कोई भी हथकण्डा अपनाने से नहीं चूकते और हमारे राष्ट्र को सदियों की गुलामी के बाद भी पराश्रयी, अशक्त व परानुगामी बनाये रखना चाहते हैं।

(रांची एक्सप्रेस से साभार)

झारखण्डी नेतागण—देश के मित्र अथवा कृतघ्न शत्रु ?

किसी भी आन्दोलन के 'राष्ट्रीय आन्दोलन' या 'राष्ट्र-घातक' आन्दोलन होने की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि उस आन्दोलन के नेतागण शुद्ध राष्ट्रभक्त हैं अथवा नहीं। किसी नेता विशेष की राष्ट्रभक्ति का सबसे बड़ा प्रमाण यह होना चाहिये कि—

(क) वह भारतमाता को केवल एक भूखण्ड मात्र न मानकर माता जगदम्बा का दिव्य देव-विग्रह मानता हो।

(ख) उस भगवती जगदम्बा की सेवा, पूजा, अर्चना, उसकी रक्षा एवं संवर्द्धन के लिए उक्त नेता के जीवन का प्रत्येक श्वास समर्पित हो।

(ग) देव-भक्ति के समान देश-भक्ति भी निःस्वार्थ, निष्कपट एवं राजनीति के क्षुद्र स्वार्थों से मुक्त हो।

(घ) वह नेता किसी देश-द्रोही शक्ति के साथ कभी सम्पर्क अथवा समझौता न करे।

(ङ) वह मनसा, वाचा, कर्मणा अपना सर्वस्व भारत एवं भारतीयता की पूजा के लिए समर्पित करने को सदा तत्पर हो।

उक्त कसौटियों से झारखण्ड आन्दोलन के जनक एवं प्रेरक नेताओं की राष्ट्रभक्ति के विषय में हर ईमानदार भारतीय को गम्भीर सन्देह पैदा हो जाता है।

पाकिस्तान के ढंग पर अलग झारखण्ड

'लूथरन और रोमन मिशन के प्रभाव द्वारा आदिवासियों में जो पृथक् रहने की भावना का जन्म हुआ, वह ब्रिटिश सरकार तथा मिशनरियों की संयुक्त नीति का ही परिणाम था। साइमन कमीशन की सिफारिश पर सन् 1931 की जनगणना में मूल हिन्दू जाति से आदिवासियों का विच्छेद कर दिया गया और सन् 1935 में इसके इन्डिया ऐक्ट में परिणत हो जाने पर तो पाकिस्तान के ढंग पर एक अलग झारखण्ड की माँग के लिए एक क्षेत्र तैयार हो गया।'

—नियोगी कमीशन रिपोर्ट, पृष्ठ 25

आदिवासी महासभा

सन् 1931 में श्री एम. डी. तिग्गा ने 'छोटानागपुर केर पुत्री' नामक एक पुस्तक लिखी। यह रांची में छपी। इसके पृष्ठ 14 पर लिखा है—

'आदिवासी मनके राजनीतिक और आर्थिक पतन के देखिके 1898 के साल में एक सभा खड़ा भेलक। उकर शुरु नाम 'छोटानागपुर क्रिश्चियन एसोसियेशन' रहे। बढ़ते-बढ़ते 1915 साल में उ सभा कुछ मजबूत भइ गेलक और उकर नाम 'छोटानागपुर उन्नति समाज' रखल गेलक। अन्त मा अभी ओहे सभा 1938 साल में 'आदिवासी महासभा' केर नाम से चालू रहे।'

श्री जयपाल सिंह का विद्रोही भाषण

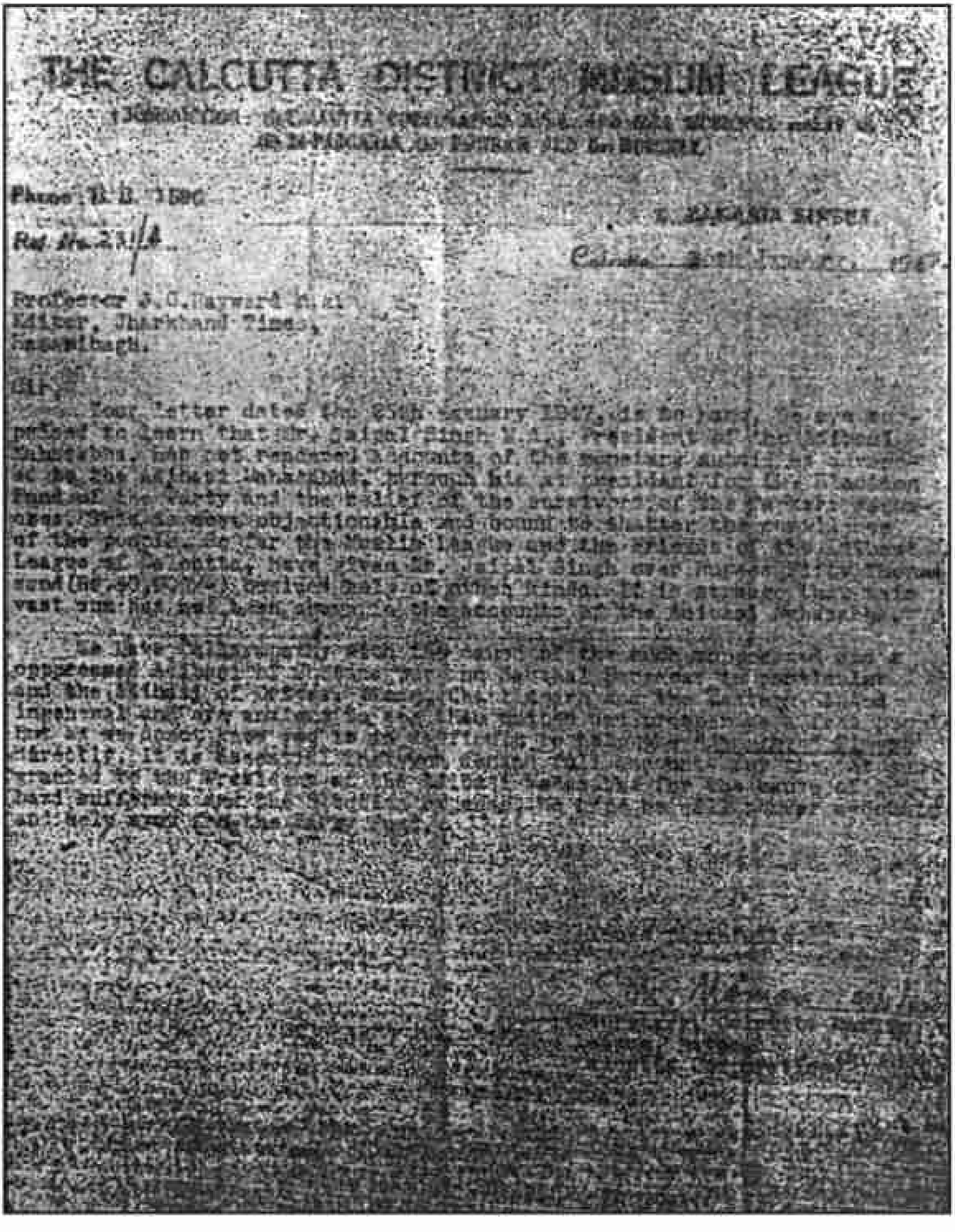
21 जनवरी सन् 1939 को रांची में प्रथम बार आदिवासी महासभा की कान्फ्रेंस बुलाई गयी। उसमें श्री जयपाल सिंह ने अध्यक्षीय भाषण में कहा—'आज हम सब आदिवासी अपनी स्वतन्त्रता के संघर्ष के लिए तथा बहुसंख्यक के अत्याचारों से छुटकारा पाने के लिए एक हैं। ये हम लोगों का एक संयुक्त मोर्चा है, जो आदिवासियों के इतिहास में अभूतपूर्व है। सभी मिशनरी संस्थाएँ, जो यहाँ कार्य कर रही हैं, हमारे साथ हैं। यहाँ तक कि बंगाली लोग भी विभाजन की माँग

कर रहे हैं। यूरोपियन, एंग्लो इण्डियन सभी हमारे साथ खुली सहानुभूति दिखा रहे हैं।'

—नियोगी कमीशन रिपोर्ट, पृष्ठ 26

जयपाल सिंह की मुस्लिम लीग से साँठगाँठ

कलकत्ता जिला मुस्लिम लीग के मन्त्री तथा कलकत्ता कार्पोरेशन के तत्कालीन मेयर श्री एस. एम. उस्मान ने 30 जनवरी, 1947 को श्री जयपाल सिंह के मन्त्री प्रो. जे. सी. हेवर्ड को जो पत्र लिखा उसमें झारखण्डी नेताओं की देशद्रोही शक्तियों के साथ साँठगाँठ करके भारत की एकता एवं अखण्डता को नष्ट-भ्रष्ट करने के षड्यन्त्र का पर्दाफाश हो जाता है।


THE CALCUTTA DISTRICT MUSLIM LEAGUE

Professor J. C. Hayward

Editor, Jharkhand Times,

Hazaribagh.

Sir,

फोटो चित्रित पत्र का हिन्दी अनुवाद :

कलकत्ता जिला मुस्लिम लीग

अधिकार क्षेत्र : (1) कलकत्ता कार्पोरेशन क्षेत्र, तथा (2) 24 परगना (3) हावड़ा तथा (4) हुगली के मिल म्यूनिसिपल क्षेत्र।

फोन : बी. बी 1590

8, जकारिया स्ट्रीट
कलकत्ता, 30 जनवरी, 1947

प्रो. जे. सी. हेवर्ड, एम. ए.
एडिटर, झारखण्ड टाइम्स,
हजारीबाग।

श्रीमन्,

आपका पत्र दिनांक 25 जनवरी, 1947 हस्तगत हुआ है। हमें यह जानकर अचंभा हुआ कि श्री जयपाल सिंह, एम. ए. अध्यक्ष, आदिवासी महासभा ने उन आर्थिक सहायताओं का कोई हिसाब नहीं दिया, जो उनके आदिवासी महासभा के अध्यक्ष होने के नाते, उनके माध्यम से पार्टी के चुनाव फण्ड के लिए तथा तपकरा संहार के हताहतों की मदद के लिए दी गई थी। यह बहुत आपत्तिजनक बात है तथा इससे लोगों का विश्वास टूट जाता है। अभी तक मुस्लिम लीग तथा फ्रेंड्स आफ आदिवासी लीग, कलकत्ता ने श्री जयपाल सिंह को अन्य प्रकार की प्रचुर सहायता के अतिरिक्त 50,000 रु. (पचास हजार रुपया) से अधिक दिया है। यह विचित्र बात है कि इस भारी रकम को आदिवासी महासभा के हिसाब-किताब में नहीं दिखाया गया है।

हमें, विशेष रूप से छोटानागपुर तथा संथाल परगना के, तथा सामान्य रूप से उड़ीसा, विजाग, छत्तीसगढ़ तथा पूर्वी राज्यों के अतिशय दलित एवं पीड़ित आदिवासियों से पूर्ण सहानुभूति है तथा हम उन्हें संगठित तथा एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में फलता-फूलता देखने के लिए आतुर हैं। किन्तु, क्योंकि हम आपको नहीं जानते, अतः 'झारखण्ड टाइम्स' को सीधे ही सहायता भेजना कठिन है। यह आवश्यक है कि आप आदिवासी महासभा के अध्यक्ष को आदिवासी पीड़ितों तथा चुनाव खर्चे के लिए दी गई प्रचुर आर्थिक सहायता का पूरा हिसाब माँगें। हम आशा करते हैं कि वह हिसाब दे देंगे तथा आपको पार्टी के कोष से सहायता करेंगे।

आपका विश्वासी,
(हस्ताक्षर) एस. एम. उस्मान (30.1.47)
मन्त्री, कलकत्ता मुस्लिम लीग
मेयर, कलकत्ता कार्पोरेशन

देशभक्त पाठक विचार करें—

(क) मुस्लिम लीग से सहायता माँगने वाले मुस्लिम लीग के समान ही देश की हत्या करना चाहते हैं।

(ख) मुस्लिम लीग को विदेशी ब्रिटिश शासन का समर्थन प्राप्त था तथा मुस्लिम लीग द्वारा निर्मित पाकिस्तान ब्रिटेन-अमरीका के सैनिक संरक्षण में ही भारत पर बार-बार आक्रमण करता है।

(ग) जिस प्रकार मुस्लिम लीग ने भारत की छाती में छुरा चलाकर पाकिस्तान एक अलग राष्ट्र बनाया, उसी प्रकार वह झारखण्ड को भारत से पृथक् एक 'स्वतन्त्र राष्ट्र' के रूप में देखने के लिए आतुर थी।

स्वतन्त्र प्रभुसत्ता सम्पन्न भारतीय जनतन्त्र के घटक कोट्यावधि स्वतन्त्र भारतीय नागरिक उक्त तथ्यों को अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से अपनी अखंड राष्ट्रनिष्ठा के निकष पर कस कर निर्णय करें कि झारखण्ड के नेतागण भारत-भक्त हैं अथवा भारत के कृतघ्न शत्रु??

पाश्चात्य ईसाई जगत् द्वारा मानवता का सर्वसंहार

'विगत कुछ शताब्दियों में मानव समाज का वह वर्ग जो सर्वाधिक युद्ध-पिपासु, सर्वाधिक आक्रामक, सर्वाधिक बलात्कार-परायण तथा सर्वाधिक सत्ता-मदोन्मत्त रहा है, वह निश्चय ही पाश्चात्य ईसाई जगत् है। इन शताब्दियों में, पाश्चात्य ईसाईयत ने सभी दूसरे महाद्वीपों पर आक्रमण किया है; इनकी सेनाओं ने, जिनके पीछे-पीछे इनके पादरी और व्यापारी चलते हैं, अधिकांश गैर-ईसाई राष्ट्रों को गुलाम बनाकर लूटा-खसोटा—पूर्णतया अशिक्षित आदिम जातियों से आरम्भ कर गैर ईसाई राष्ट्रों तक के प्रति उनका यही अत्याचार रहा है। आदिम अमरीकावासी, अफ्रीकावासी, आस्ट्रेलियावासी तथा एशियाई जनसमूह—सभी इस विचित्र प्रकार के 'ईसाई-प्रेम' के शिकार हुए हैं, जिसके सामान्य लक्षण रहे हैं—निर्दयतापूर्ण सर्वनाश, पराधीनता, बलात्कार, सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों का, सामाजिक संस्थाओं का, तथा 'ईसाई-प्रेम' के शिकार हुए व्यक्तियों की जीवन-पद्धति का विनाश, शराबखोरी, यौन रोगों, व्यावसायिक हृदयहीनता आदि सामाजिक पापों का प्रचार, इत्यादि-इत्यादि।'

डॉ. पितृम ए. सोरोकिन

डाइरेक्टर, हार्वर्ड रिसर्च सेन्टर इन क्रिएटिव अल्ट्रइज्म,
(रीकन्स्ट्रक्शन आफ ह्यूमैनिटी, पृ. 47
प्रकाशक : भारतीय विद्या भवन, बम्बई)

तीन विदेशी शक्तियों का गठजोड़

आज देश के पूर्वांचल में 3 विदेशी राजनीतिक शक्तियों का कुत्सित गठजोड़ चल रहा है। 26 जनवरी, 1968 के दिन (गणतन्त्र दिवस पर) गोहाटी महानगरी में चीनपरस्त कम्युनिस्टों, पाकपरस्त मुस्लिम घुसपैठियों तथा एंग्लो अमरीकन ब्लाक के विदेशी पादरियों ने मिलकर जो भारत एवं भारतीयता का अपमान करते हुए, भारत के राष्ट्रीय ध्वज को जलाया, भारतीयों की धन-सम्पत्ति से खुलेआम होली खेली तथा भारतीयों को असम से निकल जाने की धमकियाँ दीं, उससे राज्य एवं राष्ट्र को जिस प्रकार सजग हो जाने की आवश्यकता थी वह आशा पूरी नहीं हुई। आज छोटानागपुर में भी उन्हीं तीनों विदेशी राजनीतिक शक्तियों का अपवित्र गठबन्धन चल रहा है ताकि झारखण्ड राज्य बना कर ईसाईस्तान के लिए मार्ग साफ किया जा सके।

देशभक्त नगरवासी, ग्रामवासी, वनवासी बन्धुओं को भारतमाता के इन कुटिल शत्रुओं से सावधान रहना चाहिए। इस कार्य में देश के 50 कोटि भारतवासी सदा उनके साथ हैं। भारतीय इतिहास के इस निर्णायक मोड़ पर यदि हम चूक गये तो भावी इतिहास हमें कभी क्षमा नहीं करेगा!!!

ज्यों-ज्यों ईसाइयत का प्रचार बढ़ा, चर्च की स्थापना हुई त्यों-त्यों ईसाइयत पीछे हटती गयी, चर्च आगे आता गया। चर्च के संगठन में ईसा की शिक्षाओं के स्थान पर चर्च के अध्यक्ष पोप का हुक्म चलने लगा। चर्च धर्म के प्रचार का केन्द्र होने के स्थान पर भौतिक शक्ति का केन्द्र हो गया। पोप का भी धार्मिकता के नाम पर एक दुनियावी राज्य हो गया।

—प्रो. सत्यव्रत सिद्धांतालंकार

पूर्व तथा पश्चिम की संस्कृतियों में भेद

पश्चिम ने ईसा मसीह के धर्म-संदेशों को मुंह-मुंह से स्वीकार किया है। ईसाइयत के मानव प्रेम का सुन्दर उदाहरण मिलता है। जो सबसे गरीब हो उसे वस्त्र देने चाहिए, जो भूखा हो उसे अन्न देना चाहिए—यह बात ईसाई धर्म में जितनी विशद रूप से कही गई है उतनी अन्यत्र कहीं नहीं। (उपर्युक्त मानव-प्रेम के स्थान पर) यूरोप में हमें स्वाधीनता का कलुषित और स्वदेश पूजा का विषाक्त रूप देखने को मिलता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रोमन कैथोलिक मिशन को 'अवैध' रियायत

रांची में रोमन कैथोलिक मिशन के अधिकार में विगत 4 वर्ष से 46½ एकड़ सरकारी खास महल जमीन अवैध रूप से पड़ी हुई है। ब्रिटिश शासन द्वारा रोमन मिशन को सन् 1916 में पुरुलिया रोड पर स्थित 46½ एकड़ सरकारी खास महाल जमीन 25 वर्ष के पट्टे (लीज) पर धार्मिक, शैक्षणिक एवं जनसेवी कार्य के लिए मात्र 15 रुपये प्रति एकड़ प्रतिवर्ष की सस्ती दर पर दी गयी थी। सन् 1941 में ब्रिटिश सरकार द्वारा पुनः वही जमीन अगले 25 वर्ष के लिए पट्टे पर दे दी गयी। उस पट्टे की अवधि 31 मार्च, 1966 को समाप्त हो गयी। रोमन मिशन ने उस भूमि पर सेन्ट जेवियर कॉलेज, सेन्ट जॉन स्कूल, उर्सूलाइन कॉनवेन्ट, मैनेरसा हाउस, सेन्ट एलाइस मिडिल तथा हाई स्कूल, सेन्ट जॉन क्लब, लायला हॉस्टल, कैथोलिक प्रेस, कैथोलिक बक, कैथोलिक चर्च, टेक्निकल स्कूल, कैथोलिक कोऑपरेटिव सोसाइटी इत्यादि दर्जनों संस्थाएं खड़ी कर ली हैं।

पिछले झारखण्ड आन्दोलन के समय सभी जुलूस मिशन के अहाते से ही निकलते थे। रोमन मिशन चर्च के सामने ही पुलिस की एक जीप को जला दिया गया था। मिशन कम्पाउण्ड की सभी दीवारों पर बड़े भयानक नारे लिखे रहते थे, यथा 'पुलिस की गाड़ी पर बम फेंको।' पट्टे की समाप्ति के बाद से आज तक लगातार चार वर्षों से मिशन का उस भूमि पर अवैध कब्जा चल रहा है।

संस्कृति विहार की ओर से मई, 1968 में ही बिहार सरकार को आवेदन दिया गया था कि सारी भूमि भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए निर्मित इस संस्था (संस्कृति विहार) को 25 वर्ष के पट्टे पर दे दी जाए। संस्कृति विहार की ओर से इस भूमि के लिए दुगुना किराया तथा बिहार सरकार को 25 लाख रुपया सलामी देने का प्रस्ताव भी किया गया था। पट्टे के नियमों के अनुसार पट्टे की अवधि की समाप्ति के बाद जो पट्टादार पट्टे की भूमि पर कब्जा बनाये रखता है उसे वही भूमि पुनः पट्टे पर नहीं मिल सकती। बिहार सरकार देशी एवं विदेशी राजनीतिक प्रभाव के कारण अभी तक उस भूमि के पट्टे का निर्णय नहीं कर पायी है तथा पोप को प्रसन्न करने के लिए इस विषय में अकारण टाल-मटोल किया जा रहा है। पता चला है कि इस मामले में केन्द्रीय स्तर पर दबाव चल रहा है। मैं सरकार को चेतावनी देता हूँ कि यदि हमें न्याय नहीं दिया गया तो इस विषय में एक विराट् जन आन्दोलन खड़ा किया जायेगा और इसकी सारी जवाबदेही सरकार पर होगी।

31 जनवरी 1971, रांची एक्सप्रेस

नागालैण्ड से केरल तक ईसाईस्तान बनाने का भीषण कुचक्र

24 प्रतिशत मुसलमानों की मांग पर पाकिस्तान बन गया। तो 30 प्रतिशत ईसाई ईसाईस्तान क्यों नहीं बना सकते। इस कुतर्क के संदर्भ में ईसाइयों के प्रयास और मन्सूबों की एक झांकी प्रस्तुत है। प्रो. ओबराय अनेक वर्षों तक आदिवासी क्षेत्रों में जहाँ ईसाई मिशनरियों का कार्य सर्वाधिक है, सेवा कार्य कर चुके हैं।

—सम्पादक, ज्ञानदीप

ईसाई शासकवर्ग को प्रभावित करने में सफल

विदेशी दासता के काल में ईसाइयों ने भारत में धर्म-परिवर्तन के लिए मिशनरी के रूप में आकर काम करना आरम्भ किया था। विगत सैकड़ों वर्षों से ईसाई मिशनरी ब्रिटिश राज्यकाल की छत्रछाया में निर्बाध एवं निःशंक रूप से भारत में भोले-भाले लोगों को किसी-न-किसी प्रलोभन द्वारा फँसा कर उन्हें पतित करके ईसाई बना लेते थे। निम्नजातीय असंख्य व्यक्ति किसी-न-किसी कारण से हिन्दू धर्म को छोड़कर ईसाई बनते रहे। परन्तु भारतवासी अंग्रेजों की तरह विदेशी ईसाइयों को भारत का शत्रु समझते थे और उन्हें खदेड़ने के लिए अनेकानेक महापुरुषों ने अपनी आहुतियाँ दीं।

स्वतन्त्रता के उपरान्त यह आशा होना स्वाभाविक था कि इन विदेशी ईसाइयों को भारत से निकाल दिया जायेगा और घबरा करके पतित किए गए अपने भाइयों को वापस हिन्दू धर्म में लाने की ओर ध्यान दिया जायेगा। किन्तु यह आशा धूमिल हो गई क्योंकि कूटनीतिक स्तर पर विदेशी ईसाई पादरी भारतीय शासकवर्ग को प्रभावित करने में अत्यधिक सफल रहे। यही कारण है कि आज भारत के स्वाधीन होने के पश्चात् भी विदेशी धर्मगुरु का चोला पहनकर भारत में विघटन के लिए घोर षड्यन्त्र रचने में सक्रिय हैं तथा भारत में नागालैण्ड, मिजोलैण्ड, झारखण्ड इत्यादि ईसाई राज्य निर्माण कर भारत को पुनः खंडित करने में सचेष्ट हैं। आज देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है कि भारत में देश के शत्रु को देश के भीतर धर्मगुरु के रूप में पूजा जा रहा है।

ईसाई एवं मुस्लिम लीग के बीच दुरभिसंधि

इतिहास के पन्ने पलटने पर यह दृष्टिगोचर होता है कि विदेशी ईसाई पादरियों और मुस्लिम लीग के बीच यह दुरभिसंधि थी कि दोनों मिलकर नागालैण्ड से हैदराबाद तथा छोटानागपुर के रास्ते से लगभग तीन हजार मील लम्बी अभारतीय राज्यों की एक श्रृंखला बनायेंगे जिसमें नागालैण्ड, मिजोलैण्ड ईसाई राज्य होंगे, पूर्वी पाकिस्तान मुस्लिम राज्य होगा, झारखण्ड (रांची, पलामू, धनबाद, सिंहभूम, हजारीबाग, संथाल परगना) ईसाई राज्य होंगे। इसके अतिरिक्त मध्यप्रदेश के जसपुर, अम्बिकापुर से लेकर बस्तर क्षेत्र तक तथा उड़ीसा के सुन्दरगढ़ से लेकर विजय क्षेत्र तक आदिवासी बाहुल्य श्रृंखला में ईसाई राज्य होगा। जबकि उसके आगे हैदराबाद में मुस्लिम राज्य। यह स्थिति सन् 1947 तक की थी। अब हैदराबाद के स्थान पर आन्ध्र के 25 प्रतिशत लोगों को ईसाई बना लिया गया है। मद्रास तथा मैसूर में भी ईसाई 25 प्रतिशत के लगभग हैं तथा केरल में 28 प्रतिशत से ऊपर हैं। विदेशी ईसाई मिशनरियों का यह तर्क है कि जिस भारत देश में 24 प्रतिशत मुसलमान दुनिया के सबसे बड़े इस्लामी राज्य पाकिस्तान का निर्माण खंजर की नोक पर कर सकते हैं उस देश में तीस प्रतिशत ईसाई जिसकी पीठ पर दुनिया के 76 ईसाई देशों के समर्थन का हाथ है, नागालैण्ड से कन्याकुमारी तक ईसाईस्तान का निर्माण क्यों नहीं कर सकते?

रांची ईसाई मिशनरियों का केन्द्र

बिहार के जिला रांची को लीजिए। यह भारत ही नहीं एशिया भर में ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों का केन्द्र बन गया है और विदेशी मिशनरियों के झुंड पाये जाते हैं तथा रुपया पानी की तरह बहाया जा रहा है ताकि इस अविकसित क्षेत्र के सीधे-सादे आदिवासियों को अधिकाधिक संख्या में ईसाई बनाया जा सके। रांची जिला के कुछ क्षेत्रों में तो ईसाईयत का प्रकोप इतना बढ़ गया है कि वहाँ हिन्दुओं का जीना दूभर हो गया है। वह खुलेआम गो हत्या करते हैं, सरकारी स्कूलों के छात्रावासों में धोखे से हिन्दू छात्रों-अध्यापकों को गोमांस खिलाया जाता है। कई मन्दिरों को तोड़ा एवं भ्रष्ट किया जा रहा है। विगत अकाल के समय लाखों लोगों को ईसाइयों ने पतित करके उनका धर्म भ्रष्ट किया।

यही नहीं ज्यों-ज्यों ईसाई-गतिविधियों सम्बन्धी तथ्य सामने आते हैं तो उन्हें सुनकर खून खौलने लगता है और साथ ही यह रोना आता है कि विदेशियों को भारत को खंड-खंड करने के कुचक्र से रोका क्यों नहीं जा रहा? हिन्द महासागर में अंडमान निकोबार द्वीपों में ईसाइयों का प्रकोप अत्यन्त भीषण रूप धारण करता जा रहा है। निकोबार में शत-प्रतिशत लोग ईसाई बना लिए गये हैं। वहाँ पीछे आर. ए. एफ. (ब्रिटेन) का एक हवाई जहाज भी उतरा था।

रेडियो स्टेशन स्थापित—ईसाई कार्यक्रम का प्रसारण

मध्यप्रदेश के जबलपुर नगर में स्टेशन रोड पर एक रेडियो स्टेशन स्थापित किया गया है, जहाँ सभी भारतीय भाषाओं में ईसाई कार्यक्रम तैयार किए जाते हैं और उन कार्यक्रमों के रिकार्ड आदीस अबाबा (इथोपिया) से प्रसारित किये जाते हैं।

यदि 'सातावेशन आर्मी' ब्रिटेन की गतिविधियों सम्बन्धी रिपोर्ट पढ़ी जाये तो पता लगेगा कि मिशनरी बाइबिल के स्थान पर बन्दूक का हाथ पकड़ने के आदी हो चुके हैं। भारत सरकार ने गैरकानूनी सरगर्मियों को रोकने का जो बिल बनाया है उसका उपयोग इन्हीं पर किया जाना चाहिए।

अफ्रेशियाई देशों में 1968 में इस सातावेशन आर्मी ब्रिटेन द्वारा 788073 पौंड व्यय किये गये, इनमें 394605 पौंड अफ्रीका में और भारत में 218865 पौंड खर्च किए गए अर्थात् समूचे विश्व में ईसाई प्रसार के लिए जितनी धनराशि का व्यय किया गया है, उसका तीसरा भाग भारत में किया गया। यह स्थिति अत्यन्त विस्फोटक है। इंडोनेशिया में 39492 पौंड व्यय किए गए।

स्मरण रहे इन्हीं आंकड़ों के अनुसार पाकिस्तान में केवल 20561 पौंड खर्च हुए और बर्मा में 729 पौंड।

ये आँकड़े काफी दुख भरे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि समय रहते चेतें और इस नवीन षड्यन्त्र को निर्मूल कर दें।

2 मई 1968, ज्ञानदीप

भारत में पादरियों का धर्म प्रचार हिन्दू धर्म को मिटाने का खुला षड्यंत्र है, जो कि एक लम्बे अरसे से चला आ रहा है। हिन्दुओं का तो यह धार्मिक कर्तव्य है कि वे ईसाइयों के षड्यंत्र से आत्म रक्षा में अपना तन-मन-धन लगा दें और आज जो हिन्दुओं को लपेटती हुई ईसाइयत की लपट परोक्ष रूप से उनकी ओर बढ़ रही है उसे यहीं पर बुझा दें। ऐसा करने से ही भारत में धर्मनिरपेक्षता, धार्मिक बंधुत्व तथा सच्चे लोकतंत्र की रक्षा हो सकेगी, अन्यथा आजादी को पुनः खतरे की संभावना हो सकती है। **—पं. श्रीराम शर्मा**

हमारा लक्ष्य होना चाहिये राष्ट्र का सैन्यीकरण करना और सेना का आधुनिकीकरण करना। आक्रांताओं को भारत की भूमि से निकाल फेंकना होगा।

—पंडित दीनदयाल उपाध्याय

वनवासियों की समस्यायें और समाधान

प्राचीनकाल में वनवासी

राम युग के वानर, रीछ और शबर छोटानागपुर अँचल के निवासी थे। डा. अरविन्द वर्मा के अभिमत में वे सम्भवतः दक्षिण से आये और इस अँचल में बस गये। राम ने इनका संगठन कर इन्हीं की सहायता से रावण को पराजित किया। वाल्मीकि रामायण में वानर का तात्पर्य वनवासियों से ही वर्णित है न कि बन्दर से। वनवास के समय पंचवटी में राम का निवास था जहाँ से इन्होंने वनवासियों का संगठन किया था। राम युग में ताड़का नामक राक्षसी बक्सर में, खर भारत के पूर्वांचल में, दूषण पश्चिमाँचल में और मारीच मध्याँचल में रावण के गुप्त आतंकवादी थे। ये छोटानागपुर के वनवासियों को त्रस्त करते थे और उत्तर के नगरवासियों को भी। इसलिए विश्वामित्र के आग्रह पर दशरथ ने राम को उनके साथ जाने की अनुमति दे दी और राम ने सर्वप्रथम ताड़का का वध किया। किन्तु प्रथम बार अन्य आतंकवादी से न निबट सके। अतएव भारत के कल्याण के लिए और आतंकवादियों के विनाश के लिए राम ने वनवास स्वीकार किया और पंचवटी क्षेत्र में मारीच का वध किया। भारत के वर्तमान मध्यप्रदेश, उड़ीसा, बिहार और बंगाल के मध्यवर्ती अंश के लोगों से राम ने आत्मीयता, सहानुभूति और प्रेम का व्यवहार करके उनके दिलों को जीता तथा उनका संगठन किया। केवट मिलन, शबरी का आतिथ्य ग्रहण, सुग्रीव के साथ मैत्री स्थापना इस बात के प्रमाण हैं और हमारे लिए प्रेरक तथा मार्गदर्शक हैं।

मुण्डाओं का विवरण मध्व पुराण में मरण्डा के रूप में आता है। समुद्रगुप्त के नाम शिलालेख में मरण्डा शब्द आया है। विष्णु पुराण में ग्यारह शासकों में मुण्डा का उल्लेख है। डा. वर्मा के अनुसार प्राचीनकाल में इस देश के प्रथम निवासी मुण्डा और उराँव हैं जो कौल रूप में वर्णित हैं। ये पारिवारिक शासक के अधीन रहते थे। जब उनकी संख्या बढ़ी तो अपने वंश के पारिवारिक प्रधान को राजा चुना।

वनवासियों की स्थिति

प्राचीन भारत में वनों की अधिकता थी। अतः जिस प्रकार गाँवों एवं नगरों में रहने वाले मनुष्य स्थानीय साधनों, कृषि और वाणिज्य के द्वारा अपनी जीविका चलाते थे उसी प्रकार वनवासी एवं गिरिजन वनों एवं पहाड़ों की सम्पदाओं से अपना जीवन-निर्वाह करते थे। उनकी आवश्यकताएँ सीमित थी और वे ग्रामों एवं नगरों की चकाचौंध के प्रेमी नहीं थे। यही कारण था कि उन्होंने ग्राम एवं नगरों के मनुष्यों की जीवन-विधि का अनुकरण नहीं किया। उनकी सारी आवश्यकताएँ जंगलों से पूरी होती थी। जंगल के फल-फूल, लकड़ी के द्वारा तथा जंगल काटकर खेत बनाकर खेती भी करते थे और सुख से जंगलों में जीवन बिताते थे। वनों पर वे अपना प्रमुख अधिकार समझते थे। अतः उन्होंने इस सुख के सामने गाँवों एवं शहरों के सुखों को तुच्छ समझा और इधर ध्यान ही नहीं दिया। मुसलमानों का जब भारत पर अधिकार हुआ उस समय भी इन वनवासियों और गिरिजनों पर अत्याचार ही हुआ। उनको जीवन की धारा में मिलाने का प्रयत्न नहीं हुआ। उन्होंने भी अपनी साधारण आवश्यकताएँ जंगलों से ही पूरी करने के कारण सामान्य जन-जीवन में बहने तथा मिलने की कोशिश नहीं की। अंग्रेजों का जब भारत पर अधिकार हुआ तो वनवासी-बहुल स्थानों में वनवासियों ने उनका विरोध किया फलतः वे तरह-तरह से सताये और दबाए गये। वनवासियों की सरलता, असमर्थता और अशिक्षा ने अंग्रेजों के मन में राज्य विस्तार के समान अपने धर्म के विस्तार की भावना पैदा की। क्योंकि इससे उनके अपने धर्म के समर्थक बढ़ते थे जो उनकी दृढ़ता में सहायक होते। इसलिए उन्होंने वनवासियों के बीच धर्म-प्रचार करना शुरू किया।

ईसाई मिशनरी ने भारत में सदा उपेक्षित रहने वाले वनवासियों को शिक्षा, दवा, भोजन और नौकरी देकर उन्हें सुखी बनाने के बहाने से ईसाई बनाना शुरू किया। सदा से अपने लोगों से उपेक्षित रहने वाले वनवासी ईसाई बनकर तथा शिक्षित होकर सुखपूर्वक जीवन बिताने लगे। सुख के लोभ से प्रक्रिया बढ़ने लगी। जंगली इलाकों में वनवासी ईसाई होने लगे। आज वनवासी इलाकों में वनवासी ईसाइयों की इतनी संख्या हो गई है कि आज के मिशनरी के बहकावे में आकर झारखण्ड की माँग करने लगे हैं। झारखण्ड की माँग यहाँ के वनवासियों की नहीं अपितु ईसाई बनकर सुखी जीवन बिताने वाले मिशनरियों में कार्यरत ईसाइयों की है। वे सीधे-सादे गैर-ईसाई वनवासियों को हर तरह से विरोध के लिए उकसाते हैं।

अंग्रेजों का इस देश में मूल उद्देश्य था अधिक से अधिक धन कमाना। भू-कर, आय का मुख्य स्रोत था। वे धीरे-धीरे उस पर अपना अधिकार बढ़ाते गये, राजा-महाराजा उनके कब्जे में आते गये। जमींदारी व्यवस्था शुरू हुई। बिक्री नियम

के कारण जमीन छीनी जाने लगी। फलतः इस क्षेत्र में बगावतों का सिलसिला शुरू हुआ। सिपाही विद्रोह के बाद सन् 1859 में रेन्ट ऐक्ट पास हुआ। सर्वे-सेटलमेन्ट के दौर चले। भू-सम्बन्धी नये कानून बनाये गये। वनवासियों के हाथ से बहुत-सी जमीन निकल गयी और निकलती ही गयी। आन्दोलन होने लगे। कई ताकतों ने मिलकर वनवासी और गैर-वनवासी के बीच एक खाई पैदा करने की कोशिश की फिर भी उनकी आन्तरिक एकता अखण्डित रही। यों तो देश की आजादी के पहले से भी इस क्षेत्र में आर्थिक सुधार के अन्य द्वार प्रशस्त होने लगे थे। खान और खनिज उद्योग शुरू हो चुके थे। जंगलों की कटाई भी होती थी और यदा-कदा ठेकेदारी भी चलती थी। मगर आजादी के बाद इन सभी क्षेत्रों में जैसे बाढ़-सी आ गई। इस क्षेत्र में बड़े-बड़े कल-कारखाने खुलने लगे। खनिजों एवं वनों का राष्ट्रीयकरण हुआ। जंगल की कटाई धुआँधार होने लगी। फलतः वनवासियों का जीवनयापन संकुचित हो गया तथा उनके जीवन के साधन का कोई दूसरा प्रबन्ध नहीं किया गया। इस असन्तोष के वातावरण का लाभ ईसाई मिशनरियों को हुआ। वे ईसाई धर्म के प्रचार में सदैव संलग्न थे।

इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि इस क्षेत्र की घोर उपेक्षा हुई है। शिक्षा के क्षेत्र में जो कुछ भी काम हुआ है, उसमें ईसाई मिशनरियों की भूमिका प्रमुख रही है और रोजगार का लाभ भी धर्म परिवर्तित ईसाई समुदाय को अधिक हुआ है। संथाल परगना, हजारीबाग, गिरिडिह और पलामू देश के निरक्षर जिले हैं। यहाँ करीब 16 प्रतिशत ही साक्षर हैं। खनिज बहुल इस देश के लाखों वनवासी औद्योगीकरण के कारण औद्योगिक-बंजारे बन गये हैं। वनवासी आबादी में ईसाई वनवासी लगभग 30 प्रतिशत हैं। ईसाई हो जाने के बावजूद वनवासी अपनी सामाजिक मान्यताओं को छोड़ नहीं सका है। ये वनवासी भारतीय प्रशासन व्यवस्था को गैर मानते हैं, इसके प्रति उनके मन में रोष और भय है। यह एक दुखद स्थिति है कि बिहार के वार्षिक बजट के लिए छोटानागपुर, संथाल परगना क्षेत्र 75 प्रतिशत वित्तीय साधन उपलब्ध कराता है, लेकिन उसके हिस्से में मात्र 25 प्रतिशत आता है।

प्रस्तावित झारखण्ड राज्य की माँग को लेकर वनवासी नेताओं में अनेक मुद्दों पर मतभेद है। संसद सदस्य और झारखण्ड पार्टी के अध्यक्ष एन. ई. होरो चार विभिन्न राज्यों के 16 जिलों को मिलाकर झारखण्ड राज्य की कल्पना करते हैं। दूसरा कार्तिक उराँव की माँग के अन्तर्गत छोटानागपुर, संथाल परगना के सिर्फ 7 जिले ही आते हैं। जिनकी आबादी 1 करोड़ 43 लाख तथा क्षेत्रफल 79 हजार 638 वर्ग कि.मी. है। पृथक् झारखण्ड की माँग सबसे पहले सन् 1928 में सामने आयी। साइमन कमीशन के आगमन पर ईसाई धर्म में दीक्षित और शिक्षित मुण्डा और उराँव

युवकों ने रायसाहब बन्दी राम उराँव, जुएल लकारा, थियोडोर हुरा और आनन्द मोटोपने जैसे वनवासी नेताओं के नेतृत्व में साइमन कमीशन के सामने पृथक् झारखण्ड की माँग रखी थी। लेकिन इस माँग का विरोध छोटानागपुर के प्रवासी जमींदारों के संगठन (जो ब्रिटिश राजभक्तों का संगठन था) ने अपने प्रधान ठाकुर महेन्द्र नाथ सिंह देय के नेतृत्व में किया था। 1916 में जयपाल सिंह नामक वनवासी जो आई. सी. एस. अफसर थे, इस संगठन के अध्यक्ष बने। उन्होंने वनवासियों के साथ-साथ अनुसूचित जातियों और मोमिन (मुसलमानों का गरीब तबका) को भी इस संगठन में शामिल कर आन्दोलन को एक सशक्त जनाधार प्रदान किया था। स्वतन्त्रता के पूर्व और पश्चात् के चुनावों में इस संगठन ने अपने क्षेत्र में कांग्रेस के पैर उखाड़ दिये थे, तो पं. नेहरू ने संगठन की माँगों को पूरा करने का आश्वासन देकर जयपाल सिंह को इस बात के लिए राजी कर लिया कि अपने संगठन का कांग्रेस में विलय कर दें। विलय के पश्चात् जयपाल सिंह को केन्द्रीय सत्ता में स्थान दिया गया, लेकिन इससे भी वनवासियों की समस्यायें अपने स्थान पर बनी रहीं।

पार्टी के कांग्रेस में विलय विरोधी लोगों ने अपनी एक अलग झारखण्ड पार्टी बनाये रखी और इसने गोपाल मुंजाल नामक एक पंजाबी को महामन्त्री और पाल दयाल को अध्यक्ष चुना। 1969 में इस संगठन का आल इण्डिया झारखण्ड पार्टी नाम से पुनर्गठन किया गया। बागुन सम्बुराई अध्यक्ष और ई. एन. होरो इसके महामन्त्री बने। इसके बाद के वर्षों में नेतृत्व स्पर्धा के कारण यह पार्टी कई-कई बार टूटी और नये रूपों में सामने आयी। 1977 में बागुन सम्बुराई इंदिरा कांग्रेस में शामिल हो गये। ई. एन. होरो ने भी आल इण्डिया झारखण्ड पार्टी छोड़कर अपनी अलग झारखण्ड पार्टी बनायी और स्वयं उसके अध्यक्ष बने। अब आल इण्डिया झारखण्ड पार्टी का नेतृत्व सलखान मुरमु कर रहे हैं। केन्द्र में मुख्यतः चार मिशनरियाँ कार्यरत हैं—

1. सोसाइटी फॉर प्रिचिंग ऑफ मारपेल (ब्रिटेन)
2. जी. ई. एल. चर्च गौसनर
3. रोमन कैथोलिक (रोम)
4. सेवेंथ डे एडविटिक्ट मिशन (अमरीकन)

केन्द्रीय गृह राज्यमन्त्री योगेन्द्र मकवाना ने लोकसभा में सांसद श्री नारायण चौबे के एक प्रश्न के उत्तर में बताया कि कुछ ब्रिटिश, फ्रेंच, पश्चिम जर्मन, डच मिशनरियों और कुछ स्वयंसेवी संघ झारखण्ड आन्दोलन को सहायता पहुँचा रहे हैं तथा वनवासियों को उनकी माँगों के समर्थन में आन्दोलन के लिए संगठित कर रहे हैं। श्री मकवाना का यह उत्तर पश्चिम

बंगाल सरकार की सूचना पर आधारित था। इसके पूर्व पश्चिम बंगाल सरकार ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों पर प्रतिबन्ध लगा चुकी थी।

प्रस्तावित झारखण्ड राज्य का स्वरूप

झारखण्ड राज्य—प्रस्तावित राज्य में 16 जिलों की माँग है। ये जिले विभिन्न प्रदेशों के वनवासी क्षेत्रों को मिलाकर बनाये गये हैं। इनमें बिहार के छोटानागपुर के 6 जिले (रांची, सिंहभूम, धनबाद, हजारीबाग, गिरिडिह, पलामू) एवं संथाल परगना, पश्चिम बंगाल के तीन जिले (पुरुलिया, मिदनापुर एवं बाँकुडा), उड़ीसा के 4 जिले (मयुरभंज, खीर, सुन्दरगढ़ एवं सम्बलपुर) और मध्यप्रदेश के 2 जिले (सरगुजा और रायगढ़), वनवासी बहुल जिले हैं। इसका क्षेत्रफल 1 लाख 87 हजार 646 वर्ग किलोमीटर और आबादी 1971 ई. की जनगणना के अनुसार 3 करोड़ 5 लाख 98 हजार 991 व्यक्ति हैं।

वनवासियों की समस्या का समाधान

1. कृषि-उद्योग में वनवासी समाज को प्रशिक्षित कर कृषि को उन्नत किया जाए।
2. कुटीर उद्योग में वनवासी समाज को प्रशिक्षित कर कुटीर उद्योग को बढ़ावा दिया जाय।
3. कृत्रिम गर्भाधान द्वारा पशुओं की नस्ल अच्छी बनाने का काम हो। उनके चारे आदि की व्यवस्था में सहायक होना। अच्छा चारा उपजाने में सहायक बनें।
4. उनमें शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए रात्रि पाठशाला की योजना के माध्यम से उन्हें शिक्षित किया जाए, इनमें धार्मिक चेतना जगायी जाए एवं संस्कारित किया जाए।
5. जहाँ-तहाँ खेलकूद की व्यवस्था कर उन्हें पुरस्कृत कर प्रोत्साहन दिया जाए।
6. उस क्षेत्र में प्रत्येक गांव में साप्ताहिक सत्संग, भजन-कीर्तन की व्यवस्था की जाए।
7. जिस क्षेत्र में कार्य करे उस क्षेत्र की भाषा में धर्म जागरण हेतु छोटी-छोटी पुस्तिकाएं, भगवान् राम, कृष्ण एवं अन्य महापुरुषों के चरित्र की एवं भगवान् की प्रार्थना छपवाकर वितरण किया जाए।
8. इनमें प्रचलित नृत्य, गीत-उत्सवों को प्रोत्साहन दिया जाए।
9. इनमें प्रचलित दुर्व्यसनों एवं अंधविश्वासों से मुक्त किया जाए।

10. स्थानीय भाषा एवं साहित्य के विकास के लिए, यहाँ के साहित्य की रचनाओं को देवनागरी (हिन्दी) लिपि में प्रकाशित कराया जाए और उनको पुरस्कृत कर प्रोत्साहन दिया जाए।

11. वनवासियों की समस्याओं को राजनीतिक समस्या न मान मानवीय समस्या माना जाए एवं उसका समाधान किया जाए।

यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि ईसाइयत के लिए अब खुले युद्ध का अवसर नहीं होने से उन्होंने युद्ध के प्रकार में परिवर्तन कर लिया है। अब खुले युद्ध का प्रकार सेना का चौथा अंग पादरी पहले चलते हैं। उसके पीछे-व्यापारी उसके पीछे सेनाएं। पर अब इस प्रकार के युद्ध का अवसर नहीं है। अतः युद्ध का प्रकार बदल लिया है। अब सेवा की आड़ में धर्मान्तरण, राष्ट्रान्तरण कर, देश के शत्रु बना कर देश के लिए समस्या खड़ी कर रहे हैं।

इनका उद्देश्य धर्म प्रचार का कतई नहीं है, न सेवा ही उद्देश्य है। ईसाई तत्त्वज्ञान में गैर-ईसाइयों (Hidden) के लिए सेवा का स्थान ही कहाँ है? यदि धर्म प्रसार उद्देश्य होता तो अपने देश में ही धर्म प्रचार करते क्योंकि उनके अपने देश में ईसाइयत से आस्था उठ रही है, दिन-प्रतिदिन चर्च खाली पड़ते जा रहे हैं पर वहाँ अपने धर्म का प्रचार नहीं। न ही धर्म की रक्षा ही और न सेवा ही उद्देश्य है नहीं तो गरीब ईसाई राष्ट्रों में सेवा का प्रकल्प चलाते। पूरा अफ्रीका जो ईसाई है सबसे पिछड़ा हुआ है। पर वहाँ सेवा नहीं। पर भारत में सेवा प्रकल्प चला रहे हैं। यहाँ धर्म का अभाव नहीं वरन् भारत ही उनको धर्मोपदेश दे सकता है पर वे यहाँ धर्म-प्रचार चला रहे हैं सिर्फ इसलिए कि बचे-खुचे, खंडित भारत को ईसाइयत की झोली में डाल कर अपने देश के हित में उनका शोषण कर सकें!

प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के शासनकाल में आदिवासियों का एक प्रतिनिधिमंडल उनसे मिला। उन्होंने बताया हमने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया है। पर उससे हमारी स्थिति में कोई सुधार व परिवर्तन नहीं हुआ। दो-चार नेता बन गए हैं बाद-बाकी की वही स्थिति पूर्ववत बनी हुई है। हाँ, जब तक हम हिन्दू थे, तब तक हमारी परम्परागत धर्म-संस्कृति व परम्पराएं सुरक्षित थी। अब ईसाइयत के चक्कर में आकर हम उनसे हाथ धो बैठे हैं।

स्पष्ट है काल प्रवाह से हमारा वनवासी समाज पिछड़ गया है उनमें आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक, सांस्कृतिक जागरण लाने का कार्य हम भारतीयों का है यह कार्य कोई विदेशी शक्ति नहीं कर सकती। वह तो अपने हित में शोषण ही करेगी और आज तक का उनका यही इतिहास है, चरित्र है।

ब्रिटेन के प्रधानमंत्री लार्ड पामस्टेन ने सन् 1857 के स्वातंत्र्य समर के दो वर्ष पश्चात् सार्वजनिक रूप से कहा था कि 'हमारा कर्तव्य ही नहीं अपितु हमारे हित में भी है कि हम समूचे भारत में यथा शक्ति ईसाइयत का प्रचार करें। इसी की पुष्टि में स्टेट सेक्रेटरी फार इंडिया, लार्ड हेलिफाक्स ने कहा था कि, नया बनने वाला प्रत्येक ईसाई उस देश को जोड़ने वाली एक अतिरिक्त कड़ी या साम्राज्य को बल प्रदान करने वाला एक शक्ति स्रोत है। (नियोगी समिति रिपोर्ट पृष्ठ-40)। भारत में ब्रिटिश शासनकाल में विदेशी शासन की नीति उपरोक्त कारणों से मिशनरी गतिविधियों को सर्वतोपरि प्रोत्साहित करने की थी।

और, आज तो हिन्दुओं की मनोदशा कुछ ऐसी हो गई है कि सर्वधर्म-समभाव के नाम पर उन्हें किसी भी छल-प्रपंच का शिकार बनाया जा सकता है। इसी तरह किसी महापुरुष अथवा किसी संत, सूफी या नबी का नाम लेकर कोई भी कबाड़ उनके गले में उतारा जा सकता है। यह एक गंभीर मानसिक-वैचारिक विकृति तथा संकट का सूचक है। इसे किसी सद्भावना के नाम पर अनदेखा करना अपने आप को भुलावा देना है। अतः वनवासी समाज की सेवा का दायित्व हमारा है। हिंदू समाज का है। आज तक जो उपेक्षा हुई है उसका परिमार्जन करते हुए सेवा करें।

H.G. Wells ने ईसाइयत के सारे इतिहास का सर्वेक्षण करते हुए लिखा है, 'सारे विश्व में आज तक केवल एक ही सच्चा ईसाई हुआ जो क्रूस पर मर गया।' इस पर उसके मित्र ने व्यंग्य करते हुए टिप्पणी की कि वह भी ईसाई कहाँ था? वह तो स्वयं यहूदी ही था। H.G. Wells ने उनके जीवन, जन्म तिथि आदि पर अनेक शंकाए उठायी है। जब ईसा को अपनी सूली ढोनी पड़ रही थी, अपार वेदना हो रही थी, तब God से शिकायत करते हुए कह उठे—हे God! तुमने भी कष्ट के समय साथ छोड़ दिया। तब H.G. Wells प्रश्न उठाते हैं God ने अपने पुत्र का ही साथ छोड़ दिया तो उनके शिष्यों का क्या होगा?

वनवासी समाज एवं ईसाई अभियान

भारत एक धर्म प्राण देश है। जिसका भाव है कि भारत का प्राण उसके धर्म में ही निहित है। इसीलिए भारतीय महापुरुष राष्ट्र के प्राण रूप धर्म की रक्षा हेतु अपना निजी प्राण न्योछावर करने में सौभाग्य मानते रहे हैं। भारतीय धर्म एवं संस्कृति का विकास वनों में ही हुआ। अरण्याश्रमों में साधना करने वाले ऋषि-महर्षि वनवासी ही थे। भगवान राम ने राष्ट्रीय एकात्मता की साधना हेतु स्वेच्छा से वनवास लिया था तथा वनों में बसने वाले केवट, गुह, निषाद, भील, शबर, वानर, ऋक्ष, भल्लूक आदि वनवासी बन्धुओं पर अपना अमर प्रेम लुटाकर भारत की सांस्कृतिक एकता का चमत्कार कर दिखाया था। भगवान कृष्ण की लीलाभूमि वृंदावन एक वन ही था। पाण्डवों ने अपने वनवास की तपस्या द्वारा ही धर्म विजय सम्पादित की थी। हनुमान, सुग्रीव, अंगद, एकलव्य आदि वीरों का यश भारतीय इतिहास में गूँज रहा है। राणाप्रताप के साथ भीलों ने, शिवाजी के साथ मावलों ने, गाँधी जी के साथ टाना भगतों ने, अकबर के विरुद्ध रानी दुर्गावती ने, विदेशी ब्रिटिश शासन एवं विदेशी पादरियों के विरुद्ध बिरसा भगवान ने जो महान् बलिदान दिये उन्हें भारतीय इतिहास सदा श्रद्धाप्रसून चढ़ाता रहेगा।

मानवता का सर्वसंहार

संसार के प्रत्येक देश में वहाँ के वनों में बसने वाले कुछ भोले-भाले, सात्त्विक प्रकृति के, नागरिक सभ्यता में अविकसित किन्तु नागरिक जीवन के छल-छिद्रों से भी मुक्त, सहज विश्वासी, वीर एवं संतोषी वनवासी रहते आये हैं। प्रकृति के प्रांगण के इन वन्य पुष्पों के प्रति विदेशी ईसाई पादरियों ने कैसा व्यवहार किया इसे पश्चिम के एक विश्वविख्यात ईसाई लेखक के शब्दों में उद्धृत करना ही उचित होगा। सन् 1963 में जब मेरा शरीर पश्चिम देशों में भारतीय संस्कृति पर व्याख्यानमालाओं के लिए अमरीका में था तब हार्वर्ड विश्वविद्यालय के विद्वान निदेशक डॉ. पितिरिम ए. सोरोकिन ने मुझे अपनी एक बहुमूल्य पुस्तक भेंट की, जिसका एक सस्ता संस्करण अब भारतीय विद्या भवन बम्बई ने भी प्रकाशित कर दिया है, उसके पृष्ठ 47 पर वे लिखते हैं—

पाश्चात्य ईसाईयत के अक्षम्य अपराध

प्रख्यात अमरीकन समाज-शास्त्री का मत

'विगत कुछ शताब्दियों में मानव समाज का वह वर्ग जो सर्वाधिक युद्ध- पिपासु, सर्वाधिक आक्रामक, सर्वाधिक बलात्कार-परायण तथा सर्वाधिक सत्ता-मदोन्मत्त रहा है, वह निश्चय ही पाश्चात्य ईसाई जगत् है। इन शताब्दियों में, पाश्चात्य ईसाईयत ने सभी दूसरे महाद्वीपों पर आक्रमण किया है, इनकी सेनाओं ने, जिनके पीछे-पीछे इनके पादरी और व्यापारी चलते हैं, अधिकांश गैर-ईसाई राष्ट्रों को गुलाम बनाकर लूटा-खसोटा—पूर्णतया अशिक्षित आदिम जातियों से आरम्भ कर गैर-ईसाई राष्ट्रों तक के प्रति उनका यही अत्याचार रहा है। आदिम अमरीकावासी, आदिम अफ्रीकावासी, आदिम आस्ट्रेलियावासी तथा आदिम एशियाई जनसमूह—सभी इस विचित्र प्रकार के 'ईसाई प्रेम' के शिकार हुए हैं, जिसके सामान्य लक्षण रहे हैं—निर्दयतापूर्ण सर्वनाश, पराधीनता, बलात्कार, सांस्कृतिक जीवनमूल्यों का विनाश, सामाजिक संस्थाओं का विनाश तथा 'ईसाई प्रेम' के शिकार हुए व्यक्तियों की जीवन पद्धति का विनाश तथा दूसरी ओर शराबखोरी, यौन रोगों, व्यावसायिक हृदयहीनता आदि सामाजिक पापों का प्रचार, इत्यादि-इत्यादि।'

—डॉ. पितिरिम ए. सोरोकिन,

Dr. Pitirim A. Sorokin

डाइरेक्टर हार्वर्ड रिसर्च सेंटर इन क्रिएटिव अल्ट्रइज्म, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी, केम्ब्रिज, मेसाचुसेटस् अमरीका (रीकन्स्ट्रक्शन आफ ह्यूमैनिटी, पृ. 47)

Reconstruction of Humanity

प्रकाशक : भारतीय विद्या भवन, बम्बई।

नागालैण्ड से केरल तक ईसाईस्तान

अब पादरी लोग नागालैण्ड से केरल तक ईसाईस्तान बनाने का षड्यन्त्र रच रहे हैं। उनकी योजना है कि आगामी 10 वर्षों में जब वे सभी पूर्वी एवं दक्षिणी राज्यों में 30 प्रतिशत हो जावेंगे तो वे ईसाईस्तान के लिए व्यापक संघर्ष छेड़ देंगे। उनका तर्क यह है कि जिस देश में 24 प्रतिशत मुसलमान खंजर की नोक पर इस्लामिक देश बना सकते हैं तो हम क्यों ईसाईस्तान नहीं बना सकते!

(क) नागालैण्ड में पादरी माइकेल स्काट द्वारा नागा वनवासियों में जो भारत द्रोह के बीज बोए गये उसका परिणाम सारा देश आज तक भुगत रहा है। पादरियों ने देख लिया है कि वे 30 प्रतिशत (ईसाई) हो जाने पर भी राज करने योग्य स्थिति में आ जाते हैं, क्योंकि 30 प्रतिशत संगठित एवं सुशिक्षित लोग शेष 70 प्रतिशत लोगों को अपनी इच्छानुसार चला सकते हैं।

(ख) मिजोरम में भी ईसाई लगभग 30 प्रतिशत हो चुके हैं।

(ग) 26 जनवरी 1968 के दिन गोहाटी में ईसाइयों, पाकिस्तानी मुस्लिमों एवं चीनपरस्त कम्युनिस्टों ने मिलकर जो भारत एवं भारतीयता का अपमान किया तथा भारतीय धन-जन की होली खेली वह भावी संभावनाओं का भयंकर संकेत है।

(घ) छोटानागपुर में झारखण्ड आन्दोलन ईसाई पादरियों का ही कुकृत्य है।

(ङ) मध्यप्रदेश में ईसाई संकट का कच्चा चिट्ठा नियोगी कमीशन रिपोर्ट से मिलता है।

(च) मध्यप्रदेश के इन्दौर नगर से ईसाइयों के सत् प्रचार प्रेस से बहुत से ईसाई साहित्य के साथ एक 'ख्रीस्तायन' नामक पुस्तक प्रकाशित की गई है जिसमें संस्कृत के श्लोकों में ईसा की स्तुति की गई है तथा भारतीयों को भ्रमित करने हेतु ईसा को भारतीय भगवे वेश में दिखाया गया है तथा उनके सामने अनेक ऋषि-मुनि एवं भारतीय शिखा त्रिपुंडधारी भक्तों को नमन करते हुए दिखाया गया है।

(छ) जबलपुर में स्टेशन रोड पर एक ईसाई रेडियो स्टेशन स्थापित किया गया है जहाँ सभी भारतीय भाषाओं में ईसाई कार्यक्रम तैयार किए जाते हैं और उनके रिकार्ड अदीस अबाबा (इथोपिया) से प्रसारित किए जाते हैं।

(ज) उत्कल प्रदेश के वनवासी भी बहुत बुरी तरह ईसाइयों के चंगुल में फंसे हुए हैं।

(झ) आन्ध्र में हैदराबाद मुस्लिम राज्य समाप्त होने के बाद से ईसाई प्रभाव बढ़ रहा है।

(ञ) मद्रास के क्रिस्तानों ने विवेकानंद शिला स्मारक संगमरमर के परल को लगभग 12 वर्ष पूर्व तोड़ दिया था।

(ट) कर्नाटक में ईसाई प्रभाव हिन्दू बल से टकराने लगा है।

(ठ) केरल में लगभग 30 प्रतिशत लोग ईसाई हो चुके हैं। वहाँ वे क्रिस्टोफर सेना तैयार कर रहे हैं।

जून 1950 में केरल के धर्मान्ध ईसाइयों ने भगवान अयप्पा के प्रसिद्ध तीर्थ, तिरुवांकुर में, जंगल से ढकी पहाड़ी पर स्थित सबरी मलाई के मन्दिर को जला दिया तथा देव प्रतिमाओं को तोड़ दिया गया था। केरल की राजधानी त्रिवेन्द्रम में कुछ वर्ष पूर्व वेटिकन के पोप गये थे तथा उसे आदर्श क्रिश्चियन नगर कहा।

वनवासी क्षेत्र में ईसाई प्रकोप

(क) आर्थिक प्रलोभन

क्लिफफोर्ड मैंशर्दत ने अपनी पुस्तक Christianity in a changing India के पृ. 28 पर स्वीकार किया है, 'हमने लोगों को हमारा धर्म स्वीकार करने के लिए प्रलोभन दिए हैं।'

नियोगी कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि 'ग्रामीण क्षेत्रों में मिशन अस्पताल खोलने का एकमात्र उद्देश्य है भारत के 6 लाख ग्रामों को धर्मान्तरित करके ईसाई बना लेना।' सालवेशन आर्मी ब्रिटेन द्वारा 1968 के एक वर्ष में ही जो 79 लाख पौंड व्यय हुए उसमें से 22 लाख पौण्ड केवल भारत में ही व्यय हुए।

(ख) यौन प्रलोभन

श्री पर्सी शास्त्री नामक एक भारतीय ईसाई ने कैथोलिक पत्रिका 'लाइट आफ लाइफ' में लिखा है, 'अधिक से अधिक क्रिस्तान लड़कियाँ हिन्दू लड़कों से विवाह कर रही हैं....इस पवित्र आशा से कि उन्हें ईसाई बनाया जाय।'

(ग) छात्रवृत्तियों पर मिशन का डाका

मिशन वाले संगठित एवं जागरूक होने के कारण वनवासी छात्रों को मिलने वाली सरकारी छात्रवृत्तियों को भी हड़प जाते हैं। ईसाई बनने के पश्चात् वनवासी प्रकृतिपूजक वनवासी ही नहीं रहता, यह बात अभी तक प्रशासन को समझ में नहीं आई थी। आशा है नई सरकार अपनी नीति सुधारेगी।

(घ) संकट के समय धर्म शोषण

सूखा, अकाल, बाढ़ एवं उपद्रव के समय मिशन वाले केयर, कोरगास, आक्सफोम, यूनीसेफ, क्रिश्चियन चैरिटी, सिस्टरज आफ मरसी जैसे संस्थानों द्वारा दो अन्न के टुकड़ों पर वनवासियों का ईमान लूटने का भयंकर अभियान चलाते हैं।

(ङ) निकोबार द्वीप में मिशन वालों ने पूरी जनसंख्या को ईसाई बना लिया है। कुछ वर्ष पूर्व वहाँ ब्रिटेन की रायल एयर फोर्स का विमान भी उतरा था।

भारत का मूल पुत्रवत समाज हिन्दू समाज ही है। अतः भारत में हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व है। धर्मप्राण भारत में धर्मान्तरण का अर्थ राष्ट्रान्तरण हो जाता है। **—वीर सावरकर**

ईसाई मिशनरी क्रियात्मक अध्ययन प्रश्नावली

1. इस अंचल में कौन-कौन सी ईसाई मिशनरियाँ कार्य करती हैं?
2. यहाँ हिन्दू आदिवासियों एवं ईसाई आदिवासियों की सम्प्रति आनुपातिक संख्या क्या है?
3. हिन्दू आदिवासियों का धर्मान्तरण किस क्रम से हुआ है? क्या उसका कोई ग्राफिक मानचित्र भी कभी अंकित हुआ?
4. आदिवासियों के ईसाई होने के कौन-कौन से कारण हैं? क्या आदिवासी ईसाई पादरियों के सद्व्यवहार के प्रति आकृष्ट हो जाते हैं? क्या छल-छद्म, भय-दबाव का सहारा लेकर धर्मान्तरण कराया जाता है?
5. क्या ईसाई मिशनरियाँ आदिवासियों के आर्थिक जीवन में प्रविष्ट हो गई हैं? उनके को-ओपरेटिव बैंकों का संचालन किस प्रकार होता है? क्या उनका पंजीकरण बिहार-उड़ीसा को-ओपरेटिव कानून के अन्दर हुआ है? क्या उनका नियन्त्रण एवं नियमन सरकारी सहकारिता विभागों द्वारा होता है?
6. बिरसा आन्दोलनकारियों की जमीनें क्या ईसाई मिशनरियों ने अनुचित ढंग से हस्तगत कीं?
7. आदिवासियों की गरीबी एवं अशिक्षा उनके धर्मान्तरण में कहाँ तक कारण हैं?
8. पिछले अकाल के समय सहायता कार्यक्रमों के सहारे मिशनरियों ने कहाँ-कहाँ कितने लोगों को ईसाई बनाया? क्या इसका कभी समुचित आकलन हुआ?
9. ईसाई मिशनरियों के धर्मान्तरणकारी क्रियाकलापों में सरकारी नीति किस तरह सहायक है?
10. क्या ताना भगत आन्दोलनकारियों की तथा श्री विश्वनाथ सिंह शाहदेव की सम्पत्ति भी मिशनरियों ने हस्तगत की थी?

11. ईसाई मिशनरियाँ आदिवासियों को (रुपये या अन्न के रूप में) किस तरह ऋण देती हैं? उन्हें किस तरह वसूलती हैं? इस कार्य के सहारे क्या आदिवासियों का धर्मान्तरण भी किया जाता है? क्या ईसाई मिशनरियाँ आदिवासियों का आर्थिक शोषण भी करती हैं?
12. ईसाई मिशनरियों के राजनीतिक क्रियाकलाप के ऊपर कभी किसी साहित्य की रचना हुई? यदि हाँ, तो उन्हें किस प्रकार उपलब्ध किया जा सकता है?
13. विभिन्न ईसाई संस्थानों की स्थापना तथा उनके क्रमिक विस्तार का कोई इतिहास भी उपलब्ध है क्या?
14. ईसाई मिशनरियों के कुछ सघन कार्यक्षेत्र भी हैं क्या? यदि हाँ, तो वे कौन-कौन से हैं? वहाँ उनके कौन-कौन से कार्य चल रहे हैं?
15. हिन्दू आदिवासियों की अपनी कोई संघटित संस्था है क्या? मात्र हिन्दू आदिवासियों के हित में काम करने वाले कुछ प्रभावशाली आदिवासी हैं क्या? यदि हैं तो उनके क्रियाकलापों के विषय में कैसे जानकारी प्राप्त होगी?
16. ईसाई पादरियों में क्या वैदेशिक गुप्तचर भी शामिल हैं? इस विषय में क्या कोई प्रमाण अब तक मिला है?
17. ईसाई मिशनरियाँ आदिवासियों में अराष्ट्रीय भावना किस प्रकार भरती हैं?

महात्मा गाँधी ने भारत में ईसाई मिशनरी क्रिया कलापों के बारे में जो कहा था वह विश्व के कोने-कोने में ईसाई मिशनों की गतिविधियों के बारे में लागू होता है।

मिशनरियों के प्रवेश से उन हिन्दू परिवारों में, जहां मिशनरी पैठे हैं, वेशभूषा, रीति-रिवाज और खान-पान तक में परिवर्तन हो गया है... आज भी हिन्दू धर्म की निंदा जारी है। ईसाई मिशनों की दूकानों में मरडोक की पुस्तकें बिकती है। इन पुस्तकों में हिन्दू धर्म की निंदा के, कुछ है ही नहीं। अभी कुछ ही दिन हुए, एक ईसाई मिशनरी एक दुर्भिक्ष-पीड़ित अंचल में जब धन लेकर पहुँचा। वहाँ अकाल पीड़ितों को पैसा बाँटा व उन्हें ईसाई बनाया। फिर उनका मन्दिर हथिया लिया और उसे तुड़वा डाला। यह अत्याचार नहीं तो क्या है?

—महात्मा गाँधी

कपट मुनि की कुटिल चाल

धर्म बनाम राजनीति

धर्म जब व्यवसाय बन जाता है तो उसमें व्यावसायिक स्पर्धा, आर्थिक हृदयहीनता, स्वार्थ-संघर्ष एवं लोभ-लालच के क्षुद्र भाव आ जाते हैं। धर्म जब राजनीति बन जाता है तो उसमें राजनीतिक छल, प्रपंच, भय एवं प्रलोभन द्वारा अन्य मत वालों को डराने या खरीदने की भावना तथा सत्ता-प्राप्ति के लिये कुत्सित षड्यन्त्र भी मिल जाते हैं।

पाश्चात्य ईसाई जाति का दावा है कि वे 20वीं शताब्दी के अन्त तक सारे संसार को प्रभु ईसा मसीह की चरण-शरण में ले आवेंगे। ईसाईयत के इस विश्व-व्यापी राजनीतिक साम्राज्य की प्राप्ति के लिए अन्तिम अध्याय इस शताब्दी के अन्तिम चरण (1975 से 2000 ई. तक) में लिखा जा रहा है।

यूरोप एवं अमरीका में ईसाईयत

आज से 1666 वर्ष पूर्व यूरोप में ईसाईयत का प्रसार हुआ। उससे पहले सारे यूरोप में सूर्य पूजा प्रचलित थी। सन् 313 ई. में रोम का सूर्य-पूजक राजा कांस्टेंटाइन यूरोप का प्रथम धर्मान्तरित ईसाई राजा बना। धीरे-धीरे सारे यूरोप को छल-छद्म, धोखाधड़ी ईसाई मत के मजहबी न्यायालय क्रूसेड (गैर-ईसाई राष्ट्रों के विरुद्ध जेहाद), सामूहिक अग्नि होम, फाँसी एवं उत्पीड़न द्वारा ईसाई बना लिया गया। आज से 488 वर्ष पूर्व सन् 1493 में जब कोलम्बस के साथ स्पेन के लोग अमरीका की धरती पर उतरे तो वहाँ के मूल निवासी रेड इण्डियन को छल-छद्म, अत्याचार एवं हत्याकाण्ड द्वारा नष्ट करना एवं ईसाई बनाना प्रारम्भ किया। आज अमरीका के मूल निवासी रेड इण्डियन की जाति नाम प्रायः शेष हो चुकी है तथा बचे-खुचे लोग ईसाई हो चुके हैं। शेष सारा अमरीका यूरोप की ईसाई जातियों की भोगभूमि बना हुआ है। इसी प्रकार लगभग पूरे कनाडा को ईसाई बना दिया गया है। दक्षिण अमरीका की गति भी उत्तरी अमरीका के समान रही है।

आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड

सन् 1699 में जब डेम्पियर ने आस्ट्रेलिया को खोजा तब से वहाँ के प्रकृति-

पूजक वनवासियों का शोषण, उत्पीड़न एवं विनाश कर वहाँ ईसाई मत थोपना प्रारम्भ हुआ। दुर्भाग्य से वहाँ की आदिम वनवासी जातियाँ भी नाम शेष हो चुकी हैं और आस्ट्रेलिया, यूरोप की गोरी ईसाई जातियों की भोग लीला का ऐश्वर्य शिविर बन गया है। संसार में सबसे अधिक सोने की खानें आस्ट्रेलिया में ही थीं। उन्हीं की लूट से ब्रिटिश साम्राज्य सारी दुनिया में फैला। न्यूजीलैण्ड की गति भी आस्ट्रेलिया के समान हुई।

महाकलिंग फिलिपाइन बना

आज से 460 वर्ष पूर्व स्पेन के जिन आक्रान्ताओं ने मेक्सिको एवं अमरीका में छल-बल द्वारा ईसाईयत को थोपा, उन्हीं में से कुछ दक्षिणी अमरीका से प्रशान्त महासागर के मार्ग से दक्षिणी चीन समुद्र में स्थित जापान के नीचे, महाकलिंग द्वीप समूह में आक्रान्ता बन कर पहुँच गये। वहाँ के हिन्दुओं को तलवार की नोक पर ईसाई बनाया तथा वहाँ के मन्दिरों को गिरजाघर के रूप में रूपान्तरित कर दिया। उन्होंने स्पेन के राजा फिलिप के नाम पर उस साढ़े सात हजार द्वीपों के पुंज का नाम फिलिपाइन रख दिया, जो सारे एशिया में एकमात्र घोषित ईसाई राष्ट्र है।

धर्मों की जन्मभूमि एशिया—एशिया का हृदय भारत

एशिया, जो धर्मों की जन्मभूमि है, संसार का सबसे अधिक जनसंख्या वाला महाद्वीप है जिसमें संसार के आधे से अधिक मानव बसते हैं। पाश्चात्य ईसाई जगत् एशिया को आगामी 20 वर्षों के भीतर ईसाई बनाने के लिए कटिबद्ध है। एशिया का हृदय भारत है। अतः एशिया के धर्मान्तरण से पहले भारत का धर्मान्तरण अनिवार्य समझा जा रहा है।

भारत का धर्मगुरु ब्राह्मण माना जाता है। 17 वर्ष पूर्व रोम के पोप के भारत आगमन पर यह विचार हुआ कि केवल हरिजन एवं वनवासी जातियों में से ही ईसाई बनाने से ईसाईयत की जड़ भारत में पक्की नहीं जमेगी। अतः यह निश्चय हुआ कि ब्राह्मण आदि उच्च वर्णों में से ईसाई भक्त एवं पादरी बनाए जाएँ। उसी समय कुछ पादरियों ने संकल्प किया कि वे इस कार्य को करेंगे। उन्हीं लगभग 100 पादरियों में से एक बाबा नरेन्द्रानन्द हैं जिसे रांची पुलिस ने भगवे वेश में छल-प्रपंच द्वारा हिन्दू ब्राह्मण बालकों को धर्म भ्रष्ट करने, धोखा-धड़ी करने तथा राष्ट्र-विरोधी गतिविधियों के आरोप में दिनांक 24 अक्टूबर, 1981 को गिरफ्तार कर रांची के केन्द्रीय कारागृह में बन्द कर दिया है।

पादरी एण्ड थोटंक्ल ने नरेन्द्रानन्द नाम रखा

पादरी एण्ड थोटंक्ल (उपनाम फादर 'कुंज कुंजू') छद्मनाम स्वामी नरेन्द्रानन्द 66 वर्षीय केरल निवासी 5.7'' ऊंचा, मलयालम, सिंहली, बांग्ला, अंग्रेजी,

साधारण हिन्दी तथा संस्कृत के दो-चार टूटे-फूटे श्लोक जानने वाला, सफेद दाढ़ी एवं कन्धे तक सफेद बाल रखने वाला बूढ़ा व्यक्ति है। पहले वह पादरी का सफेद चोंगा पहनकर रोमन कैथोलिक मिशन रांची के ईसाई धर्म प्रचारक के रूप में काम करता था। पिछले छः-सात वर्षों से वह उसी पादरी के चोंगे को भगवे रंग में रंग कर हिन्दू बस्तियों एवं संस्थाओं में अपने आपको स्वामी नरेन्द्रानन्द कहकर प्रचारार्थ घूमता रहता था। वह छद्मवेशी पादरी अपने कथनानुसार केरल प्रान्त के एल्लेप्पी जिले का रहने वाला है। उसके पिता का नाम जोसफ थोटंक्ल है। अपने जन्म का गाँव पूछने पर उसने पुलिस अधिकारियों को बताया कि उसे याद नहीं। उसका जन्म 15 जुलाई, 1915 को हुआ। उसकी स्कूल शिक्षा 1931 में पूर्ण हुई। स्थान वह नहीं बताता। अमृतोपदेश पुस्तक के अनुसार इसने 20 मई, 1932 ई. में गृह-त्याग किया। एक छात्रवृत्ति प्राप्त कर वह श्रीलंका में शिक्षा पाने गया। अपने कथनानुसार वह 59 वर्ष तक ईसाई धर्म में रहा। सन् 1974 के पश्चात् वह कहता है कि वह हिन्दू बन गया। दर्जनों वर्षों तक वह छोटानागपुर क्षेत्र में ईसाई पादरी के रूप में कार्यरत रहा है। कैथोलिक डायरेक्टरी आफ इण्डिया 1972 के अनुसार वह उस समय रोमन कैथोलिक मिशन द्वारा संचालित होली फैमिली हॉस्पिटल, कोडरमा (हजारीबाग) में कार्यरत था वह किस सम्प्रदाय का या आर्य समाजी, किस पन्थ, अखाड़े, संगठन से सम्बन्धित है? इसके उत्तर में उसका एक ही वाक्य है—मैं नहीं जानता। इष्ट देवता कौन हैं? वह कहता है निराकार। यह पूछने पर कि ईसा आपका व्यक्तिगत मुक्तिदाता है या नहीं? वह कहता है—मुझे बाँधने का प्रयास मत करो।

मैंने एवं विश्व हिन्दू परिषद्, बिहार प्रान्त के संगठन मन्त्री श्रीकृष्णचंद भारद्वाज ने 4 वर्ष पूर्व एक विचारगोष्ठी में उसे कहा कि यदि आप अपने आपको हिन्दू संन्यासी कहते हैं तो हाथ में बाइबिल लेकर कह दें कि ईसा मेरा एकमात्र व्यक्तिगत मुक्तिदाता नहीं रहा। इस पर वह गोष्ठी छोड़कर भाग गया।

कपट मुनि का उलटा यज्ञोपवीत

वह हिन्दुओं को विश्वास में लाने के लिये अपने गले में उलटा पहना हुआ यज्ञोपवीत का धागा दिखाता रहता है। एक बार मैंने एक जनसमूह के सामने ही उसे बताया कि यज्ञोपवीत यज्ञ सूत्र है। इसे पहनकर यज्ञ एवं वेदाध्ययन करना चाहिए। वह तुम नहीं करते हो। यज्ञोपवीत की शौच-अशौच अवस्था में मर्यादा का पालन करना पड़ता है, वह भी तुम नहीं करते। यज्ञोपवीतधारी को ब्रह्म-मुहूर्त में स्नान कर ब्रह्म गायत्री का जाप करना होता है। न तुम कई सप्ताहों तक स्नान ही करते हो न गायत्री साधना। फिर यज्ञोपवीत के कर्तव्य ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ में पूरे कर संन्यास लेते ही यज्ञोपवीत का विसर्जन कर दिया जाता है। इसके विपरीत तुम प्रथम

तीन आश्रमों में ईसाई बने रहे तथा अब बुढ़ापे में भगवा पहनकर, उलटा जनेऊ-लटका कर कपट मुनि बन गये। निरुत्तर होकर वह खिसक गया।

दिव्यज्योति आश्रम मन्दिर में त्रिकोण शंकु शिवलिंग

पादरी थोटंक्ल सन् 1973 से रांची नगर के राजपथ पर स्थित हैसल बस्ती में शत-प्रतिशत हिन्दू आबादी के क्षेत्र में नवादा की एक हिन्दू महिला से आठ कट्टा जमीन खरीद कर वहाँ दिव्य ज्योति आश्रम नाम से एक हिन्दू मन्दिर बनवाकर रहने लगा। मन्दिर में उसने (ॐ) का बड़ा चिह्न सुन्दर रंगों से चित्रित करवाकर व्यासपीठ के ऊपर सामने की दीवार पर लगवाया और व्यासपीठ के आगे एक शिव की पिंडी स्थापित की। जिसकी जलहरी धरती से डेढ़ फुट ऊंची उठी हुई तथा एक फुट व्यास वाली है। जलहरी के केन्द्र में उसने एक त्रिकोण शंकु स्थापित किया। वह तीनों ओर से समकोण त्रिभुज के आकार का है। जिसके एक ओर 'थे' भी खुदा हुआ है। इसकी व्याख्या पादरी हिन्दुओं और ईसाइयों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार से करता। हिन्दुओं का विश्वास सम्पादन करने के लिए वह पादरी कहता है कि यह निराकार ब्रह्म का प्रतीक है और त्रिकोण के 3 कोणों को वह सत्-चित् और आनन्द बताता है। ईसाइयों को तथा आश्रम में रहने वाले बच्चों को वह बताता कि तीन कोने पिता (ईश्वर), पुत्र (ईसामसीह) और पवित्रात्मा हैं।

छात्रावास में निर्धन ब्राह्मण बच्चों के धर्म पर डाका

मन्दिर के प्रांगण में उसने एक ओर बच्चों के लिए छात्रावास बना रखा था जिसमें वह छोटानागपुर, विशेषकर पलामू जिला, कुछ भोजपुर जिला के निर्धन ब्राह्मण बच्चों को लाकर रखता था। वह उन बच्चों एवं उनके अभिभावकों को यह आश्वासन देता कि वह स्वयं हिन्दू संन्यासी है तथा उन ब्राह्मण बच्चों को वेद, उपनिषद्, गीता-रामायण आदि हिन्दू शास्त्रों का अध्ययन तथा साथ में बी. ए., एम. ए., पीएच.डी. तक की निःशुल्क पढ़ाई कराके उन्हें धर्मगुरु बनाया जायेगा। छात्रावास में लगभग 12 बच्चों के रहने के लिए व्यवस्था है। बच्चे प्रायः 10-12 वर्ष की आयु से कम के लिए जाते ताकि सरलता से उन्हें अपने रंग में रंगा जा सके। दो-एक विद्यार्थी कालेज स्तर के भी थे। उन बच्चों को आश्रम में रहकर गीता-रामायण पढ़ने का न अवसर दिया जाता, न वे छात्रावास में किसी हिन्दू देवी-देवता का चित्र ही टाँग सकते थे। उन्हें मन्दिर में आने वाले किसी बाहर के प्रवचनकर्ता का प्रवचन भी नहीं सुनने दिया जाता था। उन्हें अन्य हिन्दू मन्दिर में जाने या हिन्दू उत्सव में भाग लेने की भी अनुमति नहीं दी जाती थी। बच्चों को केवल ईसाई विद्यालयों, महाविद्यालयों (सेन्ट जान उच्च

विद्यालय, सेन्ट जेवियर महाविद्यालय) में ही प्रवेश दिलाकर शिक्षा दिलाई जाती थी। उनके लिए ईसाई धर्म की शिक्षा की कक्षा अनिवार्य थी। आश्रम में भी छात्रों के लिए प्रातः-सायं प्रार्थना व प्रवचन ईसाई धर्म एवं बाइबिल पर होते थे।

पादरी राबर्ट डि नोबिली के भगवे वेष ने पर्दे में एक लाख हिन्दू ईसाई बनाये थे

एक अन्य बड़े जैसुइट पादरी ने 17वीं शताब्दी के आरम्भ में एक नया ढंग निकाला। वह इटली का रहने वाला था और ऊँचे घराने से सम्बन्धित था। वह कुशाग्र बुद्धि और लगन का आदमी था। वह मथुरा में आया। मथुरा उस समय एक हिन्दू राज्य की राजधानी थी और पुर्तगाल के वायसराय की सीमा से बाहर थी। इस पादरी का नाम राबर्ट डि नोबिली था। उसने देखा कि कोवियर तथा दूसरे कैथोलिक पादरियों की नीति, जिसके द्वारा राज्य की सत्ता के बलबूते छोटी जातियों में से सामूहिक रूप से लोगों को ईसाई बनाया जाता था, एक खतरनाक नीति थी। उसने स्पष्ट देखा कि जब तक ऊँची जातियों में से ईसाई न बनाये जायेंगे तब तक ईसाईयत की जड़ भारत की भूमि में नहीं जम सकेगी। तब उसने तुरंत कोवियर की नीति का परित्याग किया और एक निजी नीति-निर्धारित कर ली।

नोबिली मथुरा में गेरुए वस्त्र धारण किये हुए एक साधु के वेष में, मस्तक पर चन्दन लगाये हुए और शरीर पर यज्ञोपवीत धारण किये हुए प्रकट हुआ। उसके एक ओर क्रास लटका रहता था। ऐसी वेशभूषा में उसने ब्राह्मणों की बस्ती में रहना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार उसकी ओर बहुत से लोग आकृष्ट हो गये। वह अपने आपको रोम से आया हुआ ब्राह्मण बताने लगा, उसने लिखित प्रमाण भी पेश किये कि उसके पूर्वज पुरातन आर्यावर्त्त से वहाँ गये थे। इस प्रकार ऊँची जाति के लोगों को उसने आश्वासन दिया कि 'कोई व्यक्ति ईसाई बनने से अपनी जाति, रीति-रिवाज अथवा प्रतिष्ठा का परित्याग नहीं करता। ('क्रिश्चियन एण्ड क्रिश्चियनिटी इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, पृ. 65-70) उसने तामिल, तेलुगु और संस्कृत सीख ली और ब्राह्मणों की वेशभूषा में रहने लगा। उसने संस्कृत में 'क्रिश्चियन सन्ध्यावंदनम्' नामक पुस्तक ब्राह्मणों से ईसाई बने हुए लोगों के लिये लिखी। उसने घोषित किया कि वह पुराने भारतीय ऋषियों के सन्देश को ही लाया है और उसी की शिक्षा दे रहा है। उसने कहा कि मैं केवल हिन्दुओं के लिए लुप्त हुई धार्मिक पुस्तक पंचम वेद अर्थात् 'यीशुर्वेद' का पुनरुद्धार कर रहा हूँ। सन् 1840 तक इस प्रकार धोखाधड़ी का कार्य चलता रहा, जबकि प्रोटेस्टेंट पादरियों ने इसका भंडाफोड़ किया (हिस्ट्री आफ मिशन्स, रिच्टर, पृ. 67)। 1607 से लेकर 1611 ईस्वी तक इन पाँच वर्षों में उसने 27 ब्राह्मणों को ईसाई बनाया। रोमन गोत्र का यह ब्राह्मण संन्यासी, फादर डि नोबिली चालीस वर्ष तक इस छद्म वेष में

कार्य करता रहा और 1656 ईस्वी में 89 वर्ष की आयु में सर्वग्रासी काल ने उसको भी ग्रस लिया। यह कहा जाता है कि उसने लगभग 1,00,000 (एक लाख) व्यक्तियों को ईसाई बनाया।

छद्मवेषी-छली को देश क्या दण्ड देगा ?

छद्म-वेषी रावण साधु के वेष में सीता का हरण करने के पाप से मारा गया। कपट मृग मारीच एवं कपट मुनि की भी वही गति हुई। पादरी राबर्ट डि नोबिली को सामाजिक तिरस्कार का दण्ड मिला, प्रशासन के दण्ड से वह बचा रहा (क्योंकि भारत पराधीन था)। ईश्वरीय न्याय में वह कठोरतम दण्ड का भागीदार बना होगा। भगवान का कथन है—'मोहि कपट छल-छिद्र न भावा'।

अब देखना है कि स्वाधीन, सर्व प्रभुसत्ता सम्पन्न भारत देश में धर्मप्राण समाज एवं न्यायप्रिय प्रशासन पादरी एण्ड थोटंक्ल (फादर कुंज कुंजु) छद्म नाम नरेन्द्रानन्द तथा उसके कपट जाल में सहयोगी जनों को क्या दण्ड देता है?

हिन्दू विश्व (मासिक पत्रिका)
फाल्गुन-चैत्र 1903-04 पृष्ठ सं. 17 से 20

मैं ईसाई धर्म को एक अभिशाप मानता हूँ, उसमें आंतरिक विकृति की पराकाष्ठा है। वह द्वेषभाव से भरपूर वृत्ति है। इस भयंकर विष का कोई मारण नहीं। ईसाइयत गुलाम, क्षुद्र और चांडाल का पंथ है।

—दार्शनिक नीत्से

हिन्दू समाज में से एक मुस्लिम या ईसाई बने, इसका मतलब यह नहीं कि एक हिन्दू कम हुआ बल्कि हिन्दू समाज का एक दुश्मन और बढ़ा।

—स्वामी विवेकानन्द

मुसलमान व ईसाई दोनों ही सम्प्रदाय अपने सिवा बाकी अन्य रिलिजनों को झूठा और ढोंगी मानते हैं। दोनों रिलिजनों ने यूरोप में दबदबे के लिए कई धर्म-युद्ध (क्रूसेड) लड़े हैं। पर भारत में हिन्दू-विरोध के लिए दोनों एक-दूसरे के हितों का पोषण करते हैं।

—प्रो. ओबराय

धर्म-स्वातंत्र्य विधेयक की परिचर्चा में कुछ प्रश्नोत्तर

प्रश्न : मनुष्य अपना धर्म क्यों बदलता है?

उत्तर : धर्म का मूल अर्थ है कर्तव्य। शरीर के प्रति, परिवार के प्रति, जाति, समाज और राष्ट्र एवं विश्व के प्रति समस्त कर्तव्यों की विधिवत् परिपूर्ति का नाम धर्म है। कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियों द्वारा ईश्वर-प्राप्ति के लिये बतलाए गये मार्ग को पंथ (Religion) कहते हैं, धर्म नहीं। सारी मानवता का धर्म एक है जो अनादि और शाश्वत है। भिन्न-भिन्न मानव समूहों के पंथ भिन्न-भिन्न हैं जो सादि एवं सान्त (नश्वर) हैं।

धर्म लोभ, पुरस्कार, भय या आतंक की दया पर नहीं होना चाहिये। कर्तव्य (धर्म) कर्तव्य के लिये ही होता है। सौ में से निन्यानवे प्रतिशत लोग आस्था के दुर्बल होने के कारण लोभवश या भयाक्रान्त होने पर धर्म बदलते हैं। मात्र एक प्रतिशत लोग जागृत विवेक के कारण धर्म बदलते हैं। दृढ़ आस्था वाला व्यक्ति निर्धन अथवा निर्बल होने पर भी धर्म नहीं बदलता। गुरु गोविन्दसिंह के नन्हे-नन्हे बच्चों ने दीवारों में चुनते हुए भी कहा—'बाँह जिन्हाँ दी पकड़िए सिर दीजे बाँह न छोड़िये।' बाल हकीकत एवं छात्रावस्था में वीर बिरसा ने भी किसी भय के प्रहार या लोभ के पुरस्कार से धर्म नहीं बदला।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपत काल परखिए चारी।

(तुलसी)

प्रश्न : अगर छोटानागपुर में ईसाई धर्म का आगमन न होता तो क्या कभी आदिवासी आज की सभ्यता एवं शिक्षा पा सकते? (विलियम टोप्पो)

उत्तर : पश्चिमी सभ्यता एवं शिक्षा तो अंगरेजी राज के साथ आ गयी थी। इसके लिये ईसाई बनना कहाँ अनिवार्य था। वनवासी समाज में क्या श्री कार्तिक उराँव, डॉ. दुर्गा भगत, श्री कड़िया मुण्डा, श्री ललित उराँव, श्री कर्मचन्द

भगत, श्री लारंग साय आदि प्रतिष्ठित समाज नेता बिना ईसाई बने अशिक्षित एवं असभ्य रह गये? राजा राममोहन राय पश्चिमी शिक्षा के सबसे बड़े पक्षपाती थे किन्तु ईसाई पादरियों को खुली चुनौती देते थे। श्री टोप्पो और श्री खड़िया भी बिना ईसाई बने आधुनिक शिक्षा एवं सभ्यता पा सकते थे।

प्रश्न : 'यह ईसाई धर्म का ही करिश्मा है कि उसने पतित समाज से इन्हें छीनकर इनको (वनवासियों को) उबारा। इन्हें अपने हक को पहचानने का बखूबी पाठ सिखाया और गुलामी से छुटकारा दिलाया।'

उत्तर : पाश्चात्य ईसाई पादरियों ने कौन से पतित समाज से छीनकर श्री टोप्पो को उबारा? क्या श्री टोप्पो के पूर्वजों का समाज पतित एवं गुलाम समाज था? क्या श्री टोप्पो पतित एवं गुलाम पूर्वजों की सन्तान हैं। इसके विपरीत संसार का कोई ऐसा देश नहीं जहाँ पादरी ने पाँव रखे हों और वह देश स्वाधीन बच गया हो, जहाँ पादरी के घुसने के बाद भी वनवासी समाज की संस्कृति नष्ट न हुई हो। 1438 ई. में ईसाई धर्म न्यायालय ने नीदरलैण्ड के 3 लाख लोगों को कैथोलिक पंथ से तनिक भिन्न आस्था के कारण जीवित जलाने का मृत्युदण्ड दे दिया। इनीक्विजिशन एवं खूनी परिषद् द्वारा यूरोप के प्रत्येक देश में भीषण रक्तपात द्वारा सूर्यपूजकों को नष्ट कर ईसाई मत थोपा गया। आज अमरीका के मूल निवासी (रेड इण्डियन ईका, पीरू, मय आदि) कहाँ खो गये। उन्हें सताकर, भगाकर, जलाकर यूरोप की गोरी जातियों के लुटेरों ने वहाँ अपना राज्य जमा रखा है। कनाडा एवं आस्ट्रेलिया के आदिवासी कहाँ गये? वहाँ भी यूरोप की गोरी जातियों का आधिपत्य हो गया है। अमरीका एवं अफ्रीका के नीग्रो आदिवासी जब समान अधिकार की माँग करते हैं तो उन्हें गोली से उड़ाया जाता है। भारत में भी बिरसा भगवान के साथियों को पादरियों ने कितना सताया!

'उन मुण्डा लोगों ने जर्मन लूथरन मिशन के निम्न अत्याचारों के विरुद्ध ज्ञापन दिया—यथा, मुण्डा लोगों को गिरफ्तार करना तथा घसीटना, उन्हें नंगा कर देना, उनके पास से धन छीनना, उनमें से कुछ से रिश्वत लेकर उन्हें अवैध गिरफ्तारी से छुड़वा देना, उनके घरों से सम्पत्ति लूट लेना, उनसे जमीन छीन लेना तथा उन वृक्षों को कटवा देना जिनकी वे पूजा करते थे।'

—लाइफ एण्ड टाइम्स आफ बिरसा भगवान (पृ. 41)

क्या यह आदिवासियों को गुलामी से छुटकारा दिलाना है या उन्हें पश्चिम की गोरी जातियों का पतित गुलाम बनाना? श्री टोप्पो विश्व इतिहास एवं भारतीय इतिहास के दर्पण में अपना चेहरा देखें।

प्रश्न : (बिशन ने) हर ख्रीस्तीय आदिवासी को मनुष्य बनाया।

उत्तर : भगवान ने हर आदिवासी को एक स्वतन्त्र मनुष्य के रूप में पैदा किया, किन्तु पाश्चात्य ईसाईयत ने उन्हें गुलाम पशु-तुल्य बना दिया। इस विषय में प्रख्यात अमरीकन समाजशास्त्री, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के डायरेक्टर डॉ. पितिरिम ए. सोरोकिन का प्रकाशित मत गंभीर ध्यान के योग्य है—

'विगत कुछ शताब्दियों में मानव समाज का वह वर्ग जो सर्वाधिक युद्ध-पिपासु, सर्वाधिक आक्रामक, सर्वाधिक बलात्कार परायण तथा सर्वाधिक सत्ता मदोन्मत्त रहा है, वह निश्चय ही पाश्चात्य ईसाई जगत् है। इन शताब्दियों में पाश्चात्य ईसाईयत ने सभी दूसरे महाद्वीपों पर आक्रमण किये हैं। इनकी सेनाओं ने जिनके पीछे-पीछे इनके पादरी और व्यापारी चलते हैं, अधिकांश गैर-ईसाई राष्ट्रों को गुलाम बनाकर लूटा और खसोटा। पूर्णतया अशिक्षित लोगों (आदिम जातियों से आरम्भ कर गैर-ईसाई राष्ट्रों तक) के प्रति उनका यही अत्याचार रहा है। आदिम अमरीकावासी, आदिम अफ्रीकावासी, आदिम आस्ट्रेलियावासी तथा आदिम एशियाई जनसमूह—सभी विभिन्न प्रकार के 'ईसाई प्रेम' के शिकार हुए हैं, जिनके सामान्य लक्षण रहे हैं—निर्दयतापूर्ण सर्वनाश, पराधीनता, बलात्कार, सांस्कृतिक जीवनमूल्यों का विनाश, सामाजिक संस्थाओं का विनाश तथा 'ईसाई प्रेम' के शिकार हुए व्यक्तियों की पद्धति का विनाश तथा दूसरी ओर स्वयं इनमें शराबखोरी, यौन रोगों, व्यावसायिक हृदयहीनता आदि सामाजिक पापों का प्रचार, इत्यादि-इत्यादि।'

प्रश्न : क्यों उनमें (प्रो. ओबराय में) डर समा गया है कि अगर आदिवासी और हरिजन अपनी रूढ़िवादिता से उबरकर कोई भी प्रतिगामी धर्म तथा विश्वास को अपनाते हैं (जिस तरह डॉ. अम्बेडकर ने हरिजन समाज को उबारने के लिये बौद्ध धर्म को अपनाया) तो उनकी जो अब तक की दूसरों पर राज करने की मनोवृत्ति है उसका क्या होगा? (विलियम टोप्पो)

उत्तर : इतिहास साक्षी है कि भारत ने अपना अथवा भारतीय हिन्दू समाज ने आज तक संसार के किसी देश अथवा समाज को कभी भी गुलाम नहीं बनाया है। इसके विपरीत पाश्चात्य पादरियों ने किसी अन्य समाज अथवा राष्ट्र को आजाद नहीं रहने दिया। अतः धर्म-स्वातंत्र्य विधेयक से उदार एवं लोकतन्त्रनिष्ठ हिन्दू समाज को कोई भय नहीं है। स्वेच्छा से धर्म-परिवर्तन या धर्मदीक्षा लेने एवं अपने-अपने इष्ट देवता की उपासना की स्वाधीनता भारत ने सदा प्रदान की है। भय तो विदेशी पादरियों को ही है जिनकी गुलामों की मंडी नष्ट हो जाने की सम्भावना है।

यदि डा. अम्बेडकर के नेतृत्व में कुछ हरिजनों ने स्वेच्छा से (बिना विदेशी प्रलोभन अथवा देश-घातकी राजनीतिक षड्यन्त्र के) बौद्ध धर्म को अपनाया तो किसी को चिन्ता नहीं हुई किन्तु ईसाई धर्मांतरण द्वारा सारे संसार को यूरोप एवं अमरीका की गोरी जातियों का क्रीत-दास बनाने का भयंकर षड्यन्त्र चल रहा है जिसके अन्तर्गत यूरोप, अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, आधा अफ्रीका अपने मूल स्वरूप को खोकर ईसाईयत की भेड़ों में शामिल हो चुका है। अब भारत ही उनके शिकार का लक्ष्य है।

प्रश्न : विदेशी पादरियों को फूटी आँखों.....नहीं देखना चाहते? (निगा खड़िया)

उत्तर : मुझे यूरोप एवं अमरीका के अनेक देशों के प्रवास का सुयोग मिला है। अनेक विदेशी पादरी मेरे परम मित्र हैं जिनके साथ मेरा अभी तक प्रेम पत्राचार चलता है। मैं स्वयं पश्चिम के अनेक गिरजाघरों में व्याख्यान देकर आया हूँ। ब्राक पोर्ट (न्यूयार्क) के प्रथम बेप्टिस्ट मिशन के प्रमुख पादरी श्री डाइकलर मेरे पत्रों में प्रेषित विचारों को अपने रविवार की गिरजाघर सभा में पढ़कर सुनाते हैं। किन्तु मैं विदेशी पादरियों का तभी तक सम्मान करता हूँ जब तक वे अपने-अपने देश में सेवा अथवा धर्म प्रचार करते रहते हैं, ज्योंही वे भारत में आकर निर्धनता का शोषण करते हैं, पैसे के बल पर अथवा सत्ता के बल पर यहाँ के भोले-भाले लोगों का धर्मान्तरण कर भारत के विरुद्ध विद्रोह भड़काने लगते हैं, तब वे फूटी आँख से देखने लायक भी नहीं बचते।

प्रश्न : स्वतन्त्रता संग्राम में भाग नहीं लेने का इल्जाम लगाना ओबराय जी की नासमझी का चिह्न है। कांग्रेस की स्थापना एक अंगरेज ईसाई ने की थी। इसका प्रथम अध्यक्ष एक बंगाली ईसाई था। (निगा खड़िया)

उत्तर : वास्तव में यह आरोप सामान्य रूप से विदेशी पादरियों पर और विशेष रूप से पादरी बुल्के पर था। न कि सभी भारतीय ईसाइयों पर और ना ही सभी विदेशी ईसाइयों पर। भारत की स्वाधीनता की दृष्टि से ईसाइयों को निम्नलिखित कोटियों में बाँटा जा सकता है—

(क) सामान्य भारतीय ईसाई नागरिक जिनकी मातृभूमि-पितृभूमि भारत है किन्तु धर्मान्तरण के पश्चात् पुण्यभूमि येरुशलम को मानने लगे हैं। उनमें से कुछ देशभक्त हैं और कुछ देश के प्रति उदासीन।

(ख) ऐंग्लो इण्डियन या ऐंग्लो यूरोपियन ईसाई, जिनकी पितृभूमि विदेश में है, माता भारत की होने से मातृभूमि भारत है और पुण्यभूमि विदेश में होने के कारण उनकी निष्ठा प्रायः भारत बाह्य होती है, वे भारतीय स्वाधीनता के विरुद्ध ब्रिटिश, पुर्तगाली, फ्रांसीसी और डच

साम्राज्यवाद का समर्थन करते रहे हैं और भारतीयों पर भीषण जुल्म भी ढाते रहे हैं।

(ग) उदार विदेशी ईसाई जो विदेश में रहते हुए भी भारतभक्त हुए और भारत की स्वाधीनता के अनुकूल विचार प्रकट करते रहे जैसे— मैक्समूलर, जैकोबी, कान्ट, श्लीगल, थोरो, इमर्सन, कार्लायल, रोम्याँ रोलाँ इत्यादि।

(घ) भारतभक्त विदेशी ईसाई जिनकी मातृभूमि-पितृभूमि विदेश में थी किन्तु उन्होंने स्वेच्छा से भारत की पुण्यभूमि का वरण किया, चाहे भारत की नागरिकता नहीं ली जैसे एटम बम के आविष्कारक, गीताभक्त राबर्ट ओपनहीमर, आल्डुडास हक्सले तथा कृष्ण भावनामृत संघ (हरे कृष्ण आन्दोलन) के विदेशी भक्त।

(ङ) विदेशवंशी भारतीय जन्मतः विदेशी ईसाई जिनकी मातृभूमि एवं पितृभूमि विदेश में थी किन्तु वे भारत-भक्ति, भारतीय नागरिकता एवं भारतीय स्वाधीनता के प्रबल समर्थन के कारण पूर्णतया भारतीय बन गये। जैसे श्रीमती एनीबेसेंट ने भारत एवं हिन्दुत्व को समानार्थक माना तथा भारत को अपनी आध्यात्मिक जन्मभूमि कहा। श्रीमती मीरा रिचर्ड (अरविन्द आश्रम की श्री माँ) ने भारत के जीवनतत्त्व की प्रतिष्ठा की, कुमारी मारग्रेट नोबेल (भगिनी निवेदिता) स्वामी विवेकानन्द की धर्म शिष्या बनकर भारत में आई तथा भारत के स्वाधीनता संग्राम में वे श्री अरविन्द तथा कन्हाईलाल दत्त जैसे उग्र क्रांतिकारियों के साथ तेजस्वी सहयोग करती रहीं; प्रो. रोनाल्ड निक्सन, जो योगी कृष्ण प्रेमी बनकर अल्मोड़ा में अलौकिक साधना करते रहे।

(च) भारतवंशी प्रवासी भारतीय जो विदेश में जाने पर किन्हीं परिस्थितियों के कुचक्र से धर्मान्तरण द्वारा ईसाई बना दिये गये हैं।

(छ) साम्राज्यवादी विदेशी ईसाई जो भारत में विदेशी साम्राज्य के अंतर्गत शासन करने के लिये आये तथा भारतीयों को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह से रोकने के लिये भारतीय समाज नीति अथवा राजनीति में रुचि लेते रहे। जैसे लार्ड ह्यूम एवं लार्ड मैकालिफ। श्री ह्यूम इण्डियन सिविल सर्विस के अंतर्गत भारत में ब्रिटिश शासन को सुदृढ़ बनाने के लिये ही आए थे। अवकाश प्राप्ति के पश्चात् उन्होंने सन् 1885 में अंग्रेजों के संकेत पर ही इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना एक सेफ्टी वाल्व (Safety Valve) के रूप में की, ताकि

भारत के पढ़े-लिखे लोग अपनी नागरिक सुविधाओं के लिये बैठकें करके प्रस्ताव पारित कर ब्रिटिश शासन के पास भेजते रहें और इस प्रकार उनके मन के भावों की भाप निकलती रहे और सन् 1857 जैसा भीषण विस्फोट न हो सके। लार्ड ह्यूम न विदेशी पादरी था और न भारत की स्वाधीनता हेतु उसने कोई त्याग-बलिदान किया।

(ज) विदेशी ईसाई पादरी जो भारत को ईसाई बनाने के उद्देश्य से आये किन्तु भारत के निकट सम्पर्क में आने पर वे स्वयं भारत-भक्ति में रंग गये। जैसे दीनबन्धु एण्ड्रूज, स्वामी सत्यानन्द स्टोकस्त (जो कुल्लु में आश्रम बनाकर वैदिक धर्म-साधना करते रहे), ब्रिटिश पादरी एटकिन्स जिन्होंने पादरी का संकुचित धन्धा छोड़कर सारा जीवन तुलसी रामायण का अंग्रेजी पद्य में दोहा-चौपाई-छन्द में अनुवाद करने में समर्पित कर दिया। भारत निश्चय ही ऐसे विदेशी भारत-भक्तों का ऋणी है।

(झ) विदेशी पादरी जिनकी मातृभूमि, पितृभूमि, पुण्यभूमि सभी कुछ भारत के बाहर है तथा जो शिक्षा, चिकित्सा या सहायता के जाल द्वारा भारत को यूरोप एवं अमरीका की गोरी जातियों का गुलाम बनाये रखने के लिये क्रियाशील रहते हैं, ऐसे लोगों द्वारा भारत के स्वाधीनता संग्राम में सहयोग का तो प्रश्न ही नहीं उठता, उलटे वे विदेशी शक्तियों के गुप्तचर एवं दलाल बनकर धोखे से पीठ में छुरा भोंकने का दुष्ट प्रयास करते रहते हैं। जैसा पादरी माइकल स्कॉट की करतूतों से नागालैण्ड में हुआ और अब मिजोरम एवं मेघालय में सामूहिक हत्याओं का नाटक जारी है।

मेरा कथन अभी तक अकाट्य है कि भारत के स्वाधीनता संग्राम में किसी विदेशी पादरी का अथवा पादरी बुल्के का कोई योगदान नहीं रहा। यदि कोई भारतीय ईसाई कांग्रेस में अथवा स्वाधीनता संग्राम में भाग ले तो उसमें महत्त्व उसके भारतीय रक्त का है। इससे विदेशी पादरी का भारत के स्वाधीनता संग्राम में योगदान कदापि सिद्ध नहीं होता।

प्रश्न : हिन्दुओं से तंग आकर ही पाकिस्तान की रचना हुई और नागालैण्ड विद्रोही बना? (निगा खड़िया)

उत्तर : हिन्दू से अधिक उदार समाज सारे संसार में दूसरा नहीं है। अतः पाकिस्तान के निर्माण के लिये हिन्दू समाज पर अत्याचार का आरोप लगाना अपने आप को इतिहास एवं न्यायबुद्धि के प्रति अंधा सिद्ध करना है। मुसलमानों ने अहिंसक भारत पर अकारण आक्रमण कर इसके धन, जन, तीर्थ,

संस्कृति, ग्रन्थों, पुस्तकालयों, विश्वविद्यालयों आदि का भयंकरतम नाश किया और भारत के शीश पर एक हजार वर्षों तक इस्लाम की तलवार नाचती रही। फिर भी पाकिस्तान के रूप में एक-चौथाई देश के कट जाने के उपरान्त भी भारत ने अभी तक करोड़ों मुसलमानों को हृदय से लगाकर रखा है तथा दो मुस्लिमों को राष्ट्रपति, एक को सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश, दर्जनों को राज्यपाल, केन्द्रीय मन्त्री एवं राजदूत एवं सेना अधिकारियों का सम्मान दिया है। वास्तव में हिन्दू ने अपनी सद्‌गुण विकृति के कारण अपनी उदारता को अतिसीमा पर ले जाने के कारण बहुत हानि उठाई है।

फिर भी जो 'पाकिस्तान' के निर्माण के लिये भारत के पुत्रवत् समाज (हिन्दू समाज) को ही दोषी मानता है, वह भारत एवं भारतीयता का घोर तिरस्कार करने वाला देशद्रोही है।

आचार्य चतुरसेन के शब्दों में—प्रथम अरब आक्रान्ता मुहम्मद बिन कासिम सिन्ध से 40 तांबे की देगें लूटकर ले गया जिनमें 17200 (सत्रह हजार दो सौ) मन सोना था। वह छः हजार छः सौ ठोस सोने की मूर्तियाँ भी ले गया जिनमें सबसे बड़ी का वजन तीस मन था। महमूद गजनवी नगरकोट मन्दिर से 700 मन अशर्फी, 700 मन सोने-चाँदी के बर्तन, 740 मन सोना, 2000 मन चाँदी और 20 मन हीरा-मोती लूटकर ले गया। सोमनाथ मन्दिर की लूट में 51 रत्नजडित खम्भे और मूर्ति के ऊपर 40 मन ठोस सोने की जंजीर से लटकता घंटा भी उसके हाथ लगा। सैकड़ों ऊँटों पर लूट का सामान लादकर वापस गजनी की ओर लौटते समय वह मार्ग भटक कर सिन्ध के मरुस्थल में अन्न-जल के बिना तड़पने लगा। मार्ग के हिन्दुओं ने उन आक्रान्ताओं की भी सेवा समेत अन्न-जल देकर अतिथि-सत्कार का विचित्र धर्म निभाया। हिन्दू ने विष-धर साँपों को दूध पिलाया है। सोमनाथ में पुनः हिन्दू राज आने पर भी हिन्दू राजा ने सोमनाथ मन्दिर के सामने विशाल मस्जिद बनाने की अनुमति दे दी और एक नवीन मस्जिद राज्य की ओर से बनवाकर उसकी वार्षिक व्यय व्यवस्था राज्य की ओर से कर दी। मुस्लिम आक्रान्ताओं ने कृष्ण जन्मभूमि मथुरा, राम जन्मभूमि अयोध्या एवं काशी विश्वनाथ के मन्दिरों को ध्वस्त किया, पवित्र धाम रामेश्वरम् की मूर्तियों को आगरा और दिल्ली ले जाकर उन्हें उलटा करके अपने महलों की सीढ़ियों में चुनवा दिया। हिन्दुओं की भावनाओं को कुचलने के लिये पवित्र मन्दिरों की मूर्तियों का मल-मूत्रोत्सर्ग करने के स्थान पर फर्श बनाने के लिये उपयोग

किया गया। सहस्रों हिन्दू स्त्री-पुरुषों को गुलाम बनाकर मध्य एशिया के काबुल-कंधार आदि स्थानों में ले जाकर बेचा गया। हिन्दू की अतिशय आत्मघाती उदारता का प्रमाण यह है कि उसने काशी विश्वनाथ आदि स्थानों पर बनी हुई मस्जिदों को निरस्त कर प्राचीन मन्दिरों की पुनर्प्रतिष्ठा तक नहीं की। जिस मुस्लिम समाज की आक्रामक वृत्ति ने खून की नदियाँ बहाकर, अबोध बच्चों को भालों पर उछालकर, स्त्रियों के नंगे जुलूस निकालकर, देश भर में आग एवं हत्या से आतंक मचाकर हमारी सदावत्सला भारतमाता के टुकड़े कर पाकिस्तान बना दिया, उसके निर्माण के लिये हिन्दू समाज को वही दोष दे सकता है जो स्वयं भारत को पुनः काटकर ईसाईस्तान बनाने का दुष्ट षड्यन्त्र रच रहा हो।

नागालैण्ड की रचना भी अंगरेज शासकों एवं ईसाई पादरियों की दुरभिसन्धि के कारण हुई। उसमें हिन्दुओं से तंग आने का प्रश्न ही कहाँ उठता है? पूरे ब्रिटिश शासन में और बाद में नेहरू शासन और इन्दिरा के शासनकाल में भी किसी हिन्दू प्रचारक को नागालैण्ड में पाँव रखने तक की अनुमति नहीं थी, और न आज तक कोई हिन्दू प्रचारक वहाँ है। वहाँ भारत से विद्रोह की सारी आग भड़काने का पूरा उत्तरदायित्व विदेशी पादरियों का ही है। लगभग डेढ़ मास पूर्व नागालैण्ड में दो हजार गैर-ईसाई नागाओं की (जिनके गले में क्रॉस नहीं था) एक पादरी की उपस्थिति में हत्या कर दी गयी। नागालैण्ड सरकार ने झूठा समाचार प्रसारित किया कि विद्रोही नागाओं ने 2000 नागरिकों को मार डाला। मेघालय के एक समाचार पत्र एवं कलकत्ता के एक समाचार पत्र ने सही तथ्य छापा कि जो नागा ईसाई बनने से इनकार करते रहे हैं उन्हें ही मारा गया।

अब मिजोरम में भी गैर-मिजो के नाम पर गैर-ईसाइयों (हिन्दुओं) की हत्याओं का क्रम जारी है। पादरियों को अपने पापों को दूसरों पर थोपने में कुछ लज्जा अनुभव होनी चाहिये।

प्रश्न : फादर बुल्के ने हिन्दी के लिये बहुत कुछ किया है....राम-कथा लिखकर फादर बुल्के ने भारतीय संस्कृति तथा भाषा की बड़ी सेवा की? (सत्यानन्द देवदास, पटना)

मदर टेरेसा और फादर बुल्के को कई बार राष्ट्रीय और प्रान्तीय पुरस्कार मिल चुका है। ये पुरस्कार उनकी निःस्वार्थ सेवा के लिये दिये गये हैं न कि उनके धर्मान्तरण कार्य के लिये। (निगा खड़िया)

उत्तर : किसी व्यक्ति के जीवन के कई पक्ष हो सकते हैं। साहित्य सेवा और समाज सेवा, धर्मनिष्ठा और देशनिष्ठा में अन्तर हो सकता है। अतः एक क्षेत्र

में किये गये पापों को ढकने के लिये दूसरे क्षेत्र का सुनहला पर्दा डालना न्यायोचित नहीं होगा। उदाहरणार्थ यदि कोई रावण के सीताहरण के पाप पर पर्दा डालने के लिये यह विसंगत तर्क दे कि वह चार वेद का ज्ञाता था तो बड़ा हास्यास्पद प्रतीत होगा। पादरी बुल्के की भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में सेवाओं का स्वतन्त्र मूल्यांकन होना चाहिये, धर्म-स्वातंत्र्य विधेयक के प्रसंग में उसकी चर्चा विषयांतर मात्र है। राम-कथा पर शोध के निष्कर्ष यदि राम और कृष्ण की संस्कृति का मूलोच्छेदन करने वाले हों तो इसे भारतीय संस्कृति की सेवा कैसे माना जा सकता है? आजकल की शिक्षा में यह बिल्कुल सामान्य सम्भावना है कि सत्य के दर्शन पर मोटा शोध प्रबंध लिखनेवाला स्वयं पहले दर्जे का झूठा व्यक्ति हो। श्री बुल्के ने रामकथा पर लेखनी तो उठायी है किन्तु श्रद्धा नहीं दर्शायी। वे पादरी एटकिन्स की तरह रामचरितमानस के प्रति समर्पित होकर पादरी के संकुचित धंधे से उपराम नहीं हुए। पुरस्कार और पदक कोई तर्क नहीं है जिससे किसी विषय को सिद्ध अथवा असिद्ध किया जा सके। तर्कशास्त्र में इसे तर्क-छल कहा जाता है। जैसे इन्दिरा गाँधी की भारतरत्न की सर्वोच्च उपाधि भी उसे आपात् काल के अत्याचारों से मुक्त सिद्ध नहीं कर सकती।

प्रश्न : फादर डेमियन ने मोलोकाय के कोढ़ियों के लिये अपने को समर्पित कर दिया तथा अपने को कोढ़ी बना दिया, मदर टेरेसा ने कलकत्ते के जराजीर्ण रोगियों एवं अनाथों को गले लगाया, फादर माक्सीमिलियन कोल्बे ने नाजी नजरबंदी शिविर के एक कैदी की जान बचाने के लिये अपने को होम कर दिया। इन ईसाई संतों का त्याग और प्रेम दूसरों को ईसा की ओर आकर्षित करता है। क्या वह प्रलोभन है या उत्तम मानव प्रेम? (सत्यानन्द देवदास)

उत्तर : निःस्वार्थ सेवा को सदा नमस्कार है और स्वार्थ-पूर्ति हेतु सेवा को बार-बार धिक्कार। फादर डेमियन ने प्रशान्त महासागर में स्थित हवाई द्वीप-समूह के मोलोकाय द्वीप के कोढ़ियों की सेवा अवश्य की। जितनी मात्रा में वह निष्काम थी उतनी मात्रा में मानवता उनकी ऋणी अवश्य रहेगी। किन्तु भारत के धर्म-स्वातंत्र्य विधेयक के विरोध में उनके एवं फादर माक्सीमिलियन के उदाहरणों की प्रसंगानुकूलता कुछ भी नहीं, क्योंकि भारत में ईसाई पादरी के क्रियाकलाप का उद्देश्य भिन्न होता है और उनके अपने पश्चिमी देश में भिन्न। अपने घर में सदस्यों को शिक्षा, भोजन, स्वास्थ्य की सुविधायें देना कर्तव्य होता है, दूसरों को निःस्वार्थ भावना से

सुविधायें देना सेवा कहलाता है तथा निर्धन एवं अभावग्रस्त लोगों को किसी राजनीतिक-कूटनीतिक उद्देश्य अथवा उनकी परम्परागत निष्ठा लूटने के लिये सुविधायें देना शोषण कहलाता है। यदि किसी भूखी शरणार्थी लड़की को भोजन का लोभ देकर उसका शीलहरण कर लिया जाय तो वह सेवा के स्थान पर व्यभिचार अथवा शोषण बन जायेगा।

फादर डेमियन जब हवाई द्वीपसमूह में सेवा करने गये तब वहाँ एक स्थानीय वनवासी जाति की महारानी का राज्य था। सन् 1881 में वहाँ की महारानी मोलोकाय में पादरी डेमियन से मिली तथा उसे सेवा के बदले स्वर्णपदक भी दिया किन्तु पादरी डेमियन के द्वारा वहाँ सेवा के माध्यम से जो धर्मान्तरण का कुचक्र चलाया गया उसके फलस्वरूप 1893 में वहाँ की रानी को अपदस्थ कर ईसाइयों का शासन स्थापित हो गया तथा 1899 में उसे अमरीका ने पूर्ण रूप से हड़प लिया। 1899 में वहाँ गोरे ईसाइयों का राज्य स्थापित हो जाने के बाद पादरी डेमियन स्वयं कुष्ठ रोग से मर गया।

उसकी तुलना में वाराणसी के प्रसिद्ध औघड़ सन्त भगवान राम द्वारा जो कुष्ठ आश्रम चल रहा है वहाँ की निःस्वार्थ सेवा एवं स्वामी जी के तंत्र-चमत्कार से अनेकों रोगी कुष्ठमुक्त होकर स्वस्थ नागरिक बन चुके हैं।

मदर टेरेसा की सेवा भी धर्मान्तरण के लिये ही है। उनके अपने ही वचनों से उनकी पोल खुल चुकी है।

जब भारत के संविधान रचना की चर्चा चली थी, उस समय ईसाइयों को मत-प्रचार का अधिकार देना चाहिए या नहीं, यह विषय सामने आया था। तब अपवाद रहित सभी सदस्यों का मत था कि, 'दुनिया के किसी भी देश के संविधान में इस प्रकार का प्रावधान नहीं है और आगे चलकर इससे खतरा खड़ा हो सकता है।' परन्तु एक प्रमुख कांग्रेसी सदस्य ने 'बेचारे इतनी छोटी संख्या में रहने वाले लोगों की प्रार्थना मान ली जाए', ऐसा कहा। तब लोगों ने उसको चुपचाप स्वीकार कर लिया। अब देखें ये छोटे-से बेचारे क्या गुल खिला रहे हैं। **—हो. वे. शेषाद्रि**

'राजनीति तो अन्ततोगत्वा राष्ट्र की सेवा के हेतु है। यदि हम राष्ट्र के मूल स्वरूप, इतिहास, संस्कृति और परम्पराओं को त्याग देते हैं, तो उस राजनीति का क्या लाभ?' **—पंडित दीनदयाल उपाध्याय**

धर्म-स्वातंत्र्य, अरुणाचल प्रदेश एवं विदेशी पादरी

संसद सदस्य श्री ओमप्रकाश त्यागी द्वारा लोकसभा में प्रस्तुत धर्म-स्वातंत्र्य विधेयक इतना निष्पक्ष एवं निर्दोष है कि किसी भी विवेकशील लोकतन्त्र प्रेमी नागरिक को स्वप्न में भी ऐसे विधेयक का विरोध नहीं करना चाहिए। किन्तु यह महान् आश्चर्य का विषय है कि देश के करोड़ों नागरिकों के हार्दिक समर्थन एवं राष्ट्र के प्रधानमन्त्री के उदार स्पष्टीकरण के उपरान्त भी केवल विदेशी पादरी ही इस विधेयक के विरुद्ध अनर्गल बातें बोल रहे हैं।

रांची एक्सप्रेस के दिनांक 14 जून के अंक में 'ईसाई धर्मनेताओं के विचार' शीर्षक समाचार में रांची के पादरी फादर बुल्के ने लगभग वही आरोप दुहराये हैं जो मदर टेरेसा ने प्रधानमन्त्री पर अपने पत्र दिनांक 26 मार्च, 1979 में लगाए थे और जिनका निष्पक्ष उत्तर प्रधानमन्त्री ने स्पष्ट शब्दों में दे दिया था।

प्रधानमन्त्री ने मदर टेरेसा को लिखा था, 'आपके सेवा कार्यों के लिए हम कृतज्ञ हो सकते हैं, किन्तु आपको सेवा के बहाने से किसी का धर्म लूटने का अधिकार नहीं दे सकते।'

श्री बुल्के ने भी कहा है, 'मैं 44 वर्षों से इस देश की सेवा कर रहा हूँ। अपनी मातृभूमि बेल्जियम से मेरा कोई सरोकार नहीं है। मैंने भारत की नागरिकता ग्रहण कर ली है....अन्य धर्मावलम्बियों को भी सेवाकार्य में हमारे साथ पवित्र प्रतिस्पर्धा करनी चाहिए।'

मदर टेरेसा और पादरी बुल्के दोनों विदेशी मिशन द्वारा सेवा का बड़ा ढिंढ़ोरा पीटते हैं, किन्तु उनके वचन में अहंकार की गन्ध और धर्मान्तरण के उद्देश्य छिपे हुए हैं। क्या उनकी सेवा शुद्ध, निष्काम सेवा है अथवा धर्मान्तरण के लिए मात्र चारा? सेवा सदा शुद्ध एवं निष्काम होनी चाहिए जिसमें न फल की इच्छा, न कर्म से आसक्ति और न कर्तापन का अहंकार होना चाहिए। अन्यथा सेवा मात्र शिकार फंसाने के लिए चारा, गुलाम बनाने हेतु प्रलोभन या धर्मान्तरण के लिए सौदेबाजी मात्र बनकर रह जाती है।

क्लिफ्फोर्ड मैंशर्दत (Clifford Manshardt) ने अपनी पुस्तक Christianity in a changing India के पृष्ठ 28 पर स्वयं स्वीकार किया है, 'We have offered inducement to men to accept our religion.'

अर्थात् 'हमने लोगों को हमारा धर्म स्वीकार करने के लिए प्रलोभन दिए हैं।'

किसी देश की सच्ची सेवा उसकी संस्कृति का संरक्षण एवं संवर्धन ही है क्योंकि संस्कृति ही राष्ट्र की आत्मा है। जब श्री बुल्के कहते हैं कि वह गत 44 वर्षों से भारत की सेवा कर रहे हैं तो प्रश्न उठता है क्या वह भारत देश की सेवा कर रहे हैं या भारतीय संस्कृति की अथवा दोनों की? भारत के स्वाधीनता संग्राम में किसी विदेशी पादरी का अथवा पादरी बुल्के का कोई योगदान नहीं रहा। केवल दीनबन्धु एण्ड्रूज जब स्वाधीनता संग्राम में योगदान देने लगे तब उन्होंने पादरी का संकुचित धंधा त्याग दिया।

भारतीयता को बेचने के लिए भारतीय नागरिकता ले लेना भारत की सेवा न होकर कुछ और ही हो जाता है। इसकी तुलना में मैक्समूलर, जैकोबी, श्लीगल, रोम्यॉं रोलाँ एवं इमर्सन जैसे पश्चिमी विद्वान, जिन्होंने अपने-अपने देश की नागरिकता भी नहीं छोड़ी, भारत के विषय में बड़े उत्तम ग्रंथ लिखते रहे और स्वयं ईसाई रहते हुए भी किसी भारतीय को ईसाई बनाने की चेष्टा नहीं की, वे भारत की अधिक बड़ी सेवा कर गए।

मदर टेरेसा, बम्बई के आर्कबिशप पिमेंटा और पादरी बुल्के बार-बार मिथ्या प्रचार कर रहे हैं कि अरुणाचल प्रदेश में ईसाइयों को सताया जा रहा है तथा चर्च जलाए जा रहे हैं।

मैं स्वयं गत 3 मास में दो बार अरुणाचल प्रदेश की यात्रा करके आया हूँ तथा स्वयं इस तथ्य का साक्षी हूँ कि वहाँ चर्च गिराने अथवा जलाने का समाचार बिल्कुल झूठा है। अरुणाचल में 20 प्रमुख जनजातियाँ रहती हैं। तिब्बत एवं भूटान के प्रभाव से पश्चिमी अरुणाचल की गोम्पा, खम्पा आदि जातियाँ बौद्ध धर्मावलम्बी हैं। मध्यवर्ती अरुणाचल की निमी और मिस्मी जातियाँ सूर्य और चन्द्रमा की उपासक हैं। पश्चिमी अरुणाचल की अका और नोक जातियाँ वैष्णव हैं।

नागालैण्ड के नागाओं को भारत के विरुद्ध विद्रोह के लिए भड़काने वाले पादरी माइकेल स्कॉट को जब भारत से निष्कासित कर दिया गया था तब कुछ समय के लिए वह इंग्लैण्ड में जाकर वहाँ से विद्रोही नागाओं का मार्गदर्शन करते रहे। बाद में वह वहाँ से भारत-बर्मा सीमा पर भारत की अन्तिम चौकी पाँचू (अरुणाचल प्रदेश) से दो मील हट कर बर्मा सीमा में डेरा जमा कर बैठ गये हैं। वहीं से वह नागालैण्ड के षड्यन्त्रों का मार्गदर्शन करते रहते हैं और अरुणाचल प्रदेश के

सीमावर्ती क्षेत्रों में अपने छल-बल, प्रलोभन एवं दलालों द्वारा धर्मान्तरण करते रहते हैं। तिराप जिले के चांग लाँग क्षेत्र में लगभग 300 नव-धर्मान्तरित लोग ईसाई पादरियों की चाल से तंग आकर स्वेच्छापूर्वक अपने परम्परागत आदिधर्म में लौट आए। उन्होंने अपने हाथों से जो पत्थरों को जोड़कर गिरजाघर बनाया था उसे ही उन्होंने बदलकर दोनी पोलो (सूर्य-चन्द्रमा) का मन्दिर बना दिया। इसमें न प्रशासन का कोई दोष है न उन वनवासियों का, न वहाँ के स्थानीय धर्म संरक्षण अधिनियम का। दोषों का दोष तो विदेशी पादरियों का है जो धोखे और प्रलोभन से निर्धनों का ईमान लूटते हैं और कुछ मछलियों के जाल से निकल भागने पर हाय-तौबा मचाते हैं।

श्री बुल्के कहते हैं, 'आदिवासियों को लीजिये, इनमें कितने अन्धविश्वास थे, हमने इन्हें इनसे मुक्त किया। हम इन्हें मनुष्य के रूप में देखते हैं। इनसे कोई भेद-भाव नहीं बरतते। हम इन्हें उत्तम आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक आधार देते हैं। फिर मेरे लिए यह दुःख की बात है कि आज लोग हम पर तरह-तरह के आक्षेप लगाते हैं।'

यदि पादरी महोदय की नीयत साफ है तो उन्हें न धर्म-स्वातंत्र्य विधेयक से भय होना चाहिए और न लोगों के आक्षेपों का दुःख।

मुहम्मद अली जिन्ना से एक बार किसी ने पूछा, पाकिस्तान का पहला बीज कब बोया गया? तो जिन्ना ने उत्तर दिया, 'जब हिन्दुस्तान के पहले हिन्दू को मुसलमान बनाया गया।'

—हो. वे. शेषाद्रि

ह्न ह्न ह्न

हमीद दलवाई ने अपनी पुस्तक Muslim politics in secular India में लिखा है—मुसलमान, जो उन पर अत्याचार हो रहा है ऐसा नारा लगाते हैं उनमें से बहुतों से मिला कि आप पर कौन-सा अत्याचार होता है, चूंकि हमीद दलवाई मुसलमान थे अतः स्पष्ट रूप से बताया कि हिन्दुओं का बहुसंख्यक होना ही मुसलमानों पर, इस्लाम पर सबसे बड़ा अत्याचार है जिसके कारण देश का इतना बड़ा हिस्सा मुस्लिम राष्ट्र नहीं बन सका। जब तक हिन्दू समाज बहुसंख्यक रहेगा तब तक हम इस देश को मुस्लिम राष्ट्र नहीं बना सकते। यही हम पर, इस्लाम पर सबसे बड़ा अत्याचार है।

मदर टेरेसा के स्वागत में विवेक से काम लें

मदर टेरेसा के स्वागत में विवेक से काम लें। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि मदर टेरेसा एक ईसाई भिक्षुणी हैं जो विदेश से भारत में आकर कलकत्ता में एक अनाथ आश्रम एवं वनिताश्रम चला कर सेवा के इस जनहितकारी प्रकल्प द्वारा मानव की करुणा को जगाने वाले हृदयस्पर्शी माध्यम द्वारा ईसाईयत के प्रचार-प्रसार के काम में लगी हुई हैं।

विगत वर्ष (1979 में) संसद सदस्य श्री ओमप्रकाश त्यागी ने संसद में धर्म-स्वातंत्र्य विधेयक प्रस्तुत किया था, जिसके अनुसार छल, छद्म, भय अथवा प्रलोभन द्वारा किसी का धर्म छीनने को अपराध घोषित करने का प्रावधान था। तब मदर टेरेसा ने तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाई को जो पत्र लिखा था वह उनके सेवा कार्यों के ऊपर का लुभावना पर्दा उठा कर उनकी वास्तविक भावना को नंगा कर देने वाला है। उन्होंने लिखा, 'मैं निश्चित रूप से ईसा के नाम पर ही सेवा कर रही हूँ। लोगों को ईसा का प्रेम सन्देश देने आई हूँ। लोगों को ईसाई बनाने पर यदि प्रतिबन्ध लगाया जाता है तो हम इसे कभी सहन नहीं कर सकेंगे। हम विद्रोह करेंगे।' उन्होंने श्री मोरारजी देसाई पर व्यक्तिगत आक्षेप करते हुए लिखा कि, 'तुम बहुत बूढ़े हो गये हो। कुछ वर्षों के बाद तुम्हें मर कर खुदा के पास इस चीज का जवाब देना पड़ेगा कि तुमने ईसाईयत के प्रसार पर प्रतिबन्ध क्यों लगाया।' उन्होंने मोरारजी देसाई को नरक जाने का शाप भी दिया। श्री मोरारजी देसाई ने बड़े संयम एवं सज्जनता से उत्तर दिया कि 'मैं आपकी सेवा भावना की प्रशंसा कर सकता हूँ किन्तु सेवा के बहाने किसी का धर्म लूटने का अधिकार नहीं दे सकता।'

कलकत्ता में मदर टेरेसा के आश्रम में पूरा ईसाई पन्थ का वातावरण है। ईसा के चित्र टँगे हैं। बाइबिल पढ़ाई जाती है। ईसाई प्रार्थनाएँ होती हैं और अभागे हिन्दू बच्चे-बच्चियों को, जिनके माता-पिता तथा धन-सम्पत्ति पहले ही लुटे हुए हैं, उनसे भोजन अथवा सेवा के नाम पर उनका प्राणप्यारा धर्म भी लूट लिया जाता है। यदि यही सेवा की परिभाषा है तो ठगी और धर्म का व्यभिचार किसे कहा जायगा?

अभी दो सप्ताह पूर्व रांची में ही रोमन कैथोलिक मिशन के बूढ़े पादरी एण्ड्रू थोटंक्ल को पुलिस ने उनकी ऐसी ही ठग-विद्या के कारण जेल में ठूँस दिया है। वह

भी सन् 1974 से पादरी के चोगे को ही भगवे रंग में रंग कर हिन्दू संन्यासी का छद्म नाम स्वामी नरेन्द्रानन्द रख कर शत-प्रतिशत हिन्दू बस्ती हेसल में रह कर पलामू, भोजपुर एवं छोटानागपुर के गरीब ब्राह्मण बच्चों को अपने मन्दिरनुमा दिव्य ज्योति आश्रम में रख कर उन्हें निःशुल्क शिक्षा एवं भोजन-वस्त्र की सेवा देकर उनका प्राणप्यारा धर्म लूटने का धन्धा चला रहे थे। मदर टेरेसा का कार्य एवं सभी ईसाई पादरियों का कार्य एक ही उद्देश्य से चल रहा है। वे 20 वीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक सारे विश्व को प्रभु ईसा के चरणों में लाने का स्वप्न देख रहे हैं। एशिया का हृदय भारत है और भारत का सबसे दुर्बल क्षेत्र—वनवासी, हरिजन, विधवा, अनाथ वर्ग है। वे योजनापूर्वक नागालैण्ड से लेकर केरल तक, कम से कम 30 प्रतिशत जनता को ईसाई बनाकर ईसाईस्तान बनाने का षड्यन्त्र रच रहे हैं। उनका तर्क है कि जिस भारत में 23 प्रतिशत मुसलमान खंजर की नोक पर, भारत को काटकर पाकिस्तान ले सकते हैं, वहाँ हम 30 प्रतिशत ईसाई, जिनके पीछे संसार के 76 ईसाई राष्ट्र खड़े हैं, पोप का आशीर्वाद, इंग्लैण्ड की कूटनीति, अमरीका का धन एवं बेल्जियम के पादरियों की सेना साथ है, वे ईसाईस्तान क्यों नहीं ले सकते? अतः ईसाइयों की सारी सेवा भारतमाता की हत्या के लिए षड्यन्त्र मात्र ही है।

भारतमाता के उन सभी सच्चे सपूतों को, जिन्हें भारत एवं भारतीयता से तनिक भी प्रेम है और जो भारतमाता की विडम्बना, विखण्डना या हत्या कभी नहीं चाहते, उन्हें विदेशी पादरियों के सेवा वाले कृत्रिम मुखौटों से भ्रमित न होते हुए, विवेक से काम लेना चाहिए तथा धिक्कार योग्य व्यक्तियों का सत्कार कर अपनी जड़ता, मूढ़ता एवं राष्ट्र के प्रति अपराधपूर्ण उपेक्षा का भोंडा प्रदर्शन नहीं करना चाहिये।

धर्म जीवन का वह अमर प्रकाश है जो लड़खड़ाती हुई दुर्बल मानवता के लिए कल्याणकारी मार्गदर्शक ज्योति स्तम्भ है। अतः किसी सरल व्यक्ति को फुसलाकर धर्मच्युत करना सारी मानवता को कर्तव्य भ्रष्ट करने के समान महापाप है।

—प्रो. ओबराय

स्वतंत्रता का मूल्य शून्य है, यदि राष्ट्रीय जीवन का हर क्षेत्र आध्यात्मिकता के स्पंदन और हिन्दुत्व के आदर्शों से विहीन है।

—डा. केशवराव बलीराम हेडगेवार

श्री मारखम एवं भारतीय संस्कृति

दैनिक प्रदीप दिनांक 21 जुलाई '66 में एवं कुछ अन्य समाचार पत्रों में रांची विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री ए.एम. मारखम के भारतीय कला संबंधी विचार प्रकाशित हुए। यूनियन क्लब हॉल, रांची में आयोजित कला प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए उन्होंने कहा कि भारतीय कला विश्व कला की जननी है। यदि ये विचार वास्तव में श्री मारखम की आन्तरिक निष्ठा को प्रकट करते हैं तो अभिनन्दनीय हैं। किन्तु श्री मारखम की कथनी और करनी में आकाश-पाताल का अन्तर है।

1. उक्त भाषण में उन्होंने कहा कि विश्व भारतीय संस्कृति का ऋणी है। यदि सचमुच उनकी ऐसी निष्ठा है तो वे स्वयं भारत में पिछले 30 वर्षों से रहते हुए, भारत का अन्न-जल खाते, पीते हुए, भारतीय संस्कृति के भक्त क्यों नहीं बने? भारत के सांस्कृतिक महापुरुष हैं—राम और कृष्ण, भीम और अर्जुन, व्यास और वाल्मीकि। क्या श्री मारखम इन भारतीय सांस्कृतिक महापुरुषों को अपना आदर्श मानते हैं? स्पष्ट है कि श्री मारखम स्वयं आयरलैंड से आने वाले एक विदेशी पादरी हैं जो विगत 30 वर्षों से लगातार ब्रिटिश साम्राज्य के हस्तक बनकर हजारों-लाखों भारतीयों का ईमान लूटते रहे। भारत के बेटों को राम और कृष्ण के आदर्शों से उखाड़कर ईसा और मूसा का आदर्श सिखाते रहे। निश्चय ही ईसा-मूसा, लूकस या लूथर भारत के सांस्कृतिक महापुरुष कभी नहीं हो सकते।

2. भारतीय संस्कृति के भक्त को भारतीय महाकाव्य (National Epics) में एक जीवंत निष्ठा होनी चाहिए। मनु से महात्मा गाँधी तक, रामचन्द्र से रमण महर्षि तक एवं जेमिनी से जवाहरलाल तक सभी विचारकों का एक मत है कि भारत के राष्ट्रीय महाकाव्य रामायण और महाभारत ही हो सकते हैं। क्या भारतीय संस्कृति की दुहाई देने वाले श्री मारखम ने भारत के इन राष्ट्रीय महाकाव्यों से जीवन की प्रेरणा ग्रहण की? वास्तव में श्री मारखम स्वयं भारतीयों की रामायण-महाभारत से निष्ठा उखाड़ने का कार्य जीवन भर करते रहे। निस्संदेह बाइबिल और कुरान भारत के राष्ट्रीय महाकाव्य नहीं हो सकते।

3. इसी प्रकार श्री मारखम भारत के कौन से राष्ट्रीय महापर्व मनाते हैं? भारतीय दर्शन में उन्हें कितनी निष्ठा है? भारतीय वेश-भूषा के प्रति उन्होंने क्या आत्मीयता दिखाई है? भारतीय पद्धति से अभिवादन उन्होंने कब प्रचारित किया है? भारतीय संस्कृति के आदर्शों की रक्षा के लिए उन्होंने जीवन भर कब त्याग-तपस्या की है? इन सब सीधे प्रश्नों के उत्तर में श्री मारखम भारतीय संस्कृति के द्वेषी एवं संहारक ही प्रमाणित होंगे।

4. भारतीय संस्कृति का पूज्यतम मानचिह्न है—गाय। गोखले, गाँधी, तिलक, मालवीय, राजेन्द्र बाबू और विनोबा सभी ने गोरक्षा को स्वराज्य का प्रथम उद्देश्य घोषित किया था। श्री मारखम जी अपने भूतपूर्व कॉलेज (St. Colombus College, Hazaribagh) में सरस्वती पूजा पर प्रतिबंध लगा सकते हैं, सरस्वती पूजा की मांग करने वाले विद्यार्थियों को वस्तुतः पांव के नीचे कुचल कर निकाल सकते हैं और सरस्वती पूजा वाले दिन कॉलेज के मुसलमान विद्यार्थियों को गो-हत्या करने की खुली छुट्टी की बात कह सकते हैं। वे किस मुख से भारतीय संस्कृति की चर्चा करने का भी अधिकार रखते हैं?

5. उन्होंने कहा कि विश्व भारतीय संस्कृति का ऋणी है। क्या वे स्वयं भारतीय संस्कृति के ऋणी हैं? क्या विश्व में वे, उनका परिवार, उनका मिशन और उनका देश सम्मिलित नहीं है? क्या भारत के प्रति श्रद्धापूर्वक कृतज्ञ रहने के स्थान पर कृतघ्न बनकर ही ऋण चुकाया जा सकता है?

6. उन्होंने उक्त भाषण में कहा कि भारतीय ऋषियों ने अपनी योग साधना से भगवान की प्राप्ति की एवं अहिंसा, सेवा, दया तथा नैतिक आचरण का पाठ पढ़ाया। यदि यह बात सत्य है कि भारतीय ऋषियों ने योग साधना से भगवान की प्राप्ति की तो श्री मारखम भारतीय ऋषियों की संतानों को ऋषियों के बताये हुए पवित्र साधना के मार्ग से क्यों भ्रष्ट करते रहे हैं? यदि भारतीय ऋषियों के मार्ग से भगवान की प्राप्ति होती है तो भारतीय सन्तानों को किसी अन्य मार्ग की जरूरत क्यों है? एक ओर श्री मारखम यह कह रहे हैं कि भारतीय ऋषियों ने भगवान की प्राप्ति की थी, दूसरी ओर वे यह भी घोषित कर रहे हैं कि बिना ईसा की शरण में गये भगवान की प्राप्ति नहीं हो सकती। इन दोनों परस्पर विरोधी कथनों से प्रकट है कि श्री मारखम बौद्धिक ईमानदारी से काम नहीं ले रहे हैं और उनकी कथनी और करनी में बहुत बड़ा विरोध है।

7. भारतीय कला का बखान करते हुए उन्होंने कहा कि विश्व के अनेक नगरों में जो पुराने मंदिर, मस्जिद और गिरजाघर मिले हैं उन पर भारतीय वास्तुकला की अमिट छाप दिखाई पड़ रही है। वास्तव में भारतीय कला के स्वर्णिम

काल में भारतीय कलाकारों ने समस्त दक्षिण-पूर्व एशिया, समस्त उत्तर एवं मध्य एशिया, मध्य-पूर्व एवं यूरोप, अमरीका तक भारतीय कला के संदेश को विशाल भवनों तथा गगनचुम्बी मंदिरों इत्यादि के माध्यम से विश्व के कोने-कोने में अवश्य पहुँचाया किन्तु आधे भूमण्डल की यात्रा तथा भारतीय कला के श्रद्धापूरित अध्ययन के उपरान्त भी मुझे कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिला, जहाँ भारतीय कलाकारों ने विदेशों में जाकर मस्जिदों तथा गिरजाघरों का निर्माण कर भारतीय वास्तुकला का आदर्श प्रस्तुत किया हो। भारतीय कला भारतीय संस्कृति का मौन-मुखर संदेश देती है। उसमें भारत की आत्मा का संगीत है। राम और कृष्ण, मनु और याज्ञवल्क्य, पराशर और अंगिरा का अमर संदेश है। उसमें श्री मारखम के कल्पनालोक के गिरजाघर नहीं हैं क्योंकि उनकी रचना का मूल भारत के सांस्कृतिक धरातल में अंकुरित-पल्लवित, पुष्पित एवं फलित नहीं हुआ।

श्री मारखम को चाहिए कि भारत एवं भारतीयता पर बोलने से पहले भारतीय संस्कृति का अमृत आकंठ पान करके तन-मन-प्राण से भारतीयता के रंग में रंग जावें। तभी उनके वचन का कुछ प्रभाव होगा।

'जब तब इस्लाम धर्म की लहर भारत में नहीं आई थी, तब तक यहाँ के लोग यह जानते तक न थे कि धार्मिक अत्याचार किसे कहते हैं। जब विधर्मी विदेशियों द्वारा हिन्दुओं पर अत्याचार हुआ, तभी उन्होंने इसे प्रथम बार अनुभव किया।...संसार के सामने प्रचारक धर्म के रूप में सर्वप्रथम बौद्धधर्म ही आया और उस युग की सारी सभ्य जातियों में उसका प्रचार किया गया, पर उस धर्म के नाम पर कहीं एक बूंद रक्त नहीं गिराया गया।'

—स्वामी विवेकानन्द

ह ह ह

जो राष्ट्र अपने इतिहास से तथा भूगोल से मुंह मोड़ता है, उस राष्ट्र का विनाश अटल है।

—श्री वी.पी. मेनन

ईसाइयों द्वारा दुष्प्रचार

1. विदेशों से भारत आने वाले लोग भारत की कल्पना का जो चित्र मन में लेकर आते हैं, वैसा भारत में प्रत्यक्ष न देखकर, कई बार विपरीत दृश्य देखकर, वे निराश हो जाते हैं।
2. भारत के भीतर हम जो भारत की प्रतिष्ठा बनायेंगे, विदेशों में भी भारत की प्रतिष्ठा उसके अनुसार बनेगी। अतः भारत की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा उसकी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा पर निर्भर करती है।
3. प्रत्येक प्रवासी भारतीय, जो विदेशों में रह रहा है, भारतीय संस्कृति का अशासकीय राजदूत है। उसका उच्च नैतिक आचरण भारत का मस्तक ऊंचा करेगा और उसका पवित्र जीवन सारे विश्व को प्रकाश से भर देगा।
4. कुछ देश भारत की आन्तरिक समस्याओं को अपने प्रेस एवं रेडियो पर बढ़ा-चढ़ाकर बताते हैं। ईरान व मध्यपूर्व के देश भारत में साम्प्रदायिक दंगों के मामूली समाचारों को खूब फैलाकर, अतिशयोक्ति की भाषा में प्रसारित करते हैं।
5. प्रत्येक देश की अपनी कुछ समस्यायें होती हैं। प्रत्येक देश की एक अन्तर्राष्ट्रीय मुखाकृति होती है जो अधिकांशतः दूसरों को दिखाने के लिये होती है। उस देश की एक भीतरी मुखाकृति रहती है जो दिखावटी मुखाकृति की अपेक्षा कम आकर्षक होती है। प्रत्येक देश के कुछ दुर्भाग्यपूर्ण एवं अप्रिय पक्ष भी होते हैं। किन्तु उस देश का मूल्यांकन करते समय उन गंदे तथ्यों को ही प्रमुखता से प्रदर्शित करना—सत्य के प्रति, इतिहास के प्रति एवं उस देश के प्रति अन्याय है। भारत के विषय में द्वेष रखने वाली ब्रिटिश महिला केथ्रेराइन मेमो की आलोचनापूर्ण पुस्तक के विषय में गाँधीजी ने लिखा था—उसने भारत की गंदी नालियों के भीतर से झांका था भारत को।
6. अमरीका में न्यूयार्क राज्य के लाक पोर्ट नगर में जिस घर में मुझे अतिथि रूप में ठहरने का अवसर प्राप्त हुआ उस घर के स्वामी रेव उल्लयू ई. डायकलर वहाँ के प्रथम बैरिस्टर चर्च के मिनिस्टर (पादरी) थे। उनकी पत्नी

श्रीमती मारथा डायकलर एक दिन रविवार के दिन चर्च से आते ही बोली, देखिये प्रो. ओबराय, आज हमने सण्डे बाइबिल स्कूल में Aid India Programme (भारत की सहायता का कार्यक्रम) चालू किया है। आज मैंने 1000 भारतीय बच्चों के लिये दूध संग्रह कर लिया है। मैंने पूछा, यह कार्यक्रम क्या है तथा बच्चों के लिये दूध कहाँ है? उसने कहा, हमने अमरीकन चर्चों की ओर से भारत की सहायता के लिये यह कार्यक्रम लिया है। हमने सारे अमरीका में सभी स्कूल-कॉलेजों, चर्चों, क्लबों में यह कार्यक्रम प्रारम्भ किया है। भारत के विषय में हमारे पास कुछ चित्र हैं। हम इन्हें Sunday Bible स्कूल में बच्चों को दिखाते हैं। अमरीकन बच्चे इन अभागे एवं अभावग्रस्त भारतीय बच्चों के चित्र देखकर उनकी सहायतार्थ सहयोग देते हैं और अमरीकन बच्चों में भारत के प्रति एक नकारात्मक छवि निर्माण होती है।

ये चित्र रेलवे प्लेटफार्म से, झुग्गी-झोंपड़ियों से, गंदी बस्तियों से संगृहीत किये जाते हैं और उन्हें ही बहुत बढ़ा-चढ़ाकर प्रसारित किया जाता है जो नितान्त अनुचित है, दुर्भाग्यपूर्ण है, षड्यंत्र से प्रेरित है।

हिन्दुओं ने ईसा के इन चेलों का क्या बिगाड़ा है कि वे प्रत्येक ईसाई बच्चे को हिन्दुओं को 'दुष्ट-पतित' एवं 'पृथ्वी के सबसे भयंकर राक्षस' कहना सिखलाते हैं। यहाँ विद्यालयों में रविवारीय शिक्षा का अनिवार्य अंग बन गया है कि उसमें बच्चों को प्रत्येक गैर-ईसाई से विशेषकर हिन्दुओं से घृणा सिखाई जाती है ताकि वे अपने बाल्यकाल से ही इन ईसाई प्रचारकों को चन्दा देना सीख लें।

—स्वामी विवेकानन्द

सन् 1954 में हमारे देश में जस्टिस नियोगी कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि उन्हें अपनी पड़ताल और साक्षियों में एक भी ऐसा धर्मान्तरित ईसाई नहीं मिला जो बिना किसी लालच-लोभ की प्रेरणा, ईसाई बना हो।

धर्मान्तरण, अपहरण एवं चर्बी काण्ड

धर्मान्तरण

आपने अपने प्रताप (इण्डिया) के सम्पादकीय में दिनांक 20-26 अगस्त '83 में एक तथ्यहीन एवं घिनौना आरोप लगाया है। आजकल कुछ राजनीतिक पार्टियाँ अपनी कुछ संस्थाओं द्वारा धर्मान्तरण के खिलाफ नारा लगा-लगा कर अच्छा धन कमा रही हैं और कुछ व्यापारी इनका भरपूर लाभ इठा रहे हैं। ये संस्थाएं दिन-प्रतिदिन फलती-फूलती जा रही हैं। विश्व हिन्दू परिषद् भी एक ऐसी ही संस्था है। वास्तव में विश्व हिन्दू परिषद् के निम्नलिखित संस्थापक मण्डल में न संघ का एकाधिकार था न ही किसी राजनीतिक पार्टी का और न किसी पूँजीपति का।

1. चारों पीठ के शंकराचार्य
2. स्वामी चिन्मयानन्दजी
3. डॉ. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी
4. मास्टर तारासिंह
5. श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर
6. सन्त तुकड़ो जी महाराज
7. श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार
8. डॉ. सी. पी. रामास्वामी अय्यर
9. पूज्य दलाई लामा
10. जैन मुनि सुशील कुमारजी
11. स्वामी सत्यमित्रानन्दजी

दुर्भाग्य से आप धर्मान्तरण की घटनाओं को न जाँचते हैं तथा न उसकी गंभीरता को समझते हैं। धर्मान्तरण के कारण ही भारतमाता का दारुण विभाजन हुआ। धर्मान्तरण के कारण ही नागालैण्ड, मिजोरम, मेघालय, गोआ, पांडिचेरी ईसाई बहुल क्षेत्र बन गये हैं जहाँ हिन्दू का सम्मानपूर्वक जीना अत्यन्त कठिन बन गया है। धर्मान्तरण द्वारा ही बंगाल के चार जिले तथा बिहार के तीन जिले, असम के तीन जिले, उत्तर प्रदेश के तीन जिले तथा केरल के तीन जिले मुस्लिम बहुल बन रहे हैं। देश के 24 अन्य जिलों में हिन्दू अल्प संख्या के कगार पर हैं। इतिहास की स्पष्ट चेतावनी है कि जहाँ हिन्दू घटा वहाँ हिन्दुस्तान मिटा; उस चेतावनी के प्रति आप जैसे प्रतिबद्ध पत्रकार आँख मूँद कर भोले बनने का नाटक

कर रहे हैं तथा विश्व हिन्दू परिषद् राष्ट्रहित में देश को इस संकट के प्रति जागरूक कर रही है।

धर्मान्तरण के नारे पर धन कमाने वाले को धिक्कार !

क्या आपने सिमडेगा में अभी हाल ही में धर्मान्तरण की आँधी का आँखों देखा हाल जानने की कोई चेष्टा की ? मैंने स्वयं उस रूखे क्षेत्र में घूम-घूमकर तथ्य एकत्र किए हैं तथा देश के प्रति कर्तव्यभावना से जनता को सूचना दी। यदि धर्मान्तरण का नारा लगाकर विश्व हिन्दू परिषद् ने या मैंने किसी से धन माँगा या धन कमाया हो तो कोई माई का लाल अपने कलेजे पर हाथ रखकर तथ्यों सहित सामने आवे।

विश्व हिन्दू परिषद् न व्यापारी के चंगुल में न मठाधीश के

विश्व हिन्दू परिषद् किसी व्यापारी के चंगुल में न पहले कभी थी न आज है और न आगे रहना चाहती है। व्यापारी भी हिन्दू समाज के अंग के नाते नम्रतापूर्वक यदि कुछ सेवा देना चाहें तो सेवा के द्वार सभी के लिए खुले हैं। किन्तु कोई यह न समझे कि संस्था उसके चंगुल में है या उसकी क्रीतदास बनकर कार्य करेगी। विश्व हिन्दू परिषद् के अधिकांश कार्यकर्ता मध्यम एवं निम्न मध्य वर्ग के हैं। वे अपने सीमित साधनों से संस्था का सदस्यता शुल्क देते हैं। विश्व हिन्दू परिषद् के रांची जिला अध्यक्ष के नाते मैं दावे से कह सकता हूँ कि हमारे जिले के कोष एवं प्रदेश कोष में अर्थ साधन का नितान्त अभाव है। 4-5 मास से पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं को मासिक निर्वाह राशि भी नहीं मिल सकी है। कौन पापी व्यापारियों से पैसा ठगकर फल-फूल रहा है यदि आपके पास सत्य का बल हो, आप जनता के हित में यह स्पष्ट घोषणा करें।

मठाधीशों का धन ?

मठाधीशों का धन सार्वजनिक हित में लगे यह हमारा, विश्व हिन्दू परिषद् का निश्चित मत है। हम मठाधीशों के बड़े-बड़े सम्मेलनों में यह स्पष्ट घोषणा करते हैं कि यदि हिन्दू समाज ही अल्पमत हो गया तो मठाधीशों को कौन टिकने देगा? भगवान राम ने एक कुत्ते को भी न्याय दिया। इस कथा का मर्म सब मठाधीशों को समझाया जाता है कि जो जनता के दान पर केवल अपना ऐश्वर्य साधन करते हैं वे अगले जन्म में कुत्ते की योनि प्राप्त करते हैं। ढोंग सदा बुरा है चाहे धर्म का आडम्बर कर समाज को ठगा जाय, चाहे समाज हित का झूठा ढोंग कर किसी चरित्रवान व्यक्ति या पवित्र संस्था पर झूठा आरोप लगाया जाय। विश्व हिन्दू परिषद् विश्व भर के हिन्दुओं का हित साधन करती है, किसी पूंजीपति या मठाधीश का हितरक्षण बिल्कुल नहीं करती।

कोई हिन्दू अछूत नहीं

आपने लिखा है—'रांची में एक विद्वान हैं जो अपने आपको हिन्दू धर्म का रक्षक मानते हैं लेकिन ये ही जनाब जब आपात्काल में जेल में बंद थे तो साथी कैदियों की तरह शौचालय की सफाई करने को तैयार नहीं हुए थे, क्योंकि वे इस काम को अछूतों का काम समझते थे। क्या उनसे हिन्दुओं का उद्धार संभव है? मेरे विचार से नहीं।' न जाने आपका संकेत किस व्यक्ति की ओर है। मैं विद्वान तो नहीं हूँ मैं अपने को हिन्दू धर्म का रक्षक न मानकर एक तुच्छ सेवक मानता हूँ। आपात्काल में जेल में शौचालय साफ करने की घटना तो मुझे पूरी स्मरण नहीं है, किन्तु कुछ बड़े झगड़ालु परस्पर ईर्ष्यालु, मछली के टुकड़ों पर मार-पीट करने वाले घटिया राजनीतिक लोगों ने एकादशी के दिन शौचालय साफ करने का ढोंग रचा। मेरे उपवास एवं अन्य वार्ड में सत्संग के कारण उस ढोंग में भाग लेना संभव ही नहीं था। मैं तो विगत 40-42 वर्षों से हरिजनों के संग रहने, उठने-बैठने, सत्संग करने एवं प्रसाद पाने का अभ्यासी हूँ। रांची में रविदास जयन्ती समारोह में विगत 18-20 वर्षों से लगातार मेरा शरीर सेवा एवं सहयोग में सदा अग्रसर रहता रहा है। हरिजन मुहल्ला, डोरण्डा में, हरिजन टोली बी. आई. टी. में सबसे अधिक लोकप्रिय सेवक मेरा शरीर ही है। संस्कृति विहार में विगत कई वर्षों से एक हरिजन आदेशपाल के हाथ का बना भोजन-पानी मैं सहर्ष ग्रहण करता हूँ तथा संस्था में आने वाले संतों-महात्माओं-अतिथियों को भी भेंट करता हूँ। मैं कभी भी हिन्दू हिन्दू में भेद नहीं मानता। वैज्ञानिक छुआछूत को डॉक्टर भी मानते हैं किन्तु रूढ़िगत-छुआछूत एक सामाजिक अपराध है।

हिन्दू बालिका का अपहरण

अपनी पत्रिका के पृष्ठ 9 पर आपने लिखा कि 'रांची के कुछ व्यापारी, जो तथाकथित साम्प्रदायिक संगठनों से जुड़े हुए हैं और उनका लगाव चर्बी काण्ड के अभियुक्तों से रहा है, ने एक घिनौनी चाल चली। साम्प्रदायिक संगठनों के नेताओं ने एक आई. ए. एस. अफसर की एक लड़की का मामला उठाने का प्रयास किया जो अपने मन से प्रेमी के साथ रहना चाहती है। वास्तव में किसी पत्रकार की चाल इससे अधिक घृणित या कुत्सित नहीं हो सकती कि वह बिना किसी तथ्य या प्रमाण के अपने मन के आरोप, अपशब्द किसी व्यक्ति या संगठन पर बरसाना प्रारम्भ कर दे। मैं दृढ़तापूर्वक पूछता हूँ—

1. वह कौन-सा आई. ए. एस. अफसर है?
2. उसकी पुत्री का नाम, अवस्था और पता क्या है?
3. उसके प्रेमी का क्या नाम, अवस्था और पता है?
4. पुलिस की प्राथमिकी और न्यायालय का केस क्या कहता है?
5. उसके इश्क का आपके पास क्या प्रमाण है अथवा जानकारी है?

ऐसे लेखन से लगता है कि पत्रकार की मिलीभगत से ही अवयस्क हिन्दू बालिका का मुस्लिम गुंडों द्वारा अपहरण हुआ होगा। गुंडे तो स्वयं को अपराधी मानकर भागे हुए हैं किन्तु उसके पत्रकार वकील बड़ी निर्लज्जता से उसकी बेकार वकालत कर रहे हैं। प्रशासन को ऐसे पत्रकार को भी हिरासत में लेना चाहिए। साम्प्रदायिक कौन और राष्ट्रीय कौन—इस विषय में भी पत्रकार महोदय भ्रमित हैं।

साम्प्रदायिक कौन ?

जो इस देश का मूल पुत्रवत् समाज है उसे साम्प्रदायिक कहने वाले और देश के विभाजन का षड्यन्त्र रचने वाले सम्प्रदायों को राष्ट्रीय मानने वाले पत्रकारों से भारतमाता की रही-सही प्रतिष्ठा भी नष्ट हो जायेगी। यदि इन्हें हिन्दू साम्प्रदायिक प्रतीत होता है तो वे पाकिस्तान, बांग्लादेश, आजाद काश्मीर या अफगानिस्तान में जाकर प्रताप (इण्डिया) का प्रकाशन करें। संभवतः हिन्दुस्तान में हिन्दू भावना से चिढ़ने वालों का उचित स्थान अहिन्दू-देशों में ही है।

चर्बी काण्ड ?

चर्बी काँड को लेकर सदस्यों में विचार-स्वातंत्र्य हो सकता है जो स्वस्थ लोकतन्त्र का लक्षण है। किन्तु विश्व हिन्दू परिषद् के सदस्यों में इस काण्ड को लेकर कोई फूट नहीं तथा कोई भी खुलकर एक-दूसरे की आलोचना नहीं कर रहे। यह भ्रामक एवं निराधार प्रचार किसी कुत्सित दुराग्रह का ही लक्षण है।

कौन बदनाम ?

आपने लिखा है कि विश्व हिन्दू परिषद् का कार्यालय गुप्तरूप से अपर बाजार में है, एक बदनाम संस्था है। आपके इस घृणित आरोप का क्या आधार है? किस संस्था के बम्बई कार्यालय में करोड़ों रुपये के वित्तीय घोटाले का पर्दाफाश हो चुका है। सरकार ने कोई कार्यवाही नहीं की, किसी समाचार पत्र ने कुछ छापा नहीं और आप संस्था के चरित्रहनन की कुचेष्टा कर रहे हैं। आप जैसे पत्रकार को बड़ा संभल कर लेखनी चलानी चाहिए।

और सब धर्म आने-जाने वाले हैं, हिन्दू धर्म ही शाश्वत धर्म है।

—रामकृष्ण परमहंस

ह ह ह

हिन्दू धर्म भारत माता के प्रति शत प्रतिशत भक्ति का धर्म है। धर्म अथवा राजनीति के माध्यम से राष्ट्र वाह्य श्रद्धायें राष्ट्र के प्रति द्रोह का मार्ग प्रशस्त कर देती है। **—प्रो. ओबराय**

विदेशी पादरी निष्कासन महाअभियान

(भारत भर की सभी देशभक्त संस्थाओं का ऐतिहासिक राष्ट्रीय आन्दोलन)

अध्यक्ष : पूज्य स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती
(कमड़े आश्रम, ग्राम कमड़े, रांची)

संपर्क कार्यालय : संस्कृति विहार
(Academy of Indian Culture)
महावीर चौक, अपर बाजार (रांची)

'प्रत्येक देश का स्वाभिमान ही उसका जीवन होता है। विदेशी पादरियों द्वारा भारत की हजारों पुत्रियों को पापाचार, व्यभिचार एवं दासवृत्ति में विदेशों में बेचने की घटना भारत के आत्म-सम्मान के लिए एक भयंकरतम आघात है तथा भारत में धर्म के नाम पर विदेशी राजनीतिक षड्यन्त्र रचने वाले विदेशी पादरियों का यह कृत्य मानवता के इतिहास का क्रूरतम महापाप है। जिस देश में एक सीता के अपहरण से रावण की सोने की लंका को राक्षस-कुल सहित धूलि-धूसरित कर दिया गया, जहाँ एक द्रौपदी के तिरस्कार की घटना से विश्व का महानतम महासमर कुरुक्षेत्र रचा गया, आज उसी देश की हजारों पुत्रियों का इटली, जर्मनी, फ्रांस, हंगरी, इंग्लैण्ड, अमरीका आदि विदेशों में बेचा जाना, उन्हें वमन को चाटने के लिए बाध्य करना, उन्हें शारीरिक संत्रास देना, उन्हें आठ हजार असामान्य रूप से काम के भूखे युवकों के पागलखाने में धकेल देना, उन्हें रक्त का वमन होना, उन्हें वेश्या-वृत्ति के लिए बाध्य करना, इन भयंकर मानसिक आघातों से उनका विक्षिप्त होकर गूंगा हो जाना, इत्यादि ऐसे घोर राक्षसी कृत्य हैं जिनको कोई भी स्वाभिमान-प्रिय भारतीय सहन नहीं कर सकता।

हम प्रशासन से प्रबल मांग करते हैं कि इस गर्हित पाप के लिए उत्तरदायी सभी पादरियों को घोरतम दण्ड दिया जाय तथा देश में फैले हुए सभी विदेशी पादरियों के प्रवेश पत्र (वीजा) तुरंत निरस्त कर दिये जायँ ताकि कोई भी विदेशी पुनः भारत की ललनाओं का इस प्रकार तिरस्कार न कर सके तथा देश की प्रतिष्ठा का हनन न कर सके।

क्योंकि इस काण्ड के लिए वेटिकन (रोम) के पोप भी उत्तरदायी हैं, अतः हम यह भी मांग करते हैं कि पोप के साथ दौत्य सम्बन्ध तोड़ दिये जायँ तथा इनके नई दिल्ली स्थित राजदूत को तुरंत भारत से निकाल दिया जाय।

जिस प्रकार देश की स्वाधीनता के लिए सन् 1942 में महात्मा गाँधी ने विदेशी शासकों को ललकारते हुए 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का आह्वान किया, उसी प्रकार आज उस आन्दोलन के 28 वर्ष पश्चात्, गाँधी शताब्दी वर्ष में देश के आत्म-सम्मान की रक्षा एवं गाँधीजी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि समर्पित करने हेतु इस 'विदेशी पादरी भारत छोड़ो आन्दोलन' को देशव्यापी स्तर पर चलाया गया है। यह देश भर के सभी धर्म-सम्प्रदायों, सभी जाति-उपजाति, दलों एवं संस्थाओं के करोड़ों स्वाभिमान-प्रिय देशवासियों की ललकार है, जिसे छोटानागपुर के प्रख्यात सिद्ध-योगी पूज्य श्री स्वामी पूर्णानन्दजी सरस्वती (महात्मा कमड़े बाबा) का अमोघ आशीर्वाद प्राप्त हुआ है।

यदि प्रशासन देश के आहत स्वाभिमान की इस हुँकार को अनसुनी कर विदेशी पादरियों को अविलम्ब भारत से निष्कासित करने के लिए कुछ ठोस सक्रिय पग नहीं उठाता तथा विदेशी पादरी युग की मांग एवं काल की मर्म-गति को पहचान कर स्वयं ही अपने-अपने स्वदेश को सकुशल लौट जाने की बुद्धिमत्ता नहीं दिखाते, तो भारतीय जन-गण के जिस जनाक्रोश रूपी ज्वार के सामने ब्रिटिश साम्राज्य तक डूब गया, उसके सम्मुख विदेशी पादरी अथवा उनके संरक्षक कभी भी नहीं टिक सकेंगे। यह भारतीय राष्ट्र का अटल संकल्प है।

यूरोपीय लोगों ने कब किसी देश का भला किया है? अपने से अवनत जाति को उठाने की उनमें शक्ति कहाँ है? जहाँ कहीं उन्होंने दुर्बल जाति को पाया नेस्तनाबूद कर दिया और उनकी निवास भूमि में वे खुद बस गए। वहाँ की मूल जातियाँ एकदम मटियामेट हो गयी। अमरीका का क्या इतिहास है? आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, प्रशान्त महासागर के द्वीपसमूह और अफ्रीका का क्या इतिहास है?

—स्वामी विवेकानन्द

'जिस प्रकार प्रथम सहस्राब्दि में ईसाई मत की स्थापना यूरोप की धरती पर की गई थी, और दूसरी सहस्राब्दि में अमरीका और अफ्रीका की धरती पर, उसी प्रकार हम प्रार्थना करते हैं कि तीसरी सहस्राब्दि में इस विशाल एवं महत्त्वपूर्ण महाद्वीप में हम बड़े विस्तृत स्तर पर लोगों को अपने मत में परिवर्तित कर लेंगे।

—पोप जान पाल द्वितीय (सन् 1999 में भारत आगमन पर)

क्रिसमस तथा ईसाई मत ?

यूरोप भी जो बन रहा है, आजकल मार्मिक-मना,
यह तो कहे उसके खुदा का पुत्र कब धार्मिक बना ?
था हिन्दुओं का शिष्य ईसा, यह पता भी है चला,
ईसाइयों का धर्म भी है, बौद्ध साँचे में ढला।।

—राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त (भारत भारती पृ. 30)

'A number of Buddhist legends make their appearance in the Apocryphal gospels and are so obviously Indian in character that it can hardly be maintained that they were invented in Palestine or Egypt and spread thence Eastwards.'

—Sir Charles Eliot (Hinduism and Buddhism; P. 441)

'The Roman Church which declares itself to be the 'True Church' with the assumed authority from Christ Himself, is found to be following many of the cults and doctrines of Buddhism which prevailed many years prior to the birth of Christ.'

—The Catholic Tract Service, Hampankatta, Mangalore-1 (S. India)

'Two centuries before the Christian Era Buddhism closed in on Palestine.............Buddhism and Christianity in later years happen to be confused with each other. Manichaeism is a syncretism of Buddhist, Zoroastrian and Christian Views. Mohammed mixes up the legends of Christ and Buddha.'

—Dr. S. Radhakrishnan

(Eastern Religions & Western Thought, P. 158)

'The national Churches of Christianity constitute an open revolt against the gospel of Jesus.'

—Dr. S. Radhakrishnan (East & West in Religion, P. 67)

'I am beginning to understand from history that Christianity is not an independent Semistic growth but an outgrowth of Hindu religious thought and life.'

—**Dr. S. Radhakrishnan** (East & West, P. 79)

'There seems to be no doubt that the Church did borrow from Mithraism (मित्र पूजा: Sun worship) in fixing of Christmas day on December, 25th, the birthday of the Sun (मकर संक्रांति पर्व)

—**Edwyn Bevan**

(Christianity in the Light of Modern Knowledge, P. 103)

'Observe well this place that I show to you. You are now in the island of Crete. This is the land in which Christianity began. ...... I am one of the Therapeutae who used to live here........"Essene", the name of a sect of which Jesus, the Christ is said to have been a member.....The word Therapeutae unmistakably means Sons of the Theras (स्थविर पुत्रः)

(Life of Swami Vivekananda, P. 448)

'Much in Christianity is the mere application of new names and meanings to old pagan beliefs and customs.'

—**Swami Vivekananda,** (Complete Works, Vol. VIII, P. 25)

'तीसरी शती में मिस्र ने प्रथम बार 6 जनवरी को ईसा का जन्म दिन मनाया। रोम में ईसाईयत चौथी शती में पहुँची। उसके पूर्व वहाँ मित्र पूजा (सूर्य पूजा) प्रचलित थी। रोम के आदित्यालय से ऐतालय (Italia) शब्द बने। वहाँ प्रचलित मकर संक्रांति (25 दिसम्बर) के महापर्व को ही चौथी शती से क्रिसमस के पर्व के रूप में मनाया जाने लगा।'

—**प्रो. हरवंशलाल ओबराय** (आकाशवाणी वार्ता : 22.07.69)

'ईसा दो बार भारत आया, एक बार यौवन में शिक्षा प्राप्ति हेतु, दूसरी बार क्रूस से उतरने के बाद (जीवित किन्तु जख्मी)।'

—**आचार्य नरदेव शास्त्री** (कुलपति, गुरुकुल, ज्वालापुर)

'बाइबिल के अनेक उपदेश श्रीमद्भगवद्गीता से ही उधार लिए गये हैं।'

—**लोकमान्य तिलक** (गीतारहस्य)

धर्मान्तरण द्वारा धर्म पर डाका एवं राजनीति पर लगाम

1. धर्मान्तरण द्वारा 1666 वर्ष पूर्व सूर्यपूजक यूरोप को ईसाई बना दिया गया। रोम का सूर्यपूजक राजा काँस्टेंटाइन यूरोप का प्रथम धर्मान्तरित ईसाई राजा बना।
2. धर्मान्तरण द्वारा 486 वर्ष पूर्व शिव पूजक मैक्सिको एवं अमरीका के रेड इण्डियन्स को ईसाई बना दिया गया। पूरे कनाडा देश को भी ईसाई बना दिया गया।
3. धर्मान्तरण द्वारा आस्ट्रेलिया के प्रकृति पूजक वनवासियों को ईसाई बना दिया गया तथा वहाँ यूरोप की गोरी जातियों का शासन हो गया।
4. धर्मान्तरण द्वारा 458 वर्ष पूर्व दक्षिणी चीन समुद्र में स्थित महाकलिंग द्वीप-समूह को ईसाई बना कर स्पेन के राजा फिलिप के नाम पर फिलिपाइन नाम दे दिया गया।
5. धर्मान्तरण द्वारा भारत के नागा प्रदेश को नागालैण्ड नामक 'न्यू इंग्लैण्ड' बना दिया गया।
6. धर्मान्तरण द्वारा मिजोरम और मेघालय में भी ईसाई राज्य स्थापित हो गए।
7. धर्मान्तरण द्वारा शेष भारत को भी ईसाईस्तान में परिवर्तित करने का षड्यन्त्र चल रहा है। धर्मान्तरण से राष्ट्रान्तरण हो जाने का भय है।

'यदि भारत को बचाना है, तो पादरी को भगाना है।'

27 मई 1979 में प्रकाशित

संस्कृति विहार, अपर बाजार, रांची

जगद्गुरु भारत पाश्चात्य देशों में प्रचारक भेजे

'....अरे वह नास्तिक कैसे!!' ज्यों ही वे विशाल भवन से निकले, एक व्यक्ति ने अचम्भे से कहा, 'और हम लोग उनके देश में प्रचारक भेजते हैं। इससे अधिक उपयुक्त तो यही होगा कि वे ही हमारे देश में प्रचारक भेजें।

—डॉ. एनी बीसेण्ट

(शिकागो धर्म-सम्मेलन में, स्वामी विवेकानन्द की झांकी, 1893)

भारत में पादरी भेजना मूर्खतापूर्ण

'वे (स्वामी विवेकानन्द) निस्सन्देह शिकागो धर्म सम्मेलन में महानतम विभूति हैं। उन्हें सुनने के पश्चात् हम अनुभव करते हैं कि इस ज्ञानवान राष्ट्र में ईसाई पादरी (मिशनरी) भेजना कितना मूर्खतापूर्ण है।'

—दि न्यूयार्क हेरल्ड

ईसाई पादरियों को स्पष्ट चेतावनी

'आप (पादरी) लोगों को शिक्षित और प्रशिक्षित करते हैं, उन्हें वस्त्र-विभूषित करते हैं तथा उन्हें वेतन देते हैं—यह सब किसलिए? क्या मेरे देश में आकर मेरे पूर्वजों को, मेरे धर्म को तथा मेरे देश की प्रत्येक वस्तु को गाली एवं अभिशाप देने के लिए? वे मन्दिर के निकट से गुजरते हुए कहते हैं, 'अरे मूर्ति पूजको! तुम सभी नरक में जाओगे।' परन्तु हिन्दू विनम्र होता है, वह हँसता है और यह कहता हुआ चला जाता है, 'मूर्खों को बकने दो।'

....और जब कभी तुम्हारे पादरी हम लोगों की आलोचना करते हैं उन्हें यह याद रखना चाहिए, यदि समस्त भारत खड़ा हो जाय और हिन्द महासागर के तल का सारा कूड़ा-कचरा लेकर पश्चिमी देशों के मुख पर फेंक दे, तो भी जो अत्याचार तुम हम लोगों के प्रति करते हो, उसकी तुलना में यह कार्य अणुमात्र भी न होगा।'

—स्वामी विवेकानन्द

(डिट्रायट में ईसाई पादरियों के प्रति)

(लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द, पृष्ठ 317-318; प्रकाशक : अद्वैत आश्रम, कलकत्ता)

स्वार्थ एवं तलवार द्वारा धर्मान्तरण

'तुम्हारी सारी थोथी डींग एवं दर्प-वाचालता के उपरान्त भी तुम्हारी ईसाईयत बिना तलवार के कहाँ सफल हुई है? सारे संसार में मुझे एक भी स्थान तो दिखाओ, केवल 'एक', मैं कहता हूँ ईसाई धर्म के समस्त इतिहास में केवल एक उदाहरण दिखाओ; मैं दो नहीं चाहता। मैं जानता हूँ तुम्हारे पूर्वज किस प्रकार धर्मान्तरित हुए। उन्हें या तो धर्मान्तरित होना पड़ता अथवा मृत्यु के घाट उतरना पड़ता। यही अन्तिम निर्णय था। प्रत्येक वस्तु, स्वार्थ जिसका आधार है, प्रतिस्पर्धा ही जिसका दायाँ हाथ है और विलास ही जिसका लक्ष्य है, उसका विनाश आज या कल अवश्यंभावी ही है।'

—स्वामी विवेकानन्द

(लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द, पृष्ठ 318; प्रकाशक : अद्वैत आश्रम, कलकत्ता)

निष्काम कर्म गीता का ज्ञान
लोभ से धर्म पादरी की शान

ह ह ह

पश्चिमी देशों की सेनाओं के चार अंग है—थल सेना, जल सेना, वायु सेना और चर्च।

—श्री जे.सी. कुमारप्पा प्रख्यात गाँधीवादी ईसाई विचारक

ह ह ह

उपरोक्त सेना के प्रथम तीन अंग ही स्पष्ट दिखाई देते हैं किन्तु चर्च अपने स्वरूप के कारण उजागर नहीं होता। इस दृष्टि से तानाशाह स्टालिन ने चर्च को 'अदृश्य सेना' की संज्ञा दी थी। उसका अनुभव था कि 'चर्च' का सहयोग या विरोध भी विशिष्ट स्थितियों में अपना अर्थ रखता है।

ह ह ह

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानांच्च विमानना।
त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥

(पंचतंत्र 3.192)

जहाँ अयोग्य का सम्मान हो, योग्य का तिरस्कार हो वहाँ तीन बातें—अकाल, मौत और भय है। (आज यही राष्ट्र में हो रहा है।)

डॉ. राधाकृष्णन उवाच

ईसाई कुप्रचार द्वारा भारतीय श्रद्धाओं पर भीषण आघात

'ईसाई धर्म प्रचारकों ने मुझे श्रद्धाहीन बनाकर जिज्ञासा की उस प्राथमिक अवस्था में डाल लिया जहाँ से सभी दर्शनों का जन्म होता है।.... वे रह-रह कर ईसाई विचार और जीवन पद्धति की भी दुहाई देते थे। किन्तु वास्तव में वे सत्य के प्रेमी या अन्वेषक नहीं थे। भारतीय विचारधारा की कड़ी आलोचनाएँ करके उन्होंने मेरी श्रद्धा को विचलित कर दिया और परम्परा के उन स्तम्भों को हिला डाला जिनका मैं सहारा लिए हुए था।'

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन
क्रिश्चियन कालेज मद्रास में विद्यार्थी जीवन के अनुभव
—फ्रैग्मेंट्स आव ए कन्फेशन

हिन्दुत्व का स्वाभिमान

'मैं भी हिन्दुत्व का अभिमानी था और मेरा यह अभिमान स्वामी विवेकानन्द के कर्तृत्व और उद्गारों से और भी प्रदीप्त हो उठा था। मिशनरी स्कूलों और कॉलेजों में हिन्दुत्व के प्रति जो बर्ताव किया जाता था उससे मेरा यह अभिमान तिलमिला उठा। मेरे लिए यह मान लेना अत्यन्त कठिन कार्य था कि हिन्दू ऋषि और उपदेष्टा, जिन्होंने हमारे युग के लिए भारत की इस प्राचीन संस्कृति के साथ जीवित सम्पर्क को सुरक्षित बना रखा है, जो कि हमारे अधिकांश ज्ञान एवं हमारी समस्त साधना का मूल स्रोत है, स्वयं वे (ऋषि) भी सच्चे धार्मिक व्यक्ति नहीं थे।'

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन (माई सर्च फार ट्रुथ, पृष्ठ 5)

ईसाई आलोचक

'ईसाई आलोचकों की चुनौती से ही विचलित होकर मैं हिन्दुत्व का विधिवत् अध्ययन करके यह पता लगाने को प्रस्तुत हुआ हूँ कि हमारे धर्म का कितना अंश मृत और कितना आज भी जीवित है।'

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन (माई सर्च फार ट्रुथ, पृ. 9)

वर्तमान ईसाईयत ईसा के विरुद्ध खुला विद्रोह

'ईसाईयत के राजनीतिक चर्च ईसा के सन्देश के विरुद्ध एक खुला विद्रोह हैं। ईसा की शिक्षा, जैसा पाश्चात्य देश मानते हैं, वह भी जनता द्वारा आत्मसात् नहीं की गई है।

चाहे चर्च के अधिकारी अपने धुंधले प्रकाश वाले गिरजाघरों की रंगीन शीशे वाली खिड़कियों में ईसा को सजावट की वस्तु के रूप में प्रयोग करने के लिए राजी हैं किन्तु यदि चर्च के चेलों में से कोई ईसा की शिक्षा को गम्भीरतापूर्वक मानने लग जाय तथा क्रिया में उतारने लगे तो वे घबरा उठते हैं।

इमर्सन (अमरीका के दार्शनिक) ने कहा था कि प्रत्येक Stoic (उदासीन) उदासीन ही है, किन्तु ईसाई मत में ईसाई खोजना दुष्कर है। नीत्से (जर्मनी के दार्शनिक) ने कहा कि संसार भर में केवल एक ही ईसाई था जो कि क्रूस (सूली) पर ही मर गया।'

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

ईस्ट एण्ड वेस्ट इन रिलिजन, पृ. 67-68

'मैं भारत में पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण—सभी जगह घूमा, लेकिन पूरे भारत में मुझे एक भी भिखारी या चोर दिखाई नहीं दिया। भारत की समृद्धि व उच्च नैतिक मूल्यों को देखते हुए मुझे नहीं लगता कि हम कभी भी भारत पर विजय प्राप्त कर सकते हैं, जब तक कि हम भारत की रीढ़ की हड्डी अध्यात्मिक व सांस्कृतिक शिक्षा व्यवस्था के स्थान पर यह स्थापित न कर लें कि विदेशी व अंग्रेजी शिक्षा-व्यवस्था भारत की शिक्षा-व्यवस्था से अधिक महान् है।

—लार्ड मैकाले

(2 जनवरी 1835 में ब्रिटिश संसद में वक्तव्य)

ईसाईयत का कर्तृत्व

निष्काम कर्म गीता का ज्ञान।
लोभ से धर्म पादरी की शान।
यदि निर्धन सेवा प्यारी हो
तो नीग्रो से नफरत क्यों है ?
नीग्रो को गोली से मारें
भारत में सेवा पाखंड
मार्टिन लूथर किंग की हत्या
हिंसा घृणा की ज्वाल प्रचण्ड।।
ईसा प्रेम से नीग्रो वंचित,
भारत का जन बना शिकार।
अपने घर में घृणा जहर है,
यहाँ प्रेम का ढोंग प्रसार।।

धर्म का मूल्य तो है बलिदान
भात की प्लेट ! घोर अपमान ! !
श्रद्धा क्या है करो विचार,
मनः पटल पर शुद्ध संस्कार
या भात प्लेट पै फँसे शिकार ?
निंदक पादरी को धिक्कार।।

यदि भूखा इनसान बिकेगा,
रोटी पर ईमान बिकेगा,
नैतिकता चीत्कार करेगी,
मनुष्यता हाहाकार करेगी।।

ईश्वर एक, और धर्म सत्य सब
क्योंकर सहन हो धर्मान्तरण तब ?

बुद्धि हो तो विचार जरा हो
पेट भरा और हृदय मरा हो,
टुकडों पर ईमान छला हो,
भ्रष्ट क्यों प्रभु के धाम चला हो ?
धर्मप्राण भारत भूमि में
धर्म हमें प्राणों से प्यारा
जो लालच से धर्म को छीने
वह पापी जन-मन-हत्यारा।।
यूरोप अमरीका कैनेडा आस्ट्रेलिया
सबको धर्मान्तरण के भूत ने खा लिया।
अफ्रीका एशिया में षड्यन्त्र जारी है,
बलि पशु बनने को भारत की बारी है।
भारत यदि अपने पौरुष में जागेगा
ईसाईयत का भूत एशिया से भागेगा।।
ईश्वर ईसा का बाप है
धर्म को ठगना पाप है।
धर्म स्वातन्त्र्य विधेयक प्यारा
सब को न्याय का मिले सहारा।
जो अन्याय से धर्म को लूटे
दण्डनीय हो वह हत्यारा।।
रिश्वत देकर लोभ की पूर्ति घोर भ्रष्टाचार है।
लालच देकर धर्म लूटना नीच व्यभिचार है।।
स्वेच्छा से जो धर्म को बदले
उसपर नहीं कहीं प्रतिबंध है।
छल, बल, आतंक, भय से धर्मान्तरण
पादरी होंगे जेल में बन्द।।
सूर्यपूजक यूरोप धर्मान्तरण से ईसाई बना।
शिवपूजक अमरीका धर्मान्तरण से ईसाई बना।

प्रकृतिपूजक आस्ट्रेलिया धर्मान्तरण से ईसाई बना।
महाकलिंग द्वीपसमूह ईसाईयत से फिलिपाइन बना।
भारत का नागा प्रदेश धर्मान्तरण से ईसाई बना।
मिजोरम-मेघालय ईसाई राज्य बन गये।
शेष भारत में चालू है ईसाईस्तान का षड्यन्त्र।
यदि भारत को बचाना है,
तो पादरी को भगाना है।।

भारत में ईसाइयों द्वारा धर्मान्तरण, ईसाई पंथ के प्रभुत्व को पुनः स्थापित करने की एक-समान वैश्विक नीति का अंग है। इसका मूल प्रयोजन है कि इसके माध्यम से पश्चिम का राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित किया जा सके। यह किसी आध्यात्मिक लक्ष्य से प्रेरित नहीं है। प्रत्यक्षतया उनका उद्देश्य यह है कि ईसाई बहुल क्षेत्र स्थापित किये जाएं, ताकि गैर-ईसाई समुदायों की एकता को भंग किया जा सके। इस दुर्भावनापूर्ण उद्देश्य से जनजातियों के एक बड़े वर्ग का सामूहिक धर्मान्तरण राज्य की सुरक्षा के लिये एक भारी संकट का सूचक है।

—डा. बी.एम. नियोगी

विधि की विडम्बना

विधि की विडम्बना देखो। यूरोपवासियों के देवता ईसा मसीह ने सिखाया—'किसी से वैर मत करो, जो तुम्हें गाली दे उसे भी आशीर्वाद दो, यदि कोई तुम्हारे बायें गाल पर थप्पड़ मारे तो तुम उसकी ओर दाहिना गाल भी कर दो, सब काम-काजों को त्याग कर परलोक की तैयारी करो, क्योंकि संसार का अंत निकट है? इसके विपरीत हमारे कृष्ण गीता में कहते हैं, 'सदैव महान् उत्साह से कर्म करो, अपने शत्रुओं का विनाश कर संसार का भोग करो।' किन्तु अन्त में जो कृष्ण या ईसा मसीह चाहते थे, उसका बिल्कुल उलटा हो गया।

—स्वामी विवेकानन्द

प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री गाँधीजी का अरमान पूरा करें

विश्ववंद्य महात्मा गाँधी ने कहा था—

Object of Christian Missions

'The object of Christian Missionary effort in India is to uproot Hinduism from the very foundation and replace it by another faith....If I had the power to legislate, I should certainly stop all proselytising. I strongly resent these overtures to ignorant men.'

—Mahatma Gandhi

ईसाई मिशन का उद्देश्य

'भारत में ईसाई मिशनरी प्रयास का उद्देश्य है हिन्दुत्व को जड़-मूल से उखाड़ कर उसके स्थान पर एक दूसरा मत थोपना।

....यदि मेरे पास विधान बनाने की शक्ति होती तो मैं निश्चय ही सभी प्रकार के धर्मान्तरण पर प्रतिबन्ध लगा देता। मैं भोले-भाले लोगों के प्रति (ईसाई पादरियों के) इस प्रकार के (धर्मान्तरण के नीच) प्रस्तावों का प्रबल विरोध करता हूँ।'

—महात्मा गाँधी

महामान्य प्रधानमन्त्री महोदय,

आज आप गाँधीजी जैसे राष्ट्रभक्तों के तप-त्याग से प्राप्त स्वराज्य में राष्ट्र के योग्यतम कर्णधार तथा व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका के सर्वोच्च नेता हैं। आप गाँधीजी के सुयोग्य शिष्य हैं। सौभाग्य से आज आपके पास विधान रचने की शक्ति भी है। क्या आप गाँधीजी के अरमानों को पूरा करेंगे ताकि देश के भीतर नागालैण्ड जैसे 'न्यू इंग्लैण्ड' तथा झारखण्ड में ईसाईस्तान के षड्यन्त्र रचने वाले भारत की छाती में छुरा न घोंप सकें? राष्ट्र का इतिहास आपके कर्तृत्व को इसी कसौटी पर परखना चाहेगा।

—राष्ट्र सेवा में सदा सर्वदा आपका ही,
संस्कृति विहार (Academy of Indian Culture), रांची

प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी गाँधीजी का अरमान पूरा करें

विश्ववंद्य महात्मा गाँधी ने कहा था—

Object of Christian Missions

'The object of Christian Missionary effort in India is to uproot Hinduism from the very foundation and replace it by another faith....If I had the power to legislate, I should certainly stop all proselytising. I strongly resent these overtures to ignorant men.'

—Mahatma Gandhi

ईसाई मिशन का उद्देश्य

'भारत में ईसाई मिशनरी प्रयास का उद्देश्य है हिन्दुत्व को जड़-मूल से उखाड़ कर उसके स्थान पर एक दूसरा मत थोपना।

....यदि मेरे पास विधान बनाने की शक्ति होती तो मैं निश्चय ही सभी प्रकार के धर्मान्तरण पर प्रतिबन्ध लगा देता। मैं भोले-भाले लोगों के प्रति (ईसाई पादरियों के) इस प्रकार के (धर्मान्तरण के नीच) प्रस्तावों का प्रबल विरोध करता हूँ।'

—महात्मा गाँधी

महामान्या प्रधानमन्त्री महोदया,

आज आप गाँधीजी जैसे असंख्य देश-भक्तों के तप-त्याग से प्राप्त स्वराज्य में राष्ट्र की वरिष्ठतम संचालिका हैं। आप स्वतंत्र भारत में न्यायपालिका एवं कार्यपालिका दोनों में अपना अन्यतम स्थान रखती हैं। आप गाँधीजी की राजनीतिक शिष्या एवं उत्तराधिकारिणी हैं। सौभाग्य से आपके पास विधान बनाने की शक्ति भी है तथा विधान के अनुसार कार्यपालन करवाने की शक्ति भी। क्या गाँधी शताब्दी वर्ष में आप गाँधीजी के अरमानों को पूरा करेंगी ताकि देश के भीतर नागालैण्ड जैसे 'न्यू इंग्लैण्ड' मिजोलैण्ड जैसे 'विद्रोही क्षेत्र' एवं झारखण्ड में 'ईसाईखण्ड' के षड्यन्त्र रचने वाले भारतमाता की छाती में छुरा न घोंप सकें?

राष्ट्र का भावी इतिहास आपके कर्तृत्व को इसी कसौटी पर परखना चाहेगा।

गाँधी शताब्दी पर मंगलकामनाएँ!

—राष्ट्र सेवा में सदा सर्वदा आपका ही,

संस्कृति विहार (Academy of Indian Culture), अपर बाजार, रांची

प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई गाँधीजी का अरमान पूरा करें

विश्ववंद्य महात्मा गाँधी ने कहा था—

Object of Christian Missions

'The object of Christian Missionary effort in India is to uproot Hinduism from the very foundation and replace it by another faith....If I had the power to legislate, I should certainly stop all proselytising. I strongly resent these overtures to ignorant men.'

—Mahatma Gandhi

ईसाई मिशन का उद्देश्य

'भारत में ईसाई मिशनरी प्रयास का उद्देश्य है हिन्दुत्व को जड़-मूल से उखाड़ कर उसके स्थान पर एक दूसरा मत थोपना।

....यदि मेरे पास विधान बनाने की शक्ति होती तो मैं निश्चय ही सभी प्रकार के धर्मान्तरण पर प्रतिबन्ध लगा देता। मैं भोले-भाले लोगों के प्रति (ईसाई पादरियों के) इस प्रकार के (धर्मान्तरण के नीच) प्रस्तावों का प्रबल विरोध करता हूँ।'

—महात्मा गाँधी

महामान्य प्रधानमन्त्री महोदय,

आप आज गाँधीजी जैसे राष्ट्र भक्तों के तप-त्याग से प्राप्त स्वराज्य में राष्ट्र के योग्यतम कर्णधार तथा व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका के सर्वोच्च नेता हैं। आप गाँधीजी के सुयोग्य शिष्य हैं। सौभाग्य से आज आपके पास विधान रचने की शक्ति भी है तथा विधान के अनुसार कार्यपालन करवाने की शक्ति भी। क्या आप गाँधीजी के अरमानों को पूरा करेंगे ताकि देश के भीतर नागालैण्ड जैसे 'न्यू इंग्लैण्ड' मिजोरम एवं मेघालय जैसे विद्रोही ईसाईखण्ड तथा झारखण्ड में ईसाईस्तान के षड्यन्त्र रचने वाले भारतमाता की पीठ में छुरा न घोंप सकें?

राष्ट्र का भावी इतिहास आपके कर्तृत्व को इसी कसौटी पर परखना चाहेगा।

—राष्ट्र सेवा में सदा सर्वदा आपका ही,

संस्कृति विहार (Academy of Indian Culture), अपर बाजार, रांची

---

* अवैध धर्मान्तरण पर प्रतिबंध हेतु धर्म स्वातंत्र्य अधिनियम लागू हो।

उर्दू राष्ट्रभाषा क्यों नहीं ?

आज कई शताब्दियों के पश्चात् हमारी राष्ट्रभाषा बन्धनमुक्त हुई है। आज भारत के स्वातंत्र्य की सौभाग्यसन्धि पर जहाँ राष्ट्र के बाकी अंगों में नवजीवन स्फुरित हो उठा है वहाँ राष्ट्रभाषा के सुवर्ण सिंहासन से हमारी देववन्दिता दिव्य जीवनी भारती, भारतीय संस्कृति की किरीट कौस्तुभि, साहित्यसुधा की कला कुमोदिनी, दिव्य, भव्य, मधुर हिन्दी भाषा प्रत्येक भारतीय के लिये एक नूतन संदेश लाई है।

मातृभाषा, मातृ-भू से है जिन्हें नाता। धन्य है वह गण्य है वे मान्य है मुक्ति। आज भारत की भावी उन्नति का आधार मातृभाषा तथा मातृ-भू ही हो सकती है। राष्ट्र निर्माण के लिये निम्नलिखित अंगों की आवश्यकता है।

स्वदेश, संस्कृति, भाषा, स्फूर्ति केन्द्र एक हो,
स्वजाति के बने सभी फिर मत चाहे अनेक हो।

अन्यत्र कहा है—

These things can form a nation
Country culture civilisation
Common language, common race
Common source of inspiration.

हमारा गौरवशाली देश एक है। हमारी भव्य एवं उदात्त संस्कृति एक है। हमारे पवित्र स्फूर्ति केन्द्र एक हैं, हमारी राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाएं एक हैं, हमारी वैभवशाली जाति एक है, हमारी दिव्य मातृभाषा एक है। अतः हम एक शास्त्रसिद्ध सुसंस्कृत राष्ट्र हैं।

कुछ एक स्वार्थी लोगों ने आज राष्ट्रभाषा का अपमान करने हेतु उर्दू को राष्ट्रभाषा बनाने का हीन विचार प्रकट किया है। पाकिस्तान का निर्माण जैसे राष्ट्रमाता के लिये घोर निरादर का हेतु सिद्ध हो चुका, वैसे ही उर्दू का प्रचार भी राष्ट्रभाषा भारती के लिये घोर निरादर का कारण बनेगा। राष्ट्रभाषा के लिये निम्नलिखित गुणों की आवश्यकता है—

(1) वह भाषा उस देश की परम्परागत संस्कृति की परिचायक हो।

(2) उस भाषा को उस देश का प्रत्येक नागरिक सुगमता से लिख-पढ़, बोल तथा समझ सके।

(3) वह भाषा व्याकरण की कसौटी पर खरी उतरे।

(4) उस भाषा के पठन-पाठन में स्वदेशाभिमान तथा सांस्कृतिक गौरव जागृत हो।

(5) उसका साहित्य विकासोन्मुख तथा सर्वांगपूर्ण हो।

(6) उसके कोष में वृद्धि का सामर्थ्य हो?

(7) वह भाषा प्राकृतिक एवं वैज्ञानिक हो एवं अन्तरराष्ट्रीय भाषाओं में विशेष स्थान रखती हो। आइये, परीक्षा स्थल में उतरिये—

उर्दू को राष्ट्रभाषा स्वीकारने में हम तनिक भी न घबराते यदि कही उपर्युक्त सप्त विशेषताओं में से एक भी विशेषता उसमें होती और यदि उनमें से एक भी न होने पर भी कोई उर्दू की रट लगाता है तो वह केवल अल्पबुद्धि का प्रमाण देता है। बड़े खेद का अवसर है कि कई बड़े उत्तरदायी व्यक्ति भी उर्दू को राष्ट्रभाषा बनाने के इस प्रयास में अपने तथ्यहीन तर्कों के बदौलत अपने राष्ट्रीय दायित्व को तिलांजलि दे रहे हैं।

यदि तनिक विचारें कि उर्दू का भारतवर्ष की संस्कृति तथा राष्ट्रीय परम्पराओं से कितना सम्बन्ध है? उत्तरदाता के मुख को लगाम लग जायेगी। भारतीय संस्कृति भगवान् राम-कृष्ण की संस्कृति है, वह भीम तथा अर्जुन की संस्कृति है, वह हर्ष और अशोक की संस्कृति है, वह चन्द्रगुप्त और चाणक्य की संस्कृति है, वह राणा प्रताप और शिवाजी की संस्कृति है, वह गुरु गोविन्दसिंह और बंदा वैरागी की संस्कृति है, वह विवेकानन्द तथा स्वामी रामतीर्थ की संस्कृति है, वह रवीन्द्रनाथ ठाकुर, पं. मदनमोहन मालवीय की संस्कृति है, वह लोकमान्य तिलक-गाँधी की संस्कृति है। वह सच्चे भारतीयत्व की परिचायक है।

उर्दू बोलते मुख से मानो औरंगजेब अथवा पुर्खरू सैयर की आत्मा बोल रही है। ऐसा भास होता है। उर्दू को राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर बैठाने का निष्फल प्रयास करने वाले भारतीय संस्कृति से प्रेम नहीं रखते, उन्हें राम-कृष्ण का वंशज कहलाने में गौरव बोध नहीं, वे गौरी तथा तैमूर को भारत का महानायक मानते हैं। मुझे समझ में नहीं आता कि राष्ट्रमाता की वात्सल्यपूर्ण शीतल गोद को त्याग कर वे उर्दू की गोद में बैठकर कौन-सा सुख अनुभव करते हैं।

उर्दू भाषा का भारतीय संस्कृति से कितना विच्छेद है इसके अनेकानेक प्रमाण हैं। हम प्रायः उर्दू में एक मुहावरा प्रयुक्त करते हैं, 'रुस्तमे-हिन्द, हम यह शब्द

बोलते हुए एकदम रुस्तम के प्रति आदर भावना मन में लाते हैं। यदि वह इतना ही वीर था तो अपने लड़के से क्यों हार गया? रुस्तमे-हिन्द के स्थान पर भारत भीम का प्रयोग पर्यायवाची होते हुए भी उर्दू अपना इस्लामी रंग दिखाये बिना नहीं रहती। उर्दू वालों का रुस्तम से प्यार स्वाभाविक है। ऐसे लाखों रुस्तमों को हमारा एक भीम जंघा पकड़कर चीर डालता है अथवा बगली में जकड़कर मसल डालने में सर्वथा समर्थ है। ऐसे ही एक उर्दू के पक्षधर ने रामायण का हिन्दुस्तानी में (जो उर्दू का ही प्रच्छन्न रूप है) अनुवाद किया। उसमें नवाब राम तथा बेगम सीता के प्रयोगों ने उर्दू का सांस्कृतिक रूप प्रकट कर दिया है। आगे चलकर महर्षि वसिष्ठ को मौलवी वसिष्ठ। महाराजा दशरथ का वर्णन इतना निकृष्ट है कि कोई भी भारतीय पढ़कर जले बिना न रहे। शाह दशरथ की टांगें कब्र में थीं इसलिये उसने नवाबजादे राम को तख्त देकर खुद जंगलों में रोजे रखकर खुदा की इबादत करने का मनसूबा बाँधा, आदि।

भारतीय के लिये ऐसी भाषा को पढ़ना अथवा सुनना कितना लज्जास्पद है। जहाँ कब्र शब्द भी अभारतीय है, कब्र में टांगें होना भारतीय संस्कृति के सर्वथा विपरीत है। फिर राष्ट्रनिर्माता तथा भारतीय संस्कृति के मर्यादा स्तम्भ श्रीराम के पिता के विषय में ये शब्द प्रयुक्त करना कितना अनुचित है। हमारे पड़ोस में एक सिक्ख परिवार रहता था। घर की स्त्री का एक 6-7 वर्ष का बालक मदरसे में पढ़ता था। एक दिन मैंने उस बच्चे को अपने पिता को अब्बाजान बुलाते सुना। मैंने हँसकर टाल दिया, फिर माता एक दिन सबक पढ़ा रही थी। उस पुस्तक का पहला पाठ था—माँ बच्चे को गोद में लिये हुए बैठी है और बाप सामने बैठे हुक्का पी रहा है....आदि। उसकी माँ भी गाँव के स्कूल में पढ़ी थी जहाँ एक मौलवी लड़के-लड़कियों को इकट्ठा पढ़ाता था। उसने भी यही कुछ पढ़ा था। उसे कलमा-नमाज आदि जबानी याद थे। उस पर ऐसे संस्कार पड़े हुए थे कि अपने बच्चे को 'बाप हुक्का पी रहा है' यह पढ़ाती हुई तनिक भी नहीं लजाती थी। यह है उर्दू का सांस्कृतिक प्रमाण। उर्दू को राष्ट्रभाषा मानने पर भारत भारत नहीं रह सकता, यह मेरा अटल विश्वास है। क्योंकि परिवारों में इसका प्रभाव देखने को मिल रहा है तथा राष्ट्र में इसका प्रभाव उतने गुणा बढ़कर रहेगा यह सर्वदा सत्य है।

उर्दू भारतीयता के सर्वथा विपरीत है। आज तक हमारे नारी समाज में प्राचीन परम्पराओं के प्रभावस्वरूप कुछ पातिव्रत्य धर्म बच पाया है। चाहे संसार तथाकथित भौतिक प्रगति की ओर जा रहा है तथा स्त्री को लोक-लाज आदि छोड़ लेडी बनाकर होटलों की हवा खिलाना एक फैशन है फिर भी भारतीय संस्कृति हमें सीता-सावित्री का उज्ज्वल आलोक मार्ग दिखा रही है। किन्तु उर्दू की दशा खून के

आँसू बहाने वाली है। उर्दू का अधिकांश साहित्य अश्लील नृत्य, मदिरा-कोठों पर होने वाली महफिलों में सिमटा हुआ है। क्या ऐसा साहित्य, ऐसी भाषा राष्ट्र को अपना उचित सम्मान दिला पाने में सक्षम हो सकती है? क्या ऐसी भाषा को अपने देश की राष्ट्रभाषा बनाना हमारे लिए गौरव की बात हो सकती है?

आप स्वयं ही बतलायें। ऐसी भाषा को एक स्वतन्त्र देश की राष्ट्रभाषा बनाना हमारे लिए कितने गौरव की बात होगी।

अब उर्दू की सुगमता को ही लीजिये। एक दिन हमारे मास्टर साहेब ने शब्द बोला—तवारीख। एक छात्र ने कहा कि ठीक उच्चारण तारीख है। इस पर मास्टर साहेब चकरा से गये। आधा घंटा सोच-विचार होता रहा किन्तु निश्चित हल नहीं हुआ, सोचा कि चलो किसी मौलवी से पूछेंगे। बात मामूली है। किन्तु आज जिस भाषा के मामूली उच्चारण के लिये मौलवी को प्रमाण माना जाता है कल उसी भाषा में क्लिष्ट तथा श्लिष्ट शब्दों के लिये, व्याख्या के लिये यदि अरब और ईरान के साहित्यकारों की आवश्यकता पड़े तो यह कोई अचम्भे की बात नहीं है। जन्म के पश्चात् एक दिन का बच्चा भी यदि अपने मुख से कुछ सर्वप्रथम उच्चारण करता है तो ॐ। इसलिए ईश्वर ने भी कहा है 'अक्षराणाम् अकारोऽस्मि' अक्षरों में मैं 'अ' स्वर हूँ। बच्चा रोते अथवा बोलते हुए नागरी के सारे स्वरों का अभ्यास अपने जीवन के पहले दिन ही कर लेता है। अ आ इ ई उ ऊ इत्यादि। क्या संसारभर का कोई बच्चा जन्म लेने के समय अपने मुख से अलफ, बे, पे; इत्यादि बोलता है? कदापि नहीं। भाषा के प्राकृतिक एवं वैज्ञानिक नहीं होने का यह भारी प्रमाण है। उर्दू भाषा के उच्चारण एवं लेखन में कोई साम्य नहीं है। अलिफ को जिस प्रकार लिखा जाता है वह कदापि वैज्ञानिक नहीं है। पढ़ने वाला बच्चा भी चकित हो जाता है लेकिन उसे करना वही पड़ता है जो उसके मौलवी या शिक्षक उसे बताते हैं। दुनिया में ऐसी कोई भी भाषा नहीं है जो दायें से बायें की ओर लिखी जाती है। क्या अपनी भाषा को एक विशिष्ट रूप देने की विकृत और अवैज्ञानिक सोच नहीं है? संसार की सर्वभाषाओं से विचित्र, उलटी ओर से लिखी जाने वाली, उच्चारण-लेखन तथा सबमें अधूरी, अवैज्ञानिक तथा अप्राकृतिक, कोष में कंगाल तथा साहित्य में भिखारी, भारतीयत्व की आमूल वैरिणी उर्दू भाषा विश्ववंद्य भारतीमाता का स्थान ले सकेगी, यह विचार भी अति हास्यास्पद है।

भारत के एक महापुरुष को अमरीका में English में चिट्ठी लिखते हुए देखकर एक Lady ने कहा Have you got no language of your own? इस पर उसका सिर लज्जा के मारे गड़ गया।

आज स्वतन्त्र भारत में उर्दू को अपनाकर संसार में किसको मुँह दिखा सकेंगे? क्या भारत में मुस्लिम आक्रमणकारी मुहम्मद बिन कासिम के आने के पूर्व

भारतवर्ष नाम का कोई देश नहीं था? अथवा यहाँ कोई राष्ट्रभाषा ही नहीं थी? जब हजरत साहब का जन्म भी नहीं हुआ था उस समय भारत ने अपने दिव्य सन्देश से संसार को आलोकित कर दिया था। सकल विश्व में भारत की जय-जयकार हो उठी थी। क्या आज घर में विमाता के घुस आने पर माता को दुत्कार देंगे? क्या आज उर्दू के प्रवेश पर हमारी गौरवदायिनी, ज्ञानदायिनी, प्राणदायिनी, प्रेमदायिनी, नस-नस की संजीवनी हिन्दी माता का राष्ट्रभाषा का सिंहासन छिन जायेगा? कदापि नहीं। हे जननी! जब तक हम तेरे कोटि-कोटि सुत जीवित हैं, जब तक हमारी नसों में प्रवाहित होने वाले रुधिर में गीता का ज्ञान तथा सामवेद का गान गूंज रहा है, जब तक रामायण तथा महाभारत की संस्कृति में पला हुआ एक भी बच्चा जीवित है तब तक हे माता! हम तेरे चरणपुजारी स्वदेशानुराग भरे हृदय सुमनों से तेरी अर्चना करते रहेंगे।

मुसलमानों की भारत-विजय सम्भवतः विश्व की सर्वाधिक रक्त-रंजित घटना है।

विश्वप्रसिद्ध अमरीकन इतिहासकार **विल डूरेन्ट**

प्राचीनतम मुसलमान इतिहासकार फरिस्ता के मतानुसार इस देश में मुसलमानों के प्रथम आगमन के समय यहाँ हिन्दुओं की संख्या 60 करोड़ थी अब हम बीस करोड़ में उतर आये हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

सर यदुनाथ सरकार ने कहा था—

विकार मुस्लिम राजनीति में है, क्योंकि इसके अनुसार मुस्लिम राज्य में एक ही धर्म मानने वाले रह सकते हैं। काफिरों के लिए इसमें कोई स्थान नहीं है। केवल नीच टहल करते हुए खिराज गुजार के रूप में मुसलमानों की सेवा के लिए ऐसे काफिरों को जिम्मी कहा जाता है, उन्हें समानता के अधिकार नहीं दिए जाते।

—सर यदुनाथ सरकार

आज भी ऐसे लक्षण नहीं दिखाई दे रहे हैं कि वे (हिन्दू व मुसलमान) कभी भी मिल कर एक हो सकेंगे? शताब्दियों तक साथ रहने के बाद भी उस पर पुल न बन सका।

—रमेशचन्द्र मजूमदार

जिस धर्म के अनुयायियों को यह शिक्षा दी जाती है कि लूटमार और मानव हत्या ही उनका प्रधान धार्मिक कर्तव्य है। वह धर्म किसी भी प्रकार मानव-उन्नति तथा संसार की शांति के लिए हितकर नहीं हो सकता है।

—यदुनाथ सरकार-औरंगजेब, पृष्ठ सं. 187

सुप्रसिद्ध गाँधीवादी विचारक, चिंतक आचार्य धर्मपालजी कहते हैं— 'इस्लाम का घोषित लक्ष्य दारुलहर्ब का विध्वंस और विनाश कर सम्पूर्ण विश्व में दारुल इस्लाम प्रस्थापित करना है।' सम्भवतः इसी कारण महात्मा गाँधी को भी यह कहना पड़ा था कि 'इस्लाम की सदियों से साम्राज्य विस्तार की परम्परा रही है। आचार्य धर्मपाल ने इस विषय में भारतीय मनीषा को स्पष्ट करते हुए लिखा है—विश्व के ऐसे समूहों, समाजों, आदर्शों आदि के उदय व विस्तार के बारे में भारतीय मनीषा सदैव प्रायः अनजान बनी रही जो दूसरे समाजों का विध्वंस कर या पूर्ण अधीन बनाकर उन्हें अपने अनुरूप रूपांतरित करना अपना परम पुरुषार्थ या कर्तव्य मानते हैं और इसी में जीवन का वैभव देखते हैं।

यदि हो मूर्खता में विश्वास, मिलेगा जनगण को संत्रास।

—डा. राधाकृष्णन्

अगर अमीन खिराज में काफिर (हिन्दू) से चांदी मांगे तो उसे सोना देने को तैयार रहना चाहिए। यदि वह काफिर के मुंह में थूकना चाहे तो उसे अपना मुंह खोल देना चाहिए। काफिरों को लूटने, उन्हें दण्ड देने और मारने की आज्ञा अल्लाह ने मुसलमान शासक को दी है। ऐसा करके वह इस्लाम की सेवा करता है जो अल्लाह का ही कार्य है, अतः इसके लिए मुसलमान को कयामत के दिन कोई सजा नहीं मिलेगी।

—जियाउद्दीन-बरनी-तारीख-ए-फीरोजशाही

1576 ई. में हल्दी घाटी के प्रसिद्ध युद्ध में अकबर कालीन लेखक अब्दुल कादिर बदायूंनी भी युद्ध में आया। उसने आसिफ खां से पूछा—हमारी तरफ भी राजपूत सैनिक और राणा की सेना में भी राजपूत सैनिक हैं। दोनों ओर के राजपूतों की वेशभूषा, चाल-ढाल सब एक से हैं। युद्ध जब घमासान हो रहा होगा तो हम कैसे पहचानेंगे कि कौन-सा राजपूत अकबरी लश्कर का है कौन-सा राणा प्रताप के लश्कर का? इस पर आसिफ खां ने कहा—'चाहे जिधर का राजपूत मारा जाय, फिक्र न करना क्योंकि मारा तो 'काफिर' ही जायगा।' इस पर बदायूंनी (मन्तखब-उन-तवारीख में) लिखता है आज मुझे मुल्ला शीर की पंक्तियों का अर्थ समझ में आया–

तलवार किसी की हो वार तो इस्लाम का ही होगा।

—डा. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव-मुगल साम्राज्य

औरंगजेब बलवान और प्रतापी बादशाह था। उसके समय में इस्लाम की

सुयश पताका बहुत ऊंचे पर पहुँच गई। कुफ्र और ईमान के संघर्ष में वह हमारे तरकस में (आखिरी) तीर था। जब नास्तिकता का नापाक बीज, जिसका पालन अकबर ने किया था, दारा के हृदय में अंकुरित हुआ, तो धर्म की ज्योति मंद पड़ने लगी। तब खुदा ने धर्म-रक्षा के लिए आलमगीर को खड़ा किया। उसकी तलवार ने पाप और अपवित्रता की फसल में आग लगा दी और धर्म की मशाल फिर प्रज्वलित हो उठी। मिली-जुली संस्कृति दारा के साथ समाप्त हो गई।

—डा. इकबाल

यदुनाथ सरकार और डा. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव जैसे उच्च कोटि के इतिहासकारों ने लिखा है—'हिन्दू अपने घर (मातृभूमि) में ही पराया हो गया था। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के विद्वान् प्रोफेसर डा.हबीब को लिखना पड़ा— 'यह इस्लाम का दुर्भाग्य है कि भारत में उसका परिचय ऐसे लोगों के द्वारा हुआ जो क्रूर, हिंसक, रक्तपात-प्रिय और विध्वंसक थे। मुहम्मद बिन कासिम से लेकर मोहम्मद गौरी तक इसी प्रकार के लोग थे। इस्लाम यह आज्ञा नहीं देता कि विभिन्न धर्मावलम्बियों का कत्ल किया जाए और देवालय तोड़े जाए।'

भारत ही नहीं अपितु विश्व के उदारतम महापुरुषों ने इस्लामानुयायियों की इन महाविनाशकारी करतूतों पर हार्दिक दुःख व्यक्त किया है।

मुसलमान मात्र की दृष्टि में अरब और ईरान ही इस्लाम के असली देश थे। भारत के मुसलमान मन से सपना अरब और ईरान का ही देखते थे। हिन्दुस्तान उनके शरीर का घर था, आत्मा का घर अरब और ईरान था।

—रामधारीसिंह दिनकर (संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ सं. 472)

'मेरे मौला बुला ले मदीना मुझे'।

यह मुसलमानों की आन्तरिक कामना है। मुसलमान भारत भूमि को नापाक समझते हैं इसलिए अपने देश का नाम 'पाकिस्तान' रखा। भारत की भूमि उनके लिए पवित्र नहीं है, उनके उत्सव पालन के योग्य नहीं है। जिस भूमि पर उत्सव पालन करते हैं उसे पहले अरबवासी को बेचते हैं। फिर वह अरबवासी उन्हें दान में देता है तब वह भूमि उनके उत्सव पालन के योग्य, पवित्र होती है उसके पूर्व नहीं।

पठान एवं मुस्लिम बन्धु! पाणिनि और यास्क का वंशज है, पर चूंकि वह मुसलमान है, इसलिये वह हिन्दू नहीं है। इनके पूर्वजों ने वैदिक साहित्य के अनमोल अंशों का सम्पादन किया था, परन्तु चूंकि वह मुसलमान है इसलिये उसके लिये वह साहित्य कुफ्र है।

—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

श्रीलंका, इस्लाम से पूर्व अरब धर्मान्तरण एवं शुद्धीकरण

न्यू रीपब्लिक (रांची) समाचार-पत्र ने 22 मई, 1982 अंक में मेरे विश्व हिन्दू सम्मेलन कोलम्बो में भाग लेने पर लेख लिखा था। इसी प्रकार इण्डियन एक्सप्रेस और टाइम्स ऑफ इण्डिया में भी कुछ लेख लगभग 3 सप्ताह पहले प्रकाशित हुए थे।

श्रीलंका—मुझे पिछले 3 मास में दो बार श्रीलंका जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। मध्य फरवरी से मध्य मार्च तक मैं वहाँ के मुख्य विद्यालय, संग्रहालय और कई सांस्कृतिक संस्थानों में सांस्कृतिक विचार-विमर्श के लिये गया। पुनः मध्य अप्रैल से मई '82 (प्रथम सप्ताह) तक मुझे श्रीलंका शासन ने कुछ शोध-पत्र पढ़ने और हिन्दू संस्कृति विषय पर एक प्रदर्शनी आयोजित करने के लिये निमन्त्रण दिया था। इस सफल अभियान के लिये मैं प्रभु का बहुत आभारी हूँ।

इस्लाम से पूर्व अरब—हिन्दू भारतीय दर्शन का विद्यार्थी होने के नाते यूनेस्को ने मुझे कई देशों, जिनमें मुस्लिम और ईसाई देश भी हैं, की यात्रा एवं भाषण के लिये आमन्त्रित किया था। मेरे कई मुस्लिम एवं ईसाई विद्वानों के साथ बहुत मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध हैं। मैंने इस्ताम्बुल के विश्वविद्यालय और जर्मनी एवं तुर्की के पुस्तकालयों में शोध के आधार पर इस्लाम से पूर्व अरब पर लेख पढ़ा था जो विश्व हिन्दू सम्मेलन में उत्कृष्ट पाया गया। मैं वहाँ के प्रेस, पत्रकार भाइयों, विद्वानों का मेरे बारे में मधुर शब्दों के लिये आभारी हूँ। मैं पाठकों से प्रार्थना करूंगा कि वे एक ग्रन्थ Saiyur-Okul सेअरुल-ओकुल जो Maktabe Sultania Istanbul (Turkey) में उपलब्ध है, को ध्यानपूर्वक पढ़ें। यह ग्रन्थ सन् 1742 में तुर्की के शासक नवाब सुलतान सलीम के आदेशानुसार बना था। यह ग्रन्थ सर्वप्रथम बगदाद के राजकवि कालिफ हरून रशीद (8वीं शती) ने 5 स्वर्ण और 16 चमड़े के पतरों पर लिखे ज्ञान के आधार पर संकलित किया था।

यह पाण्डुलिपि और 8वीं सदी के संकलन बगदाद संग्रहालय की राष्ट्रीय धरोहर हैं। यह 1742 ई. का संस्करण हस्तलिखित ग्रन्थ रेशम के पन्नों पर सुनहरी बार्डर में दिया

गया है, मध्यपूर्व के सबसे बड़े पुस्तकालय मक्तबे सुलतानिया (इस्तम्बूल) में सुरक्षित है। इस ग्रन्थ का पहला प्रकाशन (कागज पर) सन् 1864 में बर्लिन में हुआ था और दूसरा संस्करण 1932 में बेरूत में हुआ। इस ग्रन्थ में इस्लाम से पूर्व अरब के विषय में कई तथ्य पढ़ने को मिलते हैं। पाठक एक अन्य 1000 पृष्ठों का शोधग्रन्थ पढ़ें— Vikrama Smriti Grantha विक्रम स्मृति ग्रंथ Scindia Oriental Institute (विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, भारत द्वारा प्रकाशित)। ये पुस्तकें इस्लाम धर्म से पूर्व अरब में हिन्दू धर्म के प्रचार, प्रसार को दर्शाती हैं। कोई भी इतिहास का पाठक अपने पूर्वजों की धार्मिक निष्ठा को नकार नहीं सकता। इतिहास भूतकाल के साथ निरन्तर वार्तालाप है— इसे थोथे जातिवाद से दूषित नहीं किया जाना चाहिये।

Conversion धर्मान्तरण, धर्म परिवर्तन—समाचारपत्र में लिखा है कि मैं धर्मान्तरण का कट्टर विरोधी हूँ किन्तु शुद्धीकरण को समर्थन देता हूँ। इसका श्रीलंका के समाचार से बिल्कुल सम्बन्ध नहीं है। यह तो केवल मेरी कोलम्बो यात्रा द्वारा अर्जित गरिमा को धूमिल करने का प्रयास मात्र है। इसलिये तथ्यों का स्पष्टीकरण आवश्यक है।

हर व्यक्ति को धार्मिक निष्ठा और पूजा करने की स्वतन्त्रता है। किसी धर्म को मानना या स्वेच्छा से धर्म-परिवर्तन भी संविधान द्वारा रक्षित है। किन्तु किसी प्रकार के लोभ, लाभ, धमकी, धोखे से किसी का धर्म परिवर्तन करना अनुचित व अनैतिक है और उसका जन्मजात धर्म-परिवर्तन अधर्म एवं अपराध के समान है।

(क) यदि परमेश्वर सर्वत्र, सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान है, यदि प्रभु न्यायप्रिय है, तो वह हर व्यक्ति को उस देश और धर्म में जन्म देता है जो उसके लिये उपयुक्त है और मोक्ष का द्वार दिखाता है। कोई पादरी या धर्मगुरु क्यों किसी की जन्मजात धार्मिक निष्ठा को बदल कर प्रभु की योजना में व्यवधान डाले? क्या वह परमेश्वर से अधिक बुद्धिमान है?

(ख) यदि सभी धर्म सत्य पर आधारित हैं, सभी धर्म एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते हैं तो फिर धर्मान्तरण की क्या आवश्यकता है? हिन्दू धर्म सभी धर्मों को समान मानता है किन्तु इस्लाम और ईसाई धर्म अन्य धर्मावलम्बियों को नास्तिक मानते हैं। यह मानसिक आग्रह ही भूतकाल के सभी धर्म के नाम पर हुए युद्धों और वर्तमान के जातिवाद के झगड़ों का मूल कारण है।

(ग) धर्मान्तरण का राजनीतिक पक्ष भी है। धर्म प्रचार से विश्व में अपना धार्मिक साम्राज्य बढ़ाने का प्रयास हो रहा है। नव-धर्मान्तरित लोग इन धर्मगुरुओं के हाथ के मोहरे बन जाते हैं। धर्मान्तरण के फलस्वरूप कई लोग अपनी जन्मभूमि छोड़ने के लिए विवश हो जाते हैं। सन् 1947—भारत का बँटवारा - धर्मान्तरण का कड़वा फल ही है। मीनाक्षीपुरम में सामूहिक

धर्मान्तरण भारत की सनातन संस्कृति को बदलकर यहाँ दारूल इस्लाम बनाने का ही प्रयास था।

(घ) धर्मान्तरण का कुप्रभाव भारत के कई क्षेत्रों—नागालैण्ड, मिजोरम, मेघालय, छोटानागपुर एवं मध्यप्रदेश के कुछ भागों में दीख रहा है। कोई भी सच्चा भारतीय इन राष्ट्रविरोधी क्रियाओं को अनदेखा नहीं कर सकता। इन क्रिया-कलापों के पीछे कई विदेशी शक्तियाँ हैं।

शुद्धीकरण—धर्मान्तरण किसी व्यक्ति की धर्मनिष्ठा पर डाका डालने जैसा है, शुद्धीकरण जन्मजात धर्मनिष्ठा को पुनः अपनाने की सुखद क्रिया है। धर्मान्तरण और शुद्धीकरण समान नहीं हो सकते हैं। क्या स्वामी और चोर समान हो सकते हैं? यदि हम किसी निर्धन आदिवासी, जिसका किसी लोभ, लाभ, भय या धोखे से धर्म परिवर्तन करा लिया गया है, उसे फिर जन्मजात धर्म आस्था में, उसकी इच्छा से लायें तो यह धर्मान्तरण नहीं कहा जा सकता है। यह एक पवित्र शुद्धीकरण है। भटका देना या किसी को भ्रमित करना तो अधर्म है—पाप है।

5 जून 1982 The New Republic, Ranchi

गाँधीजी का पश्चिमी सभ्यता पर मुख्य आरोप यह है कि वह सुख और समृद्धि के नाम पर व्यक्तियों एवं समाजों में लालच, लिप्सा और अंतहीन भोग-कामना को धधकाती है जिससे विवेक ढक जाता है और शैतानियत जागती है। (पूरा पश्चिम का इतिहास इसका साक्षी है।)

× × ×

संयुक्त संघ राष्ट्र के महासचिव कोफी अन्नान ने अगस्त 2000 में 'मिलेनियम रीलिजियस पीस समिट' के समापन सम्मेलन में हिन्दुओं का आह्वान करते हुए कहा—हिन्दू धर्म में कई सर्वहितकारी तथा उच्च सिद्धांत हैं। हिन्दुओं ने यह सब कुछ अपने तक सीमित रखा है। उन्होंने हिन्दुओं से शान्ति के नाम पर आह्वान कर निवेदन किया कि 5 अरब गैर-हिन्दुओं को बिना धर्म परिवर्तन के ये गुण सिखायें ताकि उन मूल्यों पर जीकर विश्व शांति स्थापित कर सकें और सर्वहितकारी तथा पराविद्या का ज्ञान भी लोगों को मिल सके।

इमाम अब्दुल्ला बुखारी पर धर्म प्रतिष्ठा हनन का फौजदारी मामला

रांची, 7 जुलाई, 1980

संस्कृति विहार रांची के निदेशक प्रो. हरवंशलाल ओबराय ने मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, रांची के न्यायालय में जामा मस्जिद के इमाम सैय्यद अब्दुल्ला बुखारी के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 153 ए, 124 ए, 500, 505 के अन्तर्गत फौजदारी मुकदमा किया है। श्री बुखारी ने पत्रिका 'वीक एण्ड रिव्यू', नई दिल्ली के 7 जून, 1980 अंक में प्रकाशित अपनी भेंटवार्ता में कहा था कि हिन्दुओं का कोई धर्म ही नहीं है जिससे एक हिन्दू के रूप में प्रो. ओबराय की धर्म भावना को भीषण आघात लगा है।

याचिका में कहा गया है कि हिन्दू धर्म पर ऐसा गन्दा तथा शरारत भरा आक्षेप सेना में गदर करवा सकता है तथा देश भर में आग लगा सकता है। क्योंकि सेना के जवान व अफसर इस दुष्ट आरोप की प्रतिक्रिया से भड़ीक सकते हैं। याचिका में यह भी कहा गया है कि इसी इमाम ने सितम्बर '79 में रांची में एक संवाददाता सम्मेलन में यह कह कर कि 'गो मांस हमारी कौम के हिस्से की खुराक है।' हमारी धर्म निष्ठा का बड़ी बेरहमी से खून किया है।

अपने इस कथन द्वारा कि 'हर मुसलमान पहले मजहब के प्रति वफादार है और बाद में देश के प्रति और वह भी भारत या पाकिस्तान के प्रति नहीं बल्कि अरब के प्रति।' श्री बुखारी भारतीय मुसलमानों के मन में देश के प्रति असन्तोष पैदा करके भारत सरकार के प्रति द्रोह तथा देश के प्रति विद्रोह भड़का रहे हैं।

याचिका में कहा गया है कि इमाम के ऐसे अपमानजनक वचन भारत में रहने वाले तथा विदेशों में बसने वाले हिन्दुओं के मन में दुर्भाव, घृणा व द्वेष पैदा कर सकते हैं। वास्तव में वाणी का प्रहार तलवार से भी अधिक घातक होता है। न्यायालय से प्रार्थना की गई है कि प्रतिष्ठा हनन के इस अपराध के लिए इमाम को कठोरतम एवं शिक्षाप्रद दण्ड दिया जाय।

श्री ओबराय की ओर से श्री त्रिवेणी प्रसाद सहाय, श्री कृपाल सिंह, श्री तिलक राम अधिवक्ता प्रस्तुत हुए तथा पटना हाईकोर्ट के अधिवक्ता श्री विश्वनाथसिंह गवाह के रूप में प्रस्तुत हुए।

6 जून 1986 को श्री अज्ञेयजी और नवभारत टाइम्स के सम्पादक श्री राजेन्द्र माथुर दीनदयाल शोध संस्थान के मंच से बोले। उनका निष्कर्ष यह था—राष्ट्रीयताबोध और राष्ट्र की मुख्यधारा की स्वीकृति-अस्वीकृति और पहचान का प्रश्न यदि अल्पसंख्यकों की स्वीकृति-अस्वीकृति और उनके प्रमाण पर छोड़ दिया जायेगा तो भारत ही नहीं दुनिया के किसी भी देश में राष्ट्रीयता, राष्ट्र के व्यक्तित्व और उसकी मुख्यधारा को कभी परिभाषित और रूपायित नहीं किया जा सकेगा। यह इतिहास का एक सर्वकालिक सत्य है कि भारत का अस्सी प्रतिशत बहुमत वाला समाज हिन्दू समाज है उसने ही देश का व्यक्तित्व बनाया है।

× × ×

मुसलमान लोग सबसे अधिक संकुचित और सम्प्रदायवादी हैं। उनका घोष वाक्य है—'अल्लाह केवल एक है और मुहम्मद उसका पैगम्बर है। उसके अतिरिक्त जो कुछ है वह न केवल बुरा है, अपितु नष्ट हो जाना चाहिए। इस घोष वाक्य पर आस्था न रखने वालों को तुरंत मार डालना चाहिए।'

संसार में कोई दूसरा धर्म नहीं है जो अपने-पराये की इस भावना का इतना अधिक शिकार रहा हो जितना कि अरब के पैगम्बर द्वारा स्थापित धर्म। और कोई दूसरा धर्म न होगा जिसने अन्य धर्मावलम्बियों पर इतने अधिक अत्याचार किए हो और रक्तपात किया हो। कुरान में यह आदेश दिया गया है कि जो इन उपदेशों को नहीं मानते उनका कत्ल कर देना चाहिए, उनकी हत्या करना उन पर दया करना है। और सुन्दर हूरों तथा सब प्रकार के ऐशो-आराम से परिपूर्ण जन्नत (स्वर्ग) को पाने का निश्चित मार्ग एक ही है और वह है इन काफिरों को मार डालना। ऐसे विश्वासों के फलस्वरूप जो भीषण रक्तपात हुआ है उसकी कल्पना तो करो।

—स्वामी विवेकानन्द

भारतीय परिप्रेक्ष्य में भाषाई अल्पसंख्यकों के अधिकार और जिम्मेवारियाँ

संयुक्त राष्ट्र संघ एक श्रेष्ठ संकेतक है उन तकलीफमय मानव जातियों के लिए, उनकी आशा और महत्त्वाकांक्षा के लिए, जो विश्वशान्ति और समृद्धि की प्यासी हैं। मनुष्य की तीव्र इच्छा है कि यह विश्व एक परिवारस्वरूप हो। यह महान् शंकराचार्य ने अपने अनुसरणीय दोहे में बहुत सुन्दर रूप से चित्रित किया है।

माता च पार्वती देवी, पिता देवो महेश्वरः।
बान्धवाः मानवाः सर्वे, स्वदेशो भुवनत्रयम।।

अर्थात् मेरी माता देवी पार्वती है।
और पिता भगवान् शिव, आदरणीय
तमाम मनुष्य मेरे अपने नाती-रिश्तेदार है,
तमाम ब्रह्माण्ड मेरी अपनी मातृभूमि है।

मानव अधिकार के चार्टर में जिसे वैश्विक शरीर ने अपनाया है वह मानव व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता, सम्मान और पवित्रता का (चार्टर) राजपत्र है।

प्रत्येक अधिकार कुछ कर्तव्यों को मानकर चलता है। पर यह थोड़ी वास्तविक किन्तु अजीब बात है कि मानवाधिकारों के संयुक्त राष्ट्र संघ के राजपत्र में, जो कि 30 लेखों से निर्मित है, उसमें कर्तव्यों के बारे में मात्र थोड़ा 29वें लेख में दिया गया है। भारतीय जीवन पद्धति में कर्तव्यों को अधिकारों से भी पहले जगह दी गई है। वैदिक भजन में यह कहा गया है कि—कृतम मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहितः—अथर्व 7/52/8। अर्थात् मेरे दायें हाथ में मेरे कर्तव्यों को मजबूती से पकड़े हूँ और मेरे अधिकार (विजय) स्वतः ही मेरे बाएं हाथ में पहुंच जाते हैं।

शब्द अधिकार जर्मन शब्द Rectus से लिया गया है जिसका अर्थ है कि सीधा या नियमों (दण्ड) के अनुसार। और शब्द 'नियम' के भी दो अर्थ हैं। (अ) एक छड़ (अर्थात् लम्बाई नापने का फुट्टा) जो कि सीधी लाइन को मापता है। (ब)

एक सत्ता का प्रतीक राजदण्ड जो प्रजा को सीधा रखता है नियमों के आधार पर भय पैदा करके। पश्चिम में एक शासक को Ruler कहा गया है क्योंकि उसके हाथ में एक दण्ड होता है। या उसके दायें हाथ में कानून होता है। दायें हाथ में ही अधिकार होता है जैसाकि दण्ड या Rectus को पकड़ने में होता है।

भारतवर्ष में दायें हाथ को 'दक्षिण हस्त' कहा जाता है अर्थात् वह हाथ जो अपने कर्तव्यों को कुशलतापूर्वक करने के उपयोग में आता है और जो दक्ष लोगों को दक्षिणा देता है। इस प्रकार भारत में हमारा दायां हाथ हमारे अधिकारों के दावों को जताने के लिए नहीं है बल्कि वह समाज के श्रेष्ठ व्यक्तियों को दक्षिणा देने के लिए है और हमारे सबसे पवित्र कर्तव्यों को (ऋणचतुष्कः) करने के लिए है। जब हम गायत्री मन्त्र का सूर्य की ओर मुंह करके सुबह जाप करते हैं तब हमारा दक्षिण हस्त दक्षिण दिशा की ओर होता है। यही कारण है कि दक्षिण दिशा को हम 'दक्षिणा दिशा' कहते हैं। आधुनिक भूगोलशास्त्री उत्तर को नक्शे में ऊपर की ओर दर्शाते हैं। भारत में 'उत्तर शब्द' का अर्थ है—बाद में। ठीक वैसे ही 'मरणोत्तर' का अर्थ है मृत्यु के पश्चात्। हमारी प्रतिदिन की प्रार्थना में हम पूर्व दिशा की ओर देखते हैं तब बायां हाथ उत्तर की ओर होता है अर्थात् वाम दिशा। इसलिए भारत में हमेशा दायां हाथ, जो कि कर्तव्य के लिए है, उसी का शान से वर्णन किया गया है। यह वो हाथ है जो दक्षिणा देता है, जो कुशलतापूर्वक कार्य करता है तथा यह दक्षिणा हस्त है। वह सबसे पहले आना चाहिए और बाकी सब चीजों का महत्त्व बाद में है (उत्तरकाले) या वाम में है।

भाषाई अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा

वेद घोषित करते हैं—

प्रब्रवाम शरदः शतम्

ईश्वर करे हम स्वतंत्रतापूर्वक सौ वर्षों तक बोल सकें (जो कि जीवन की अवधि मानी गई है)। मानव अधिकारों की वैश्विक घोषणा में भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष रूप से कोई अधिकार नहीं बताये गए हैं। परन्तु 19 वें लेख में इन्हें सूचना-माध्यमों से अपने विचारों को प्रकट करने की स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है। भाषा विचारों की सर्वोत्तम वाहक है। चूंकि विचार सुसज्जित भाषाई रथ में यात्रा करते हैं, तो विचारों की स्वतंत्रता में स्वतः ही भाषाई स्वतंत्रता हो जाती है। 26 नम्बर लेख में शिक्षा का प्रकार चुनने का अधिकार माता-पिता को दिया गया है जो वे अपने बच्चों को देना चाहते हैं। शिक्षा का अधिकार में अपनी चुनी हुई भाषा के माध्यम से स्वतः ही अध्ययन और अध्यापन का अधिकार मिल जाता है। भाषा विचारों को प्रकट करने के लिए इतनी ज्यादा आवश्यक है कि विचारों की स्वतंत्रता भाषाई स्वतंत्रता का पर्याय हो गया है।

शिक्षा का माध्यम

प्रत्येक व्यक्ति का अपनी मातृभाषा से स्वाभाविक लगाव होता है। यही वो भाषा है जिसके माध्यम से एक बच्चा इस विशाल विश्व से सर्वप्रथम परिचित होता है। चूंकि एक ममतामयी माता स्नेहपूर्वक अपने शिशु को अपनी ही मातृभाषा में दुनियावी बुद्धिमत्ता सिखाती है, इसी कारण एक बच्चा अपनी मातृभाषा को इतना प्रिय और पवित्र मानता है जितना कि वह स्वयं अपनी माता को मानता है। इसलिए मनुष्य का प्राकृतिक अधिकार है कि वह अपनी ही मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करे। यहाँ किसी भी प्रकार से तानाशाही नहीं है कि किसी जवान बच्चे को अपने प्राकृतिक विशेषाधिकार, जो कि उसके राष्ट्रीय कानून के तहत है, उसकी अपनी राष्ट्रीय जबान (भाषा) और इडियम (क्षेत्रीय भाषा शैली) में पढ़ाने से वंचित किया जाए।

'अगर एक तानाशाह की शक्तियाँ मेरे पास होतीं तो मैं हमारे लड़के और लड़कियों की विदेशी माध्यम से शिक्षा को रोक देता और तमाम शिक्षकों और प्रोफेसरों को आदेश देता कि वो इसमें परिवर्तन करें।' महात्मा गाँधी ने कहा था 'यह एक बुराई है जिसका एक संक्षिप्त इलाज अवश्य है।'

लगभग 50 साल पूर्व जर्मनी में केसर के शासनकाल में जर्मनी की महारानी ने फ्रांस की सीमा पर अपने एक गाँव का निरीक्षण किया जो कि फ्रांसिसी भाषाई होने के बावजूद जर्मन-शासन के अन्तर्गत आता था। एक छोटी छात्रा को, जो मुश्किल से 4 वर्ष की थी, कहा गया कि वह रानी के सम्मान में एक जर्मन-गीत गाए और उसने इसका सुंदर प्रदर्शन किया। रानी चाहती थी कि उस बच्ची को वह एक सुन्दर पुरस्कार दे। उस लड़की ने आंखों से आंसू टपकाते हुए रानी से प्रार्थना की, 'यदि महारानी मेरे स्वागत गीत की प्रस्तुति से प्रसन्न हैं तो हम चाहते हैं कि हम फ्रांसिसी बच्चों को जर्मन भाषा में अध्ययन के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए।' यह आंसू भरी उस फ्रांसिसी छात्रा की प्रार्थना मनुष्य की भाषाई स्वतन्त्रता की तीव्र इच्छा का प्रतिनिधित्व करती है।

भारत की भाषाई समस्या

एक प्रगतिशील और सृजनात्मक राष्ट्र के लिए एक प्रगतिशील और सृजनात्मक भाषा आवश्यक है। एक राष्ट्र की प्रतिदिन की प्रगति लोगों के प्रतिदिन भाषाई सृजन के रूप में दर्ज होती है। हमारा देश एक मिश्रित चरित्र वाला देश है। इसके अन्दर एक उद्देश्य और भविष्य की कल्पना की एकात्मता है, एक भव्य सांस्कृतिक परम्परा है, जो कि बहुत सी भाषाओं के माध्यम से व्यक्त की गई है। भारतीय संविधान भारत की तेरह भाषाओं को भारतीय भाषा के रूप में मानता है

जो निम्न प्रकार हैं:-संस्कृत, तमिल, तेलुगु, उर्दू, कश्मीरी, असमी, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, मलयालम, मराठी, उड़िया और पंजाबी।

भारतीय संविधान हिन्दी भाषा को सम्पर्क भाषा के रूप में मान्यता देता है जो कि सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। यह भारत की आधी आबादी द्वारा बोली जाती है। इसमें यह भी प्रावधान है कि संस्कृत हिन्दी भाषा के विकास का प्राथमिक स्रोत है।

संस्कृत भाषाओं की जननी है

विल डूरेन्ट एक प्रसिद्ध अमरीकन दर्शनशास्त्री जो 'The Story of Philosophy' का प्रसिद्ध लेखक है और 'The Story of Civilisation' में वह टिप्पणी करता है कि 'भारत हमारी जाति की मातृभूमि है और संस्कृत यूरोपियन भाषाओं की जननी है।' वास्तव में यदि कोई भाषा है जो पृथ्वी के सबसे विशाल सभ्य भू-भाग को जोड़ती है तो वह संस्कृत है। हम मनुष्य के अधिकारों की बात कर रहे हैं। मनुष्य और मानव शब्द भी संस्कृत शब्दों से लिए गए हैं जो मनु, मानव, मनुष्य आदि-आदि संस्कृत के 'मर्त्य' से आए हैं। हम अवस्तान मर्त हैं, अर्मेनियन 'मर्द' और लैटिन में 'मोरटल' आदि-आदि। इसी प्रकार संस्कृत में 'अमर्त्य' का समानान्तर Immortal और ambrosia है। चेक भाषा में जीवन के लिए शब्द जीवट है (जो संस्कृत के जीवित से है) और मृत्यु के लिए शब्द Mritwi (मृतवी) जो संस्कृत के मृत्यु से बना है। Mortuary (मोर्चरी) और Mortem अंग्रेजी में साफ है कि संस्कृत के मृत्य से लिए गए हैं। तमाम मानव संबंधों के नाम भी संस्कृत से ही लिए गए हैं—

शब्द

संस्कृत—Pitriह्लPidar (पर्शियन)-Padri-Padre, Pater, Father-Paternal

संस्कृत—Matriह्लMather (पर्शियन)-Mater-Mother, Maternal

संस्कृत—Bhratriह्लBiradar (पर्शियन)-Father, Fraternal, Brother

संस्कृत—Swasriह्लSister, Hamasri-Hamshira (पर्शियन)

संस्कृत—Duhitriह्लDukhtar (पर्शियन), Daughter

संस्कृत—Sunuह्लSon

शब्द 'दिन' संस्कृत के दीव और रात्रि शब्द संस्कृत के नक्त से है। अंकों के तमाम शब्द, मनुष्य शरीर के अंगों के नाम, चीनी-सल्फर, कपास, कपड़ा, हाथीदांत, चन्दन की लकड़ी और तमाम ज्ञान की शाखाओं के नाम अन्ततः संस्कृत और भारतीय भाषाओं से लिए हुए हैं।

क्षेत्रीय भाषाओं का विस्तार—लगभग तमाम भारतीय क्षेत्रीय भाषाएं संस्कृत की पुत्रियों के समान हैं और हिन्दी की बहिनें हैं। सब युगों-युगों से भारत को एकीकृत करने में तथा वैचारिक ऐक्य में एक ही महत्त्वपूर्ण सूत्र है जो कि क्षेत्रीय भाषाओं के सांस्कृतिक बगीचे की उपज है। समान सांस्कृतिक विचार, जो उत्तरी भारत के ऋषियों में थे और दक्षिण भारत के आचार्यों में थे, उन्होंने भारतीय संस्कृति की एकात्मता को पाला-पोसा और बढ़ाया। बिना यह परवाह किये कि क्षेत्र और भाषाओं में भिन्नता है। डा. राधाकृष्णन कहते हैं कि हमें जितनी सम्भव हो सके उतनी क्षेत्रीय भाषाओं को सीखना चाहिए जिनके माध्यम से हम भारत की आत्मा को समझ सकते हैं।

आज अलग तमिलनाडु की मांग है। दुर्भाग्यवश भाषा, जिसे विभिन्न लोगों में समझदारी के पुल का काम करना चाहिए, उसका दुरुपयोग राजनीतिज्ञ, लोगों के हृदय में जहर के बीज बोने में कर रहे हैं। तमिल शब्दकोश पर एक सरसरी निगाह डालने पर हजारों शब्द उत्तरी और दक्षिणी भाषाओं में समान पाए जा सकते हैं।

शब्द संस्कृत

यात्रा	Yatra (S)=Jatirai (Tamil)=Meaning—Travel
कथा	Katha (S)=Katai (Tamil)=Meaning—Story
द्वेष	Dwaisha (S)=Twaisha (Tamil)=Malice
धर्म	Dharman (S)=Taman (Tamil)=Duty
ग्राम	Graman (S)=Giraman (Tamil)=Village
पट्टन	Pattan (S)=Pattanam, Nagar (Tamil)=City
शुद्ध	Shuddha (S)=Shuttaman (Tamil)=Pure
कूट वार्ता	Kuta varta (S)=Katta vartai (Tamil)=Bad News
इदम	Idam (S)=Idu (Tamil)=This
अयम कूट वार्ता	Ayam kuta varta (S)=Adu Katta varda (Tamil)= This is a badnews
इदम पुस्तकम पठ	Idam Pustakam Path=Indu Pustakattaii Popadi (Tamil)= Read this book

इसी प्रकार तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम में भी भरपूर संस्कृत के शब्द हैं। यहाँ तक की छोटानागपुर की आदिवासी भाषाओं में भी बहुत सारे शब्द हैं जो हमारे हृदयों को एक साथ बांधते हैं।

कुरक्सा (Kuruksha)–Vaisya : Vanik (S)=Bania (Hindi)=Baniyas (kurukha or oraon language)=Meaning—A businessman (व्यापारी)

Lohkar (S) : Lohar (Hindi)=Loharas=(Kurkha or oraon Language)=लोहार

Vansh (S)—Bans (Hindi)=Bans=Bamboo

Mundrari—Kutia (S)=Kahan (Hindi)=Kota (Mundari)= Where=कहाँ

Taru (S)=Taru (Hindi)=Daru (Mundari)=Tree पेड़

Kaka (S)=Kauwa (Hindi)=Ka-u (Mundari)=Crow कौआ

Vishakta (S)=Vishaila (Hindi)=Bishyan (Mundari)= Poisonous=विषाक्त

Kurmali=Paniyam (S)=Pani (Hindi)=Pani (Kurmali)=Water पानी

Akhshi (S)=Ankh (Hindi)=Anka (kurmali)=Eye आंख

Mund (S)=Mund (Hindi)=Moonda (Kurmali)=Head सिर

इस तरह आधारभूत ढंग से हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं में कोई झगड़ा नहीं है। भाषा के रूप में वे एक-दूसरे की पूरक हैं। वे हजारों सालों से सहअस्तित्व में हैं और हमेशा-हमेशा एक-दूसरे के साथ सुरक्षित रह सकती हैं। इस प्रकार भारत के अक्षरकोश में बढ़ोतरी करती हैं।

भाषा की राजनीति—आधुनिक भारत के इतिहास की सबसे बड़ी भूल में से एक भारत सरकार की ये जल्दबाजी थी जिसमें भाषा के आधार पर विभिन्न राज्यों को मान्यता दी गई। वास्तव में भारत के इतिहास में भाषा कभी भी राजनीति या प्रचार का साधन नहीं रही पिछले हजारों वर्षों में। वास्तव में कुछ स्वार्थी राजनीतिज्ञों ने भाषाई भाईचारे का नारा ईजाद किया जिसके आधार पर उन्होंने अपनी कुल्हाड़ी की धार तेज की और राष्ट्रीय एकता की जड़ों को काटा। यह भाषाई दैत्य आक्रामक आंदोलन उत्पन्न कर रहा है जो कि अज्ञानी जनता में और सत्ता के भूखे राजनीतिज्ञों में पाशविक प्रवृत्ति पैदा कर रहा है।

उदाहरणार्थ

1. जंगली तरीके से असमी व बंगाली दंगे, जो सन् 1961 में हुए, वे पूरे भारत के लिए शर्मनाक थे। इसमें कुछ भारत के दुश्मनों ने दंगों की आड़ में भारतवासियों के जीवन व सम्पत्ति को लूटा। यहाँ तक कि श्रीरामकृष्ण मिशन आश्रम पर भी हमला कर उसे लूटा गया।

2. हिन्दी विरोधी दक्षिण भारतीय दंगों में तमाम भारत विरोधी ताकतों ने अंग्रेजी के झण्डे तले एकत्रित होकर अरबों रुपये की राष्ट्रीय सम्पत्ति जलाकर राख कर दी। पाण्डिचेरी के श्री अरविन्द आश्रम, जिसका भाषाई राजनीति से कोई लेना-देना नहीं था, उस पर भी हमला किया गया और वह भी केवल इस कारण क्योंकि वह भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति का प्रसिद्ध केन्द्र था और इस कारण भारत विरोधी अंग्रेजियत की आंख का कांटा था। डा. राधाकृष्णन की व्यक्तिगत लाइब्रेरी को भी जला डाला क्योंकि वह विश्व में भारतीय दर्शन की शान और सर्वोच्चता का चिह्न थी। एक पुलिस इन्सपेक्टर, जो उस लाइब्रेरी को बचाना चाहता था, उसे बुरी तरह पीटा गया तथा एक बोझ से लदी बैलगाड़ी को उसके ऊपर चढ़ा दिया गया। उसे एक पेड़ से बांधा गया, जब वह पानी के लिए चिल्लाया तब उसके मुंह में पेट्रोल उड़ेल कर जला डाला गया। हिंसा के ये अमानवीय कृत्य सभ्यता पर धब्बे हैं। भाषाई राजनीति इतने पतन तक ले जा सकती है।
3. मास्टर तारासिंह द्वारा शुरू किया गया पंजाबी सूबा आंदोलन उस अकाली नेता द्वारा अलग सिक्ख राज्य लेने के उद्देश्य से शुरू किया गया।
4. बिहार व बंगाल में भी भाषाई आंदोलन ने मनुष्यता को शर्मसार किया और मानव जीवन व सम्पत्ति का विनाश किया गया।

भाषाई राज्य अन्त में भारत की मातृभूमि को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट सकता है। भारत के कुछ विदेशी शत्रु इस झुकाव का फायदा उठा कर भारत व भारतीयता को कत्ल कर देना चाहते हैं। हमें इन सब कोशिशों के विरुद्ध संगठित होना होगा।

भाषाई फार्मूला—भारत सरकार इस भाषाई समस्या के हल में कमोबेश असफल रही है। तीन भाषाओं का फार्मूला हिन्दी, अंग्रेजी और एक क्षेत्रीय भाषा को पढ़ाने का प्रावधान करता है। इस फार्मूले को उचित तरीके से लागू करने का प्रयास नहीं किया गया। एक नई प्रवृत्ति कि स्नातकोत्तर तक तमाम कक्षाओं में क्षेत्रीय भाषाओं द्वारा पढ़ाया जाए, एक नई समस्या उत्पन्न करेगा।

इससे विभिन्न विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों और शिक्षकों में सांस्कृतिक आदान-प्रदान का अवसर समाप्त हो जायेगा। हम विभिन्न विश्वविद्यालयों में किये गये शोधकार्यों को आपस में जोड़ नहीं पायेंगे।

भाषाई अल्पसंख्यक अपने भाषाई क्षेत्र में बहुसंख्यक हैं और वही भाषाई समूह अन्य राज्य में भाषाई अल्पसंख्यक हैं। यह अल्पसंख्यकता और बहुसंख्यकता तमाम राज्यों में एक समान है।

यह अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक की समस्या, भाषा और साहित्य के पवित्र मन्दिर में इतनी नहीं है जितनी कि इससे राजनीतिज्ञों को बाहर रखने की है। बहुसंख्यक भाषाई समूहों को राज्य में अल्पसंख्यक भाषाई समूह के बीच सुरक्षा का भाव भरना चाहिए, जिससे कि बहुभाषाई लोगों को वही व्यवहार व सुरक्षा दूसरे राज्यों में प्राप्त हो सके। अगर हम भारतीय संस्कृति को अपने समान प्राचीन शान समझते हैं तो कोई भी भाषा दूसरी भाषा की विरोधी नहीं हो सकती। हम भारत माता की पूजा विभिन्न भारतीय भाषाओं और संस्कृति में से चुने हुए फूलों से कर सकते हैं।

मुरपद कोडी मुहमु डैयाल
उच्चिर भोईरपुरम् ओंद्रुडैयाल
इनल् चरपुमोजी पदिनेट्टु डैयाल
एनिल् चिंदनै ओंद्रुडैयाल

अर्थहृतीस कोटि मुख वाली है मेरी माँ एक है उसकी काया और आत्मा। भाषाएं वह अठारह बोलती है किन्तु एक ही है उसका चिंतन।

(उस समय भारत की जनसंख्या 30 कोटि थी)

तमिल के महान् कवि—सुब्रमण्यम् भारती

× × ×

शिशु माँ की गोद में माता की लोरी के साथ जो भाषा सीखता है वह सब मातृभाषा है, इस प्रकार 18 हमारी मातृ भाषाएं है, हिन्दी संस्कृत भाषा की एकनिष्ठ पुत्री होने तथा आधे से अधिक भारत में बोली जाने से सम्पर्क की भाषा है अतः राष्ट्रभाषा है।

—श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर (गुरुजी)

× × ×

'भारत एक राष्ट्र है, जिसकी एक ही संस्कृति है। संस्कृति ही भारत की आत्मा है। केवल हमारी ही संस्कृति भारत की रक्षा और विकास कर सकती है।

—पंडित दीनदयाल उपाध्याय

पंजाब समस्या_निदान और समाधान

पंजाब की समस्या आज पूरे राष्ट्र के लिए चिंता का विषय बन गई है। अकाली पंथ की राजनीतिक मांगों के आंदोलन के साथ-साथ उग्रपंथियों ने स्वतंत्र खालिस्तान की मांग भी उठा रखी है। उग्रपंथियों द्वारा दो-दो बार भारत के विमानों के अपहरण के राष्ट्रद्रोही प्रयास हुए, चौराहों पर भारतीय संविधान जलाया गया, स्वतंत्र खालिस्तान के नोट, मुद्रा, पारपत्र सभी छाप लिए गये, खालिस्तान आंदोलन की तर्कसम्मत आलोचना छापने वाले हिन्द समाचार के ख्यातनाम संपादक लाला जगतनारायण की हत्या कर दी गई, पंजाब के मन्दिरों में गोमांस फेंका गया, लाला जगतनारायण के सुपुत्र को गोमाता का कटा हुआ कान पार्सल करके भेजा गया तथा लिखा गया—'यह तुम्हारी माँ (गोमाता) का कान है, यदि हमारा बस चलता तो तुम्हारे बाप का कान काट कर भी भेज देते।' अकाली पंथ की सभी धार्मिक मांगों को मान लेने पर भी अकाली पंथ ने घोषणा की है कि वह अपनी राजनीतिक मांगों की पूर्ति हेतु कम से कम एक लाख बलिदानी योद्धाओं की सेना तैयार करेगा। इसका अर्थ स्पष्ट रूप से देश की जनता को संत्रास एवं प्रशासन से युद्ध ही है।

प्रत्येक समस्या का कोई मनोवैज्ञानिक कारण होता है, अकाली सिखों की ऐसी मनोवृत्ति निर्माण होने का कारण क्या है?

पंजाब में अंग्रेजों का प्रवेश सबसे अन्त में

सन् 1757 में प्लासी के युद्ध के उपरान्त अंग्रेजों का पंजाब को छोड़कर, शेष भारत में राज्य हो गया था। पंजाब में प्रवेश हेतु उन्हें लगभग 90 वर्ष और संघर्ष करना पड़ा। महाराजा रणजीतसिंह के जीवनकाल तक अंग्रेज, लाख प्रयत्न करने पर भी, पंजाब को हस्तगत नहीं कर सके।

महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु के उपरान्त सन् 1845 में अंग्रेजों ने पंजाब में प्रवेश का प्रयास किया। प्रथम सिख युद्ध में अंग्रेज हार गये तथा सिख जीत गए। द्वितीय सिख युद्ध में अंग्रेजों ने कूटनीति का अवलम्बन लिया। उन्होंने महाराजा रणजीतसिंह की विधवा रानी जिन्दां को फुसला कर अपनी ओर कर लिया। युद्ध-

भूमि में जब सिख वीरों ने तोपों को चलाना चाहा तो वे यह देखकर हताश हो गये कि तोपों में बारूद के स्थान पर सरसों भर दी गयी थी। इस प्रकार सिख वीर धोखे के शिकार हुए तथा पंजाब पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। रानी जिन्दां भी अंग्रेजों की छलनीति से क्षुब्ध होकर नेपाल भाग गई। महाराजा रणजीतसिंह के अबोध पुत्र कुंवर दिलीपसिंह को अंग्रेज इंग्लैण्ड ले गये। वहाँ उसका धर्मान्तरण कर उसे ईसाई बना दिया गया तथा पश्चिमी शिक्षा पद्धति से उसके राष्ट्रप्रेम को कुचलने का प्रयास किया गया। कहते हैं कि जवान होने पर उसे मातृभूमि के दर्शन की प्रबल लालसा हुई। बहुत आग्रह करने पर उसे एक जहाज में भारत की ओर लाया गया। किन्तु मुम्बई से 20/25 मील दूर ही जब उसका जहाज भारत की ओर आ रहा था तो भारत के तट पर सिख वीरों एवं अन्य जनता ने प्रबल नारे लगाने शुरू कर दिये—'जो बोले सो निहाल, सत् श्री अकाल; राज करेगा खालसा, याकी रहे न कोय' इत्यादि। अंग्रेजों को भय अनुभव हुआ कि कुंवर दिलीपसिंह के भारत पहुँचने पर कहीं पुनः क्रान्ति न हो जाए। अतः उसके जहाज को वहीं से वापस इंग्लैण्ड की ओर मोड़ दिया। मातृभूमि के दर्शन की प्रबल लालसा से उछलता हुआ उस नवयुवक का हृदय इस आघात को सहन न कर सका तथा उसका प्राणांत हो गया।

अंग्रेजों ने सिखों को अपना प्रथम शत्रु माना

जब लॉर्ड डलहौजी भारत में आया तो उसने कहा कि सिख हमारे प्रथम दर्जे के शत्रु हैं (Sikhs are our enemy number one)। सिखों से राज्य बड़ी कठिनाई से जीता जा सका है तथा सबसे अन्त में हस्तगत हुआ है। अतः सिख ही हमारे सबसे प्रबल शत्रु हैं।

सिखों का मनोबल गिराने के उद्देश्य से लॉर्ड डलहौजी ने एक जर्मन पादरी ट्रम्प (Trump) को कहा कि वह सिखों के धर्मग्रंथ गुरु ग्रंथसाहिब का अंग्रेजी में अनुवाद कर ऐसी व्याख्या करे जिससे सिखों का हिम्मत-हौंसला टूटे तथा वे समाज में अप्रतिष्ठा एवं आत्मनिन्दा के शिकार बनें। पादरी ट्रम्प ने अंग्रेजी में गुरु ग्रंथसाहिब की व्याख्या पर एक जिल्द लिखी थी और आगे कार्य जारी था। उसने लिखा कि 'गुरु ग्रंथसाहिब, ग्रंथ क्या है? चूँ चूँ का मुरब्बा है, विचित्र खिचड़ी है। नानक की वाणी, कबीर की वाणी, दादू की वाणी, रविदास की वाणी, नामदेव की वाणी— सभी का अनमेल गड़बड़ घोटाला है यह ग्रंथ। इसमें कोई एक समान दार्शनिक सिद्धान्त नहीं है। कहीं शंकर का अद्वैत, कहीं रामानुज का विशिष्टाद्वैत, कहीं रामानंद की भक्ति, कहीं निराकार, कहीं साकार, कहीं ज्ञान, कहीं भक्ति, कहीं वैराग्य—सभी का विचित्र सम्मिश्रण है।'

इस पुस्तक से सिखों की धर्मभावना को बड़ी चोट पहुँची। अंग्रेज यही चाहता भी था।

सिख राज्यों ने ब्रिटिश राज का लुटता ताज बचाया

अकस्मात् 1857 का स्वतन्त्रता युद्ध प्रारम्भ हो गया। मेरठ के क्रान्तिकारियों ने यमुना पार कर दिल्ली में प्रवेश किया। दिल्ली के क्रान्तिवीरों ने साथ दिया। 6-7 दिन तक दिल्ली में क्रान्तिकारियों का राज्य था। बहुत से अंग्रेज अफसर मार डाले गये, कई भाग गये। केवल मुट्ठी भर (25-30) अंग्रेज अफसर दिल्ली रिंग रोड पर भूली भटियारिन नामक किले में भूखे-प्यासे पड़े हुए अपनी अनिवार्य भावी मृत्यु के पल गिन रहे थे। तब सहसा पंजाब के सिख राज्यों (पटियाला, जींद, सरबान, संगरूर, कपूरथला) की ताजादम सेनाएं अंग्रेजों की सहायता के लिए पहुँच गईं। सिख वीरों ने अपने ही भारतीय भाइयों को मारा तथा हारते हुए, भागते हुए अंग्रेजों को पुनः पदासीन करवा दिया। सन् 1857 में जब सिख राज्यों ने ब्रिटिश राज्य के लुटते हुए ताज को बचा लिया तो लॉर्ड डलहौजी ने पुनः कहा—'मैं भूल में था। सिख हमारे पहले दर्जे के शत्रु नहीं, वे हमारे पहले दर्जे के मित्र हैं। उन्होंने ही हमारा लुटता हुआ ताज हमें पुनः पहनाया है।'

लॉर्ड डलहौजी ने जर्मन पादरी ट्रम्प को गुरु ग्रंथसाहिब की समालोचना करने से रोक दिया तथा सिख राज्यों को अंग्रेज भक्त बनाने हेतु अनेक प्रलोभन दिये।

रेवाड़ी के राजा राव तुलाराम (वर्तमान केन्द्रीय मंत्री राव वीरेन्द्र सिंह के पूर्वज) ने 1857 की क्रान्ति में भाग लिया था। अतः उन्हें दिल्ली के चाँदनी चौक में फांसी दी गई तथा उनके राज्य की भूमि छीन कर महेन्द्रगढ़ इत्यादि के हिन्दीभाषी क्षेत्र सिखों के राज्यों (पटियाला, कपूरथला, संगरूर आदि) को पुरस्कार स्वरूप जागीर में दे दिये गये। तब से लेकर हरियाणा राज्य के निर्माण तक वे क्षेत्र सिख राज्यों के अंग बने रहे।

लॉर्ड डलहौजी के स्वागत में स्वर्ण मन्दिर में दीपावली

अंग्रेजों की कूटनीति के भंवरचक्र में फँसे सिख बन्धुओं ने लॉर्ड डलहौजी को स्वर्ण मन्दिर में आमन्त्रित कर सार्वजनिक अभिनन्दन-सत्कार किया, उसे सरोपा (सम्मान शिरोवेष एवं खड्ग) भेंट किया तथा विशेष दीपमालिका सज्जा की। लॉर्ड डलहौजी जूतों सहित हरमन्दिर (दरबार साहिब के पवित्रतम प्रकाश मन्दिर) तक चला गया तथा उसने अपनी यूरोपीय पद्धति के अनुसार वहाँ पहुँच कर अपना हैट भी उतार दिया। अन्य सभी यात्रियों के लिए पाँव धोकर प्रवेश करने तथा सिर को ढक कर जाने का कठोर नियम है। किन्तु भारत के वायसराय को यह नियम-पालन करवाने का साहस उन सिख वीरों में भी नहीं बचा था जिन्होंने पूरे भारत के सम्राट् बन जाने पर भी अंग्रेजों को 90 वर्ष तक पंजाब में घुसने भी नहीं दिया था।

सिख संप्रदाय को हिन्दू समाज से विलग करने का षड्यन्त्र

अंग्रेजों ने सोचा कि जब 1857 में इस हिन्दू बहुल देश में सर्वत्र क्रान्ति की

ज्वालायें भड़क उठी थीं तब सिखों ने ही ब्रिटिश साम्राज्य को भस्म होने से बचाया था। इसलिए उन्होंने योजनापूर्वक सिखों को हिन्दू समाज से अलग कर सदा अपनी स्वामीभक्त के सैन्य शक्ति रूप में विकसित करने की चाल चली। घोषणा की गई कि सिख वीरों को सेना में सुविधायें दी जावेंगी, उनकी जनसंख्या के अनुपात से बहुत अधिक नौकरियाँ उनके लिए सुरक्षित होंगी। शर्त केवल यह होगी कि वे धर्म के कोष्ठ में हिन्दू न लिखकर सिख लिखें। हिन्दू समाज के अभिन्न अंग सिख बंधुओं को अपने मूल समाज से अलग करने का यह कुत्सित प्रयास था।

लॉर्ड मैकॉलिफ द्वारा हिन्दू द्वेष का विषैला डंक

लॉर्ड डलहौजी ने पादरी ट्रम्प का काम रुकवा कर कलकत्ता के अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर लॉर्ड मैकॉलिफ को यह कार्य सौंपा कि वह सिख समाज को मूल हिन्दू समाज से अलग करने हेतु ऐसी द्वेषी मनोवृत्ति निर्माण करने वाला साहित्य निर्माण करे। अंग्रेज की फूट डालने वाली नीति के अनुसार मैकॉलिफ ने कलकत्ता से ही घोषणा कर दी, 'मैंने सब धर्मों का अध्ययन किया है। उनमें सिख धर्म सर्वोत्तम है। सिख धर्म हिन्दू धर्म की शाखा नहीं, हिन्दू धर्म का सुधार आन्दोलन भी नहीं, हिन्दू-मुस्लिम समन्वय साधना भी नहीं। यह सब धर्मों में से सबसे अन्तिम, सबसे अत्याधुनिक एवं पूर्णतम धर्म है। (Sikhism is the youngest, The most modern religion, The Consummation of all religions.)

मैकॉलिफ ने सबको भ्रमित करने हेतु घोषणा कर दी कि वह नौकरी त्याग कर ईसाई धर्म त्याग कर सिख बनने हेतु अमृतसर जा रहा है। उसने अमृतसर जाकर अमृत छक कर, कड़ा पहनकर अपना नाम मैकॉलिफसिंह रख लिया। उसकी दाढ़ी पहले ही थी, केश उसने लम्बे रखे नहीं, जीवन भर टोप पहनता रहा। उसने अकालतख्त से उपदेश करना शुरू कर दिया, खालसा कालेज अमृतसर का सर्वेसर्वा बन गया। उसने सिखों को ठगने हेतु अपील की कि वह डिप्टी कमिशनरी का पद छोड़कर सिख धर्म का इतिहास एवं दर्शन छः भाग में लिखेगा। तदर्थ उसे आर्थिक सहयोग चाहिए। सिखों ने देशभर के गुरुद्वारों से अपीलें करके उसे लाखों रुपया एकत्र कर दिया। मैकॉलिफ ने कई वर्ष परिश्रम करके 'हिस्ट्री एण्ड फिलॉसफी ऑफ सिखिज्म' नामक ग्रंथ छः खण्डों में प्रकाशित किया। उसकी प्रथम पंक्तियों में ही उसने सिख मानस में एक विषैला डंक मारा। Sikhs! Beware of Hindus. They are an all absorbing nation. They have absorbed Huns, Shakas. Parthians and Seythians, Greeks and Iranians. They have absorbed Buddhism and Jainism. They would kill you in their fraternal Embrace.

सिखों, हिन्दुओं से सावधान रहो। वह सबको पचा लेने वाला राष्ट्र है। उन्होंने हूणों को, शकों को, पार्थियन-सिथियन को, यूनानी-ईरानी को, बौद्धों को, जैनों को सबको आत्मसात् कर लिया है। वे आपको भी अपने भ्रातृभाव के

आलिंगन में मार डालेंगे।—इस विषैले विचार का प्रभाव बड़ा भयानक हुआ।

हिन्दू-सिख भेद की अतिरंजित व्याख्या

मैकॉलिफ ने हिन्दू-सिख ऐक्य के पुष्ट सैद्धांतिक आधारों को दुर्लक्ष्य कर हिन्दू-सिख भेदभाव की विकृत एवं अतिरंजित व्याख्या की। उसने लिखा—हिन्दू जातिप्रथा मानते हैं। सिख नहीं मानते। हिन्दू मूर्तिपूजक हैं, सिख निराकार को मानते हैं, हिन्दू अवतारवाद मानते हैं, सिख नहीं मानते। हिन्दू कायर हैं, सिख वीर हैं। हिन्दू दाल खोर (दाल-भात खाने वाला) है, सिख मांस खोर है। हिन्दू पराधीन रहा है, सिख विजेता है। हिन्दू रूढ़िवादी है, सिख रूढ़िमुक्त है, इत्यादि।

इसने पंजाब के घर-घर में फूट डाल दी। वास्तव में अनेक हिन्दू निराकार के उपासक भी हैं, अनेक जाति-प्रथा को नहीं मानते, अनेक रूढ़िमुक्त हैं, किन्तु मैकॉलिफ ने इसी आधार पर भेद की दीवार खड़ी कर दी।

मैकॉलिफ ने अपनी विभाजक विषैली व्याख्या में कहा कि सिख केवल पंथ या जाति मात्र नहीं है, यह एक नूतन राष्ट्र है, जिसकी रचना गुरु गोविन्दसिंह ने की थी। Sikhs are not only a religion or nationality, It is a new nation. इस नये राष्ट्र को सदा राज्य करने का दायित्व एवं अधिकार गुरु गोविन्द सिंह ने दिया था। 'राज करेगा खालसा, याकी रहे न कोय।'

गुरु ग्रंथसाहिब की विभेदक व्याख्या

श्री गुरु ग्रंथसाहिब में कम से कम तीस हजार बार राम का नाम एवं लगभग 16 हजार बार कृष्ण एवं समानार्थक नाम आए हैं। गुरु नानक की वाणी है—

जे सुख चाहें रे मना, शरण राम की लेह
कहु नानक थिर कछु नहीं नश्वर मानव देह

पंचम गुरु श्री अर्जुनदेव ने विष्णु सहस्रनाम के समान सहस्रनामा ही लिखा—

अच्युत पारब्रह्म परमेश्वर अन्तर्यामी,
मधुसूदन दामोदर स्वामी मुरली मनोहर हर रंगा।

गुरु ग्रंथसाहिब में सम्पूर्ण कृष्णावतार की कथा आई है—

आपे गोपी कान्ह है प्यारा जन आपे गौ चराहा
आपे साँवल सुन्दरा प्यारा आपे वन्स बजाहा
कुवलियापीड़ आप मर चिन्दा प्यारा
कर बालक रूप पचाहा आप अखाड़ा पयिन्दा प्यारा
कर बेखे आप सो चाहा कर बालक रूप उपयिन्दा प्यारा
चाणूर कंस भेस माराठा। (पन्ना 606)

मैकॉलिफ ने लिखा कि सिखों का राम निराकार राम है। उसने विकृत

व्याख्या की कि रघुनाथ का अर्थ फकीर की रगों का नाथ—रगनाथ है। कृष्ण कान्ह गोपाल गोविन्द की भी मनमानी ऊटपटांग व्याख्यायें कर दीं। इस प्रकार सन्तवाणी के समन्वय ग्रंथ को विभाजन-विभेदन ग्रंथ बनाने का दुष्प्रयास हुआ।

दशम ग्रंथ के पाठ पर प्रतिबंध

मैकॉलिफ ने लिखा कि गुरु ग्रंथसाहिब तो सिखों का धर्मग्रंथ है किन्तु गुरु गोविन्दसिंह द्वारा रचित दशम ग्रंथ तो मात्र काव्यग्रंथ है। अतः किसी गुरुद्वारे में दशम ग्रंथ का पाठ नहीं होना चाहिए। इस प्रकार एक विदेशी षड्यन्त्रकारी कूटनीतिज्ञ ने खालसा पंथ के संस्थापक की वाणी का ही गला बड़ी चालाकी से घोंट डाला। यह इसीलिए किया गया क्योंकि दशम ग्रंथ गुरु गोविन्दसिंह की निजी हिन्दू आस्थाओं का बड़ा सुन्दर एवं सुविस्तृत दर्पण है। उसका पाठ चलते रहने से सिखों को हिन्दू समाज से विलग कर पाना असम्भव होता।

गोविन्द रामायण—चण्डी चरित्र

गुरु गोविन्दसिंह ने अपने 62 शिष्यों को संस्कृत एवं वेद शास्त्र पढ़ने हेतु काशी भेजा था। उनके दरबार में भी अनेक ब्रजभाषा के उत्तम कवि विद्यमान थे। उनके काशी में संस्कृताभ्यासी शिष्यों को निर्मला कहा जाता था। आज तक निर्मला सिख संस्कृत विद्वत्ता की परम्परा को जीवित किए हुए हैं। गुरु गोविन्दसिंह ने तुलसी के रामचरितमानस से प्रेरणा प्राप्त कर स्वयं पूरी रामकथा 'गोविन्द रामायण' ब्रजभाषा में लिखी—

रामकथा जुग जुग अटल, सब कोऊ भाखत नेत
स्वर्गवास रघुवर कियो, खागली पुरी समेत।
जो यह कथा सुने अरु गावे, दुख दोष तहँ निकट न आवै
राम भगत को यह गति होई, आधि व्याधि छू सकैं न कोई।।

अकाली दल की रचना में मैकॉलिफ के विषैले विचार डंक ने ही काम किया। अतः गोविन्द रामायण का पाठ तो बन्द हो ही गया। एक गुरुद्वारे में एक उपदेशक महाराज दशरथ का उपहास कर बोल रहा था—'देखिए, गुरु गोविन्दसिंह के चार साहबजादे कुर्बान हो गये—दो युद्ध में मारे गए और दो दीवारों में जिन्दा चुने गए किन्तु उन्होंने उफ तक नहीं किया किन्तु राजा दशरथ का प्राण अपने बेटे के वनवास मात्र से ही निकल गया। राजा दशरथ दशमेश गुरु के चरणों की धूल बराबर भी नहीं हैं।' मैंने अपने व्याख्यान में कहा कि 'देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है कि हम अपने गुरुओं एवं पूर्वजों की श्रद्धा का उपहास करने लगे हैं। खालसा पंथ के संस्थापक श्री गुरु गोविन्दसिंह ने महाराजा दशरथ के स्वर्गवास का जो चित्र खींचा है वह कितना भव्य एवं श्रद्धापूरित है—

प्राण गवन नृपवर करयो, प्रण नहि त्यागा जाय
देन कहे जो वर हुते, तन युत दिये चुकाय।।

अर्थात् राजा दशरथ ने प्राण त्याग दिया पर प्रण नहीं त्याग सकते थे। कैकेयी को जो दो वर देने का वचन उन्होंने दिया था उसे ब्याज में अपना तन देकर भी चुका दिया।

गुरु गोविन्दसिंह ने अपनी जीवनी विचित्र नाटक में लिखा कि उन्होंने हेम कुण्ड पर्वत पर बद्रीनाथ धाम के मार्ग में काली की आराधना की थी तथा वरदान स्वरूप उसी से शस्त्र प्राप्त किए।

वे बार-बार प्रार्थना करते—

देहू शिवा वर मोहि इहै, शुभ कर्मन ते कबहूँ न टरूं।
न डरूं अरि सों जब जाय लरौं निश्चय कर आपनी जीत करूं।।

चण्डी चरित्र में गुरु गोविन्दसिंह की सिंहवाहिनी दुर्गामाता की वंदना बड़ी हृदयस्पर्शी है।

नमो उग्रदन्ती अनन्ती सवैया। नमो जोग जोगेश्वरी जोग मैया।।
नमो केहरी वाहिनी शत्रु हन्ती। नमो शारदा ब्रह्म विद्या पढन्ती।।
नमो ऋद्धिन्दा सिद्धिदा बुद्धि देनी। नमो काल के काल की काल छनी।।
नमो ज्योति ज्वाला तुम्हें वेद गावें। सुरासुर ऋषीश्वर नहीं भेद पावें।।

श्रीमद्भागवत एवं श्रीकृष्ण चरित्र

गुरु गोविन्दसिंह ने दशम ग्रंथ में श्रीमद्भागवत के अनुसार सभी अवतारों की गाथायें सुन्दर ब्रजभाषा काव्य में लिखा है। भगवान श्रीकृष्ण की मुरली महिमा पर उन्होंने इतना सुन्दर लिखा है कि महाकवि सूरदास की रचनाओं का आनन्द मिलने लगता है—

रूखन ते रस चूवन लागा, झरें झरना गिरि ते सुखदायी
घास चूगें न मृगा बन के, खग रीझ रहे धुनि सुनि पाई
देव गंधार बिलावल सारंग, की धुनि के जिह तान बसाई
देव सभै मिलि देखन कौतुक, ज्यौं मुरली नन्दलाल बजाई।।

खालसा पंथ का उद्देश्य

गुरु गोविन्दसिंह ने चैत्र के नवरात्र में नैनादेवी नामक शक्तिपीठ में यज्ञ रचाया तथा अन्तिम दिन देवी के बलिदान हेतु पंचप्यारों का आह्वान किया। जिन पाँच वीरों ने बलिदान हेतु आत्मसमर्पण किया, वे केवल पंजाबी या सिख ही नहीं थे, वे

भारत के विभिन्न प्रान्तों के विभिन्न वर्णों के हिन्दू वीर ही थे।

1. भाई दयाराम लाहौर	(उत्तर भारत)	खत्री (क्षत्रिय)
2. भाई धर्मदास दिल्ली	(उत्तर भारत)	छिम्बा (छीपी)
3. भाई मोहकम चन्द	द्वारिका (गुजरात, पश्चिमी भारत)	नाई
4. भाई साहब चन्द	बिदुरपुरी (दक्षिण भारत)	जाट
5. भाई हिम्मत राय	जगन्नाथपुरी (उड़ीसा, पूर्वी भारत)	झीर (झींवर)

गुरु गोविन्दसिंह ने आह्वान किया—

जे आरज तू खालस होवें।
हंस हंस सीस धरम हित खोवें।।

(यदि तू खालस (शुद्ध) आर्य है तो हंस-हंस कर अपना शीश धर्महित बलिदान कर।)

इन युद्ध आर्य बलिदानी वीरों का सैन्य संगठन (खालसा पंथ) का उद्देश्य बताते हुए वे कहते हैं—

सकल जगत में खालसा पंथ गाजे, जगे धर्म हिन्दू, सकल भंड भाजे। निश्चय ही खालसा पंथ की स्थापना हिन्दू धर्म पर छाए हुए समस्त अत्याचार के काले बादलों को निरस्त कर हिन्दू धर्म की पुनर्जाग्रति हेतु ही की गई थी।

गुरुओं के हिन्दू संस्कार

सभी गुरु हिन्दू की सन्तान एवं हिन्दू श्रद्धापूरित श्रेष्ठतम हिन्दू सन्त थे। गुरु तेग बहादुर ने काश्मीर के ब्राह्मणों के तिलक एवं यज्ञोपवीत की रक्षा हेतु ही दिल्ली के चाँदनी चौक में अपना बलिदान दिया। इस बलिदान की प्रेरणा उन्हें अपने 9 वर्ष के सुपुत्र के इन शब्दों से ही मिली थी। यदि 'धर्म रक्षा के लिए किसी महापुरुष के बलिदान की आवश्यकता है तो आपसे बड़ा महापुरुष कौन है?' गुरु गोविन्दसिंह ने स्वयं अपने पूज्य पिताश्री के बलिदान का बड़ा गौरवपूर्ण वर्णन किया है—

तिलक जंजु राखा प्रभु ताका, कीन्हो बड़ा कलू महं साका।
धर्म हेतु एती जिन करी, सीस दिया पर सी न उचरी।।

गुरु तेगबहादुर के बलिदान से पूर्व भाई मतिदास एवं दयालदास नामक ब्राह्मणों ने बलिदान दिया।

सभी सिख गुरुओं के यज्ञोपवीत, विवाह संस्कार, अग्नि संस्कार वैदिक हिन्दू पद्धति से ही हुए। गुरु गद्दी पर बैठते समय सभी गुरुओं को हिन्दू परम्परा से तिलक लगाया गया तथा नारियल भेंट किया गया।

गुरु नानकदेव ने मृत्यु से पूर्व स्वयं गोबर लीप कर उस पर बिस्तर लगाया।

धर्मपत्नी के पूछने पर उन्होंने बताया कि 'वे अकाल पुरुष के घर जाने की तैयारी कर रहे हैं।' धर्मपत्नी ने कहा—'कल आपके पिताजी का श्राद्ध है।' तो गुरुजी ने उत्तर दिया—'अच्छा, हम दो दिन बाद जायेंगे।' अपने पूज्य पिताजी का श्राद्ध पूर्ण कर दो दिन बाद वे ज्योति जोत समा गए। अमृतसर नगर के निर्माता चौथे गुरु श्री गुरुरामदास ने कहा कि 'मेरी मृत्यु पर केशोदास पंडित को बुलाकर अंतिम संस्कार करवायें तथा मेरी अस्थियाँ हरिद्वार में प्रवाहित की जायें।' (रामकली शब्द महला-4) पितृ तर्पण की महत्ता में गुरु नानकदेव लिखते हैं—

आप न देहिं चुल्लू भर पानी निन्दहि तेहि जे गंगा आनी।।

(नास्तिक लोग अपने मृतक पितरों को चुल्लू भर पानी भी नहीं देते और निन्दा उस राजर्षि भगीरथ की करते हैं जो अपने पितरों के उद्धार हेतु गंगा को स्वर्ग से खींच कर भूतल पर ले आया।) 'आज तक गुरु नानकदेव, गुरु अंगददेव, गुरु अमरदास, गुरु अर्जुनदेव के श्राद्ध किये जाते हैं।'

गुरु नानकदेव द्वारा भगवान वासुदेव श्रीकृष्ण स्मृति

गुरु नानक ने स्पष्ट शब्दों में वासुदेव पुत्र वसुदेव कृष्ण की देवदेव कह कर स्तुति गाई है—

एक देवा कृष्ण देवा, देव देवा आत्मा
आत्मा श्री वासुदेवा, जे कोई जाने भेव
नानक ताका दास है, खोंई निरंजन देवा।

सिख-गुरुओं ने मन्दिर निर्माण किये गुरुद्वारे नहीं

मन्दिर शब्द देव-मन्दिर के लिए पर्यायवाची बन गया है। अतः गुरुओं ने प्रभु महिमा में हरमन्दिर, हरिमन्दिर (विष्णु मन्दिर), स्वर्ण मन्दिर स्थापित किये। स्वयं अपनी निजी प्रतिष्ठा के लिए गुरुद्वारे स्थापित नहीं किये। अकाली दल ने लॉर्ड मैकॉलिफ के विषैले विचार डंक से भ्रमित हो सिख समाज को अपने मूल मातृसमाज से अलग सिद्ध करने हेतु अपने उपासना गृहों को मन्दिर के स्थान पर गुरुद्वारा कहना प्रारम्भ किया तथा गुरुद्वारा आन्दोलन चलाया। महामना मालवीयजी ने कहा था कि सिख गुरुओं ने हिन्दू समाज की रक्षा के लिए जितने बलिदान दिये हैं उसका ऋण चुकाने हेतु पंजाब में प्रत्येक हिन्दू को अपना एक पुत्र केशधारी सिख बनाना चाहिए। परिणामस्वरूप प्रायः प्रत्येक घर में केशधारी सिख एवं गैर केशधारी (मौने) हिन्दू भाई प्रेम से रहते थे। पंजाब में उपासना गृहों को मन्दिर या धर्मशाला कहा जाता था। वहाँ गीता-रामायण एवं गुरु ग्रंथसाहब का साथ-साथ पाठ होता था। जनता देव दर्शन भी करती थी तथा ग्रंथसाहब दर्शन भी करती थी। गुरुद्वारा आन्दोलन द्वारा अंग्रेज सरकार से यह घोषणा करवा ली गई कि

जिस किसी भवन में गुरु ग्रंथसाहब हो वह गुरुद्वारा माना जावे तथा शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के अधीन हो जावे। दिल्ली में एक हिन्दूभक्त ने अपना बंगला गुरु कृष्ण राम को भेंट किया था। उसे गुरुद्वारा बंगला साहब कहा जाने लगा। जहाँ-जहाँ मन्दिरों एवं धर्मशालाओं में गुरु ग्रंथसाहब का पाठ या प्रकाश होता था वहाँ-वहाँ जबर्दस्ती आक्रमण-अतिक्रमण कर पंडितों-महन्तों को निरस्त कर या हताहत कर, रक्तपात कर आन्दोलन भड़का कर गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के कब्जे में कर लिया गया। तब से ॐ और राम के उपासक गैर केशधारी हिन्दुओं को ॐ और राम के उपासक केशधारी हिन्दुओं (सिखों) के उपासना-गृह भी बंट गए तथा हृदय भी बंटने लगे।

गुरुओं के वेश-परिवेश एवं स्वरूप बदले गये

सभी सिख गुरु भारत के अन्य आध्यात्मिक सन्तों के समान सरल साधु अंश वाले थे। गुरु नानकदेव सूर्यवंश की परम्परा में हुए थे। बहुत काल बाद लव के वंशजों में से एक राजा देवराय ने (अयोध्या से) राजसूय यज्ञ हेतु कुश के वंशजों में से एक राजा जगतराय (बाराबंकी) पर आक्रमण किया। जगतराय ने कहा कि रघुवंश में राम और भरत परस्पर एक दूसरे के लिए राज्य त्याग देते हैं, भाई-भाई से राज्य के लिए कभी लड़ता नहीं। अतः जगतराय देवराय के लिए राज्य छोड़कर काशी चले गये। वहाँ वेद पढ़कर वेदज्ञ बनकर जब पुनः एक बार अयोध्या लौटे तो सगोत्र भाई देवराय ने उन्हें राज्य लौटाना चाहा। किन्तु वे वेद विद्या में ही लगे रहे तथा राज्य स्वीकार नहीं किया। वे वेद पढ़ने के कारण वेदी कहलाए। उसी वेदी परम्परा के सूर्यवंशी क्षत्रिय कालूराम वेदी के घर नानकदेव का जन्म हुआ था। गुरु नानक से लेकर गुरु तेग बहादुर तक लम्बे केश-दाढ़ी रखने का नियम नहीं था। गुरु नानक से लेकर गुरु तेग बहादुर तक सिर पर लम्बे केश नहीं रखते थे। दाढ़ी भी लम्बी रखने का बन्धन नहीं था। जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदासजी के कई चित्र दाढ़ी सहित एवं कई दाढ़ी रहित भी मिलते हैं, उसी प्रकार गुरु नानकदेव के प्राचीन चित्रों में सिर पर साधुओं की टोपी है, पगड़ी बिल्कुल नहीं तथा दाढ़ी भी विशेष लम्बी नहीं। करतारपुर (निकट जालंधर) में गुरु नानकदेव की एक प्राचीन प्रस्तरमूर्ति है, जिसमें सिर पर टोपी, हलकी दाढ़ी एवं माथे पर तिलक है। शेष सिख गुरुओं के भी केश-दाढ़ी-पगड़ी नहीं थी। किन्तु मैकॉलिफ के विभेदक विष ने सभी गुरुओं के रूप-स्वरूप, वेश-परिवेश में अन्तर, सभी के दाढ़ी केश एवं पगड़ी वाले काल्पनिक चित्र प्रसारित कर दिये ताकि सिख सन्त अन्य हिन्दू सन्तों से पृथक् दर्शाये जा सकें। अंग्रेज की कूटनीति ने न केवल जन-जन का हृदय बांटा वरन् परम तत्त्व में सारे सन्त एक हो जाते हैं उन परम तपस्वी साधक-सन्तों को भी बांट दिया। राजनीति की कुटिल कूटनी ने अध्यात्म साधना की सुरसरी को विषाक्त बना दिया।

समस्त हिन्दू धर्म सम्प्रदायों का समान दार्शनिक आधार

आज के राजनीतिक स्वार्थों में अन्धे नेता यह भूल जाते हैं कि हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदायों (सनातन धर्म, आर्य समाज, जैन समाज, सिख समाज) के समान दार्शनिक आधार हैं—

1. आत्मा की अमरता का सिद्धान्त—

गुरु तेगबहादुर की वाणी है—

साधो यह तन मिथ्या जानो
इहं भीतर जो राम बसत है ताको सांचा मानो।

गुरु नानक की वाणी है—

आतम महिं राम, राम महिं आतम
चीन्हसि गुरु विचारा।

2. जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष—

गुरु नानक की वाणी है—

गुरु किरपा जे नर पै कीन्हीं बिन यह जुगत पिछानी
नानक लीन भयो गोबिन्द सों ज्यो पानी संग पानी।

3. (जब तक मोक्ष नहीं मिला तब तक) पुनर्जन्म—

गुरुवाणी देखें—

बहुत जन्म बिछुड़े थे माधव यह जन्म तिहारे लेखे
लाख सीस तैने किए यमराजों की भेंट
एक सीस तैं न दियो नारायण के हेत

4. पुनर्जन्म से संयुक्त कर्म सिद्धान्त—

गुरु नानक की वाणी है—

चंगियाइयाँ बुरआइयाँ वाचे धर्म हदूर
कर्मी आपो आपणी के नेड़े के दूर।।

(धर्म के दरबार में मनुष्य की अच्छाई-बुराई ही परखी जाएगी। अपने-अपने कर्म के आधार पर ही कोई जीव परमेश्वर के निकट या दूर हो सकता है।)

इतिहास, संस्कृति एवं पूर्व भाषा पूज्य प्रतीक—सभी एक हैं

सिख समाज का इतिहास हिन्दू से भिन्न नहीं। पर्व उत्सव संक्रांति, पूर्णिमा, बैशाखी, होली, दीवाली भिन्न नहीं। पंजाबी भाषा प्रचलित हिन्दी की अपेक्षा वैदिक संस्कृत के अधिक निकट है।

रामेण बलमम् कृतम् (संस्कृत) = राम ने बला कीता (पंजाबी)

व्यासेन आख्यातम् (संस्कृत) = व्यास ने आख्या (पंजाबी)

नवरात्रि पर्वे कन्यका पूज्यते (संस्कृत) = नौराते पर्व ते कंजकां पुजीदियां हन (पंजाबी)

जाज्वल्यमान तप्त अग्नि (संस्कृत) = जलदी तत्ती अग्ग (पंजाबी)

सिख गुरुओं ने भी गोमाता को पवित्र प्रतीक मानकर इसकी रक्षा का व्रत लिया।

यही देह आज्ञा तुर्क गहिं खणऊ, गऊ घात का दोष जग सो मिटाऊं।
यही आस पूरण करो तू हमारी, छूटै कष्ट गैयन, मिटै खेद भारी।।

(गुरु गोविन्द सिंह की प्रार्थना)

राष्ट्रहित में यथार्थवादी दृष्टिकोण रखें

भारत की जनता एवं प्रशासन का कर्तव्य है कि राष्ट्र की अखण्डता के हित में भावुकता या तुष्टीकरण की नीति त्याग कर यथार्थवादी राष्ट्र हितैषी दृष्टिकोण रखे। उग्रवादी आन्दोलनकारी जानते हैं कि भारत सरकार अल्पसंख्यकों का तुष्टीकरण करती है तथा उग्र हिंसक आन्दोलन के सामने घुटने टेक देती है। इसीलिए अकाली दल वाले समस्त गुरुद्वारों के प्रचार-प्रसार द्वारा सारे सिख समाज को अल्पसंख्यक (माइनोरिटी) हिन्दू समाज से अलग-थलग होने का कुविचार फैलाते रहते हैं। दूसरी ओर प्रशासन से टक्कर लेने हेतु एक लाख बलिदानी वीरों का जंगी सैन्यदल तैयार कर रहे हैं।

समस्या का निवारण

सिख संप्रदाय के जनगण को इतिहास के तथ्यों के आधार पर शिक्षित किया जाए। उन्हें बताया जाए कि वे अपने गुरुओं के दिव्य राष्ट्र मंगलकारी पथ को छोड़कर विषैले विदेशी प्रचार से भ्रमित न हों, गुरुवाणी की तुलना में वे मैकॉलिफ वाणी को त्याज्य मानकर कूड़े में फेंक देवें। वे सिख हित एवं संप्रदाय हित से ऊपर राष्ट्रहित को मानें। पंजाब के सभी स्कूलों-कॉलेजों में हिन्दी-संस्कृत की शिक्षा तथा राष्ट्रगीत वन्देमातरम् का अधिकाधिक प्रचार किया जाए। दशम ग्रंथ के चुने हुए अंशों को लाखों की संख्या में छपवा कर वितरित किया जाए ताकि शिष्य अपने पंथ संस्थापक की मूलवाणी से महान् सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय प्रेरणा प्राप्त कर सकें। गुरु गोविन्दसिंह के शब्द सबका मार्गदर्शन करें—

भारत माँ के सीस पर वार दिये सुत चार
चार मुए तो क्या भया जीवित कई हजार।

राष्ट्रपति चुनाव हेतु विचारपूर्ण चेतावनी राष्ट्र की अन्तरात्मा की गुहार

राष्ट्रपति का पद राष्ट्र का सर्वोच्च महिमामंडित पद है। पति का अर्थ है पत (लाज) की रक्षा करने वाला, जैसे व्यक्तिगत परिवार में पति परिवार के मान-सम्मान एवं लाज का रक्षक होता है। उसी प्रकार राष्ट्र के वृहत् परिवार में भी राष्ट्रपति राष्ट्र की लाज बचाने वाला होना चाहिए। निश्चय ही देश की लाज को गँवाने वाला राष्ट्रपति किसी राष्ट्र को नहीं चाहिये। जिस प्रकार प्राचीनकाल में नारी अपनी स्वेच्छा से अपने अन्तःकरण की पवित्र प्रेरणा से स्वयंवर में स्वयं ही अपने पति का वरण करती थी, वैसे ही आधुनिक काल के लोकतंत्र में जनता को अपने राष्ट्रपति को स्वयं ही चुनने का अधिकार है। अमेरिका में जिस प्रकार जनता सीधे ही प्रत्यक्ष मत से अपने राष्ट्रपति का चुनाव करती है, वहीं भारत में जनता अप्रत्यक्ष रूप से चुने हुए प्रतिनिधियों (सांसदों एवं विधायकों) के माध्यम से राष्ट्रपति का चुनाव करती है।

लोकतंत्र में राष्ट्रपति के चुनाव के लिये लोकतांत्रिक प्रावधान के उपरान्त भी देश के तानाशाह प्रशासक अपनी रुचि एवं स्वार्थ के अनुकूल राष्ट्रपति अथवा मुख्यमंत्री राष्ट्र पर थोपने का प्रयास करते हैं। वर्तमान प्रधानमंत्री ने तीन राष्ट्रपतियों के साथ ऐसा किया है और चौथे को चुनने अथवा चुनवाने जा रही हैं। जब सन् 1969 में कांग्रेस दल ने श्री नीलम संजीव रेड्डी को राष्ट्रपति पद के लिये अपने सर्वसम्मत प्रतिनिधि के रूप में खड़ा किया तो श्रीमती इंदिरा गाँधी ने अपने प्रभाव का प्रयोग कर कांग्रेस के प्रत्याशी को हराने तथा अपने मन के अनुकूल श्री वी.वी. गिरि को जिताने का अभियान चलाया। उन्होंने सांसदों एवं विधायकों को कहा कि वे अपनी अन्तरात्मा की पुकार सुनकर राष्ट्रपति पद के लिये श्री वी.वी. गिरि को जितावें। दूसरे शब्दों में अन्तरात्मा की पुकार का अर्थ है—प्रधानमंत्री की इच्छा की पुकार।

प्रधानमंत्री ने राष्ट्रपति श्री गिरि को रबर की मुहर के समान राष्ट्रपति बनाकर चलाना चाहा। चाहे वे इसमें पूर्णतः सफल नहीं हो पायी। जो व्यक्ति केन्द्रीय मंत्रिमंण्डल में अपनी योग्यता सिद्ध कर ही नहीं सके, उन राजनीतिक मंडियों के खोटे सिक्कों को राष्ट्रपति के सर्वोच्च सिंहासन पर नाममात्र का राष्ट्रपति

बनाकर अपना राजनीतिक उल्लू सिद्ध करना कहाँ तक लोकतंत्र के हित में है? जिस श्री फखरुद्दीन अली अहमद ने असम में साम्प्रदायिक दंगे करवाने तथा बांग्लादेश (पूर्वी पाक) के लाखों-लाख मुसलमानों को असम में बसाकर आज सारे राष्ट्र के लिये सिरदर्द पैदा कर दिया है, उसी को राष्ट्रपति बनाकर, स्वयं अपनी न्यायनीति विरुद्ध चुनाव प्रक्रिया को जन समालोचना से बचाने हेतु आपातकाल लागू करवाकर अपने मनचाहे राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्र के लोकतंत्र का गला घोंटने का कुत्सित खेल खेला गया।

आज राष्ट्रपति पद के लिये सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री हंसराज खन्ना द्वारा सांसदों एवं विधायकों से जब अपनी अन्तरात्मा की पुकार सुनकर मतदान करने का निवेदन किया जाता है तो प्रधानमंत्री इसे लोकतंत्र का तिरस्कार कहकर इसका उपहास करती हैं। चाहे हमने जीवन भर राजनीति में प्रवेश नहीं किया तथा न इस विषय में कोई कामना ही रखी है, पर हमारा जाग्रत विवेक यह नहीं समझ पाता कि यदि 1969 में स्वयं श्रीमती इंदिरा गाँधी की अपनी ही पार्टी के घोषित प्रत्याशी श्री नीलम संजीव रेड्डी को हराना अन्तरात्मा की आवाज माना जा सकता था तो राष्ट्र के हित में किसी योग्य राष्ट्रभक्त व्यक्ति को राष्ट्रपति चुनना अन्तरात्मा की आवाज क्यों नहीं माना जा सकता?

1. श्री ज्ञानी जैलसिंह का राजनीतिक चरित्र एवं राष्ट्रीय निष्ठा विवाद के विषय बने हुए हैं। ज्ञानीजी मूलतः अकाली दल के उग्रवादी नेता रहे हैं, वे मास्टर तारासिंह के साथ पंजाबी सूबा आन्दोलन में सक्रिय भाग लेते रहे हैं।
2. जिस प्रकार प्रशासन की मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति से भारतमाता का अंग विच्छेद होकर पाकिस्तान रूपी कुठारधारी दैत्य सदा के लिए शिर पर खड़ा हो गया, उसी प्रकार पंजाब में अकाली दल के उग्र आंदोलनों से डर कर उन्हें किसी भी कीमत पर प्रसन्न रखने की (अकाली-तुष्टीकरण की) नीति ने खालिस्तान रूपी कृपाणधारी महापिशाच को जन्म दे दिया है।
3. इसी अकाली-तुष्टीकरण की नीति के कारण भीमसेन सच्चर एवं गोपीचंद भार्गव, दोनों पुराने तपस्वी कांग्रेस नेताओं को मुख्यमंत्री पद से हटा कर प्रतापसिंह कैरों को पंजाब का मुख्यमंत्री बनाया गया तथा तब से अब तक पंजाब में किसी अकेशधारी हिन्दू को मुख्यमंत्री पद के योग्य नहीं माना गया। इसी ने भीतर ही भीतर पंजाबी सूबा की आड़ में स्वतंत्र खालिस्तान की मांग को बड़े भीषण रूप में फलने-फूलने का अवसर प्रदान किया है। ज्ञानी जैलसिंह का इस विषवृक्ष को सींचने में कम योगदान नहीं रहा। पहले पंजाब के मुख्यमंत्री के रूप में तथा फिर केन्द्रीय गृहमंत्री के रूप में उन्होंने खालिस्तान के आन्दोलन को न केवल सहन किया है वरन् सब प्रकार से

गुप्त समर्थन भी दिया है।

4. सण्डे, कलकत्ता के दिनांक 25 अप्रैल-1 मई, 1982 के अंक में श्री शुभव्रत भट्टाचार्य ने अपने एक लेख में सिद्ध किया है कि ज्ञानी जैलसिंह के देश का विभाजन कर स्वतंत्र खालिस्तान चाहने वाले भीषण उग्रवादी भारतद्वेषी दल खालसा के साथ आन्तरिक सम्बन्ध हैं। क्या ऐसे व्यक्ति के राष्ट्रपति बन जाने पर भारत की अखण्डता सुरक्षित रह सकती है?

5. जब ज्ञानी जैलसिंह पंजाब के मुख्यमंत्री थे तब सन् 1972 से 1977 के बीच उन्होंने पंजाब में सिखों के मध्यकालीन सैनिक संगठन निहंग जत्था को प्रोत्साहित किया तथा स्थान-स्थान पर विचित्र वेशधारी नशे में मतवाले निहंग कृपाणें चमकाने तथा युद्धाभ्यास करने लगे। निहंगों ने ज्ञानी जैलसिंह को महासिख की उपाधि से विभूषित किया।

6. ज्ञानी जैलसिंह के प्रख्यात पत्रकार एवं भूतपूर्व मंत्री लाला जगतनारायण की हत्या में अन्तर्लिप्त सन्त भिण्ड्रावाले के साथ बड़े मधुर संबंध हैं। भिण्ड्रावाले को ज्ञानीजी का संरक्षण प्राप्त रहा है। 3 अप्रैल '82 से एक सप्ताह के लिए भिण्ड्रांवाले अपने दो सौ चेलों के साथ दिल्ली में आए। उन शिष्यों में से 70 के हाथों में हथियार थे, जिनमें से अधिकांश अवैध आग्नेयास्त्र थे। पंजाब से गुप्त सूचना भी आई कि लोग अवैध हथियार लिए दिल्ली में प्रवेश कर रहे हैं। किन्तु ज्ञानी जैलसिंह या उनके मंत्रालय ने कोई कार्रवाई नहीं की।

7. सन्त भिण्ड्रावाले के सम्मान में दिल्ली के दो सिख नेता रछपाल सिंह और जत्थेदार संतोषसिंह के पुत्र मंजीत सिंह ने भोज दिया जिसमें ज्ञानी जैलसिंह भी उपस्थित थे।

8. अक्टूबर, 1977 में 'सिख होमलैण्ड अकाली दल' की लुधियाना की बैठक में दल खालसा निर्माण करने का निश्चय हुआ। उसमें डॉ. जगजीतसिंह और सरदार कपूरसिंह उपस्थित थे। 6 अगस्त '78 को चण्डीगढ़ के सैक्टर 35 के गुरुद्वारा में दल खालसा का निर्माण हुआ ताकि पूर्ण खालसा राज (खालिस्तान) का निर्माण हो सके। हर सिमरनसिंह को मुखिया पंच बनाया गया। उसे ज्ञानी जैलसिंह का आशीर्वाद प्राप्त था।

9. 18 सितम्बर, 1981 के दिन जालंधर में दल खालसा के उग्रवादी गुर बचनसिंह ने भारतीय संविधान को चौराहे में जलाया। ज्ञानी जैलसिंह ने क्या कार्रवाई की?

10. 19 सितम्बर '81 की बैठक में भारत का विमान अपहरण करने का विचार

पक्का हुआ। 20 सितम्बर को गजिन्दरसिंह और सतनामसिंह अमृतसर से श्रीनगर जाने वाले इंडियन एयरलाइन्स के विमान में बैठकर स्थिति एवं योजना पर विचार करने गये। 29 सितम्बर '81 को 5 उग्रवादी अकालियों ने भारतीय विमान का अपहरण किया तथा उसे लाहौर ले गये। हर सिमरनसिंह ने घोषणा की कि यह दल खालसा की चेतावनी है। 30 सितम्बर को ज्ञानी जैलसिंह एयरपोर्ट पर अपहृत यात्रियों से मिलने गये।

11. हर सिमरनसिंह ने अपने जिन 17 सर्वोच्च अधिकारियों को भेजा उनमें— जसवीरसिंह, पंजाब सिविल सर्विस, प्रीतमसिंह पंजाब सिविल सर्विस, मेजर दर्शनसिंह उपनिदेशक स्कूल शिक्षा, त्रिलोचनसिंह जनसंपर्क अधिकारी, प्रो. अत्तरसिंह (पंजाब विश्वविद्यालय), प्रो. हरनामसिंह शान (प्राध्यापक, गुरुनानक पंजाब विश्वविद्यालय), प्रो. कुलवंत सिंह (पंजाब विश्वविद्यालय), डा. सोहनसिंह, डा. करनैल सिंह—ये सभी ज्ञानी जैलसिंह के विश्वासी लोग दल खालसा के विचार-मार्गदर्शक भी हैं। ज्ञानी जैलसिंह राष्ट्र के सामने अपनी स्थिति स्पष्ट करें।

12. दल खालसा को श्री हर मुर्नदसिंह से आर्थिक सहायता मिलती है जिसे विदेश में रहने वाले डा. जगजीतसिंह बड़ी राशि भेजते रहते हैं। ज्ञानी जैलसिंह ने इस देशद्रोही कार्य हेतु आने वाली विदेशी आर्थिक सहायता को क्यों नहीं रोका? दाल में कुछ काला अवश्य है।

13. ज्ञानी जैलसिंह के घर (जिला फरीदकोट) के वरीय आरक्षी अधीक्षक सिमरनसिंह ने डी.आई.जी. (खुफिया विभाग) श्री सी.के.साहनी को जनवरी '80 में पत्र लिखा कि ज्ञानी जैलसिंह जैसे भ्रष्ट व्यक्ति के केन्द्रीय गृहमंत्री बन जाने के पश्चात् जिले में शान्ति व्यवस्था रखना असम्भव है।

क्या ऐसे ही व्यक्ति का राष्ट्रपति बनना या बनाना राष्ट्र सेवा है या राष्ट्रद्रोह?

असम समस्या, काश्मीर समस्या, पंजाब समस्या, पंजाब में साम्प्रदायिक दंगे, इतिहास में पहली बार सिखों द्वारा मंदिरों में गोमांस फेंकना तथा खुलेआम देशद्रोही एवं हिन्दू-द्वेषी नारे लगाना, मीनाक्षीपुरम, मेघालय, मुरादाबाद में सामूहिक धर्मान्तरण एवं हिंसाकाण्ड, ये केन्द्रीय गृहमंत्री की कुछ बड़ी उपलब्धियाँ हैं। अतीत की उपलब्धियाँ एवं वर्तमान की चेष्टाएं ही भविष्य की सम्भावनाओं का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

राष्ट्र किसी भी दल या पार्टी, व्यक्ति या प्रशासक से अधिक महत्त्वपूर्ण है। अतः सांसदों एवं विधायकों को राष्ट्र के हित में, व्यक्तिगत स्वार्थों एवं दलगत लोभ-लाभ से ऊपर उठकर राष्ट्रमाता की लाज बचाने वाला सक्षम, सुयोग्य राष्ट्रभक्त राष्ट्रपति चुनना चाहिए।

निवर्तमान प्रधानमंत्री चरणसिंह को राष्ट्र के प्रधानमंत्री बना देने के संदर्भ में राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी से अपील

संस्कृति विहार, रांची के निदेशक प्रो. हरवंशलाल ओबराय ने अपने एक वक्तव्य में भारत के राष्ट्रपति महामहिम श्री नीलम संजीव रेड्डी से यह मांग की है कि निवर्तमान प्रधानमन्त्री श्री चरणसिंह द्वारा गलत तथ्यों के आधार पर भारत के प्रधानमंत्रित्व का दायित्व ग्रहण कर लेना न्याय संगत नहीं हैं। अतः इस पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए। 25 दिन पूर्व जब राष्ट्रपति ने श्री मोरारजी देसाई एवं श्री चरणसिंह को अपने-अपने समर्थकों की सूचियाँ प्रस्तुत करने का आदेश दिया तो श्री चरणसिंह ने जो सूची प्रस्तुत की वह निराधार थी। राष्ट्रपति महोदय ने बिना वास्तविक जाँच-पड़ताल किए श्री चरणसिंह की बात का विश्वास कर उन्हें प्रधानमन्त्री का सर्वोच्च पद इसी शर्त पर दे दिया कि वे अगस्त के तृतीय सप्ताह तक लोकसभा में अपने दावे को सत्य प्रमाणित करें। यह वैसा ही है जैसे किसी व्यक्ति की बात का विश्वास कर उसे बिना योग्यता के प्रमाण-पत्र देखे किसी ऊँचे पद के लिए इस शर्त पर चुन लिया जाय कि वह अपने वास्तविक प्रमाण-पत्र दो-चार दिन बाद निश्चित-रूपेण प्रस्तुत कर देगा। यदि कोई व्यक्ति योग्यता के झूठे दावे के आधार पर किसी महाविद्यालय का प्राचार्य या विश्वविद्यालय का कुलपति अथवा किसी सैनिक विभाग का महाप्रबन्धक बन जाय और प्रमाण प्रस्तुत करने के दिन परीक्षण की घड़ी में भाग जाय तो क्या उस व्यक्ति को क्षमादान किया जाना चाहिये ?

यदि इस प्रकार गलत तरीके से कोई देश के सर्वोच्च पद पर बैठने का षड्यन्त्र रचे तो झूठ का पर्दाफाश होने पर क्या उसे 65 करोड़ नागरिकों का लोकतन्त्र क्षमा कर देगा? क्या इस महान् राष्ट्र के राष्ट्रपति ऐसे व्यक्ति की सम्मति मानकर लोकसभा को भंग करने का कृत्य कर सकते हैं? आज सारा राष्ट्र राष्ट्रपतिजी से चिल्ला-चिल्ला कर ये प्रश्न पूछ रहा है।

राजनीति के तुमुल रणघोष में संस्कृति के सौम्य स्वर

1. Politics Divides; Culture Unites. राजनीति तोड़ती है, संस्कृति जोड़ती है।

   भिन्न-भिन्न राजनीतिक दल समाज को भिन्न-भिन्न राजनीतिक विचारधाराओं में विभक्त कर देते हैं। कई बार भिन्न-भिन्न दलों में परस्पर कटुता भी उत्पन्न हो जाती है। राजनीति को जीवन का सार ह सर्वस्व समझ लेने से पूरे समाज में परस्पर कटुता का विष फैल सकता है। संस्कृति ही जीवन का सार है। वही राष्ट्र की एकता का सुवर्ण-सूत्र है। राजनीति के क्षणिक खेल को प्रामाणिकता से, न्याय से खेलिए, किन्तु राष्ट्र की चिरन्तन सांस्कृतिक जीवनधारा को विकृत मत होने दीजिए। चुनाव खेल के पहले और पीछे मित्र-भाव से परस्पर मिलिए तथा संस्कृति के अमृतजलों द्वारा राष्ट्र के हृदय से कटुता के कालकूट को धो डालिए।

2. Elections are the lungs of Democracy. चुनाव लोकतन्त्र के फेफड़े हैं।

   जिस प्रकार स्वस्थ शरीर में फेफड़े श्वास लेते हुए हर बार उत्तम वायु को श्वास द्वारा भीतर खींचते हैं तथा गंदी, विकृत वायु को प्रश्वास द्वारा बाहर फेंकते हैं, उसी प्रकार लोकतन्त्र को जीवित एवं स्वस्थ रखने के लिए चुनाव द्वारा उत्तम समाज-सेवी, संस्कृति-निष्ठ सज्जनों को शासन तन्त्र में लाना तथा गन्दे, गले-सड़े, भ्रष्ट शासकों को हराकर बाहर फेंकना प्रत्येक लोकतन्त्र प्रेमी नागरिक का प्रथम कर्तव्य है।

3. 'जनवाक्यं तु कर्तव्यं जनैरपि जनाधिपैः। (शास्त्र वचन)

   जनता की बात को विशिष्ट जनों एवं शासनाधिकारियों, दोनों को मानना ही पड़ेगा।

4. If the people are Dumb & the Government is Deaf, Democracy goes to dogs. **—C. Rajagopalachari**

यदि जनता गूंगी हो और सरकार बहरी हो, तो लोकतन्त्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। **—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य**

5. Democracy is govt. of the people, by the people, for the people. **—Abraham Lincon**

जनता का, जनता द्वारा, जनता के हित के लिए शासन ही लोकतन्त्र है।'

—अब्राहम लिंकन

6. In India Democracy today is,
Govt. of the Corrupt people,
By the Inefficient people,
For the Unfortunate people.
—Late Sri Nath Pai

आज भारत में लोकतन्त्र,
भ्रष्टाचारी लोगों का,
अकुशल लोगों द्वारा,
अभागे लोगों पर, शासन है।
—स्व. श्रीनाथ पाई

7. The function of opposition is to propose, expose, oppose and depose the govt. **—Dr. S. Radhakrishnan**

विरोधी दल का कार्य है—सरकार को प्रस्तावित करना, सरकार को नग्न करना, सरकार का विरोध करना तथा उसे पदच्युत करना।

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन।

8. To sell one's vote is to sell one's Conscience.

मत (वोट) बेचना अन्तरात्मा बेचने के तुल्य है।

'यदि इस देश से हिन्दू समाज और हिन्दू संस्कृति को समाप्त करने के उपरांत हमें स्वतंत्रता प्राप्त होती है, तो इसे हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता नहीं कहा जायगा और ऐसी स्वतंत्रता का मूल्य शून्य होगा।

—डा. केशवराव बलीराम हेडगेवार

वनस्पति या विनाशपति ?

वनस्पति घी अथवा जमे हुए वनस्पति तेल का चलन देश में लगभग 45 वर्ष पुराना है। लीवर ब्रदर्स लंदन की कंपनी ने जब खजूर छाप डालडा का उत्पादन एवं प्रचार भारत में प्रारम्भ किया, तो आम जनता इसे विदेशी कंपनी का चर्बी मिश्रित तेल मानकर विरोध करती थी। हिन्दू गो-मांस से परहेज करता है और मुसलमान सूअर के मांस से। किन्तु अधिकांश पश्चिमी देशों के ईसाई सर्वभक्षी होने के कारण दोनों से परहेज नहीं करते। डालडा कंपनी के अभिकर्ता प्रचार गाड़ी में घूम-घूम कर डालडा का प्रचार करते। उसमें पूड़ी, सिंघाड़ा आदि बनाकर प्रदर्शन करते तथा जनता को आदत लगाने के लिए उन्हें डालडा की पूड़ी-मिठाई मुफ्त बांटते और डालडा वनस्पति तेल के छोटे-छोटे डिब्बे भी नमूने के रूप में बिना मूल्य के वितरण करते। लीवर कम्पनी द्वारा निर्मित लक्स, सनलाइट, लाइफबॉय, रक्सोना आदि साबुन सारे यूरोप, अमेरिका में और अब एशिया के देशों में भी प्रचलित है, जिनके निर्माण में पशुओं की चर्बी का प्रयोग एक खुला रहस्य है। भारत में जनसाधारण का विश्वास जमाने के लिए लीवर कम्पनी द्वारा सनलाइट साबुन के बाहर के लपेटे हुए कागज के आवरण पर छापा जाता था, 'साबुन में पशु की चर्बी साबित करने वाले को एक सौ रुपया नकद पुरस्कार दिया जाएगा।' आम ग्राहक को रासायनिक जांच कराने के लिए न समय था और न योग्यता। अंग्रेजी कम्पनी थी, राज अंग्रेजों का था। गाँधीजी, मालवीयजी, हनुमान प्रसाद पोद्दार, चारों शंकराचार्यों तथा अनेक विभिन्न नेताओं के विरोध के बावजूद विदेशी कम्पनी का वनस्पति घी और साबुन इस निर्धन देश के जनसाधारण के घर-घर में पहुँच गया।

एक बार प्रचलन हो जाने के बाद लीवर कम्पनी ने साबुन के पैकेट पर चर्बी मुक्त होने का आश्वासन छपवाना बन्द कर दिया। आज भारत सरकार के आंकड़े प्रमाणित करते हैं कि वह साबुन कम्पनियों को विदेशों से लाखों टन पशु चर्बी आयात करने के लाइसेंस देती है। दुर्भाग्य से प्रायः सभी वनस्पति निर्माता कम्पनियों ने वनस्पति घी के साथ साबुन बनाने का धंधा भी चालू कर रखा है। उनमें से कुछ अर्थलोलुप कम्पनियाँ गाय की चर्बी को निकल धातु से हलका पीला रंग देकर,

उसमें घी की सुगंधि मिलाकर उसे वनस्पति घी के नाम पर अथवा उसमें मिश्रण करके बेचने लगी हैं।

पंजाब में बिना लेबल के चर्बी वाले घी पर नम्बर-1 का लेबल लगाकर बेचा गया। मुंबई की लिबर्टी आयल मिल, जो एक मुस्लिम व्यापारी की है और जिसका चन्दा मार्का वनस्पति प्रसिद्ध है, उस पर इसी प्रकार की धोखाधड़ी का आरोप है। अल्लाना आयल मिल मुंबई द्वारा विदेशों में मछली निर्यात की जाती और विदेशों से गाय की चर्बी साबुन बनाने के बहाने से आयात की जाती है और अवैध रूप से उसी में रंग और सुगंध डालकर घी के नाम पर बेचा जाता है। कुछ दिन पूर्व मुंबई में इस कम्पनी के गाय की चर्बी के 6000 बड़े ड्राम पकड़े गये। चंडीगढ़ में पुलिस ने छापा मारकर एक व्यापारी के गोदाम से 600 कनस्तर गाय की चर्बी के पकड़े। भटिंडा (पंजाब) में प्रशासन ने एक व्यापारिक संस्थान पर छापा मारकार 9000 क्विंटल गाय की चर्बी को जब्त किया (स्टेट्समैन, दिल्ली 19.6.83)। 5, जुलाई के वार्ता समाचार के अनुसार भटिंडा में एक साबुन कम्पनी ने 75 टैंकर गाय की चर्बी आयात की और एक अपनी सहयोगी फर्म को वनस्पति घी बनाने के लिए दे दी। छापे में फर्म के कार्यालय से 57000 चर्बी के कनस्तर एवं निकल के 50 ड्राम भी बरामद किये गये (रांची एक्सप्रेस, दिनांक 7.7.83)

लगभग दो मास पूर्व रांची में भी 25-30 ट्रक में बिना लेबल के वनस्पति घी के हजारों कनस्तर आये, जिनमें गाय की चर्बी वाला घी था। उन पर भारत वनस्पति और टेलिफोन मार्का वनस्पति के बनावटी लेबल लगाकर अन्य वनस्पति तेलों की तुलना में सस्ता बेचा गया। संदेह है कि अभी भी कुछ व्यापारियों के पास ऐसा धर्म भ्रष्ट करने वाला घी बिक्री के लिए पड़ा हुआ है, किन्तु इस विषय में विश्व हिन्दू परिषद् एवं अन्य धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं द्वारा देशव्यापी आन्दोलन छेड़ देने के भय से चर्बी वाले घी को कुछ काल के लिए छिपा दिया गया है।

रांची प्रशासन तथा बिहार सरकार को इस विषय में ठोस कदम उठाकर जनता के स्वास्थ्य एवं धर्म की रक्षा करनी चाहिए। अर्थ-लोभ में भोली-भाली जनता को धोखे से गाय की चर्बी खिलाने वाले निर्माताओं, विक्रेताओं एवं अभिकर्ताओं को कठोर दंड देना चाहिए।

कुछ वर्ष पूर्व बी. आई. टी. मेसरा में रसायन विभाग के अध्यक्ष प्रो. दुर्गा प्रबोध सिंह ने मुझे एक घी का नमूना पहचानने के लिए कहा। खुली आंख से घी के समान ही हलका पीला दानेदार और सुगंध युक्त घी प्रतीत होता था। उन्होंने प्रयोगशाला में परीक्षण करके सबको विस्मित कर दिया कि वह सूअर की रंगी हुई चर्बी के सिवाय कुछ नहीं था। इसलिए प्रोफेसर साहब भी अपने घर में शुद्ध

मूंगफली तेल का प्रयोग करते थे या घर में दूध से निकाला हुआ मक्खन। मुझे अकोला (महाराष्ट्र) में श्री ब्रजमोहन बिड़ला द्वारा स्थापित बरार ऑयल इण्डस्ट्रीज देखने का सुयोग मिला। वहाँ बनने वाले वनसदा वनस्पति में कोई पशु चर्बी मिलाने का धंधा तो नहीं मिला, किन्तु मुझे बड़ा विस्मय हुआ कि वहाँ के चीफ इंजीनियर श्री मैनन, जो केरल के निवासी तथा बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के पढ़े हुए विद्वान थे, स्वयं अपने घर में जमा हुआ तेल या वनस्पति प्रयोग न करके शुद्ध मूंगफली तेल ही प्रयोग करते थे। विचार-विमर्श करने पर निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आए—

1. यदि एक हाथ की तली में शुद्ध घी रखा जाय और दूसरी में डालडा तो शुद्ध घी पहले पिघलेगा और डालडा बाद में। जो तली का तापमान है, वही जिह्वा का है और वही शरीर के भीतर का। जो वनस्पति घी तली में पिघलने में कठिनाई करता है, वह शरीर के भीतर सूई के छिद्र से भी अधिक बारीक नसों में क्या उत्पात करेगा?
2. सर्दी की ऋतु में जब घी जम जाता है तो वनस्पति को निकालने में स्टील की चम्मच प्रायः टूट जाती है। शरीर की नसों के भीतर जाकर यह कोलेस्ट्रोल नामक लेई जैसा पदार्थ बनकर जम जाता है और रक्त के प्रवाह को रोकता है। इसी से रक्तचाप के रोग, हृदय के रोग, अधरंग, लकवा आदि हो जाते हैं।
3. मूंगफली तेल को हाइड्रोजन गैस द्वारा जमाने की प्रक्रिया में तेल में निकल धातु के कुछ घोल मिलाये जाते हैं, जो जमाने की प्रक्रिया में मध्यवर्ती अभिकर्ता (केटेलिटिक एजेंट) के रूप में काम करते हैं। बाद में निकल के कणों को वनस्पति घी से निकाला जाता है, किन्तु कुछ प्रतिशत कण भरपूर प्रयास करने पर भी वनस्पति घी में छूट जाते हैं जो शरीर के लिए घातक हैं तथा कैंसर का रोग तक पैदा कर सकते हैं।
4. परीक्षण से पता चला है कि जमे हुए तेल के सेवन से जीवों की प्रजनन शक्ति (वीर्य शक्ति) एवं नेत्रों की ज्योति कम होती जाती है।
5. उदर की पाचन शक्ति, कंठ की गायन शक्ति एवं मस्तिष्क की विचार शक्ति पर भी वनस्पति घी का कुप्रभाव पड़ता है।
6. यदि धोखे से उसमें पशु चर्बी मिला दी जाय तो स्वास्थ्य नष्ट होने के साथ धर्म भी भ्रष्ट हो जाता है।

देश के स्वाधीनता आन्दोलन में महात्मा गाँधी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद आदि नेता कहते थे कि देश के स्वाधीन होते ही डालडा आदि वनस्पति घी पर प्रतिबन्ध लगा

दिया जायेगा। किन्तु दुर्भाग्य से वनस्पति घी की फैक्टरियाँ बढ़ रही हैं तथा वे न केवल देश के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ कर रही हैं, वरन् देश के धर्म को भी लूटने का दुस्साहस कर रही हैं।

कारतूसों में गाय की चर्बी एवं सूअर की चर्बी की घटना से जिस देश में 1857 में एक विराट् क्रान्ति हुई वहाँ लाखों टन गाय की चर्बी धोखे से भारतीय नर-नारी को खिला देने पर कैसी भयंकर क्रान्ति हो सकती है, इसका अनुमान कोई दूरदर्शी प्रशासक सहज ही लगा सकता है। प्रशासन की ढिलाई से जनता का धर्म लुट जाय, तो इससे बड़ा महापाप एवं अन्याय और क्या हो सकता है? जनता की संगठित आवाज ही भ्रष्टाचारियों को नग्न एवं प्रशासन को सजग बना सकती है।

भारत के दो रूप

अमर भारत को सारी दुनिया श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखती है। और एक है रोगी भारत जिसमें आप और हम रहते हैं और कार्यरत हैं। आज का जो भारत है वह भ्रष्टाचार, हिंसा, लूट-खसोट, मुकदमेबाजी, ईर्ष्या-द्वेष की बुराइयों तथा गरीबी, निरक्षरता एवं उत्कट प्रजनन प्रवृत्तियों से भरा भारत है। संसद और विधानसभाओं में खग्न भारत की छवि दिखाई पड़ती है। आधुनिक भारत रोगी भारत है। परन्तु सारा विश्व उस सनातन भारत की ओर बहुत प्रेम एवं श्रद्धा की दृष्टि से निहारता है उसी भारत से आशा करता है, जो वेदान्त जैसे उच्च दर्शन एवं आध्यात्मिकता का भण्डार ही है।

—स्वामी रंगनाथानन्द

× × ×

मेरे लिये ऐसी स्वतंत्रता का कोई मूल्य नहीं रह जाता जो हमें भगवद्गीता से वंचित कर देती हो, और हमारे लाखों बंधुओं की उस श्रद्धा भावना को निर्मूल कर दे जो वे अपने मंदिरों के प्रति रखते हैं, और इस तरह हमारे जीवन का आधारस्तम्भ ही ध्वस्त हो जाय।

—कन्हैयालाल एम. मुंशी

वनस्पति घी में गाय की चर्बी की मिलावट के विरोध में रांची में जनसभा

वनस्पति घी में गाय की चर्बी (पशुचर्बी) मिलावट के विरोध में दिनांक 31.7.83 रविवार की संध्या को हुई रांची के नागरिकों की सभा में अनेक संस्थाओं के प्रतिनिधियों एवं नागरिकों ने अपना आक्रोश प्रकट किया। चर्बी का आयात बन्द करने तथा इस तरह का घृणित कार्य तुरंत बन्द किये जाने की मांग की। इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किया गया।

देश के भिन्न-भिन्न स्थानों में वनस्पति घी में गाय की चर्बी मिलाने की घटना प्रकट होने से यह तथ्य प्रकाशित हो गया है कि यह घृणित धंधा सरकार के भ्रष्ट अधिकारियों के सहयोग से अनेक अर्थलोलुप बेईमान व्यापारी नियोजित ढंग से बहुत दिनों से चला रहे हैं। इसके द्वारा भारतीय जनता के धन, धर्म और स्वास्थ्य का निरन्तर शोषण हो रहा है। इसे तुरंत बन्द करना भारत सरकार का कर्तव्य है।

अतः रांची की जनता भारत सरकार से मांग करती है कि—

(1) चर्बी का आयात बन्द किया जाय तथा वनस्पति मिलों द्वारा तेलों का जमाया जाना, यानी वनस्पति तेल को वनस्पति घी का रूप देना कानूनन तुरंत बन्द किया जाय।

वनस्पति घी में चर्बी मिलाने वाले कारखानों को तुरंत जब्त किया जाय तथा उनके मालिकों की सम्पूर्ण सम्पत्ति जब्त की जाय और सभी अपराधियों को कठोर दण्ड दिया जाय।

(2) रांची की जनता समस्त भारतीय जनता से अपील करती है कि वह जमाया हुआ तेल वनस्पति डालडा का व्यवहार एकदम बन्द कर दे। इसके स्थान पर अपनी रुचि के अनुसार—तिल, सरसों, मूंगफली, नारियल, सोयाबीन, सूरजमुखी का तेल व्यवहार करें एवं चर्बी मिलावट के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन करे।

(3) रांची के नागरिकों की यह सभा वनस्पति निर्माता संघ से मांग करती है कि

वह वनस्पति में चर्बी मिलाने वालों का नाम प्रकाशित करे और उन्हें अपने संघ से निष्कासित कर उन्हें दण्ड दिलाने के लिए उचित कार्यवाही करे। यह सभा उनसे यह भी मांग करती है कि वे वनस्पति तेलों को जमाकर उसे घी का रूप देना बन्द कर दें और अपना उत्पादन रिफाइण्ड तेल के रूप में ही बेचें।

(4) यह सभा रांची की जनता से मांग करती है कि वह वनस्पति घी का व्यवहार एकदम बन्द कर दे और वनस्पति घी में चर्बी मिलाने के विरुद्ध यह जन-आन्दोलन जाग्रत रूप से तब तक चलाया जाय जब तक उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो जाय। वनस्पति घी में चर्बी मिलाने वालों का व्यापक सामाजिक बहिष्कार किया जाय।

आजादी के पहले भारत में काफी अच्छे लोग विशाल भाव के लोग थे। इन दिनों छोटे आदमी हैं। मैं अक्सर कहता हूँ हम लोग बड़े और महान् देश के छोटे और बौने लोग हैं। हमें इसे सुधारना चाहिए। कभी यह देश महान् था। यहाँ कई विदेशी आये और सुन्दरभाव यहाँ से ले गए।

—स्वामी रंगनाथानन्द

× × ×

'देशभक्ति' शब्द का प्रयोग तो बहुत होता है। पर बहुत कम लोग समझते हैं कि इसका वास्तविक अर्थ क्या है। देशसेवा कहने से भी वे सब बातें नहीं प्रकट होती, जो 'देशभक्ति' शब्द का प्रतिपाद्य है। देश केवल मानचित्र नहीं है। देशसेवा का अर्थ है—देश के कोटि-कोटि लोगों को अज्ञान, कुशिक्षा, दारिद्र्य और परमुखापेक्षिता से बचाना। जिसके मन में यह बड़ा संकल्प आ गया, वह निचली श्रेणी के स्वार्थ का शिकार नहीं हो सकता।

—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

भारत की विदेश नीति

भारत के ऋषियों ने कहा—मम देशो भुवन त्रयम्। अर्थात् तीनों ही भुवन मेरा ही देश हैं। सारे विश्व को परिवार मानने वाले ऋषियों ने घोषणा की—वसुधैव कुटुम्बकम्। विश्व के राष्ट्र अपने ही भाई-बंधु हैं तो इसमें कौन अपना और कौन पराया ?

जैसे किसी बड़े परिवार के बंधु-बांधव सब एक ही मकान में न रहकर सुविधानुसार भिन्न-भिन्न भवनों में रहते हैं इसी प्रकार संसार के भिन्न-भिन्न राष्ट्र परस्पर बंधु होते हुए भी देश-काल पात्र, परिस्थिति और सुविधा के विचार से भिन्न-भिन्न भौगोलिक खण्डों में व भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में रहते हैं। जैसे भिन्न-भिन्न नगरों में बसने वाले बंधु हजारों मील की दूरी के उपरान्त भी बंधु ही रहते हैं, शरीरों की दूरी के उपरान्त भी मन से समीप रहते हैं, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के लोग समुद्र पार विदेशों में बसने के उपरान्त भी वस्तुतः बंधु ही हैं।

भारत की विदेश नीति का यह आदर्श सूत्र है। इसलिये युक्ति बुद्धि से अपने राष्ट्र की हितसाधना करते हुए सारे संसार में विश्वबंधुत्व की भावना का विकास करना हमारा उद्देश्य है।

वैदेशिक नीति के लिये अंग्रेजी शब्द है—Diplomacy नीति व्यवहार, चातुरी। इसका प्रायः अर्थ माना जाता है चालाकी। इसमें ऊपर से विदेशों के प्रति मित्रभाव दिखाकर भीतर से स्वार्थ साधन किया जाता है। इसी को कूटनीति भी कहते हैं। कूट शब्द का अर्थ ही झूठ या छल है। कूटनीति शतरंज के खेल के समान है जिसमें हमारा दूसरे से व्यवहार में अन्ततोगत्वा मात करना या पराजित करना ही उद्देश्य होता है। पाश्चात्य विदेश नीति की कल्पना यही है। विदेशों में विदेश मंत्री की सफलता का मापदण्ड ही यही है कि कितने देशों को सहायता या सेवा की आड़ में अपने देश की स्वार्थ पूर्ति के लिये उस देश विशेष को और उस देश विशेष से दूसरे देशों को सताना, परस्पर में लड़ाना और अपनी इच्छानुसार नचाना है। इसमें जो सफल होता है वही सफल विदेश मंत्री कहा जाता है। किसी भी सहायता या समर्थन में उनकी चाल निहित रहती है जिससे कभी बाज नहीं आते। एक देश को दूसरे देश से लड़ाते रहना जिससे वे सदैव निर्बल बने रहें, जिससे उस देश पर उनका प्रभुत्व बना रहे और उनकी इच्छानुसार नाचते रहें। अमेरिका और रूस की विदेश

नीति का यही लक्ष्य है। जितनी भी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं हैं वे उनके स्वार्थ साधन के अखाड़े बने हुए हैं। उदाहरण के लिये भारत को निर्बल बनाये रखने और संघर्षों में उलझाये रखने के लिए अमेरिका का पाकिस्तान को मित्र बनाना आदि।

भारत ने अपनी सांस्कृतिक परम्परा के अनुसार वैदेशिक नीति के द्वारा विश्व कल्याण की साधना की। भारत ने अपने इतिहास के विभिन्न चरणों में कभी भी न तो किसी देश की स्वतन्त्रता पर डाका डाला, न तो अर्थ पर, न धर्म पर, न सांस्कृतिक जीवन को तहस-नहस किया और ना ही अर्थिक सहायता या सैनिक सहायता के माध्यम से किसी भी देश का किसी भी प्रकार का शोषण किया है। विश्व के भूतल पर कोई भी देश, जो अपने राष्ट्र के हित को साधते हुए, उसको खंडित नहीं करते हुए सदैव शांति का प्रहरी बना रहा तो इस अर्थ में भारत विश्व को मार्गदर्शन देता रहा है। अपने राष्ट्र का अहित न हो और विश्व का कल्याण हो, ऐसी साधना हमारी प्रथम से रही है। हाँ, हम अपने राष्ट्र का अहित करके विश्व का मंगल नहीं चाहते। हम अपने राष्ट्र का हित-साधन करते हुए विश्व हितसाधना में सतत कर्मरत हैं। इसलिये भारत जब अपने विषय में सोचता है तो विश्व की समस्याओं को भी अपने समक्ष रखता है।

आदर्श विदेश नीति सभी दूसरे देशों को अपने समान मानकर चलती है। वह दूसरों पर आधिपत्य या प्रभाव या दादागीरी जमाकर नहीं चलती। हम जब दूसरों का सम्मान करते हैं तब वे भी हमारा सम्मान करते हैं। यदि हम अजातशत्रु हैं तो हमें संसार भर में मित्र ही मित्र दिखाई देंगे।

विदेश नीति में हम न अपना सम्मान खोवें न दूसरों के सम्मान का हनन करें। अमेरिका तथा रूस दोनों अपनी विदेश नीति के अन्तर्गत अपनी आर्थिक सहायता या सैनिक सहायता या सन्धियों द्वारा दूसरे देशों को अपना पिछलग्गू बनाकर रखना चाहते हैं।

पं. नेहरू ने अपनी विदेश नीति में भारत को अमेरिका के प्रभाव क्षेत्र में लाकर भारत को 35 अरब के विदेशी ऋण के नीचे दबा दिया। इतने बड़े ऋण को चुकाना भारत के लिये कठिन ही नहीं असम्भव हो गया है। इसके बदले देश की इज्जत या स्वाधीनता बिक सकती है।

श्रीमती इ. गाँधी ने विदेश नीति में रूस के प्रभाव क्षेत्र में आकर देश पर रूसी लोगों का वर्चस्व बढ़ा दिया। भिलाई, बोकारो, H.S.C. रांची, पतरातू आदि में सर्वत्र रूसी प्रभाव है। भारत का धन विदेशों की जेब में जाता है।

टेक्निशियन Expert के नाम पर मोटे वेतन भी देने पड़ते हैं, उनकी मशीनें खरीदनी पड़ती हैं तथा वे भारत में प्राप्त राशि से कम्युनिज्म का खुला प्रचार-प्रसार भी करते हैं।

सफल विदेश नीति अपने राष्ट्र की अखण्डता नष्ट नहीं होने देती। दुर्भाग्य से हमारी चीन के प्रति नीति असफल रही। उसने तिब्बत को खा लिया। हमने पंचशील पर हस्ताक्षर किये वही हमारे लिये पंचशूल बन गया। भारत की 16000 वर्गमील भूमि अभी तक चीनी दरिंदों के पांव के नीचे पड़ी है। पाकिस्तान ने कश्मीर की 30,000 वर्गमील भूमि दबा रखी है। बसवाड़ा और कच्छ के रण में हमने पुनः देश की भूमि गंवाई है।

सफल विदेश नीति की मांग है कि हम न दूसरों को ठगें और न दूसरों से हम ठगे जावें। हमें चतुर-चालाक तो रहना चाहिये किन्तु छली नहीं होना चाहिये। इस दृष्टि से भी विगत 30 वर्षों के कांग्रेसी शासन में हम बार-बार ठगे गये। तिब्बत के मामले में हम ठगे गये। कश्मीर के मामले में हम ठगे गये। ताशकन्द के समझौते में हम बुरी तरह ठगे गये।

पड़ोसी छोटे देशों से सम्बन्ध ऐसे होने चाहिये थे कि वे भारत जैसे महान् देश को अपना स्वाभाविक नेता मानते। पर स्थिति बनी है ठीक इसके विपरीत। नेपाल, भूटान, लंका, बर्मा सभी उलटे भारत पर पाद प्रहार करने लगे।

जनता सरकार ने विदेश नीति को पुनः सुधारा है। विदेश मंत्री थोड़े काल में ही अनेक देशों की यात्राओं पर जा चुके हैं। वे प्रायः कहते हैं—हम भूमि से अलग-अलग एवं बंटे हुए बेशक हैं किन्तु हमारे हृदय बंटे हुए नहीं हैं। अन्य देशों के हृदयों को स्पर्श कर उनके हृदय से बात करना एक सफल विदेश नीति का लक्षण है।

भारत संस्कृति का दिव्य मन्दिर है। सांस्कृतिक दृष्टि से भारत जगद्गुरु है। अतः अन्य देशों पर राजनीतिक वर्चस्व बनाने की अपेक्षा अपनी संस्कृति की सुधा सब देशों को पिलाना एक महान् आदर्श है।

राजनीतिक वर्चस्व द्वारा दूसरे देशों को गुलाम बनाते हैं पर संस्कृति के प्रकाश द्वारा हम उन्हें मुक्ति का आनन्द बांटते हैं।

राजनीतिक हस्तमिलाप (Hand shake) केवल स्वार्थ पर आधारित होता है तथा आज का राजनीतिक हस्तमिलाप कल के राजनीतिक घूसे में बदल सकता है। पर सांस्कृतिक हस्तमिलाप युगों तक दो राष्ट्रों को मित्र बनाकर रखता है। अतः विदेश नीति में अन्य देशों से सांस्कृतिक आदान-प्रदान परम लाभकारी होता है। विदेश मंत्री एवं राजदूतों को संस्कृति का ज्योतिधर बनकर प्रकाश फैलाना चाहिये। भिन्न-भिन्न देशों में परस्पर बहुत सी भ्रान्तियाँ एक-दूसरे के निकट जाने पर दूर होती हैं।

When you look into the eyes of a foreigner you discover that he is a brother.

इस प्रकार सफल विदेश नीति द्वारा विश्वशांति स्थापित हो सकती है।

जनतन्त्र

जनतन्त्र का स्वामी जन ही होता है। वास्तविक प्रभुसत्ता जनार्दन की ही है। तन्त्र तो जन की इच्छानुसार चलने वाला प्रशासन का रथ है। प्रजातन्त्र का शाब्दिक अर्थ है प्रजा का तन्त्र। यानी प्रजा मालिक है और तन्त्र उसका नौकर है, जो प्रजा की इच्छानुसार चलने वाला है। अंग्रेजी में Minister शब्द का अर्थ ही होता है नौकर या अभिकर्ता (दलाल)। Minister Staff का अर्थ है नौकर-चाकर। अतः लोकतन्त्र में लोक ही सारे प्रशासन का स्वामी होता है तथा शासनतन्त्र के मंत्री, उपमंत्री, प्रधानमंत्री व मुख्यमंत्री आदि उसके वशवर्ती नौकर-चाकर हैं।

जनतन्त्र का आधारभूत सिद्धान्त है मानव व्यक्तित्व की पवित्रता और स्वतन्त्रता। प्रजातन्त्र के मन्दिर में कोई देवता है तो वह मनुष्य ही है। उसकी गरिमा का विकास ही लोकतन्त्र की पूजा-प्रतिष्ठा है। मानव की स्वाधीनता लोकतन्त्र की प्राणवायु है। भगवान वेदव्यास जैसे आध्यात्मिक महर्षि ने भी कहा है—

न हि मनुष्यात् श्रेष्ठतरं हि किंचित

अर्थात् मनुष्य से परे और कोई सचाई नहीं है। अतः इस तन्त्र में तन्त्र मात्र सेवक के समान कार्य करता है। सेवक को सदा स्वामी की इच्छानुसार कार्य करना चाहिये। पर स्वामी की इच्छा कैसे जानी जाय यह एक समस्या है। इस समस्या को हल करने के लिये जनतन्त्र में चुनाव का प्रावधान किया गया है।

चुनाव लोकतन्त्र के फेफड़े हैं। जिस प्रकार स्वस्थ शरीर में फेफड़े श्वास लेते हुए हर बार उत्तम वायु को श्वास द्वारा भीतर खींचते हैं तथा गंदी विकृत वायु को प्रश्वास द्वारा बाहर फेंकते हैं, उसी प्रकार लोकतन्त्र को जीवित एवं स्वस्थ रखने के लिये चुनाव द्वारा उत्तम समाजसेवी, संस्कृतिनिष्ठ सज्जनों को शासन-तन्त्र में लाना तथा गन्दे-सड़े भ्रष्ट शासकों को हराकर बाहर फेंकना प्रत्येक लोकतन्त्र-प्रेमी नागरिक का प्रथम कर्तव्य है।

चुनाव जनता की इच्छाओं का मापदण्ड भी है कि जनता क्या चाहती है।

लोकतन्त्र की चुनाव प्रणाली में कुछ त्रुटियाँ एवं चोर दरवाजे भी रह जाते हैं जिनके द्वारा अल्पमत वाले भी बहुमत के ऊपर शासन करने लग जाते हैं।

मूर्खों का शासन

इसमें Quality का Quantity गला घोट देती है। इसमें विद्वान और मूर्ख दोनों को एक ही तराजू में तौला जाता है। विश्व में एक शिक्षित व्यक्ति के पीछे 9-10 मूर्ख व्यक्ति हैं। अब अगर मूर्ख व्यक्ति संगठित हो जायं तो सज्जन व्यक्ति टिक नहीं सकते। इसलिये इकबाल ने कहा है—

डेमोक्रेसी एक ऐसा तर्ज जमा है इकबाल,
यहाँ सिर गिने जाते हैं सिर तोले नहीं जाते।

किसी भी देश में लगभग आधी जनता को मतदान का अधिकार होता है यानी 50% को मतदान का अधिकार है। फिर भारत जैसे देश में अशिक्षा एवं राजनीतिक चेतना के अभाव में 40-45% मतदान होता है वह भी 8-10 राजनीतिक दलों में विभाजित हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप 40-45% का 25-30% मत पाकर शासन करते हैं। इस प्रकार 50% को वोट नहीं=1/2, उसमें से 50% ने वोट डाला नहीं=1/4 यानी उसके 25-30% वोट पाकर शासन करते हैं। देश की 1/3 जनता के 1/12 या 1/16 भाग का समर्थन पाकर लोग शासन करते हैं। अर्थात् 6% लोगों के मत से 94% पर शासन होता है।

आदिकाल से भारत की धार्मिक परम्परा में अपना एक विशेष गुण रहा है। उसमें विशालता और लोच है तथा वह सतत प्रगतिशील है। 'विभिन्नताओं में एकता'—इस विचार को हमारे धर्म ने अपने इतिहास में कभी विलग नहीं होने दिया। वह सामाजिक संस्थाओं की विशेषताओं और उसके व्यक्तिगत अधिकारों का तब तक आदर करता है, जब तक वे उस सामाजिक व्यवस्था से मेल खाते हैं जो सदियों से उसके साथ ताने-बाने की तरह बुनी गयी है।

—डा. राधाकृष्णन्

× × ×

योगी अरविन्द ने कहा है, 'भूतकाल का गौरव, वर्तमान की पीड़ा और भविष्य के सपने जिस देश के नौजवानों में रहते हैं वह देश प्रगति करता है।

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में दक्षिण एशियाई संस्कृति पर लेख

भारतीय मानव विज्ञानी के बजाय संस्कृति-विशेषज्ञ से लिखाने की मांग

रांची (ए.स.)—संस्कृति विहार, रांची के निदेशक प्रो. हरवंशलाल ओबराय ने एक वक्तव्य में कहा है कि यह बड़े ही हर्ष का विषय है कि एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के सम्पादकीय बोर्ड ने ब्रिटेनिका के अगले संस्करण के लिए 'दक्षिणी एशियाई संस्कृति' पर लेख तैयार करने के लिए एक भारतीय विद्वान् को आमंत्रित किया है। यह तो और भी सम्मान और गौरव की बात है कि यह कार्य मेरे सम्मानीय मित्र, रांची विश्वविद्यालय के मानव विभाग के विभागाध्यक्ष डा. ललिताप्रसाद विद्यार्थी को सौंपा गया है। परन्तु मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि भारतीय संस्कृति के प्रति न्याय एवं ज्ञान के प्रति न्यायसंगतता के हित में यह अत्यधिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य आर्य-संस्कृति के किसी अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान् को सौंपा जाना चाहिये था। दक्षिणी एशियाई संस्कृति के अन्तर्गत भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, बर्मा, नेपाल, भूटान, सिक्किम, तिब्बत, थाईलैंड, कम्बोडिया, लाओस, वियतनाम, मलाया, सिंगापुर, इन्डोनेशिया, पॉलिनेशिया, प्रशान्त द्वीपसमूह, फिलिपीन, हांगकांग, चीन आदि देश आ जाते हैं। संक्षेप में उपरोक्त कार्य का अभिप्राय है वृहत्तर भारत का अध्ययन। स्व. डा. रघुबीर वृहत्तर भारत के महानतम अध्येता थे। उनके सुपुत्र डा. लोकेशचन्द्र उनके पद-चिह्नों का ही अनुसरण कर रहे हैं और अपने पिता द्वारा प्रज्वलित ज्ञान-मार्ग को और प्रशस्त करने में लगे हैं। इनके अलावा कुछ अन्य विश्व-ख्यातिप्राप्त आर्य-संस्कृति विशेषज्ञ भी हैं जैसे—डा. आर. सी. मजूमदार, डा. आर. सी. छाबड़ा, डा. बी. आर. चटर्जी, डा. बुद्ध प्रकाश, प्रो. के. ए. एन. शास्त्री, डा. बैजनाथ पुरी आदि ऐसे विद्वान् हैं जिन्होंने उपरोक्त विषय पर काफी प्रामाणिक, उच्च कोटि की सामग्रियाँ प्रस्तुत की हैं। उचित तो यह होता कि इस विषय में अखिल भारतीय प्राच्य सम्मेलन, पूना या अन्तरराष्ट्रीय प्राच्यविद् कांग्रेस से परामर्श लिया जाता।

श्री ओबराय ने कहा है कि हमें बड़ी ही प्रसन्नता होती यदि डा. विद्यार्थी को मानव विज्ञान विषय जैसे दक्षिण बिहार के जनजातीय जीवन पर लिखने को कहा जाता। संस्कृति मूल्यों का अध्ययन-विषय है जातीय वंशों का नहीं। प्रो. ओबराय ने अपने वक्तव्य में आशा व्यक्त की है कि एन्साक्लोपीडिया ब्रिटेनिका का सम्पादकीय बोर्ड उनके उपरोक्त सुझावों पर विचार करेगा।

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका : संस्कृति लेख आवंटन पर विवाद

हम लोगों को आपके समाचार-पत्र के 17 अक्टूबर के अंक में 'स्थानीय एवं प्रान्तीय समाचार' स्तम्भ के अन्तर्गत 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में दक्षिण एशियाई संस्कृति पर लेख भारतीय मानव विज्ञानी के बजाय संस्कृति विशेषज्ञ से लिखाने की मांग' शीर्षक समाचार को पढ़कर ज्ञात हुआ कि 'संस्कृति विहार' के निदेशक प्रो. हरवंशलाल ओबराय ने ऐसी मांग की है। प्रो. ओबराय ने मानव विज्ञान को संस्कृति से अलग माना है। किन्तु यह उनका भ्रममात्र है। वस्तुतः मानव-विज्ञान संस्कृति का ही अध्ययन है।

यह पहला अवसर नहीं जबकि डा. विद्यार्थी को इस तरह का सम्मान दिया गया हो। प्रो. ओबराय के कथन का तात्पर्य यह है कि डा. विद्यार्थी को यह सम्मान देकर भारतीय संस्कृति के प्रति अन्याय किया गया है। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में आर्य-संस्कृति पर नहीं किन्तु दक्षिण एशियाई संस्कृति पर लेख लिखने को कहा गया है। 'द. एशियाई संस्कृति का प्रयोग प्रो. ओबराय एवं उनके मित्र आर्य-संस्कृति तक ही सीमित रखते हैं। दक्षिणी एशियाई संस्कृति को मात्र आर्य-संस्कृति समझना प्रो. ओबराय की संकीर्णता का द्योतक है। मानवशास्त्री संस्कृति शब्द का प्रयोग व्यापक रूप से करते हैं। मानव वैज्ञानिक के अनुसार संस्कृति शब्द के अन्तर्गत मात्र आर्य-संस्कृति नहीं वरन् समस्त संस्कृतियाँ—आर्य-अनार्य, आदिम जातीय एवं जनजातीय संस्कृति—सम्मिलित हैं और दक्षिण एशियाई संस्कृति इन समस्त संस्कृतियों का समन्वय है न कि केवल आर्य-संस्कृति।

डा. विद्यार्थी को यह सम्मान देकर एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के सम्पादकीय बोर्ड ने पूर्ण न्याय किया है। डा. विद्यार्थी का संस्कृति का अध्ययन मात्र पुस्तकीय ही नहीं वरन् संस्कृति का उनका अध्ययन संस्कृति की गोद में जाकर, सहभागिक अवलोकन पर आधारित होता है।

प्रो. ओबराय ने डा.विद्यार्थी को जातीय वंशों का विशेषज्ञ माना है जबकि सारी दुनिया उन्हें संस्कृति विशेषज्ञ, मानव विज्ञानी मानती है।

हम एन्साइक्लोपीडिया के सम्पादकीय बोर्ड से आशा करते हैं कि प्रो. ओबराय के विचारों की ओर ध्यान न देकर संस्कृति के निष्पक्ष एवं वैज्ञानिक अध्येता के ज्ञान से वंचित न हों।

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका

संस्कृति लेख आवंटन पर विवाद

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के सम्पादकीय मण्डल ने डा. ललिताप्रसाद विद्यार्थी को दक्षिण एशियाई संस्कृति पर लेख लिखने के लिए जो आमंत्रण दिया है उस पर मैंने जो वक्तव्य दिया है (रांची एक्सप्रेस, 17 अक्टूबर, 71) वह शुद्ध कर्तव्य भावना से प्रेरित है। डा. विद्यार्थी मेरे मित्र हैं, किंतु मेरे लिए भारत का हित तथा ज्ञान का सम्मान किसी भी मित्र की मित्रता से अधिक मूल्यवान है।

डा. विद्यार्थी ने मेरी प्रतिक्रिया का स्वयं कुछ उत्तर न देते हुए अपने तीन छात्रों से 'रांची एक्सप्रेस' के दिनांक 7 नवम्बर के अंक में सम्पादक के नाम एक पत्र प्रकाशित कराया है जिसमें मेरे सुझाव को संकीर्णता एवं मेरे मत को भ्रममात्र लिखा गया है। मैंने इस विषय में अपनी प्रतिक्रिया का प्रकाशन अखिल भारतीय समाचार-पत्रों में तथा इंग्लैण्ड और अमेरिका के पत्रों में भी किया है।

मेरा विनम्र तर्क निम्न है—

(1) नृतत्त्व अथवा 'मानव विज्ञान' (Anthropology) जातियों के वंशानुक्रम का अध्ययन है। कुछ मात्रा में इस विषय के अन्तर्गत सभ्यता के विकास का अध्ययन भी किया जाता है, जिसे कोई भ्रमवश संस्कृति का नाम दे दे तो उसकी भारी भूल है।

(2) संस्कृति जीवन का सार है और सभ्यता जीवन का शृंगार है।

(3) नृतत्त्व में जीवन के उन आधारभूत मूल्यों का अध्ययन नहीं किया जाता जिनसे मानव जीवन को वास्तविक मूल्य मिलता है तथा नर-पशु संस्कारित होकर सच्चे नरत्व, देवत्व एवं ब्रह्मत्व को पाता है। जो संस्कृति मानव का संस्कार कर उसे परिष्कृत न कर सके वह संस्कृति कहलाने योग्य नहीं है। उदाहरणार्थ, अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों में जीवन के सुख-साधनों का विकास कर जीवन-स्तर ऊंचा किया गया है किंतु मानवीय गौरव-गरिमा का स्तर नीचे गिर गया है। पश्चिम के उत्तम रोटी, कपड़ा, मकान आदि

सुख-साधनों से सम्पन्न किसी विलासी व्यक्ति की तुलना में महात्मा गाँधी जैसा अथवा वनवासी राम जैसा लंगोटीधारी या वल्कल वस्त्रधारी महापुरुष सांस्कृतिक दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

(4) भारतीय संस्कृति के अध्ययन को भारतीय विद्या (Indology) कहते हैं। सारे पूर्वी देशों के सांस्कृतिक अध्ययन को प्राच्य विद्या (Orientology or Oriental Studies) कहा जाता है। दक्षिण एशियाई संस्कृति पर संसार के महानतम विश्वकोश (एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका) के लिए लेख निश्चय ही किसी भारत विद्या विशारद अथवा प्राच्य विद्या विशारद द्वारा लिखवाना चाहिए, किसी नृतत्त्व शास्त्री द्वारा नहीं, यही मेरा साग्रह निवेदन है। Indologist के लिए आर्य-संस्कृति विशेषज्ञ शब्द न देकर भारत विद्या विशेषज्ञ का प्रयोग होना चाहिए।

(5) Anthropology तोड़ती है, संस्कृति जोड़ती है। संसार भर के नृतत्त्व-शास्त्री श्री हनुमान को राम से भिन्न अनार्य, दक्षिण वासी वानर, वनवासी कहते रहेंगे। किंतु संस्कृति ने दोनों को ऐसी एकरूपता दे दी कि हनुमान के रोम-रोम में राम समा गया तथा संस्कृति की सुधा द्वारा यह राष्ट्रीय एकात्मता का चमत्कार हुआ है।

(6) दक्षिण एशियाई क्षेत्र में जितने भी देश हैं, सबके सब भारतीय संस्कृति से प्रभूत मात्रा में प्रभावित हैं। अतः भारतीय संस्कृति के विद्वान् ही इस विषय के साथ न्याय कर सकते हैं।

(7) डा. विद्यार्थी का संस्कृत ज्ञान एवं संस्कृति का ज्ञान आधिकारिक नहीं है। चम्पा में हजारों संस्कृत शिलालेख हैं, थाईलैंड एवं इन्डोनेशिया में सहस्रों शिलालेख एवं तारपत्र ग्रंथ हैं जो भारतीय संस्कृति के प्रभाव की घोषणा कर रहे हैं। सारे दक्षिण एशिया की भाषाओं, लिपियों, उत्सवों, मन्दिरों पर भारत की छाप है। डा. विद्यार्थी इन तथ्यों से अनभिज्ञ हैं तथा उक्त देशों की भाषा का अक्षर-ज्ञान भी नहीं रखते। इसकी तुलना में देश में ऐसे विद्वान् जीवित हैं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन इन्हीं विषयों की शोध में लगा दिया है। निश्चय ही उनमें से किसी को विश्वकोश में लिखने के लिए आमंत्रित करना संस्कृति का उचित सम्मान होगा।

(8) यह सर्वविदित तथ्य है कि एन्साइक्लोपीडिया में भारतीय दर्शन पर लेख के लिए भारत के महामहिम राष्ट्रपति, विश्व-मनीषा के मणिमुकुट डा. राधाकृष्णन को आमंत्रित किया जाता था।

हमारी विनम्र प्रार्थना है कि दक्षिण एशियाई संस्कृति पर प्रामाणिक लेख

लिखने के लिए भारत विद्या अथवा प्राच्य विद्या के किसी विश्वविख्यात विद्वान् को आमंत्रित किया जाना चाहिए, जो कि हमारे मित्र डा. विद्यार्थी निश्चय ही नहीं हैं। अधिक शालीनता तो इसी बात में होगी यदि प्रो. विद्यार्थी स्वयं ही इस लेख को लिखने में अपनी असमर्थता ज्ञापित कर देवें ताकि भारत के प्रति व ज्ञान-साधना के प्रति उचित न्याय हो सके।

हमें अपने प्राचीन साहित्य में, धर्म में, शास्त्र में जिस विद्या का भग्नांश ही प्राप्त हुआ है उसकी तुलना में आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान की सारी विद्या है नवजात शिशु का अर्थहीन प्रलाप मात्र। जैसे शिशु जो पदार्थ भी सामने देखता है उसे हाथ में उठा, हाथ फिरा, तोड़-फोड़कर बाह्य जगत् का थोड़ा-बहुत ज्ञान संचय करता है किन्तु जगत् क्या है, पदार्थ का असली स्वरूप क्या है व सम्बन्ध क्या है, कुछ भी नहीं जानता, वैसे ही पाश्चात्य विज्ञान प्रकृति के सब स्थूल पदार्थ हाथ में उठा, हाथ फिरा, तोड़-फोड़कर कुछ ज्ञान संचय करता है। किन्तु जगत् क्या है, पदार्थ का असली स्वरूप क्या है, स्थूल-सूक्ष्म में क्या सम्बन्ध है, इस विषय में वह कुछ नहीं जानता और इस विद्या के अभाव में पदार्थ के वास्तविक स्वभाव से अवगत नहीं हो पाता।

—ऋषि अरविन्द

× × ×

भारत की मूल विशेषता यद्यपि अध्यात्मिक क्षेत्र में है। तथापि भौतिक रूप से भी भारत अन्य पाश्चात्य देशों से अधिक समृद्ध रहा है...और आज भी है। अभाव है तो सिर्फ स्वाभिमान की जागृति का। अमृत पुत्रो! अपने गौरवशाली अतीत को पहचानो, गर्व करो...और जुट जाओ देश को पुनः वैभवशाली स्थिति में पहुँचाने के लिए।

—स्वामी विवेकानन्द

बौद्ध धर्म के पतन का कारण

भगवान बुद्ध एवं महावीर दोनों वंश-परंपरा से क्षत्रिय थे। किन्तु उन्होंने क्षत्रियजनों की मृगया, युयुत्सा, शस्त्रचर्या एवं हिंसा त्याग कर शाकाहारी (शुद्धाहार) एवं अहिंसा (शुद्धाचार) का व्रत लिया था। सम्राट् अशोक भी प्रियदर्शी अशोक बना। बौद्ध धर्म के राजधर्म घोषित हो जाने के पश्चात् देश की बहुसंख्यक जनता बुद्धं शरणं गच्छामि गाने लगी। काशी के राजा सुधन्वा द्वारा भी बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेने पर उसकी रानी चिन्ता के आंसू बहाने लगी। सर्वे बौद्धा बौद्धाः को वेदानुर्थाख्यते अर्थात् सभी तो बौद्ध बनते जा रहे हैं, अब वेदों का उद्धार कौन करेगा ? नीचे राजप्रासाद के आगे राजपथ पर जाते हुए एक ब्राह्मण नवयुवक ने रानी की करुणा-विगलित वाणी सुनकर उत्तर दिया, 'मा विषीद वरारोहे भट्टाचायोऽत्त जीवति, (हे सुमुखी! विषाद मत करो, कुमारिल भट्ट अभी जीवित है)। 8वीं शती में शंकराचार्य एवं कुमारिल भट्ट ने वेद-निंदक बौद्धों को शास्त्रार्थों में परास्त कर सनातन वैदिक धर्म की पुनर्संस्थापना की। बौद्ध धर्म के समस्त सद्गुणों को वैदिक धर्म का अंग सिद्ध किया गया तथा स्वयं भगवान बुद्ध को भगवान विष्णु के अवतार के रूप में पूजा जाने लगा।

वेद-निंदा के अतिरिक्त बौद्धों में दो बड़ी विकृतियाँ आ गई थीं। अशोक एवं कनिष्क के समय बौद्ध धर्म सारे एशिया एवं मध्य-पूर्व में फैल चुका था। अतः बौद्ध लोग कहने लगे थे कि—हिन्दू धर्म तो मात्र एकदेशीय धर्म है। बौद्ध-धर्म विश्व धर्म है। वे साम्प्रदायिक भाव से प्रेरित हो भारत पर विदेशी आक्रमण के समय भारत के ब्राह्मण राजा (सिंध के राजा दाहिर) एवं क्षत्रिय राजा (विक्रमादित्य एवं यशोधर्मा) के विरोध में विदेशी आक्रान्ताओं (हूणों, शकों, मंगोलों, अरबों) का साथ देने लगे थे। यह सांप्रदायिक स्वार्थ के नाम पर देश-द्रोह था। विदेशी आक्रान्ता भी इन देश-द्रोही तत्त्वों से गुप्त सहयोग पाने की लालसा से हिमालय या हिन्दूकुश पार करते ही अपने-आप को झूठ-मूठ बौद्ध घोषित कर देते थे। विश्व इतिहास का परम हिंसक मंगोल आक्रान्ता छिंगिस खां (चंगेज खां) भी बौद्ध बना हुआ था तथा उसका रक्तपात-रंजन बेटा कैवल्य खां (कुबलाई खां) भी बौद्ध था।

बौद्धों में दूसरी बड़ी विकृति आ गई थी—स्वच्छंद यौनाचार की। भगवान बुद्ध ने पूर्ण ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया। उन्होंने स्वयं ने गेरिक-वस्त्र धारण कर परिव्रज्या ली। अपने बूढ़े पिता को भी परिव्रज्या दे दी, अपने नन्हे पुत्र राहुल को भी पीतवस्त्र दिया तथा अपनी पत्नी यशोधरा को भी भिक्षुणी बनने की अनुमति प्रदान कर दी। जब नर और नारी और तीन-तीन पीढ़ियाँ संन्यासी बनने लगी तब आश्रम व्यवस्था गड़बड़ा गई। प्रतिक्रियास्वरूप भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों में अत्यंत कामेच्छा जाग उठी तथा खुलकर व्यभिचार चलने लगा। वज्रयान बौद्धों ने वामाचारी तांत्रिक के दूषित प्रभाव को लेकर अपने ग्रंथों में लिखना प्रारंभ कर दिया कि डोमनी या रजकी के साथ काम-संभोग से तुरंत निर्वाण-पद मिलता है।

इस संभोग से समाधि वाले मंत्र ने आचार्य कण्हया से आचार्य रजनीश, बालयोगेश्वर दादा लेखराम, प्रभातरंजन बाबा तक सभी को डुबो दिया। वेद-निंदा, देश-द्रोह एवं यौन-भ्रष्टाचार के कारण बौद्ध नाम भी लांछित हो गया था। अतः भगवान शंकराचार्य के शंखघोष के साथ कोटि-कोटि भारतीय पुनः सनातन वैदिक धर्म में लौट आये। उन्होंने भगवान बुद्ध को तो नमन किया किन्तु विकृत बौद्ध धर्म को तिलांजलि दे दी।

इस्लामिक आक्रान्ताओं ने बौद्ध भिक्षुओं की सामूहिक हत्या करके इस्लाम ने बौद्ध धर्म की ही हत्या कर दी। यह भारत में बौद्ध धर्म पर सबसे भयंकर आघात था। **—डा. अम्बेडकर**

× × ×

शांति और प्रेम केवल समान लोगों में ही सम्भव है। शांति के वास्तविक शत्रु वे दुर्बल लोग ही हैं, जो अपनी दुर्बलता से आक्रान्ताओं को निमंत्रण देते हैं। यदि हम शक्तिहीन हैं, तो हम विश्व-शांति को भंग करने के अपराधी हैं। हमारे पतन का मूल कारण हमारी मानसिक दुर्बलता ही है। **—डा. केशवराव बलीराम हेडगेवार**

× × ×

'केवल वे जो इतने शक्तिशाली हैं कि न केवल अपनी रक्षा कर सकते हैं, वरन् शत्रुओं के हृदय में भय उत्पन्न कर सकते हैं, शान्ति, अनाक्रमण और अहिंसा की बात कर सकते हैं।' **—वीर सावरकर**

हमारे पतन का कारण

जो समाज अपने को युग के अनुरूप नहीं ढालता, नहीं बदल लेता वह समाज अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकता। अतः समाज को जीवित रखने के लिए युग के अनुरूप उसमें परिवर्तन आवश्यक है।

अर्नाल्ड टायनबी कहते हैं—इतिहास में दो प्रकार के समाज रहे हैं। एक Settle Society और दूसरा Unsettle Society. Unsettle Society जिनका अपना घर-बार कुछ नहीं होता। रेगिस्तान की मरुभूमि में स्थिर मकान बन नहीं सकते, जीवनभर इधर से उधर डोलते रहते हैं। ऐसा समाज जिनका अपना घर तो होता नहीं और दूसरों के घरों को उजाड़ने में ही अपनी शान समझते हैं।

दूसरा समाज वह, जो अपना स्थिर, सुन्दर घर बनाता है। उसे सजाता-संवारता है, साफ रखता है, दूसरे के घरों को विनष्ट नहीं बल्कि सजाने-संवारने में सहयोग करता है।

बन्दर और पक्षी की कहानी सभी जानते हैं कि पक्षी द्वारा बन्दर को सीख देने पर बन्दर ने किस तरह पक्षी के घर को उजाड़ दिया।

इसी प्रकार अरबवासियों का अपना तो कोई घर था नहीं और जिनका घर था उनको उजाड़ने में लगे रहे।

एक प्रश्न सामने आता है हिन्दू पर चारों ओर से आघात होने पर भी वह जागता क्यों नहीं? इसका कारण बताया जाता है 1200 वर्षों की गुलामी।

तब प्रश्न उठता है आखिर देश पराधीन ही क्यों हुआ। उसके दो कारण हैं—पश्चिम वालों की स्वर्णलोभ की वृत्ति एवं हिन्दुओं का असंगठित होना। पश्चिम वाले भूखे भेड़ियों के समान इस देश को लूटने के लिए आक्रान्ता बनकर आये।

कुछ लोगों ने भूल से हमारे अध्यात्म, आध्यात्मिक सद्‌गुणों को ही हमारी दुर्बलता का कारण मान लिया। यह उनका गलत ढंग है सोचने का। स्वामी रामतीर्थ कहते हैं—सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, संतोष, दम, तप, अद्रोह आदि हमारे आध्यात्मिक सद्‌गुण हैं। अपने घर को सजा-संवार कर रखना एक अच्छा गुण है। उसमें सुन्दर पुष्पवाटिका लगाना, उसमें तरह-तरह के फूल-पत्ते,

लतायें उस पुष्पवाटिका का गुण है। शत्रु हमारी पुष्पवाटिका को उजाड़ देगा, आक्रमण करेगा, हम पुष्पवाटिका ही न लगायें यह तो कोई बात नहीं। हमारी मां, बहिन, पुत्री के सुन्दर चेहरे को गुण्डे के भय से उसके चेहरे पर तेजाब डालकर उसकी सुन्दरता नष्ट नहीं कर दें, सुन्दरता उसका गुण है। उसी प्रकार अध्यात्म हमारी दुर्बलता का कारण नहीं। अध्यात्म, आध्यात्मिक गुण हमारी सुन्दरता है। उसे नष्ट करने की आवश्यकता नहीं। जैसे सुन्दर वाटिका की रक्षा के लिये कंटीली झाड़ियाँ लगाने की आवश्यकता है जिससे कि पशु या नर पशु उसको उजाड़ न जाय। हमने भूल यही की। हमने आध्यात्मिक पुष्प तो बहुत लगाये, किन्तु उसकी रक्षा के लिये कंटीली झाड़ियाँ नहीं लगाई। अतः कंटीली झाड़ियाँ लगाने की आवश्यकता है। हम यथार्थ व्यावहारिकता को भूल गये कि कहाँ हिंसा का प्रयोग करना चाहिए, कहाँ नहीं; कहाँ क्षमा, दया आदि सद्गुणों का प्रयोग करना चाहिये, कहाँ नहीं; कहाँ अतिथि धर्म का पालन करना चाहिए आदि-आदि।

इसी कारण हमारे मंदिर लूटे गये, हमारी पुस्तकों से हमाम चलते रहे, स्नान के लिये पानी गरम होता रहा, आदि-आदि। यथार्थ व्यावहारिकता का अभाव और सद्गुणविकृति के कारण हमारी आज तक यह दुर्दशा बनी हुई है। देश-काल-पात्र-परिस्थिति का बिना विचार किये ही हम सद्गुणों का प्रयोग करते आये हैं, तब ये सद्गुण न रहकर सद्गुणविकृति हो जाते हैं। हमारी उदारता और सद्गुणों का दुरुपयोग ईसाई, मुसलमान, कम्युनिस्ट और राजनीतिक स्वार्थ के लोभ से राजनेता कर रहे हैं।

विल डूरेन्ट की उक्ति—हे भारत! इससे पहले कि अपनी घोर नास्तिक भोगवादी सभ्यता से निराश, शांति के लिये तरसता हुआ अतिव्याकुल पश्चिम तुम्हारी शरण में आ जावे, कहीं भूल से अपनी लम्बी राजनीतिक पराधीनता के लिये अपने श्रेष्ठ अध्यात्म को ही दोषी मानकर अपने घर को मत फूंक डालना।

स्मरण रखो, यदि तुम पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता के चक्कर में पड़ कर आध्यात्मिकता का आधार त्याग दोगे तो उसका परिणाम होगा कि तीन पीढ़ियों में तुम्हारा जातीय अस्तित्व मिट जाएगा क्योंकि राष्ट्र का मेरुदण्ड टूट जाएगा, राष्ट्रीय भवन की नींव ही खिसक जाएगी। इस सबका परिणाम होगा सर्वतोमुखी सत्यानाश।

—स्वामी विवेकानन्द

आम मुसलमान गुंडा है और आम हिन्दू कायर है। और जब तक दुनिया में कायर रहेंगे, तो गुंडे भी रहेंगे।

—महात्मा गाँधी

संघ–भारत एवं भारतीयता का अभेद्य कवच

भारत जो प्राचीनकाल में विश्वगुरु के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था, विगत 12 शताब्दियों में अनेक बर्बर एवं क्रूर जातियों से पदाक्रान्त एवं पराभूत इसलिये हुआ था कि हम पर वैभव के भोग से विलास आ गया। विलास के स्वार्थ से समाज में संगठन के स्थान पर फूट छा गई तथा व्यक्तिगत अहंकार या राज्यगत स्वार्थों के संघर्ष में देश के नागरिकों एवं राजाओं का राष्ट्रीय चरित्र लुप्त हो गया।

डॉ केशव बलिराम हेडगेवार ने सन् 1925 में राष्ट्र के इस महारोग का निदान कर, भोग के स्थान पर त्याग के आधार पर राष्ट्रीय चारित्र्य सम्पन्न तेजस्वी, तपस्वी तरुणों का देशव्यापी संगठन प्रारम्भ किया जो आज 54 वर्षों की तपस्या के फलस्वरूप राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भारत एवं भारतीयता का अभेद्य कवच बन गया।

प्रो. ओबराय ने कहा—जब मुस्लिम लीग के गुण्डों ने गाँधीजी पर आक्रमण की धमकी दी थी तो हरिजन कालोनी दिल्ली में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अनेक स्वयंसेवक दिन-रात गाँधीजी की रक्षा हेतु पहरा देते थे। काश्मीर की रक्षा में अनेक संघबंधु बलिदान हुए। चीनी आक्रमण के समय स्वयं पंडित नेहरू ने स्वयंसेवकों की देशभक्ति की सराहना की। पाकिस्तान के आक्रमण के समय शास्त्रीजी ने संघ से यथेष्ठ सहायता ली, नेपाल-भारत सम्बन्ध सुधारने में गुरुजी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। 15 अगस्त, 1947 को मुस्लिम लीग द्वारा सभी मंत्रियों के सामूहिक वध का षड्यंत्र संघ के स्वयंसेवकों ने निरस्त किया। जयप्रकाशजी संघ के परम प्रशंसक बन गये।

दीर्घ रजनी अब समाप्त होती हुई जान पड़ती है। महादुःख का प्रायः अन्त ही प्रतीत होता है। महानिद्रा में निद्रित शव मानो जागृत हो रहा है...

यह देखो भारत माता धीरे-धीरे आंखें खोल रही है। यह कुछ ही देर सोई थी। उठो, उसे जगाओ और पहले की अपेक्षा और भी गौरवमण्डित करके भक्ति भाव से उसे उसके चिरन्तन सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दो। **—स्वामी विवेकानन्द**

उत्तरी सीमा पर चीनी आक्रमण_इतिहास की भीषण चेतावनी

इतिहास के उषाकाल में भारत ने सारे विश्व को जो ज्ञानालोक प्रदान किया उसी परम्परा में एशिया के अनेक देशों के समान चीन को भी धर्मदृष्टि प्रदान की। किन्तु, जहाँ भारत ने चीन को करुणावतार भगवान बुद्ध प्रदान किए वहाँ चीन आज भारत की छाती पर गोलियाँ चला रहा है, चीन का धर्मभूमि भारत पर हमला पाकिस्तान का हजरत मुहम्मद की जन्मभूमि मक्का पर हमला करने के तुल्य है।

भारत की प्राकृतिक सीमाएं

ईश्वर की ओर से भारत को जितनी प्राकृतिक एवं सुदृढ़ सीमाएं प्राप्त हुई थी वैसी संसार के किसी भी अन्य देश को प्राप्त नहीं हुई। उत्तर में 3000 वर्गमील का हिमालय हमारे रक्षक के समान खड़ा है। पश्चिमोत्तर में हिन्दूकुश की ऊंची पर्वत श्रृंखला थी, बाकी 3 ओर अनन्त सागर प्रत्येक आक्रांता को लीलने के लिये आकुल है। किन्तु, जितनी सुदृढ़ सीमाएं हमें प्रकृति से प्राप्त हुई उसके मुकाबले में हम अपनी सीमाओं की रक्षा के प्रति उतने जागरूक नहीं रहे। दर्रा-खैबर एक साधारण सा दर्रा है जो कहीं-कहीं कुछ गज मात्र ही है और कहीं-कहीं एक फर्लांग मात्र। हमने शत्रु को वहाँ नहीं रोका और हर गजनवी, गोरी, खिलजी, हर तुर्क, तातार, मुगल, अफगान सारे भारत को रौंदता हुआ चला गया। हमने शत्रु को सीमा पर नहीं कुचला। बाद में बारी-बारी झेलम, रावी, व्यास, सतलुज पर हम शत्रु से भिड़े सही, किन्तु देश को गुलामी के पंजे से न बचा सके। एक बख्तियार खिलजी मुट्ठी भर सैनिकों के साथ आया और मुट्ठी भर सैनिकों के साथ सारे भारत को रौंदता हुआ बंगाल तक बढ़ गया। नालन्दा विश्वविद्यालय के महान् पुस्तकालय को जला दिया। नालन्दा तथा विक्रम विश्वविद्यालयों के हजारों स्नातकों तथा ब्रह्मचारियों को तलवार के घाट उतार दिया तथा बोरों में भरवाकर समुद्र में फिंकवा दिया। सीमा सुरक्षा के प्रति एक छोटी सी असावधानी के कारण सारे देश को डेढ़ हजार वर्ष तक की गुलामी का शिकार होना पड़ा। क्या हम इतिहास की इस भीषण चेतावनी पर ध्यान देंगे?

ब्रिटिश शासन में भारत की सीमा सुरक्षा

अंग्रेजों ने भारत के पश्चिमोत्तर में अफगानिस्तान को एक 'बफर स्टेट' के रूप में रखा। उस के साथ ही आगे की सीमा प्रारम्भ हो जाती है। अंग्रेज ने जान लिया कि यदि कहीं भारत की सीमा रूस जैसे बड़े एवं भयंकर देश के साथ जा लगी तो सदा संकट बना रहेगा। अतः अंग्रेजों ने अफगानिस्तान के साथ तीन युद्ध लड़े तथा अफगानिस्तान को भारत तथा रूस के बीच 'बफर राज्य' रखा ताकि रूस द्वारा होने वाला प्रथम हमला अफगानिस्तान सहे तथा तब तक भारत सम्भल जावे। इसी प्रकार उत्तर में चीन को भारत की सीमा से सदा दूर रखने के लिए तिब्बत को स्वाधीन 'बफर स्टेट' के रूप में रखा गया। तिब्बत के गुलाम होने का अर्थ भारत के द्वार पर नित्य का झगड़ा है। अतः हमारे देश की 3000 मील की उत्तरी सीमा (मेकमोहन लाइन) तिब्बत से मिलती थी न कि चीन से। तिब्बत एक शान्तिप्रिय देश था तथा भारत का उत्तरी सीमांत सदा सुरक्षित था। पूर्व की ओर हिन्द-चीनी के झगड़ों को भारत की सीमा से दूर रखने के लिए अंग्रेज ने स्याम देश को स्वतन्त्र 'बफर स्टेट' रखा ताकि भारत की सीमाओं से झगड़े या संकट की अग्नि को सदा दूर रखा जाये।

वर्तमान असुरक्षित सीमान्त

अब पाकिस्तान के निर्माण की भयंकर भूल से भारत की 2500 मील की सीमा पूर्व और पश्चिम में पाकिस्तान जैसे झगड़ालु देश से जा मिली है। यह सीमा प्राकृतिक नहीं, खेतों और मैदानों में से गुजरती है। इस की रक्षा भी एक महान् समस्या है। फिर उत्तर की ओर चीन द्वारा तिब्बत की हत्या होने के पश्चात् भारत का 3000 मील का उत्तरी सीमान्त लालचीन के खूनी पंजों की मार में आ गया है। वे जब चाहते हैं, जहाँ चाहते हैं वहीं गोलियाँ चला कर भारत के क्षेत्र पर अधिकार कर रहे हैं।

तिब्बत का नरमेध

तिब्बत संसार के उच्चतम पठार पर अवस्थित शान्तिप्रिय, शीत प्रधान देश है। वहाँ की आधी से अधिक जनता लामाओं (साधुओं) की है। प्रत्येक घर में से कम से कम 1 व्यक्ति को लामा बनाया जाता है।

उन निहत्थे साधुओं के मठों के भीतर घुस कर चीनी दरिन्दों ने 65 हजार लामाओं की हत्या कर दी है। भारत सरकार ने तिब्बत पर चीनी शासन को मान्यता देकर भारतीय इतिहास की सबसे बड़ी भूल की है। तिब्बत की रक्षा का उत्तरदायित्व सदा भारत पर रहा है। अभी तक वहाँ की एक तार व्यवस्था भारत के हाथ थी, ल्हासा में भारतीय सेना की टुकड़ी सदा रहती थी। सांस्कृतिक दृष्टि से भी

हम तिब्बत देश को कभी भी भूल नहीं सकते। यह हमारे कैलास एवं मानसरोवर का देश है। गंगा, सिन्धु एवं ब्रह्मपुत्र का उद्गम स्थल भी वहीं है। यह त्रिविष्टप देश हमारा प्राचीन स्वर्ग है। इसकी हत्या के पश्चात् भारत सदा संकट में है।

चीन का षड्यन्त्र

चीन ने 5 वर्ष पूर्व के नक्शों में भी 44 हजार वर्गमील भारतीय क्षेत्र को चीन का भाग दिखाया था। अब उन्होंने भारत का साढ़े आठ हजार वर्गमील क्षेत्र अपने खूनी पंजे के नीचे दबा लिया है। साढ़े आठ हजार वर्गमील का अर्थ लगभग 1000 जालन्धर शहर जितना क्षेत्र। पं. जवाहरलाल नेहरू के जन्मदिन पर चाऊ भाई ने 9 भारतीयों की लाशें उपहार में भेजीं!! क्या भारतीयों के स्वाभिमान को यह चुनौती नहीं है?

चीन भारत का शीश काटना चाहता है। क्या भारतीय सिंह अपनी गर्जना से शत्रु का कलेजा कंपा देगा? पंजाब केशरी ला. लाजपत राय की हुँकृति हम स्मरण करें—

मगर यह बात कहने में, न चूके हैं न चूकेंगे।
लहू देंगे मगर इस देश की, मिट्टी नहीं देंगे।।

राजनीति का हिन्दूकरण और हिन्दू का सैनिककरण

'जब तक देश की राजनीति का हिन्दूकरण और हिन्दू का सैनिककरण नहीं किया जाएगा तब तक भारत की स्वाधीनता, उसकी सभ्यता व संस्कृति कदापि सुरक्षित नहीं रह सकेगी। मेरी तो हिन्दू युवकों से यही अपेक्षा है कि वे अधिक संख्या में सेना में भरती होकर सैन्य विद्या प्राप्त करें ताकि समय पड़ने पर वे अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा में योग दे सकें! विद्यालय में सैनिक शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाए।'

—स्वातंत्र्य वीर सावरकर

अहिंसा की भ्रान्त व्याख्या ने ही राष्ट्रीय चिन्तन को, विवेक की शक्ति से वंचित किया है। हमने शक्ति को ही 'हिंसा' मानना प्रारम्भ किया है और अपनी 'दुर्बलता' को हम गौरवान्वित करने लगे हैं।... विश्व दुर्बलों के जीवन-दर्शन को, चाहे वह कितना भी उदात्त क्यों न हो, सुनने को तैयार नहीं है।' **—गुरुजी (माधव सदाशिव गोलवलकर)**

अखण्ड भारत के त्रिकोण_अफगानिस्तान, बर्मा और श्रीलंका

इस देश की रक्षा अंग्रेजों ने बहुत बढ़िया की—जितनी बढ़िया सुरक्षा अंग्रेजों ने की शायद स्वाधीन भारत उसकी तुलना में शतांश भी नहीं कर सका। अंग्रेजों ने क्या किया? अंग्रेजों ने सोचा—भारत ब्रिटिश साम्राज्य के ताज का सबसे कीमती हीरा है। इसको सदा सुरक्षित रखो। क्योंकि इससे भोग मिलेंगे। भारत, भारतीयों के लिये नहीं वरन् अपने लोगों के लिये वे सुरक्षित रखना चाहते थे।

इसलिये उत्तर में तिब्बत को बफर स्टेट बनाया। बफर स्टेट अर्थात् दो बड़े राज्यों के बीच में एक छोटा राज्य जो Shock absorbing State की तरह। जैसे गाड़ी में आप चलते हैं तो रास्ते की टूट-फूट, उसके ऊबड़-खाबड़ से जो धक्के लगते हैं उससे बचने के लिए एक Shock absorber लगाया जाता है, Spring लगाये जाते हैं ताकि धक्के को वह Spring सह ले और हम बच जायें। बफर स्टेट जो है Shock absorbing State होता है। चीन का धक्का पड़ा भारत की ओर तो तिब्बत ने सह लिया। बच गया भारत, सावधान हो गया, तब तक भारत ने जवाबी हमला कर दिया। तो, अंग्रेजों ने तिब्बत को बफर स्टेट बनाया था। उधर अफगानिस्तान को बफर स्टेट बनाया। भारत की अखण्डता में एक Triangle A, B, C है। A, B, C क्या है? A, B, C है अफगानिस्तान, बर्मा, श्रीलंका। यह Triangle है।

अखण्ड भारत की त्रिकोण है A, B, C अर्थात् अफगानिस्तान, बर्मा और श्रीलंका।

अफगानिस्तान

अफगानिस्तान हमारा गंधार देश है। अफगानिस्तान में संसार की सबसे विशाल खड़ी मूर्ति है 175 फुट ऊँची है वह बामीयान में। और, एक इससे भी विशाल मूर्ति है वह बैठी हुई मूर्ति है। वह चीन में है। लुसान नामक स्थान में। इससे भी बड़ी बैठी हुई मूर्ति, उसका आकार है 276 फुट। उसकी दो जंघाओं के बीच

इतनी जगह है जिसमें सौ व्यक्ति आराम से बैठ सकते हैं। उसकी एक-एक अंगुली जो है वह 12-12 फुट, 13-13 फुट लंबी है। बड़ी विशाल मूर्ति है। तो दुनिया में विशालता में चीन, अफगानिस्तान और थाइलैण्ड एक-दूसरे से प्रतियोगिता करते हैं। अब दो सौ फुट लंबी, लेटी हुई मूर्ति Sleeping बुद्धा बैंकाक में बनाई। इस तरह हर आदमी कोशिश करता है ऊँचा बनाये, लंबा बनाये।

तो अफगानिस्तान प्राचीन गंधार देश था। दुर्योधन की माँ गांधारी वहीं की थी। शकुनि, दुर्योधन का मामा भी वहीं का था। पाणिनि वहीं के थे। वहाँ की भाषा पर संस्कृत का बड़ा प्रभाव है और आज तक वह प्रभाव जीवित है। पस्तो भाषा में कम से कम 45 प्रतिशत संस्कृत के शब्द अभी भी आप खोज सकते हैं। कुछ तत्सम और कुछ तद्भव। सयाने व्यक्ति को ऋषि बोलते हैं। सयाने और एक पठान दूसरे पठान से मिलता है तो कहता है कुशल। और वहाँ पर कुभा नदी, वेदों में जिसका उल्लेख है, आजकल उसे काबुल नदी कहते हैं, काबुल नगर कहते हैं। काबुल विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष हैं वे हमारे मित्र हैं जो पहले पंजाब विश्वविद्यालय में पढ़ाते थे और, वहाँ पर उन्होंने संस्कृत के अध्ययन को पहले से अधिक महत्त्व देना शुरू किया। अभी अनिवार्य कर दिया। अफगानिस्तान और ईरान में संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य हो गया। वे कहते हैं इसके बिना वे अपनी भाषा ही नहीं समझते। सबसे श्रेष्ठ लेखन कला, लिपि, विद्या कहीं थी तो गंधार में थी। जिसको वे श्वेत गंधार कहते हैं। एक समय वहाँ सब हिन्दू ही थे। बप्पा रावल के समय के सब राजपूत लोग हैं। बाद में धर्मान्तरण हो गया। राजपूत की आन-बान पठानों में आज भी है। अस्तु, अफगानिस्तान अखण्ड भारत के त्रिकोण का एक बिन्दु है।

दूसरा बिन्दु है बर्मा, ब्रह्मदेश। ब्रह्मदेश की राजधानी का नाम रामावती, रामावती से हुआ रमनवती, रमनवती से रंगनवती, रंगनवती से रंगन और रंगन से रंगून हो गया। वहाँ से 30 किलोमीटर दूर है हंसावती। वहाँ का माडले (जेल) तो हमारा तीर्थ हो गया जहाँ लोकमान्य तिलक ने बैठकर गीतारहस्य लिखा। हमारे बड़े-बड़े क्रान्तिकारियों को वहाँ का कारावास मिला। वहाँ एक नगर है अनिरुद्धपुर। अनिरुद्धपुर का एक नाम है आजकल अनुरोधपुर। फिर आजकल पगान भी नाम हो गया है। ह्वेनसांग कहता है जब वह वहाँ पर यात्रा पर गया था तब वहाँ ढाई लाख मंदिर देखे थे। अभी भी 15-20 मील के घेरे में 10-12 हजार मंदिर गिन सकते हैं। विष्णोमिया नामक नगर है जिसमें विष्णु की दशावतार मूर्तियाँ हैं। वहाँ की रामलीला बड़ी अलौकिक है। वहाँ पर स्वैडागपगौडा संसार का Richest मंदिर है। रंगून से 10 किलोमीटर बाहर एक ऊँची पहाड़ी पर एक पठार है। उस पर उसके चारों ओर के घेरे में 64 शिखर हैं, 64 शिखरों की गोलाई को

लेकर बीच में 65वां शिखर है। यह 65वां शिखर 368 फुट ऊँचा गया है। 65 के 65 शिखर सोने के पत्तरे से मढ़े हुए हैं। उनमें पाँच हजार हीरे जड़े हैं। साढ़े तीन हजार अन्य जड़ाऊ पत्थर हैं। चारों ओर ऊपर जाने के लिये सीढ़ियाँ हैं। 365 सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इतनी विशाल सीढ़ियाँ हैं कि हाथी भी सरोवर से सूँड से कमल को तोड़कर सीढ़ियों से चढ़कर (आकार Solid Gold की 18 फुट) भगवान बुद्ध की मूर्ति के चरणों में चढ़ाकर, मस्तक नवाकर चला जाता है। ब्रह्मदेश अपना अखण्ड भारत का अविभाज्य अंग है।

श्रीलंका अपना है। सन् 1982 में वहाँ पर विश्व हिन्दू सम्मेलन हुआ। वहाँ पर हमने प्रदर्शनी लगायी। राष्ट्रपति जयवर्द्धन ने कहा—हमने जीवन में ऐसी सुंदर प्रदर्शनी कहीं नहीं देखी। वहाँ के Cultural Minister आये। उन्होंने कहा—मैं भारतवंशी हूँ। पर मैंने भारत में और श्रीलंका में कहीं भी ऐसी प्रदर्शनी नहीं देखी। उसकी रंगीन टेलीविजन फिल्म बनाई और सारे देशवासियों को दिखाई। वह एक अलौकिक देश है। जाफना में 85 प्रतिशत हिन्दू बसे हुए हैं। शिव के मंदिर ही मंदिर हैं। त्रिपुण्ड लगाये, धोती पहने लोग घूम रहे हैं। ओम नमः शिवाय। शिवरात्रि पर महान् मेले लगते हैं।

वहाँ पर रावणेश्वर महादेव हैं। जैसे रामेश्वर महादेव हैं वहाँ पर रावणेश्वर महादेव हैं। लुअर एलिया नामक स्थान है जहाँ पर रावण की राजधानी थी। और आठ हजार फुट समुद्रतल से ऊँचा है। त्रिकूट पर्वत पर लंका बसी हुई है। यह वाल्मीकि रामायण ने कहा। त्रिकूट पर्वतों में एक पर्वत है लुअर एलिया, दूसरा पर्वत है श्रीपाद पर्वत, तीसरा है सीता एलिया। तो लुअर एलिया रावण की राजधानी है। सीता एलिया अशोकवन है जहाँ रावण ने सीता को रखा था। इसके पास सीताजी का मंदिर है। वहाँ सीताजी बीच में है। प्रायः सब मंदिरों में राम बीच में होते हैं। वहाँ तो सीता बीच में है और राम उनकी दायीं ओर हैं बायीं ओर लक्ष्मण हैं और हनुमानजी चरणों में हैं। शिखर में अनेक मूर्तियाँ बनी हुई हैं। हनुमानजी सीता के सामने परिचय दे रहे हैं अपना निवेदन कर रहे हैं, कहीं मुद्रिका दे रहे हैं, कहीं चूड़ामणि ग्रहण कर रहे हैं, कहीं अशोकवन में फल खा रहे हैं। पीछे विशाल अशोकवन है।

उसके पचासों चित्र हम लेकर आये हैं। मूर्ख लोगों को संतुष्ट करने के लिये जो कोई कहता है लंका मध्यप्रदेश में है, तो कोई कहता है लंका आंध्रप्रदेश में है। बुल्के का स्वर्गवास हो गया है। वह कहता है छोटानागपुर ही रामायण काल की लंका थी। उरांव लोग रावण की संतान हैं।

वहाँ पर संजीवनी मलय नामक पर्वत है जहाँ पर संजीवनी बूटी लेने हनुमानजी गये थे। लक्ष्मणजी की मूर्च्छा दूर हुई और उसका कुछ अंश वहाँ छूट गया। वहाँ

संजीवनी बूटी उगती है और अभी भी बेहोशी दूर करने की बहुत प्रबल औषधि (आयुर्वेद में) लंका में प्रचलित है।

श्रीपाद पर्वत है जिस पर सब धर्मों का दावा है कि हमारा है। मुसलमान, यहूदी, ईसाई उसे एडम स्पिक कहते हैं। बाबा आदम का पांव लगा हुआ है। वे कहते हैं आदम को जब स्वर्ग से गिराया गया था तो यहीं गिरा।

बौद्ध लोग उसको श्रीपाद कहते हैं। भगवान बुद्ध के चरणों का तीर्थ है। शैव लोग उसको शिवपाद कहते हैं। शिव के चरणों का तीर्थ है।

सबका दावा है और सब जाते हैं पर बौद्धों का बाहुल्य है। उस क्षेत्र में बौद्ध हिन्दू हैं वे। उत्तरी भाग में बौद्ध भी हिन्दू ही हैं। लेकिन बौद्ध हिन्दू हैं वे उत्तरी भाग में जाफना आदि में इनका बाहुल्य है और दक्षिणी भाग में बौद्ध लोगों का बाहुल्य है।

आगे, कोणेश्वर महादेव त्रिकोणावली जगह है। समुद्रतट पर विशाल पर्वत है। अचानक, समुद्र के तट पर इतना विशाल पर्वत बहुत कम मिलता है। समुद्रतट पर प्रायः जमीन समतल होती है। अचानक समुद्र के तट पर चट्टानी पर्वत, बड़ा विशाल है। उसके ऊपर बड़ा भारी मंदिर है। उसमें अनेक शिखरों में दिखाया रावण 10 शीश वाला, 20 भुजाओं से कैलास को हिला रहा है। कैलास पर शिव-पार्वती बैठे हुए हैं और हिलाने की चेष्टा कर रहा है। उसको लोग दक्षिण कैलास कहते हैं और जो रावणेश्वर महादेव है वहाँ पर रावण अपने दस शीश काटकर शिव को भेंट करता था। शिव तांडव-स्तोत्र गाता था। एक मनार है। मनार के जो मोती हैं दुनिया में प्रसिद्ध हैं। तो मनार की खाड़ी के मोती संसार में सबसे प्रसिद्ध हैं। उस मनार में इतना विशाल शिव-मंदिर है कि आप भूल जायेंगे कि आप कहाँ हैं? आप समझेंगे कि आप रामेश्वर में घूम रहे हैं। उसको लंका का रामेश्वर कहा जाता है।

भारत के इतिहास में सबसे बड़ी भूल हमारी हो गई है। यह हुई कि हमारा पश्चिमोत्तर द्वार जिसे आज दर्रा खैबर कहते हैं उसका नाम है सिंधुद्वार। मैं उसको दो बार पैदल पार करके गया हूँ। एक-आध बार गाड़ी से पार करके गया हूँ। मैंने उसको देखा, लगभग 10-12 हजार फुट की ऊँचाई पर हिन्दूकुश पर्वत में बहुत संकरा दर्रा है। इतना छोटा दर्रा है कि उस दर्रे में से, उस द्वार में से आने वाली शत्रु सेना को बड़ी कठिनाई होती है बहुत नीचे से, पहाड़ों से चढ़ते-चढ़ते, मोड़-तोड़ लेते-लेते बड़ी कठिनाई से हांफते हुए। सूखे पहाड़ हैं, पानी भी बहुत कम मिलता है, प्यास से कोई मर जाय तो उसको पानी देने वाला भी कोई नहीं है। उन पहाड़ियों से चक्कर खाते-खाते लोग ऊपर आते हैं और कहीं-कहीं तो दर्रा इतना संकरा है कि दो घोड़े एक साथ पार नहीं हो सकते और, प्रायः आक्रान्ता उधर से

आये थे।

यह एजीरोनी का चित्र है। यह रूस के ताशकन्द से आया। संस्कृत पढ़ी। भारत के इतिहास पर लिखा। भारत की संस्कृति पर लिखा। भारत के ग्रंथों का अनुवाद किया, ज्योतिष के ग्रंथों का अनुवाद किया, बहुत काम किया। वह कहता है—इतना महान् देश, इतना पवित्र देश, इतना ज्ञानसम्पन्न देश और यह लुटेरे, दुष्ट-पापियों, नरपिशाचों द्वारा रौंद डाला गया। बड़ा रोता है, दुःख प्रकट करता है। कहता है—इनको होश नहीं आया कि अपनी रक्षा करें।

इधर मुसोडर भी लिखता है, उन्होंने देखा कि भारत सोया हुआ है। कोई सामने प्रत्याक्रमण करने वाला, रक्षक-वक्षक भी नहीं। प्रतिरोध करने वाला कोई है ही नहीं। वह दर्रा खैबर पर पहुँचकर मुस्कराया कि हम दर्रा खैबर पहुँचे तो हमने देश जीत लिया। उस छोटे दर्रे में हम कई बार रोते हैं? इतिहास के आंसू बहाते हैं। यदि वहाँ पर दस सैनिक बैठ जाते तो नीचे से आने वाले दस हजार सैनिकों को वहीं पर धराशायी कर सकते थे। वहीं पर द्वार था। सब आक्रान्ता प्रायः उधर से ही आये अंग्रेजों को छोड़कर और हमने भारत की रक्षा नहीं की। इतिहास की महानतम भूल मैं इसी को मानता हूँ कि हमने अपने सिंधुद्वार की रक्षा नहीं की। यदि वहाँ पर कोई शस्त्र नहीं रहता और शत्रु की सेना नीचे से ऊपर चढ़ रही है तो हमारे वीर वहाँ से केवल चट्टानें एवं पत्थर ही लुढ़काते जाते, चट्टानों से शत्रु की लाखों सेना कुचली जा सकती थी। क्योंकि हम ऊपर होते, उनको नीचे से ऊपर चढ़ना था। कुछ न करते, पहाड़ लुढ़काते जाते, शत्रु कुचला जाता। हमने देश की सीमा की रक्षा नहीं की। उस अपराध के कारण देश की लाखों-करोड़ों संतानों को हजार वर्ष तक पराधीन रहना पड़ा।

इसलिये रणजीतसिंह ने इस चीज को पहचाना। उन्होंने देखा कि सब आक्रान्ता इससे होकर आते हैं। तो मैं उलटा उधर की ओर मार करूंगा। उन्होंने अपनी सेनायें सजायी। हरिसिंह नलवा के नेतृत्व में सेनायें मार्च करती-करती अटक तक पहुँचीं। अटक वह स्थान है जहाँ से सिंधु नदी तिब्बत में मानसरोवर के पास से निकलती है। तिब्बत में गिलगिट के पास आती है। गिलगिट के बाद नीचे उतरती है, अटक के पास पहुँचती है। वहाँ पंजाब और फ्रंटियर की सीमा कटती है और भयंकर चट्टानी-तूफानी उसका पथ है। पहाड़ों को चीरती हुई, चट्टानों को चीरती, गड़गड़ाती हुई सिंधु नदी वहाँ है। अटक से कटक तक लोग देश की सीमाओं का वर्णन भी करते थे। जब अटक में पहुँचे महाराजा रणजीतसिंह को पंडितों ने कहा—महाराज! रुक जायें, इसके आगे म्लेच्छ भूमि है। पठानों का राज्य था, तो कहा म्लेच्छ भूमि है। महाराजा रणजीतसिंह ने कहा—सबै भूमि गोपाल की

तामें अटक कहाँ। सब भूमि तो गोपाल की है, म्लेच्छ भूमि कौन-सी होती है?

सबै भूमि गोपाल की तामें अटक कहाँ,
जाके मन में अटक है सोई अटक रहा।

जिसके मन में हिचक होती है, अटक होती है, वह अटक जाता है। अटक-वटक कुछ नहीं करना है। उस तूफानी नदी को पार किया। घोड़ों पर पार किया। पेशावर पहुँचे। पेशावर होते हुए दर्रा खैबर पार करके काबुल में जाकर झण्डे गाड़े। केशरिया ध्वज फहरा दिया। पुनः पेशवाओं के बाद रणजीतसिंह ने केशरिया फहराया और उस प्रभाव से पठान स्त्रियों के मन पर ऐसा दबदबा पड़ा कि आज तक पठान स्त्रियाँ अफगानिस्तान की, कलात की, ब्लोचिस्तान की, फ्रंटियर की, सीमान्त प्रान्त की, सब, जब बच्चे को नहलाती हैं तो बच्चा रोता है, या किसी बात पर बच्चा रोता है तो डरावा देने के लिये कहती हैं, अरे, खंजीर के बच्चे! चुप हो जा हरिआ आ गया है। खंजीर उनके यहाँ गाली है। खंजीर यानी सूअर के बच्चे। अरे, खंजीर के बच्चे चुप हो जा, हरिआ आ गला। अर्थात् हरिसिंह नलवा आ गया है। पठान स्त्रियाँ आज तक हरिसिंह नलवा के नाम पर बच्चों को चुप कराती हैं। इतना बड़ा प्रभाव हमारी विजय का आज तक है।

पर दुर्भाग्य से आज यह परंपरा हमारी टूट गयी रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद। जब तक रणजीतसिंह जीवित रहे, अंग्रेजों का कब्जा सारे भारत पर हो गया था सिवाय—पंजाब के। सन् 1845 में रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद अंग्रेजों ने पंजाब में प्रवेश किया। उन्होंने दो-दो सिख (war) लड़ी। प्रथम सिख (war) में अंग्रेज हारे, सिख जीत गये। लेकिन दूसरे सिख युद्ध में अंग्रेजों ने एक कूटनीति का अवलंबन लिया। महाराजा रणजीतसिंह की विधवा रानी थी रानी जींदा। उन्होंने उसे धोखे से अपनी ओर मिला लिया और सैनिकों के साथ युद्धभूमि में धोखा हो गया।

और सिक्ख हार गए और पंजाब पर भी अंग्रेजों का अधिकार हो गया। अफगानिस्तान, बर्मा और श्रीलंका अखण्ड भारत के त्रिकोण है। अखण्ड भारत के ये अविभाज्य अंग हैं। पर अंग्रेजों ने भारत को सदा दुर्बल बनाए रखने के लिए देश की स्वाधीनता के पूर्व ही भारत से अलग कर दिया। 1903 में अफगानिस्तान को, सन् 1911 में श्रीलंका को तथा 1935 में ब्रह्मदेश को। भारत के सबल होने और विश्व के कल्याण के लिए भारत का अखण्ड होना अनिवार्य है।

योगीराज अरविन्द घोष अखण्ड भारत के दिव्य तत्त्वद्रष्टा के रूप में सदा-सर्वदा पूजित होते रहेंगे। 15 अगस्त 1947 के दिन भारत विभाजन की दुर्भाग्यपूर्ण वेला में उन्होंने देशभर को आशा एवं उत्साह का मार्ग दिखाते हुए कहा था—'देश निश्चय ही पुनः अखण्ड होकर रहेगा। विश्व की कोई शक्ति इसको सदा के लिए

ऐसे कटा-बंटा हुआ नहीं रख सकती। इसमें ईश्वरीय आदेश एवं ईश्वरीय उद्देश्य निहित है।' पर इसको यथार्थ में परिणत करने में बड़ी बाधायें हैं जिसमें एक यह भी है—

कांग्रेस में मौलाना अब्बुल कलाम आजाद आदि जो राष्ट्रीय मुसलमान समझे जाते थे उनकी स्थिति के विषय में 'Muslim politics in secular India' में हमीद दलवाई स्पष्ट करते हुए कहते हैं—जिन्ना एक हिस्से में इस्लाम स्थापित कर वहाँ से सारे देश को धीरे-धीरे ग्रसना चाहते थे और मौलाना अब्बुल कलाम आजाद एक बार में ही सारे देश को इस्लाम में लाना चाहते थे। यही दोनों में अन्तर था। मौलाना अब्बुल कलाम आजाद ने जो मुसलमान पाकिस्तान जाना चाहते थे उन्हें रोका, और समझाया कि यहाँ के मुसलमानों की स्थिति दुर्बल न करें आपको यहाँ बैठे-बैठे ही इसी भारत देश में आपको पाकिस्तान मिल जाएगा।

इस स्थिति से उबरने के लिये जिन्हें भी संविधान द्वारा नागरिकता प्रदान की गयी है उनका भारतीयकरण आवश्यक है। और यह सम्भव है क्योंकि यहाँ ईसाई-मुसलमान सब पूर्व में हिन्दू ही थे, केवल उपासना पद्धति बदल जाने से राष्ट्रीयता, पूर्वज, इतिहास नहीं बदल जाते। अतः इन सबका भारतीयकरण होने पर ही भारत की अखण्डता पुनः सम्भव है।

उन्नीसवीं शताब्दी का भारत नकलची, आत्म-विस्मृत व कृत्रिम था। उसने भारत में यूरोप की अनुकृति सफलतापूर्वक बना लेने का लक्ष्य रखा था, गीता का गूढ़ उपदेश भूलकर—'दूसरे के धर्म का अच्छी तरह अनुपालन करने से भी अच्छा है गुणरहित भी अपने धर्म का पालन करना, अपने धर्म में मरना भी कल्याण कारक है, दूसरे का धर्म भयावह है।' क्योंकि स्वधर्म में मृत्यु नया जीवन लाती है, दूसरे के पथ पर सफलता का भी अर्थ मात्र सफल आत्महत्या ही है।

—ऋषि अरविन्द

× × ×

यदि तुम पाश्चात्यों की नकल करोगे तो तुम्हें न उनकी क्रिया-शक्ति प्राप्त होगी, न ही उनके द्वारा की गई भौतिक उन्नति ही मिल सकेगी। सिंह की खाल ओढ़कर गधा, सिंह नहीं बनता।

—स्वामी विवेकानन्द

विश्व इतिहास के आलोक में भारत का भवितव्य

यह इतिहास का अत्यंत क्रूर व्यंग्य ही है कि जो भारत कभी सारे संसार का सांस्कृतिक गुरु था वही आज अपने कल तक के शिष्यों के भीषण आक्रमणों का शिकार बन रहा है।

जिस अरब देश ने भारत से धर्म, विज्ञान, गणित, ज्योतिष सीखा, जिस अरब में इस्लाम के जन्म से पूर्व मक्का में 360 मंदिरों की परिक्रमा के बीच काले रंग के पत्थर के महादेव (संगे अस्वद) की पूजा चलती थी और अभी भी उसी को बारंबार नमः (नमाज) करने पर हज्ज यात्रा होती है, उसी अरब ने सन् 712 से भारत पर आक्रमण प्रारंभ कर सन् 1947 तक निरंतर संघर्ष जारी रख कर, अंत में भारत को काटकर संसार के सबसे बड़े इस्लामी देश 'पाकिस्तान' का निर्माण कर लिया।

जिस ईसा की जन्मभूमि (फलस्तीन) में सम्राट् अशोक के काल से ही हिन्दू संन्यासी, बौद्ध भिक्षु तथा जैन साधु भारतीय धर्म का प्रकाश फैलाते आ रहे थे तथा जो ईसा स्वयं भारतीय विचार से अत्यधिक प्रभावित हुआ था, उसी ईसा के तथाकथित अनुयायी आज उलटे भारत की हत्या कर इसमें ईसाईस्तान का षड्यंत्र रच रहे हैं।

जिस रोम के सूर्य मंदिर (आदित्यालय) से पूरे 'इतालिया' देश का नामकरण हुआ, जिस जर्मन देश को स्वयं मैक्समूलर 'शर्मण्य' देश कहकर गौरव अनुभव करता था, उन्हीं रोम एवं जर्मन देशों के मिशनों द्वारा आज भारत के पूर्वांचल में धर्म के नाम पर भारत-द्रोह का प्रचार हो रहा है। जिस रूस देश को 'आर्यन बायजो' स्थान 'आर्यानां बीजम्' (आर्यों का बीज स्थान) माना जाता है, जिस रूस की भाषा में सहस्रों संस्कृत शब्द गूंज रहे हैं, जहाँ का रूसी शब्द स्वयं 'ऋषि' का रूपान्तर माना जाता है, वही रूस आज भारत को कम्युनिज्म का गुलाम बनाने के लिए बेचैन है। जो चीन दो हजार वर्षों तक भारत का शिष्य रहा, जिस चीन देश में भारत के लिए सुखावती (वैकुण्ठ) शब्द प्रयोग होता था, जहाँ के यात्री भारत की

धूलि से अपने मस्तक का अभिषेक कर गौरव मानते थे, उसी चीन ने कम्युनिस्ट बनकर अपने धर्मगुरु भारत के उर में संगीन चलाकर भारत की 16000 वर्गमील धरती को दबोच लिया है तथा देश भर में नक्सलपंथी दंगे करवाकर देश का सर्वनाश करने पर तुला हुआ है।

उक्त विचार संस्कृति विहार, रांची के निदेशक प्रो. हरवंशलाल ओबराय ने पतरातू (थर्मल पॉवर नगरी) में एक विशाल जनसभा में व्यक्त किए। संसार के मानचित्र के साथ, विश्व इतिहास की शोधपूर्ण मीमांसा करते हुए प्रो. ओबराय ने बताया कि आज भारत के आत्मगौरव शून्य हो जाने के कारण विश्व की तीन अंतर्राष्ट्रीय शक्तियाँ—(विश्वव्यापी इस्लामी शक्ति, विश्वव्यापी ईसाईयत की शक्ति तथा विश्वव्यापी कम्युनिज्म की शक्ति)—आज धर्मप्राण भारत को ही अपने शिकार का लक्ष्य बनाकर, बड़े भीषण रूप में कार्यशील हैं। अतः भारत एवं भारतीयता की रक्षा हेतु विश्वव्यापी हिन्दुत्व की शक्ति के महाजागरण की नितान्त आवश्यकता है।

प्रो. ओबराय ने पतरातू के दोनों विद्यालयों, ऑफिसर क्लब तथा संघ शिक्षा शिविर में भी भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों पर व्याख्यान दिये।

हमारे स्वतंत्र और समृद्ध राष्ट्रीय जीवन का एकमात्र आधार, अपराजेय राष्ट्रीय शक्ति है, ऐसी जो आक्रामक देशों के हृदय को आतंकित कर दे, और दूसरे राष्ट्रों को हमारी मित्रता प्राप्त करने के लिये इच्छुक बना दे। शक्ति राष्ट्रीय जीवन के लिये अमृत है। **—गुरुजी**

पाश्चात्य सभ्यता अपने होंठों में कृत्रिम लिपिस्टिक लगाए, कृत्रिम मुस्कान को लिए ज्वालामुखी पर्वत पर स्थित है। आगामी पचास वर्षों के अन्दर उसने यदि अध्यात्मिक आधार को नहीं स्वीकारा तो कभी भी चिथड़े-चिथड़े में बिखर सकती है।

भारत में ऊपर-ऊपर (सतह पर) तो रुदन है पर अन्दर में निश्चिंतता एवं आमोद-प्रमोद समाया हुआ है। पर पश्चिम में खेल-तमाशे जो भी हैं वह सतह पर है पर अन्दर तो केवल रुदन ही रुदन समाया हुआ है। **—स्वामी विवेकानन्द**

अब यह बात सत्य प्रतीत हो रही है तभी तो उनकी संसदों में कभी वेद मंत्र तो कभी वहाँ दीपमाला को सज्जित करते पा रहे हैं।

हमारे पड़ोसी शिष्य देश

जो भारत विश्व का गुरु रहा है, आज दुर्भाग्य से अपने सभी पड़ोसियों तथा कल तक के शिष्यों के लात-घूंसे तथा चाबुक खाने वाला अभागा नौकर जैसा बन गया है। सन् 1947 में पश्चिमी पंजाब, सिंध सीमाप्रांत, ब्लोचिस्तान, कश्मीर एवं पूर्वी बंगाल में लाखों हिन्दुओं को तलवार के घाट उतारा गया। नन्हे बच्चों को भालों की नोकों पर उछाला गया, नंगी महिलाओं के जुलूस निकाले गये, भवन जलाये गये, धन, प्राण एवं मान-मर्यादा लूटी गई तथा करोड़ों लोगों को उनके हजारों वर्षों के परंपरागत निवास से निर्वासित कर दर-दर का भिखारी, शरणार्थी बना दिया गया।

चीन जो दो हजार वर्ष तक भारत का शिष्य रहा, उसने भी सन् 1962 में तिब्बत की हत्या के उपरांत भारत के लद्दाख एवं नेफा क्षेत्रों पर निर्लज्ज बर्बर आक्रमण कर दिया।

ब्रह्मदेश से (जो सन् 1936 तक भारत का अंग था) लाखों भारतवंशियों की धन-संपत्ति लूट कर उन्हें देश से निकाल दिया गया।

नेपाल जैसे हिन्दू राष्ट्र ने भी भारतीयों के लिए कठोर नियम बनाने प्रारंभ किए हैं तथा उसने भी भारत के संरक्षित राष्ट्र की स्थिति त्याग कर संयुक्त राष्ट्र-संघ में अपनी स्वतंत्र सदस्यता स्वीकार कर ली है। उसको बहुत अधिक आर्थिक सहायता देकर—चीन, रूस, अमेरिका, पाकिस्तान तथा बांग्लादेश भारत के खिलाफ भड़काते रहते हैं।

भारत एवं लंका के सांस्कृतिक सम्बन्ध इतने पुराने हैं जितना कि विश्व का प्रथम महाकाव्य वाल्मीकि रामायण।

अब श्रीलंका में भी, जो विभीषण के काल से अब तक भारतीय संस्कृति का भक्त रहा, गत 2300 वर्षों से भगवान बुद्ध के संदेश से अनुप्राणित रहा तथा सन् 1936 तक भारत का अंग भी रहा, वहाँ भी आज भारतवंशियों की सामूहिक हत्या, आगजनी, लूट-पाट, व्यापक हिंसा द्वारा श्रीलंका से निकालने या नामशेष करने का खूनी नाटक चल रहा है।

भारत की इस अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा-हानि का कारण क्या है? भारत की विदेशों में जो प्रतिष्ठा थी वह सैन्य शासन शक्ति के कारण न होकर भारत की महान नैतिक और आध्यात्मिक संस्कृति के कारण ही थी। उदार हिन्दुत्व कोई पंथ, संप्रदाय या मजहब न होकर इस देश की चिरंतन संस्कृति है। किन्तु जब हमारे प्रशासक हिन्दुत्व को संप्रदाय कहकर भारतीय संस्कृति के उदात्त जीवन-मूल्यों को सांप्रदायिक कूड़ा-करकट कहकर कूड़ेदानी में फेंक देते हैं, तब न भारत की भावात्मक एकता का आधार बचता है तथा न भारत के जगद्‌गुरुत्व का ऐतिहासिक सम्बन्ध-सूत्र। जिस संस्कृति के उज्ज्वल दीपस्तंभ से अन्य देश प्रकाश पाते थे उसके स्वयं प्रकाशविहीन हो जाने पर पड़ोसी उसे नमस्कार करने के स्थान पर पत्थर ही मारेंगे। संस्कृति को छोड़कर केवल कूटनीतिक सम्बन्ध मात्र रखने से हम सम्मान तो कभी पा नहीं सकते, हाँ, कूटनीतिक दांव-पेंच में कभी-कभी अपमान तो अवश्य पा सकते हैं। राजनीति तोड़ती है संस्कृति जोड़ती है। श्रीलंका और भारत के राज्य और राजनीति दोनों भिन्न हैं। अतः दोनों में स्वार्थों का संघर्ष स्वाभाविक है। किन्तु जिस संस्कृति ने हजारों वर्षों से लंका को भारत का कृतज्ञ शिष्य बनाया है, उस संस्कृति के सम्बन्धों को सजीव एवं सुदृढ़ करने की कोई प्रभावी योजना आज भारत सरकार के पास नहीं है। राजनीति स्वार्थों का अखाड़ा है। संस्कृति उदात्त जीवनमूल्यों की संस्कार परंपरा है। जो सिंहली राजनीतिक विद्वेष में भारतवंशियों को भ्रमवश राष्ट्र शत्रु मानकर उन पर गोलियाँ चलाता है, वही एक भारतीय महापुरुष भगवान बुद्ध के चरणों में अपना तन-मन-धन समर्पित करता है तथा भारतीय तीर्थों की धूलि को मस्तक पर चढ़ाता है। राजनीति काटने वाली कुठारिका है और संस्कृति जोड़ने वाली संजीवनी-सुधा।

अतः पुनः सांस्कृतिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करने से राजनीतिक स्वार्थों की आंधिया छंट जाने पर पुरानी स्मृतियाँ कौंधेगी तब ये देश पुनः भारत के चरणों में आ सकते हैं। क्योंकि कोई भी देश एकाएक पूर्णतया बदल नहीं सकता। समय पाकर पुरानी स्मृतियाँ जागेगी तब पुनः भारत ही विश्वगुरु के पद पर स्थापित होगा और सारा विश्व सौख्य शांति का अनुभव करेगा। भारत के पास ही वह कर्तृत्व, व्यक्तित्व, वह भाव, वह दृष्टि है जो सारे विश्व को एक परिवार के रूप में देखती है। सुलझे हुए पश्चिम के विचारको की दृष्टि में भारत ही भावी विश्व की आशा का केन्द्र है।

'धर्म में जीवन का शाश्वत विधान प्रतिष्ठित है।'

—गुरुजी (माधव सदाशिव गोलवलकर)

'वे नर दे दो भगवान, आज भारत माँ को'

वे नर दे दो भगवान आज भारत माँ को।
उन नर देवों की माँग आज धरती माँ को॥

इस युग की मांग है दृढ़ संकल्पी मानव मन,
वे हृदय महत्, निष्ठा सच्ची, वे कर्मठ कर,
वे मानव जिन्हें न मार सके, पद-लोलुपता,
वे मानव जिनको पद का मद न खरीद सके,
वे मानव जिनका मन स्वतंत्र, संकल्प वज्र,
वे स्वाभिमानी जो मर कर कभी न झूठ बकें,
वे साहस नर जो दंभी को ललकार सकें।
जो अत्याचारी के सम्मुख छाती तानें,
जो छद्म भरी चाटुकारिता को धिक्कारें,
जो नर समाज-कर्तव्य, व्यक्तिगत चिंतन में,
भ्रम के कुहरे से ऊपर, सूर्य मुकुट मण्डित,
वे नर चाहिये भगवान, आज भारत माँ को,
नरदेव चाहिये आज वही धरती माँ को।

क्योंकि जब तक नर भ्रष्ट औ' भ्रष्ट विचारों से,
घोषणाएं ऊंची, पर तुच्छ पतित आचारों से,
आकण्ठ डूबते स्वार्थों के संघर्षों में,
जब तक स्वतंत्रता रोती है, चिल्लाती है,
तब तक झूठी सच्ची ही आंख दिखाती है,
तब तक प्रतीक्षा करती न्याय की करुण गिरा,
मदमत्त आततायी की ठोकर खाती है।

भ्रष्टाचारी, महंगाई, बेकारी, भुखमरी,
संत्रस्त धरा चिर पीड़ा से गुहराती है,
सच्चे मानव की मांग आज धरती माँ को,
वे नर दे दो भगवान आज धरती माँ को,
उन नर देवों की मांग आज धरती माँ को,
उन नर वीरों को नमन, नमन भारत माँ को॥

'हमारे पतन का मूल कारण हमारी मानसिक दुर्बलता है। हमारे समक्ष सर्वप्रथम कार्य यही है कि अपनी मानसिक दुर्बलता को समाप्त करे दें।'

—डॉ. हेडगेवार

× × ×

गाँधीजी की एक पुस्तक है 'आशीर्वाद' जिसमें हर दिन के लिए उनकी हस्तलिपि में एक उद्बोधक वाक्य दिए हुए हैं। इस पुस्तक में व्यक्तिगत और सामाजिक सभी समस्याओं का समाधान देने की ताकत है। उसमें वे कहते हैं—एक के पास ईश्वर है, करोड़ के पास शैतान तो क्या एक करोड़ से डरे? फिर उन्होंने कहा—आस्था में निराशा का कोई स्थान नहीं है।

—महात्मा गाँधी

× × ×

पुनर्युवा उज्ज्वल भारत

मैं भविष्य को नहीं देखता, न ही उसे जानने की चिन्ता करता हूँ। किन्तु एक दृश्य मैं अपने मनश्चक्षुओं से स्पष्ट देख रहा हूँ 'प्राचीन मातृभूमि एक बार पुनः जाग गयी है और अपने सिंहासन पर आसीन है—पहले से कहीं अधिक गौरव एवं वैभव से प्रदीप्त। शांत और मंगलमय स्वर में उसकी पुनर्प्रतिष्ठा की घोषणा समस्त विश्व में करो।'

—स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन : एक संगोष्ठी

विचारणीय बिन्दु

(1) भारतीय शिक्षा के दृष्टिकोण से स्वामी विवेकानन्द के जन्मपूर्व के संस्कार भी उनके निर्माण में सहायक थे।

(2) भारतीय दृष्टिकोण से जन्मोपरान्त प्रथम गुरु माता-पिता हैं। उनका नरेन्द्रनाथ के निर्माण में योग। माता की लोरियाँ, रामायण, महाभारत की कथाएं। 'माता का जो हाथ पलने को झुलाता है वह विश्व को हिला सकता है।'

(3) आदर्श विद्यार्थी नरेन्द्रनाथ की स्कूल शिक्षा। शरीर, मन, बुद्धि सभी का विकास।

(4) नरेन्द्रनाथ की कालेज शिक्षा, प्रिंसिपल हेस्टी की प्रशंसात्मक उक्ति—'I have travelled far and wide but I have not seen a boy of his capability. He is sure to make his mark in life.'

(5) ज्ञानार्जन की पिपासा। पुस्तकालय के अधिकतम ग्रंथों का अध्ययन, प्रखर तार्किकता।

(6) तर्क एवं तत्त्व का मानसिक संघर्ष।

(7) अब तक की विद्या अपरा विद्या। बाहर विश्व का ज्ञान, किन्तु समस्त ज्ञान के ज्ञाता का ज्ञान नहीं।

(8) परा विद्या की प्राप्ति परमहंस गुरु की कृपा से।

(9) आदर्श लोक शिक्षक विवेकानन्द। देश तथा विदेश में भारतीय संस्कृति का प्रसार।

(10) शिक्षा के विषय में विचार।

जानकारी ही शिक्षा नहीं है

शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है, जो तुम्हारे मस्तिष्क में ठूंस दिया गया है और जो आत्मसात् हुए बिना वहाँ आजन्म पड़ा रहकर गड़बड़ मचाया

करता है। हमें उन विचारों की अनुभूति कर लेने की आवश्यकता है, जो जीवन-निर्माण, 'मनुष्य' निर्माण तथा चरित्र-निर्माण में सहायक हों। यदि तुम केवल पाँच ही परखे हुए विचार आत्मसात् कर उनके अनुसार अपने जीवन और चरित्र का निर्माण कर लेते हो, तो तुम एक पूरे ग्रन्थालय को कण्ठस्थ करने वाले की अपेक्षा अधिक शिक्षित हो। यदि शिक्षा का अर्थ जानकारी ही होता, तब तो पुस्तकालय संसार में सबसे बड़े सन्त हो जाते और विश्वकोश महान् ऋषि बन जाते।

हमें क्या चाहिए

हमें तो ऐसी शिक्षा चाहिए जिससे चरित्र बने, मानसिक वीर्य बढ़े, बुद्धि का विकास हो और जिससे मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सके। हमें आवश्यकता इस बात की है कि हम विदेशी अधिकार से स्वतंत्र रहकर अपने निजी ज्ञान भण्डार की विभिन्न शाखाओं का और उसके साथ ही अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य विज्ञान का अध्ययन करें। हमें यान्त्रिक और ऐसी सभी शिक्षाओं की आवश्यकता है जिनसे उद्योग-धन्धों की वृद्धि और विकास हो, जिससे मनुष्य नौकरी के लिए मारा-मारा फिरने के बदले अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त कमाई कर सके और आपत्काल के लिए संचय भी कर सके।

'मनुष्य' निर्माणकारी शिक्षा

सभी प्रकार की शिक्षा और अभ्यास का उद्देश्य 'मनुष्य' निर्माण ही हो। सारे प्रशिक्षणों का अन्तिम ध्येय मनुष्य का विकास करना ही है। जिस अभ्यास से मनुष्य की इच्छाशक्ति का प्रवाह और प्रकाश संयमित होकर फलदायी बन सके, उसी का नाम है शिक्षा। आज हमारे देश को जिस चीज की आवश्यकता है, वह है लोहे की मांस-पेशियाँ और फौलाद के स्नायु—दुर्दमनीय प्रचण्ड इच्छाशक्ति, जो सृष्टि के गुप्त तथ्यों तथा रहस्यों को भेद सके और जिस उपाय से भी हो अपने उद्देश्य की पूर्ति करने में समर्थ हो, फिर चाहे उसके लिए समुद्र तल में ही क्यों न जाना पड़े—साक्षात् मृत्यु का ही सामना क्यों न करना पड़े। हम 'मनुष्य' बनाने वाला धर्म ही चाहते हैं। हम 'मनुष्य' बनाने वाले सिद्धांत ही चाहते हैं। हम सर्वत्र, सभी क्षेत्रों में, 'मनुष्य' बनाने वाली शिक्षा ही चाहते हैं।

हिन्दू अहिंसा के नाम पर कायर और त्याग के नाम पर आलसी हो गया है। अतः अहिंसा के नाम पर कायर, त्याग के नाम पर आलसी न बनें।

—स्वामी विवेकानन्द

राष्ट्रस्यचक्षु इतिहासमेतत्

इतिहास राष्ट्र का चक्षु है, जिससे राष्ट्र अपने अतीत को पहचानकर वर्तमान में कर्म के लिए प्रेरणा प्राप्त करता है तथा श्रेष्ठतर भविष्यत् के निर्माण के लिए साधना करता है।

दुर्भाग्य से अंग्रेजी राज्य से लेकर अब तक जो इतिहास देश में पढ़ाया जा रहा है, वह न तो समग्र देश का इतिहास है, न राष्ट्रीय जीवन की समस्त विधाओं का स्पर्श करने वाला सर्वांगीण इतिहास ही है। इस विकृति को दूर करने के लिए 'बाबा साहब आप्टे स्मारक समिति' ने राष्ट्रीय दृष्टि से भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन हेतु 'भारतीय इतिहास संकलन योजना' प्रारम्भ की है। इस प्रसंग में छोटानागपुर के इतिहास के संकलन हेतु निम्नलिखित ऐतिहासिक प्रकरण विचारणीय हैं—

(क) महाभारत काल के अंत में जनमेजय द्वारा आयोजित नाग-यज्ञ में से एक पुण्डरीक नामक नाग भागकर राँची जिले के सुतिआम्बे ग्राम में ठहरा। उसके सरोवर में लुप्त हो जाने के पश्चात् उसकी पत्नी से एक तेजस्वी बालक का जन्म हुआ जिसके सिर पर एक सर्प अपने फण से छाया कर रहा था। उसे गदरा मुण्डा नामक एक वनवासी राजा ने अपने पुत्र के समान पाला। उसी फणिमुकुटनाथ शाहदेव से नागवंश का प्रारम्भ हुआ; (ख) पालमू के चेरो राजाओं का इतिहास; (ग) रोतहासगढ़ में तीन बार उराँव नारियों का शत्रु आक्रमणकारियों को पराजित करना (जमी शिकार परम्परा का मूल इतिहास); (घ) राँची जिले में 'मुड़मा' नामक स्थान पर उराँव एवं मुण्डा का परस्पर संघर्ष; (ङ) मुगल शासन में छोटानागपुर की स्थिति; (च) करुष खण्ड, कर्क खण्ड, झारखण्ड, (कोहकरा) चुटिया, तागपुर, पालकोट, रातू नगर, उत्तरी पलामू किला, (बेतला) जशपुर, हजारीबाग, सरायकेला, चाईबासा, क्योंझड़ इत्यादि का ऐतिहासिक महत्त्व; (छ) ब्रिटिश शासन में छोटानागपुर की स्थिति; (ज) बिरसा-आन्दोलन; (झ) लरिका-आन्दोलन; (ञ) 1857 की क्रांति में छोटानागपुर का योगदान; (ट) स्वाधीनता आंदोलन एवं टाना भगत तथा (ठ) राँची जिले में एक इतिहास-संग्रहालय की स्थापना।

इस कार्य में मैं सभी इतिहासज्ञों एवं इतिहास-प्रेमी नागरिकों से उनके हार्दिक सहयोग के लिए अन्तरतम से अभ्यर्थना करता हूँ।

इतिहासज्ञ हरवंशलाल ओबराय से भेंटवार्त्ता

फरवरी, 1980 में पटना में डॉ. शत्रुघ्नप्रसाद द्वारा लिया गया साक्षात्कार

वर्षों से छोटानागपुर के वनवासियों के बीच भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा समाज जीवन के संदेशवाहक के रूप में अथक भाव से कार्य करने वाले तथा सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित भारतीय संस्कृति पर शोध करने वाले प्रो. हरवंशलाल ओबराय से भेंटवार्त्ता अपने-आप में रस-सृष्टि कर गयी। यह रस आचार्य चतुरसेन शास्त्री का अतीत रस कहलाएगा या अद्‌भुत रस, कहना कठिन है। संस्कृति विहार, रांची के निदेशक प्रो. ओबराय एक साधक हैं। संस्कृति की साधना उनमें मूर्तिमान हो गयी है। पटना आने पर मैंने उनसे भेंट की। इतिहास और संस्कृति के अनेक प्रश्न मन में घुमड़ रहे थे। वे प्रश्न उनके सामने प्रस्तुत हुए और उनके उत्तर मेरे समक्ष।

प्रश्न : इतिहास क्या है?

उत्तर : इतिहास एक राष्ट्र के उत्थान-पतन की तथ्यपूर्ण गाथा है। मैं समझता हूँ कि 'राष्ट्रस्यचक्षु इतिहासमेतत्' अर्थात् 'इतिहास राष्ट्र का चक्षु है' इसके द्वारा राष्ट्र अपने अतीत को पहचानता है। वर्तमान को समझने की चेष्टा करता है। भविष्य के निर्माण की प्रेरणा प्राप्त करता है।

प्रश्न : इतिहास लेखन का मूलाधार संस्कृति हो, राजनीति हो या अर्थ नीति हो?

उत्तर : प्रत्येक राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है। जब उसकी गाथा लिखी जाए तो वह उसके जीवन के समग्र पहलुओं को स्पर्श करने वाली हो। संस्कृति की भिन्न-भिन्न विधाएँ हैं—भारतीय राजकारण, भारतीय कला, साहित्य, विज्ञान, धर्म, भाषा और अर्थनीति। केवल राजनीतिक इतिहास राजा-रानियों, शासकों-प्रशासकों, आक्रांताओं और लुटेरों का इतिहास रह जायगा। उसे सच्चे अर्थ में भारत का इतिहास नहीं कहा जाएगा। केवल आर्थिक आधार पर इतिहास का विश्लेषण नितान्त अशुद्ध है, क्योंकि इसमें पैसे का मानव से अधिक महत्त्व मान लिया जाता है। इतिहास का प्रेरक कारण धन नहीं, प्रेरणापूरित जन हैं।

प्रश्न : इतिहास और पुराण में क्या फर्क है?

उत्तर : प्राचीन काल में पुराण और इतिहास—दोनों को एक सारिणी में रखकर चलाया जा रहा था। आगे चलकर हमने इतिहास और पुराण में अन्तर माना कि प्राचीन पुराणकर्ता कवियों द्वारा अतिशयोक्तिपूर्ण अलंकारिक शैली में और कई बार प्रतीकात्मक शैली में जो प्राचीनकाल के राजर्षियों और ब्रह्मर्षियों का वृत्त एवं समाज के अन्यान्य विषयों का परिचय लिखा गया है, वह पुराण है। इसकी तुलना में कालक्रम की सारिणी में सुसंबद्ध और भूगोल के चौखटे में सज्जित बिना अलंकारिक शैली के शुद्ध तथ्यों का निर्दोष विवरण इतिहास है। देश, काल और प्रांत—तीनों का तथ्यपूर्ण परिचय इतिहास में ही मिलता है। पुराण पात्रों का परिचय बताता है, काल की वास्तविक तिथि नहीं बताता। युग का मात्र संकेत दे देता है। प्राचीन भूगोल के जो नाम पुराणों में बताए गए हैं, उन्हें आज के भूगोल में शोधन द्वारा ठीक-ठीक बिठा पाना बहुत बड़ा शोध-कार्य होगा।

प्रश्न : पुराणों के काल विभाजन और इतिहास के मान्य काल विभाजन में बहुत फर्क है....क्यों?

उत्तर : भारत में कालगणना की अपनी विशिष्ट परम्परा है। भगवान् सब जीवों के अन्तर में बैठकर आत्मरूप में शासन करते हैं और बाहर से प्रकृति पर कालरूप में शासन करते हैं। इसलिए काल को 'कालपुरुष' कहा गया है। सभी जड़ वस्तुएँ काल में, अर्थात् काल के मुख में हैं। काल उन्हें खा जाता है। आत्मतत्त्व कालातीत है, कालबाह्य और शाश्वत है। बहिर्मुख संसार काल में घटित है और अंतर्मुख ज्योति शाश्वत और कालातीत है। बाहर की कालबद्ध घटनाओं का अध्ययन इतिहास करता है और अन्तर की शाश्वत ज्योति का दर्शन आत्मतत्त्व दर्शन द्वारा ही सम्भव है। पुराणों में बाहर के घटनाक्रम की कालबद्ध चर्चा कल्पों में, युगों में, संवत्सर में की गयी है। सारे भारत में आज तक चलने वाला संकल्प का मंत्र समान है। भारतभर के हिन्दू तथा विश्वभर में फैले प्रवासी हिन्दू भी हाथ में जल-अक्षत लेकर 'श्री ब्रह्मणः द्वितीय परार्द्धे श्वेतवाराहकल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे बुद्धावतारे विक्रमार्द्ध द्विसहस्त्र षष्टविंशति संवत्सरे' गाते हैं। हमारी यह कालगणना पश्चिम के इतिहासकारों की कालगणना की तुलना में बहुत अधिक प्राचीन है। पुराण प्रायः इसी कालगणना के अन्तर्गत तथ्यों का विवरण देते हैं, जिसे समझने वाले एवं उसका यथोचित आकलन करने वाले लोगों का अभाव है।

भारत में संवत्सर चक्र साठ-साठ वर्ष के माने गए हैं। साठ वर्षों के बाद ग्रह-नक्षत्र प्रायः पहली दशा में आ जाते हैं। वर्तमान काल में कलियुग के सत्ताईस संवत्सर चक्र समाप्त होकर अट्ठाईसवाँ चल रहा है। इसकी तुलना में पश्चिम की कालगणना भिन्न एवं अति नवीन-सी है। ईसा के जन्म एवं मृत्यु की वास्तविक तिथि किसी को मालूम नहीं है। 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' के अनुसार भी ईसा के मरने के तीन सौ वर्ष बाद तक क्रिसमस महोत्सव मनाया ही नहीं गया था। फिर किसी ने मार्च में, किसी ने मई में मनाना आरम्भ किया। जब ईसाईयत का प्रवेश यूरोप में हो गया तब तीसरी शताब्दी के बाद 25 दिसम्बर, जो वास्तव में ईसाईयत से पहले रोम एवं सारे यूरोप में सूर्य-पूजा (मकर संक्रांति) का पर्व था, उसे ही क्रिसमस के रूप में प्रचारित किया जाने लगा। ईसाईयत से पूर्व सारे यूरोप में सूर्य-पूजा (मित्र-पूजा) चलती थी, जिसे 'मिथरेज्म' कहा जाता था। रोम में ही यूरोप का सबसे बड़ा सूर्य-मन्दिर था जिसे 'आदित्यालय' कहा जाता था। 'आ' के लोप से 'दितालय' और 'द' के लोप से 'इतालय' हो गया है।

ईसा के जन्म एवं मृत्यु की तिथि अनिश्चित होने से पश्चिम के कई इतिहासकार ईसा के अस्तित्व में ही संदेह करने लग गए हैं। जब इतिहास की घटनाओं को ईसवी सन् में बाँधने की चेष्टा की गयी तो बहुत बड़ी गड़बड़ी फैल गयी। प्रश्न उठा कि ईसा के जन्म से पहले की घटनाओं को काल में किस माप से मापा जाए? तब 'ईसा-पूर्व' की कल्पना की गयी। इन्हीं कल्पनाओं के आधार पर सिकंदर के भारत-आक्रमण की घटना को ईसा पूर्व 326 में निश्चित किया गया। यह विचित्र विडम्बना है कि घटना पहले घटी और उसे मापने के लिए मापकयंत्र बाद में खोजा गया।

प्रश्न : भारत का सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक प्रसार कहाँ तक हुआ था?

उत्तर : भारत के ऋषियों ने शुद्ध सांस्कृतिक प्रेरणा से गाया था—'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'। संसार को आर्य बनाने की भावना विश्व के सब लोगों को अपना गुणा हुआ ज्ञान और अपनी सधी हुई शान्ति बाँटने की उदात्त प्रेरणा है। इसमें कोई राजनीतिक स्वार्थ या साम्राज्यवादी लिप्सा नहीं थी। कविगुरु रवीन्द्रनाथ कहते हैं—'भारतीय संस्कृति पूर्ण प्रफुल्लित पुष्प के समान है जिसके पराग के बीज अनुकूल पवनों द्वारा संसार के विभिन्न देशों में ले जाए गए तथा कालांतर में वहाँ भी भारतीय संस्कृति के पादप लहराने लगे और सारा विश्व भारतीय संस्कृति की सुवास से सुवासित हो उठा'।

अतः विदेशों में भारतीय सांस्कृतिक साम्राज्य पहले फैला और कहीं-कहीं आर्थिक, व्यापारिक एवं राजनीतिक विस्तार भी हुआ। पूर्व में फिजी द्वीपसमूह, उत्तर में साइबेरिया, पश्चिम में मैक्सिको, बोलेविया, पेरू एवं ग्वाटेमाला तक तथा दक्षिण में ऑस्ट्रिक द्वीप तक भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ।

प्रश्न : यह प्रसार काल कब-से-कब तक है?

उत्तर : बुद्ध काल से पूर्व भारतीय संस्कृति का विस्तार लगभग उस समय तक के सभ्य संसार में हो गया था। बौद्ध-भिक्षुओं ने सनातन धर्म के प्रचारकों का अनुसरण करते हुए बाद में बौद्ध धर्म का विस्तार किया। अतः महाभारत काल तथा बौद्ध काल के बीच सनातन धर्म के विस्तार का काल रहा। बुद्ध काल तथा गुप्त काल के बीच बौद्ध धर्म का विशेष प्रचार हुआ और गुप्त काल से हर्षवर्धन काल तक पुनः सनातन धर्म का प्रसार हुआ।

प्रश्न : 12वीं सदी में भारत के पतन का मुख्य कारण क्या है?

उत्तर : मुख्य कारण तो राष्ट्रीय चरित्र का अभाव ही है। कुछ सामाजिक और कुछ धार्मिक कारण भी हैं। पर कुल मिलाकर राष्ट्रीय चेतना का अभाव ही पतन का मुख्य कारण है। धार्मिक कारण बौद्ध-ब्राह्मण द्वंद्व और सामाजिक कारण में सामाजिक विषमता को माना जाता है।

मार्च, 1980 के 'जाह्नवी' (हिन्दी मासिक) में प्रकाशित

अविच्छिन्न भारतीय परम्परा

यूरोप में पुरातत्त्व के अवशेषों के अतिरिक्त होमर से पूर्व के कोई चिह्न नहीं मिलते, किन्तु भारत में सिन्धु सभ्यता के काल से आज तक सभ्यता की अविच्छिन्न परम्परा चलती आ रही है।

—प्रो. ओबराय

वैदिक धर्म न केवल प्राचीनतम धर्म है, वरन् सर्वाधिक पूर्ण धर्म भी है। यह विश्व के धर्मों में सर्वप्रथम और सर्वोच्च स्थान पर है।

—सन्त टाल्सटाय

मकर संक्रांति (भाषण)

आज मकर संक्रांति पर्व अपने देश का ही नहीं वरन् सारे भू-मण्डल का, सारी मानव जाति का एक महान् पर्व है। यह मानव जाति जिस भू-मण्डल पर जीती है उसे हम पृथ्वी कहते हैं, धरती माता कहते हैं। वेद में कहा है—माता भूमि पुत्रोऽहम् पृथिव्याः। भूमि मेरी माता है और मैं इस पृथ्वी का पुत्र हूँ। धरती के अनेक पुत्रों के जन्मोत्सव हम मनाते हैं। पर मकर संक्रांति स्वयं धरती माता का ही जन्मोत्सव है। यह धरती माता के जन्मने का दिन है, जिस दिन हमारी धरती सूर्य से पृथक् होकर स्वतंत्र ग्रह के रूप में सूर्य की प्रदक्षिणा करने लगी। सामवेद के तांड्य ब्राह्मण में लिखा—तस्मातपनाद्वै क्षमोत्क्रम्यमघामार्च्छत् (ता.ब्रा. 2/1/3)

उस प्रतप्त अग्निपिण्ड सूर्य से पृथक् होकर यह धरती परिक्रमा करती हुई, उत्क्रमण करती हुई मघा नक्षत्र की ओर गयी। यह धरती का सूर्य से जन्म लेकर घूमते हुए मघा नक्षत्र की ओर जाना, यह मकर संक्रांति का ही महत्व है। आज संध्या के समय आपने सूर्य को जब क्षितिज पर डूबते हुए देखा होगा तो उस समय पश्चिमी क्षितिज पर सूर्य अस्त हो रहा है और पूर्वी क्षितिज पर मघा नक्षत्र विराजमान है। इसलिये आज का दिन माघी का पर्व है। मकर संक्रांति का पर्व है। यह पर्व प्रातःकाल सूर्य के उदय से माना जाता है। महीने का नाम उस नक्षत्र के मुताबिक होता है जो नक्षत्र उस दिन सूर्यास्त के समय पूर्वी क्षितिज पर लगा हो। जब चित्रा नक्षत्र हो तो चैत्रमास होता है। जब क्षितिज पर विशाखा नक्षत्र लगा हो तो वैशाख मास होता है। जब ज्येष्ठा नक्षत्र हो तो ज्येष्ठ मास होता है। अश्लेषा नक्षत्र हो तो आषाढ़ मास होता है। इस तरीके से मघा नक्षत्र जिस दिन लगा हो क्षितिज पर उस दिन से माघ मास होता है। इसलिये आज से माघ मास प्रारम्भ हो गया।

धरती माता की सूर्य से जन्म की गाथा और धरती द्वारा सूर्य की प्रदक्षिणा, इसका वैज्ञानिक ज्ञान हमारे ऋषियों को था। इसकी तुलना में अगर हम बाइबिल को देखें और कुरान शरीफ को देखें, तो हम देखेंगे कि उन लोगों को धरती के सूर्य से जन्म की वैज्ञानिक व्याख्या प्राप्त नहीं हुई। बाइबिल में स्पष्ट लिखा है कि धरती चपटी है और 17वीं शताब्दी तक (केवल तीन सौ वर्ष पहले तक) पश्चिम

के लोग यही मानते रहे कि धरती चपटी है। क्योंकि 17वीं शताब्दी में रोम का एक वैज्ञानिक गलैलियो, जिसने पहली बार टेलीस्कोप (दूरवीक्षण) यंत्र बनाया, उसने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि बड़े ग्रहपिण्ड बीच में रहते हैं और छोटे-छोटे पिण्ड उस बड़े ग्रह की परिक्रमा करते हैं। इस आधार पर उसने सिद्ध किया कि सूर्य धरती से बहुत बड़ा है, इसलिये बीच में है और हमारी धरती सूर्य से छोटी होने के कारण सूर्य की प्रदक्षिणा करती है। उसने कहा कि धरती गोल है और यह घूमते हुए सूर्य की प्रदक्षिणा करती है। यह उसने 17वीं शताब्दी में कहा। लेकिन रोम के राजा ने वहाँ के पादरियों के दबाव से उसके ऊपर यह आरोप लगाया कि वह एक कुफ्र कह रहा है। वह एक गुनाह की बात कह रहा है। इसलिये वह एक अपराधी है और उसको उठाकर कारागार में डाल दिया। उसने अपील की कि मुझे एक अवसर दिया जाय। मैंने जो कहा है उसे प्रयोगशाला में सिद्ध करके बता सकता हूँ। उसको अवसर दिया गया। इटली में एक पीसा नामक स्थान है। उस पीसा में एक लिविंग (Living) टावर है, एक गुंबद (मीनार) है जो झुका हुआ है। किसी भूचाल में वह झुक गया था और झुका हुआ गुंबद वैसा का वैसा खड़ा है। लोग अचम्भे में हैं कि वह गिरता क्यों नहीं है? लेकिन पिछले 1500-1600 साल से वह झुका हुआ मीनार खड़ा है। सारे संसार के जो सात आश्चर्य गिने जाते हैं, उन सात आश्चर्यों में से एक आश्चर्य उसको भी माना जाता है। झुके हुए पीसा के मीनार पर गलैलियो ने, जो बहुत बड़ा वैज्ञानिक था, अपने द्वारा आविष्कृत एक दूरबीन लगाया। उस दूरबीन से उसने शनि ग्रह को दिखाया। आजकल भी आधी रात के बाद आसमान में आप शनि ग्रह को देख सकते हैं। शनि ग्रह में क्या है? मुख्य ग्रहपिण्ड बीच में है और उसके दर्जनों उपग्रह हैं। दर्जनों उपग्रह उसके इर्द-गिर्द इतनी तेजी से चक्कर लगाते हैं कि खुली आंख से देखने पर लगता है कि यह तारा निरंतर हिल रहा है। अथवा और ध्यान से देखें तो लगता है भगवान श्रीकृष्ण का चक्र सुदर्शन हो। बीच में तारा स्थिर है इर्द-गिर्द घूमते हुए तारे ज्योति का एक वृत्त बना देते हैं। ज्योति का दायरा बना देते हैं। यह शनि का दर्शन है। शनि का चित्र भी आप देखेंगे (या शनि को आप जब भी देखें) आधी रात को यदि आप जागें, तो आसमान में शनि आपको दिखेगा और सब तारों में शनि को पहचानना सबसे आसान है। क्योंकि उस तारे में हलचल नजर आती है और उसके इर्द-गिर्द लगातार एक चक्र घूम रहा है। गलैलियो ने उन पादरियों को कहा, 'आइये—देखिये। अपनी आंख से देख लीजिये बड़ा ग्रहपिण्ड बीच में रहता है और छोटे उपग्रहपिण्ड उसकी परिक्रमा करते रहते हैं।' पादरी लम्बे चोगे पहने हुए, सिर हिलाते हुए कह रहे हैं It is Impossible-It is Impossible यह असम्भव है। यह असम्भव है। ऐसे बोलते हुए सीढ़ियों से ऊपर चढ़ते गए और जब उन्होंने दूरबीन से देखा तो सचमुच शनि ग्रह बीच में है और उपग्रह बड़ी तेजी से घूम रहे हैं। तब एक पादरी ने दूसरे पादरी

को देखकर कहा, घूम तो रहा है। घूमता है। इस पर बड़ा बिशप जो था उसने कहा This man is a Magician यह आदमी तो जादूगर है। तारे-वारे कुछ नहीं घूमते हैं। इसका यंत्र ही घूम रहा होगा। तारे आदि कुछ नहीं घूमते। उस बेचारे गलैलियो को पुनः कारागार में डाल दिया और सता-सता कर मारा।

एक दूसरा वैज्ञानिक था जिसका नाम कोपरनिकस था। कोपरनिकस ने भी खोज की थी कि धरती गोल है पर गलैलियो की गति देखकर उसने सारी उम्र भर अपनी पुस्तक को प्रकाशित नहीं किया। प्रकाशित करूंगा तो मुझे भी मार डालेंगे। क्योंकि रोम के चौराहे पर ब्रूनो को जीवित जला दिया गया था। इसलिये कि वह कहता था कि धरती गोल है। जीनो जो दार्शनिक था उसको उसके घर समेत जला दिया गया। जिन्होंने गलैलियो को सताया, जिन्होंने कोपरनिकस को धमकाया, जिन्होंने ब्रूनों को जलाया, जिन्होंने जीनो को घर समेत जला दिया ऐसे लोग क्या वैज्ञानिक हो सकते हैं। यह विज्ञान की स्थिति थी। 17वीं शताब्दी तक रोम में और सारे यूरोप में उनको पता ही नहीं था 'धरती' गोल है। क्योंकि बाइबिल कहती है धरती चपटी है इसलिये अंधविश्वास से उसी को मानते थे।

जब अमेरिका को खोजने वाला कोलम्बस स्पेन की रानी के दरबार में गया तो उसने जाकर प्रार्थना की कि मुझे सहायता दी जाय। मैं भारत की खोज करूंगा। आप जानते हैं अमेरिका की खोज कैसे हुई? यूरोप में भारत के मोर, भारत के मूंगे, भारत के मोती, भारत की मलमल, भारत के गरम मसाले, भारत की चन्दन की लकड़ी, भारत का शतरंज का खेल, भारत की वस्तुएं रोम और सारे यूरोप में खूब प्रचलित थी और उनको बहुमूल्य माना जाता था। भारत का रेशम, भारत की मलमल (बहुत महीन मलमल) जिसका पूरा थान शरीर पर लपेट लेने पर भी शरीर के अंग झलकते थे इन्हीं बहुमूल्य वस्तुओं के उदाहरण हैं।

इसलिये यूरोप के लोग भारत को सोने की चिड़िया मानते थे। इसलिये भारत की खोज के लिये कोलम्बस निकला। आप इतिहास जानते हैं तो आपको पता होगा कोलम्बस निकला था भारत की खोज के लिये। गलती से गलत दिशा में चला गया तो अमेरिका पहुँच गया और अमेरिका को ही उसने India मान लिया और वहाँ के लोगों को Indian कहना शुरू किया। बाद में उनको Red Indian कहने लगे। वहाँ के आदिवासियों को Red Indian बोलने लगे। कोलम्बस India की खोज में निकला था। तो खोज में निकलने से पहले स्पेन की रानी के दरबार में गया, मेरी सहायता करो। मुझे जहाज दो, मुझे पैसा दो। मैं भारत की खोज करूंगा। स्पेन की रानी ने पूछा हमें कैसे पता लगेगा कोलम्बस कि तुमने भारत की खोज कर ली? भारत बहुत दूर कहीं होगा। तुमने उसको खोज लिया इसका पता कैसे लगेगा? उसने कहा कि मैं कुतुबनुमा जो (मिग्नानेट दिशासूचक) सूई है उस कंपास

की सूई से सीधे चलता जाऊंगा। भारत पहुँचने के बाद मैं उसी सीध में आगे बढ़ता जाऊंगा और फिर धरती गोल है इसलिये मैं वापस लौटकर यहीं स्पेन में आ जाऊंगा। तुरंत एक पादरी उठा। अरे कोलम्बस! तेरी जबान खींच ली जायेगी। तू झूठ बोलता है, तू कुफ्र बोलता है। अरे! जानता नहीं है गलैलियो की क्या गति हुई, ब्रूनो की क्या गति हुई, जीनो की क्या गति हुई? तेरी जबान खींच ली जायेगी। तू धरती को गोल कहता है। कोलम्बस सहम गया। तब एक बूढ़ा मंत्री उठा। उसने कहा, तुम एक नौजवान को निरुत्साहित क्यों करते हो, उसमें जोश है, होश है, उसको खोज करने दो। धरती गोल है या चपटी है इससे क्या फर्क पड़ता है? तो उसने कहा— कोलम्बस तुम इतना बताओ जब तुम भारत की खोज में निकलोगे, और तुम कहते हो धरती गोल है, धरती तो गोल है नहीं। क्योंकि बाइबिल कहती है धरती चपटी है। पर केवल तर्क के लिये, यदि दलील के लिये हम थोड़ी देर के लिये मान लेवें कि धरती गोल है तो बताओ बेटा! जब तुम धरती की गोलाई पर पहुँचोगे तुम्हारा पांव फिसल जायगा, तुम समुद्र में गिर जाओगे। तुम लौटकर कैसे आओगे? ऐसे मूर्ख लोग राज्य करते थे 17वीं शताब्दी तक स्पेन के राज्य में। और जो मंत्री बने हुए उनको इतनी अक्ल नहीं कि धरती की गोलाई पांव फिसलाने वाली नहीं है। धरती इतनी विशाल है उस पर चलते-चलते गोलाई पता ही नहीं लगती है और आदमी वापस लौटकर भी आ सकता है। तो धरती की गोलाई की कल्पना पश्चिम को बिल्कुल नहीं थी। वेद में हमारी धरती के लिये नाम आया भूगोल। भू-गोल का अर्थ भूमि गोल है। सामवेद के तांड्य ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है कि धरती का सूर्य से जन्म हुआ और वह घूमती हुई, परिक्रमा करती हुई मघा नक्षत्र की ओर गयी। अर्थात् आज के दिन धरती माता का सूर्य से जन्म हुआ।

बाइबिल के अनुसार, 'प्रभु ने संसार 6 दिनों में बनाकर सातवें दिन विश्राम किया। प्रश्न उठता है दिन किसने बनाये? सूर्य-चन्द्र के बिना और पृथ्वी के अपनी धुरी पर निरन्तर घूमे बिना रात और दिन कैसे बन सकते हैं? ईसाई पादरियों द्वारा गलैलियो, कोपरनिकस, ब्रूनो और जीनो पर अत्याचार केवल कट्टरवादी धार्मिक विश्वास था। अब Government कॉलेज लाहौर की एक घटना सुनाऊं। Government कॉलेज लाहौर में एक भूगोल के प्रोफेसर थे। वह प्रोफेसर इस्लाम धर्म को मानने वाले थे। वह क्लास रूम में पढ़ाते थे—सुनो, विद्यार्थियो सुनो! यह धरती हमारे सूर्य से पैदा हुई है। क्लास रूम में यह पढ़ाते। क्लास रूम से ज्यों ही बाहर निकलने लगे तो क्लास रूम की कक्षा की दहलीज पर मुसलमान लड़कों ने उनसे कहा, प्रो. साहब! आपने कुफ्र कहा है। आपने झूठ बकवास कहा है। आपने गुनाह की बात कही है। प्रो. साहब ने पूछा, क्यों जी क्यों? देखो जी, कुरान शरीफ ने साफ लिखा है अल्लाह-ताला ने धरती बनायी है, जमीन बनायी और जमीन के अंधेरे को दूर करने के लिये अल्लाह-

ताला ने दो लालटेन बना दिये—सूरज और चांद। उन्होंने कहा—कुरान शरीफ में साफ लिखा है धरती के बाद सूर्य-चांद उत्पन्न हुए। अल्लाह ने सूरज को बाद में बनाया। आप कहते हैं धरती सूर्य से पैदा हुई। तो आप कुफ्र कह रहे हैं। तो प्रोफेसर घबरा जाता है। हां-हां, आप ठीक कहते हो। तो विद्यार्थी लोग गुस्से में कहते हैं, क्या ठीक है? तब उसने कहा, जब आप क्लास रूम में हों तब मैंने जो बताया वह ठीक है और क्लास रूम के बाहर जब हों तब आप जो कह रहे हैं वह सही है। क्लास रूम के अन्दर यह बात सच है कि हमारी धरती का जन्म सूर्य से हुआ है। क्योंकि परीक्षा में यह नहीं लिखोगे तो शून्य मिलेगा। तो परीक्षा में यही लिखो कि हमारी धरती का जन्म सूर्य से हुआ और क्लास रूम के बाहर कोई कहे कि मानते क्या हो? तो कहना हम कुरान की बात मानते हैं। धरती पहले थी। सूर्य बाद में हुआ। लोगों ने कहा ऐसा क्यों? तो उसने कहा कुरान की बात नहीं मानेंगे तो काफिर हो जाएंगे और परीक्षा में कुरान की बात लिखेंगे तो फेल हो जायेंगे। तो मुश्किल यह है कि मनुष्य के जानने और मानने में अगर खाई हो, जान कुछ और रहा है, मान कुछ और रहा है उसको बौद्धिक बेईमानी कहते हैं। Intellectual dishonesty कहते हैं। अक्ल का बेईमान है जो जान कुछ और रहा है मान कुछ और रहा है। ये अक्ल की बेईमानी है। यह मनुष्य के मन को बड़ा कष्ट देती है। कुरान कहता है कुछ और मानो, अक्ल उसकी कहती है कुछ और जानो। तो अक्ल में और ग्रंथ में जो लड़ाई है वो भारतीय दर्शनों में नहीं है। भारतीय शास्त्रों में नहीं है। हमारे शास्त्र स्पष्ट कहते हैं— तस्मातपनाद्वैह्लक्ष्मोत्क्रम्यमघामाच्र्छत् (ता.ब्रा. 2/1/3) इस मघा नक्षत्र के दिन, मकर संक्रांति के दिन हमारी धरती उस प्रतप्त अग्निपिण्ड सूर्य से पृथक् होकर मघा नक्षत्र की ओर गयी और उसने सूर्य की परिक्रमा शुरू कर दी। इसकी विस्तृत व्याख्या आगे स्कन्दपुराण में है। स्कन्दपुराण ने कहा कि धरती माता ने सूर्य से जन्म पाने के बाद अपने जन्मदाता भगवान् अंशुमाली को, भगवान् सूर्य को नमस्कार किया। धरती का नमस्कार करना क्या हुआ? धरती के उत्तरी ध्रुव का साढ़े 66° अंश के कोण पर सूर्य की ओर झुकना है। धरती का उत्तरी कोण झुक गया। यह धरती का सूर्य को नमस्कार है। धरती ने स्वयं घूमते हुए सूर्य की प्रदक्षिणा शुरू कर दी और धरती ने कहा, हे मेरे जन्मदाता सूर्य-नारायण भगवान् अंशुमाली! मैं आपकी पुत्री हूँ। जैसे अच्छी बेटी पिता द्वारा दिखाये गये मर्यादित गृहपथ के भीतर चलती है, उसको कोई भय नहीं होता है, इसी तरह से एक अच्छी सुशील बेटी के समान जब तब आपके द्वारा निर्दिष्ट मर्यादा के दायरे के भीतर चलती रहूँगी। मुझे कोई भय नहीं और ज्यों ही मर्यादा के ग्रहपथ का उल्लंघन करूंगी तो मैं खण्ड-खण्ड हो जाऊंगी। यह बहुत बड़ी वैज्ञानिक बात स्कन्दपुराण ने लिखी है। धरती माता का सूर्य को नमस्कार करना। धरती माता

का स्वयं घूमते हुए सूर्य की प्रदक्षिणा करना और यह कहना कि जब तक मैं मर्यादा के ग्रहपथ पर हूँ तब तक मुझे कोई भय नहीं है और मर्यादा के पथ का उल्लंघन करने पर मैं चूर-चूर, खण्ड-खण्ड हो जाऊंगी। एक बेटी को बाप ने भेजा Women's College में, बेटी! जाओ पढ़ने के लिये। पढ़ने के बाद College समाप्ति पर सीधे रिक्शा लेकर घर आ जाना। वह मर्यादा में रहती है लेट आती है उसको कोई भय नहीं है और कोई बेटी बाप के कहने के बावजूद, माता के समझाने के बाद भी, कभी किसी सहेली के यहाँ चली जाय, कभी सिनेमा देखने चली जाय, कभी नाच देखने चली जाय, कभी किसी Boy friend के साथ घूमने लग जाय—वह मर्यादा का उल्लंघन करती है तो जैसे बेटी बाप की मर्यादा का उल्लंघन करने से भ्रष्ट हो जाती है उधर धरती भी कहती है कि अगर मैं मर्यादा का उल्लंघन करूंगी तो मैं चूर-चूर हो जाऊंगी। तो यह है सूर्य और धरती की गाथा।

एक वर्ष जब पूरा हुआ परिक्रमा का। निर्विघ्न एक वर्ष में परिक्रमा पूरी हुई, तब ऋषियों ने धरती की सूर्य की निर्विघ्न परिक्रमा पूरी होने की खुशी में वर्ष के अंतिम दिन एक खुशी का यज्ञ किया। बहुत बड़ा यज्ञ। पवित्र अग्नि जलायी गयी और आनंद की रात्रि मनायी गयी। आनंद की रात्रि के लिये संस्कृत का शब्द है 'लौहड़ी'। 'लौहड़ी' का मतलब होता है आनंद मनाना। उसी से पंजाब में 'लौड़ी' शब्द बन गया। इसमें बहुत बड़ी अग्नि जलायी जाती है। मुहल्ले के सब लोग इकट्ठे होते हैं। उस अग्नि को पवित्र अग्नि मानते हैं। उसे कोई पांव से छूता नहीं है। कोई ऊपर से फांदता नहीं है। लोग उसमें जैसे प्राचीनकाल में यज्ञों में आहुति देते थे वैसे इसमें नयी फसल का अन्न भेंट किया जाता है। नयी फसल में तिल होते हैं। इसलिये तिल भेंट किया जाता है। नयी फसल में गन्ना होता है। इसलिये गुड़ भेंट किया जाता है, इस फसल में मक्का होता है इसलिये मक्का भेंट किया जाता है। इस फसल में चावल होता है अतः चिवड़ा भेंट किया जाता है। इन सबको अग्नि में भेंट करके फिर मित्रों को प्रसाद रूप में बांटते हैं। रिश्तेदारों के घर पहुँचाते हैं। यह परम्परा उत्तर भारत में पंजाब, दिल्ली, उत्तरप्रदेश के भागों में है। आर्य समाज के द्वारा यह प्रायः सारे भारतवर्ष में मनाया जाता है।

इस प्रकार धरती माता के जन्म का यह नया दिन केवल मनुष्य के द्वारा बनाये गये वर्ष का नया वर्ष नहीं है। ये धरती के जन्म का वर्ष होने से सचमुच नया वर्ष इसी से मानना पड़ेगा। धरती माता, जो सूर्य की ओर झुकी हुई है और अपने गिर्द घूमती है और सूर्य की प्रदक्षिणा करती है, इसके क्या-क्या चमत्कार होते हैं। धरती के अपने गिर्द घूमने से दिन-रात होते हैं। यदि धरती अपने गिर्द नहीं घूमती तो दिन-रात नहीं बनते। कुछ भाग सदा ही सूर्य के सामने रहता और कुछ भाग में सदा ही

अंधेरा रहता। धरती घूम रही है अपने इर्द-गिर्द और अपने जनक, अपने को पैदा करने वाले सूर्य के इर्द-गिर्द घूमती है, इसलिये धरती के सूर्य की प्रदक्षिणा करने से और धरती के उत्तरी ध्रुव के सूर्य की ओर झुके रहने से छः ऋतुएं बनती हैं। भिन्न-भिन्न छः ऋतुएं इसी कारण से बनती हैं।

आज का जो दिन है मकर संक्रांति, ये सारे वर्ष में सूर्य की जो गति है धरती की अपेक्षा से। धरती वालों को घूमता हुआ सूर्य दिखता है। धरती की अपेक्षा से सूर्य की गति है। सूर्य सबसे अधिक जितना अधिक दक्षिण में जा सकता है यहाँ तक मकर रेखा को छूकर फिर ऊपर उठना शुरू होता है। इसलिये सबसे ठण्डा दिन और सबसे छोटा दिन होने के बाद फिर जिस दिन से दिन पुनः बढ़ने शुरू होते हैं, दिनों में उष्णता आनी शुरू होती है, दिनों में उष्मा आनी शुरू होती है, रात्रि घटनी शुरू होती है उस दिन सूर्य की उत्तरायण यात्रा शुरू होती है। सूर्य जा रहा था दक्षिण जितना जा सकता था मकर रेखा तक गया। मकर रेखा के नीचे जा नहीं सकता। मकर को छूने के बाद अब उठना शुरू करता है, जब मकर को छूकर उठना शुरू हुआ इसलिये मकर संक्रांति। आज के बाद दिन बड़े होंगे। दिन अधिक गरम होंगे। रात्रि छोटी होगी। इसको गीता में भगवान ने कहा—**अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्** (8/24) जिसमें अग्नि का ताप, सूर्य का ताप बढ़ता जाता है। दिन बड़े होते जाते हैं। प्रकाश अधिक होता जाता है। उसको उत्तरायण कहते हैं।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् । गीता—8/25

जिसमें धुआं अधिक हो, धुंध अधिक हो, ठंडक अधिक हो, रात्रि अधिक हो, प्रकाश कम हो वह काल दक्षिणायन कहा जाता है। तो मकर संक्रांति से लेकर रक्षाबंधन तक छः महीने उत्तरायण का काल और रक्षाबंधन से लेकर मकर संक्रांति तक छः महीने दक्षिणायन का काल। उत्तरायण को देवताओं का दिन कहा गया । उसी आधार पर तिलकजी ने The Arctic home in the Vedas (आर्यों का मूल निवास स्थान) नामक पुस्तक लिखकर ये सिद्धांत भी कुछ समय के लिये रखा लगता है कि छः मास का दिन और छः मास की रात्रि उत्तरी ध्रुव में सम्भव है। उत्तरी ध्रुव यह जो दक्षिणायन अभी बीता है उत्तरी ध्रुव के निवासियों को छः महीने तक सूर्य के दर्शन नहीं होते, सूर्य दक्षिणायन में चला गया था। उत्तरी ध्रुव में बिल्कुल प्रकाश नहीं आता। छः महीने की रात्रि हुई और आज के दिन प्रथम बार उत्तरी ध्रुव वालों को सूर्य के दर्शन हुए इसलिये वेद में वर्णन आता है लम्बी रात्रि थी। उसमें अंधेरा था। उस समय लोगों को हाथ से हाथ नहीं सूझता था, आकाश के तारों के प्रकाश में थोड़ा-थोड़ा दिखता था। लोग लगातार धुंध में, अंधेरे में रहते और बड़ा कष्ट महसूस होता था। उसके

बाद उत्तरायण का दिन आया और जब सूर्योदय हुआ तब लोगों ने सूर्यात्मा का स्मरण किया, लोगों ने गायत्री गायी और कहा—भर्गो देवस्य धीमहि। धीयो यो नः प्रचोदयात्। हे सूर्य, हे जगत् के आलोककर्ता, भुवन भास्कर! विश्व को देदीप्यमान करने वाले असंख्य स्वर्णिम रश्मियों से प्रकाशित होने वाले सूर्य, आपके अत्यन्त कल्याणकारी तेज को धारण करते हैं। हे प्रभु! हमें ज्ञान दो, प्रकाश दो, विवेक दो, बुद्धि दो, शक्ति दो, वीर्य दो, तेज दो, ओज दो, अन्तर-बाह्य प्रकाश से भर दो, हमारी बुद्धियों को चमका दो। हमारी बुद्धियों को ज्योतित कर दो। इस तरह की प्रार्थना वेद के ऋषियों ने गायी है।

इसका अर्थ तिलक महाराज ने यही लगाया कि सम्भवतः प्राचीनकाल के आर्य ऋषि उत्तरी ध्रुव के वासी थे। जो भी हो यह निश्चित बात है कि यह उत्तरायण का काल, शुभ काल है, यह उत्थान का काल है, यह प्रगति का काल है, यह उष्मा का काल है, यह ज्योति का काल है, यह विकास का काल है। यह समुन्नति का काल है। यह बहुत ही शुभ लक्षणों वाला काल माना जाता है। इसलिए गीता में भगवान ने कहा और प्राचीनकाल से हमारी यही परम्परा रही, जितने सुकृत हों, शुभ कर्म हों, वे उत्तरायण के समय करने चाहिये और जो शुभ करने वाला व्यक्ति है वह उत्तरायण में शरीर त्याग करके जाता है। तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः (8/24) ब्रह्मज्ञानी लोग जब उत्तरायण में शरीर त्याग करके जाते हैं तब वे पीछे ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं। वे ब्रह्म में लीन हो जाते हैं, उनका मोक्ष हो जाता है।

वही उत्तम कर्म करने वाले लोग जब दक्षिणायन में शरीर त्याग करके जाते हैं, तो दक्षिणायन में शरीर को त्यागकर जाने वाले लोग स्वर्ग तक जाते हैं, स्वर्ग में अपने कर्मों के फल भोगते हैं और फल भोगने के बाद फिर संसार में लौटकर आते हैं। ये उत्तरायण और दक्षिणायन का अन्तर है।

तीन सप्ताह पहले आपने गीता जयन्ती पर्व मनाया। गीता जयन्ती पर्व वह पर्व है जिस दिन भगवान् ने कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन को गीता सुनायी। जिस दिन महाभारत का युद्ध शुरू हुआ। भीष्म पितामह शरशय्या पर लेट गये। शरशय्या पर पड़े-पड़े उन्होंने पाण्डवों को उपदेश दिया भगवान् श्रीकृष्ण के आग्रह पर।

अनुशासन-पर्व को देखिये। बहुत उच्च कोटि का उपदेश उन्होंने दिया। उसमें इमरजेंसी की कोई बात नहीं है जो इन्दिरा गाँधी ने लागू की। विनोबा भावे मौन थे। उन्होंने इसे अनुशासन पर्व कहा। कांग्रेस ने कह दिया कि विनोबा भावे इसका समर्थन करते हैं। विनोबा भावे ने जब मौन खोला तब उन्होंने स्पष्ट किया। अनुशासन पर्व है धर्म का अनुशासन। आत्मा का अनुशासन। वह उपदेश उन्होंने युधिष्ठिर महाराज को दिया। युधिष्ठिर! मेरे लिये शोक मत करना। मैं

इच्छा मृत्यु हूँ। मैं शरशय्या पर पड़ा हुआ हूँ। मृत्यु मेरे वश में है। मैं उत्तरायण शुरू होने पर शरीर त्यागूंगा। इसलिये उत्तरायण की प्रतीक्षा कर रहे थे वो। मैं अपनी इच्छा से त्याग रहा हूँ शरीर। इसलिए मेरे लिए बिल्कुल शोक मत करना। तुम शंख बजाना, पुष्पवृष्टि करना, दरिद्रनारायण को भोज देना। मेरे लिये शोक बिल्कुल मत करना। उसी दिन से तुम धर्म-ध्वजा को इन्द्रप्रस्थ नगरी के ऊपर, जो उस समय का दिल्ली नगर था, फहराना और उस दिन फिर से धर्म राज्य प्रारम्भ करना। धर्म पताका फहराना और उसी दिन धर्म राज्य को प्रारम्भ करना। ये मकर संक्रांति का पर्व भीष्म पितामह के निर्वाण का पर्व है। जिस दिन उन्होंने शरीर छोड़ा और जिस दिन इन्द्रप्रस्थ नगरी पर, महाभारत के महासमर के पश्चात्, जिसमें अधर्म का नाम शेष हो गया, अधर्म का अंश-वंश समाप्त हो गया और उसके बाद धर्म की ध्वजा फहरायी। उस धर्म की ध्वजा फहराने का, धर्म की विजय का, धर्म राज्य की विजय का यह पावन दिवस है। इस दिन लोग सूर्य की विशेष पूजा करते हैं। इसलिये कि सूर्य हमारी धरती का आधार है। सूर्य ने पृथ्वी को आधार दिया हुआ है। पृथ्वी उसके आकर्षण से टिकी हुई है। सूर्य यदि आधार न देवे तो पृथ्वी टिक नहीं सकती। आकाश में आप पत्थर फेंकें और पत्थर घूमता रहे यह कभी सम्भव है? पत्थर कैसे घूमता रहेगा आकाश में, कब तक घूमता रहेगा? उसके लिये आकर्षण की शक्ति चाहिये जो उसको बांधे। धरती एक गोला है, एक गेंद है। आकाश में घूम रही है। किसके आकर्षण से घूम रही है? सूर्य के आकर्षण से घूम रही है। सूर्य ने अपने आकर्षण से उसको बांधा हुआ है। तभी वह घूम रही है। सूर्य अगर उसको आधार न देवे तो वह खंड-खंड हो जायेगी। इसलिये धरती के स्थायित्व का आधार सूर्य है। पृथ्वी की परिक्रमा का आधार भी सूर्य है। धरती के जन्म का आधार भी सूर्य है। धरती पर जितने वृक्ष, वनस्पतियाँ हैं उनको अंकुरित कौन करता है? यदि दो-चार महीने सूर्य दिखे नहीं, सब पेड़-पौधे, वनस्पतियाँ, वृक्ष मर जायेंगे। जितने जीव-पशु-मनुष्य हैं सब मर जायेंगे। यदि सूर्य सप्ताह दो सप्ताह नहीं दिखे तो लगेगा प्रलय आ गया है। सूर्य उगते ही बीज अंकुरित होते हैं। सूर्य उनमें मिठास भरता है। सूर्य फलों को पकाता है। सूर्य ही अन्न में रस पैदा करता है। सूर्य ही हमारे शरीर को ताप दे रहा है। सूर्य ही हमें बचा रहा है। सूर्य के बिना कुछ नहीं बचेगा। इसलिये सूर्यात्मा का आज स्तवन किया जाता है। आज के दिन लोग विशेष करके नदी में जाकर स्नान करते हैं।

प्रयागराज में बहुत बड़ा मेला लगता है। माघ मेला आज के दिन से प्रारम्भ होता है। यह माघ मेला एक मास के लिये चलता है। पूरे माघ मास में चलता है। इसका शुभारम्भ आज के दिन होता है, जब माघ मास में सूर्य मकर राशि में प्रवेश

करता है। तब सब लोग तीर्थपति, तीर्थराज प्रयाग को जाते हैं। ऐसे तीर्थराज प्रयाग में ऐसा हुआ कि—

एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं। पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं।।
प्रति संबत अति होइ अनंदा। मकर मज्जि गवनहिं मुनिबृंदा।।

(मानस 1/44/1)

इसी प्रकार माघ महीने भर स्नान करते हैं और फिर सब अपने-अपने आश्रमों को चले जाते हैं। हर साल वहाँ इसी तरह बड़ा आनन्द होता है। मकर में स्नान करके मुनिगण चले जाते हैं।

एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए।।
जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी।।

(मानस 1/44/2)

एक बार पूरे मकर भर स्नान करके सब मुनीश्वर अपने-अपने आश्रमों को लौट गये। परम ज्ञानी याज्ञवल्क्य मुनि को चरण पकड़ कर भारद्वाज जी ने रख लिया।

याज्ञवल्क्य राजा जनक के गुरु थे। बड़े विवेकी थे। भारद्वाज मुनि ने उनके चरण पकड़ करके उनको रोक लिया। क्या बात है? आपसे मैं विशेष सत्संग करना चाहता हूँ। तब भारद्वाज ऋषि ने याज्ञवल्क्यजी को कहा, मुझे रामायण का रहस्य बताइये। राम कथा मुझे सुनाइये।

रामचरितमानस के चार घाट हैं। एक घाट पर शंकर भगवान् पार्वती को रामकथा सुना रहे हैं। एक घाट पर याज्ञवल्क्य मुनि भारद्वाजजी को रामकथा सुना रहे हैं। एक घाट पर कागभुसुंडी गरुडजी को रामकथा सुना रहे हैं। और चौथे घाट पर तुलसीदास भक्तों को रामकथा सुना रहे हैं। तो रामायण कथा का मूल भी इस मकर संक्रांति पर्व से जुड़ा हुआ है।

रामायणकाल में एक और महान् विभूति हुए। भगवान् परशुराम। और सहस्रार्जुन से संघर्ष हो गया परशुराम का। फिर परशुराम ने क्रोध में आकर 21 बार क्षत्रियों का नाश कर दिया? तब उसके पितरों ने आकाशवाणी में कहा, परशुराम! आप क्या कर रहे हो? एक राजा ने भूल की। उसके बाद 21 बार आप सब क्षत्रियों को मारकर उनके रक्त के कुण्ड भर रहे हैं। इतना पाप मत करो। तुम्हें इस पाप का प्रायश्चित्त करना चाहिये। तब परशुराम ने तपस्या की। तपस्या करके इस पाप का प्रायश्चित्त किया, तो आकाशवाणी हुई—प्राग्ज्योतिषपुर में जहाँ सूर्य सबसे पहले उगता है—असम में जो अरुणाचल का प्रदेश है, जहाँ सूर्य का सबसे पहले अरुणोदय होता है—वहाँ पर एक कुण्ड है, उस कुण्ड में जाकर मकर संक्रांति

के दिन स्नान करना। मकर संक्रांति के दिन परशुराम ने अपने पाप विमोचन के लिये तप किया। तप के बाद पाप-प्रक्षालन के लिये उस कुण्ड में स्नान किया, जिसे आजकल परशुराम कुण्ड कहते हैं। जिन्होंने रेडियो पर समाचार सुने होंगे उनको समाचार मिला होगा कम से कम 14-15 लाख लोगों ने आज उस परशुराम कुण्ड में मकर संक्रांति का स्नान किया। मकर संक्रांति पर लोग परशुराम कुण्ड में स्नान करने जाते हैं।

मकर संक्रांति में लोग प्रयागराज में स्नान करने जाते हैं। और एक महान् महत्त्व इसका है कि गंगा का अवतरण जो हुआ वह हुआ ग्रीष्म ऋतु में। जून के लगभग गंगा सप्तमी पड़ती है जब गंगा का अवतार हुआ। गंगा निकली। लेकिन गंगा, गंगासागर में कब पहुँची? इतनी जल्दी नहीं पहुँची। आज तो गंगोत्तरी से चलने वाला गंगाजल का बिन्दु मुश्किल से 48 घण्टे के भीतर गंगासागर में पहुँच जाता है। क्योंकि 50-60 मील की गति से पानी बहा जा रहा है। गंगा प्रायः दो हजार मील की यात्रा करती है। लेकिन जब गंगा लाये थे भगीरथ तब बड़ा कठिन काम था—गंगा को मार्ग देना, पहाड़ियों को चीरना, रास्ता बनाना, आगे ले जाना । तो आज का दिन, मकर संक्रांति का जो दिन है इस दिन गंगा गंगासागर तक पहुँची। उस सुन्दरवन के क्षेत्र में राजा भगीरथ के पूर्वज भस्म हुए पड़े थे। कपिल मुनि की आंखों की ज्योति से निकलने वाली अग्नि से भस्म हो गये थे। उन्हीं पितरों के उद्धार के लिये ही तो गंगा लाये थे भगीरथ! इसलिये गंगा लाने का वास्तविक मनोरथ आज के दिन पूरा हुआ जब गंगा, गंगासागर में पहुँची और राजा भगीरथ के पितरों का उद्धार हो गया। इसलिये गंगासागर का मेला वर्ष में आज के दिन ही लगता है। सालभर गंगासागर का द्वीप सागर में डूबा रहता है। इन्हीं चार-छः दिनों के लिये पानी घटता है, द्वीप प्रकट होता है। द्वीप के अन्दर कपिल का बना हुआ मन्दिर है। उनका प्राचीन आश्रम का स्थान है। वहाँ भी लाखों-लाख लोग जहाजों में जाकर के तीर्थ में स्नान करते हैं। आज गंगा के गंगासागर में मिलने का दिन है।

परशुराम के पाप-प्रक्षालन, भीष्म पितामह के निर्वाण-प्राप्ति का दिन और महाभारत के युद्ध के बाद धर्म की जय का दिन और धर्म ध्वजा के आज आकाश में फहराने का दिन। सूर्य के मकरगत होने पर आप एक छाता ले लेवें। छाते में आठ फांक होती है। आठ फांक की जगह आप बारह फांक वाला छाता लेवें, छाते पर काला कपड़ा न हो, ऊपर पॉलीथिन का, प्लास्टिक का पारदर्शी कपड़ा लगा लेवें और छाते की नोक को आप ध्रुवतारे की ओर लगा देवें। ध्रुवतारे की ओर लगाकर देखिये। आकाश के अन्दर जितने तारे हैं, बारह भागों में बंट जायेंगे। एक-एक भाग में जो तारों का समूह है तारों की जो राशि है, उसका चित्र बनता दिखाई देगा। लक्ष्मी जैसा चित्र बने तो उसको मकरराशि कहते हैं। धनुष जैसा चित्र बने धनुराशि

हो गया। कन्या जैसा चित्र बने तो कन्याराशि हो गया। इस तरह से केकड़े जैसा चित्र बने तो कर्कराशि हो गया। तो 12 राशियाँ बन जाय। यह हुआ क्रांतिवृत्त। क्रांतिवृत्त जब सूर्य एक राशि को पार करके दूसरी राशि में प्रवेश करता है तब होती है संक्रांति। एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करने पर संक्रांति अतः वर्ष भर में 12 संक्रांति आती है। सूर्य की दृष्टि से महीने का प्रथम दिन। प्रत्येक गुरुद्वारा में इस दिन विशेष प्रसाद बंटता है। विशेष पाठ होता है। 12 संक्रांतियों में कुछ संक्रांतियों का विशेष महत्त्व है क्योंकि उनके साथ बहुत बड़ा इतिहास जुड़ा हुआ है। उनमें से एक संक्रांति यह है मकर संक्रांति। और तीन महीने बाद आने वाली एक संक्रांति है जिसको हम मेष संक्रांति, वैशाख संक्रांति कहते हैं। इसलिये दो संक्रांतियाँ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इसी तरह कर्क संक्रांति भी बहुत महत्त्व की है।

इस दिन के साथ जो सूर्यपूजा का महत्त्व है इसको आप ध्यान में रखें। आपको अचम्भा होगा जानकर कि यह सूर्यपूजा सारे यूरोप में चलती थी। रोम में एक बहुत बड़ा सूर्य का मन्दिर था। सूर्य के मन्दिर को बोलते थे आदित्यालय। आदित्यालय का अर्थ आदित्य का मंदिर सूर्य का मंदिर। आज शनिवार है। कल का दिन इतवार। इतवार नाम कहाँ से आया? इतवार नाम आया आदित्यवार से। मारवाड़ी लोग अभी भी बोलते हैं दितवार। आदित्यवार से आ का लोप हो गया तो दितवार। और 'द' का लोप हो गया तो इतवार। इसलिये आदित्यवार, दितवार, इतवार। इस तरह से आदित्यालय था। सूर्य का मन्दिर था रोम में। जिसका खण्डहर अभी भी विद्यमान है जिसको Dental of अपोलो कहा जाता है। उस आदित्यालय का नाम हुआ दितालय। 'आ' का लोप हुआ तो 'दितालय'। और 'द' का लोप हुआ तो इतालय।

जैसे हिमालय का उच्चारण करते-करते लोग आसानी के लिये हिमालिया बोल देते हैं। इसी तरह से इतालय को लोगों ने इतालिया बोल दिया। इतालिया पूरे इटली देश का नाम हो गया। अभी तक इस देश का नाम है इतालिया। अंग्रेजी वाले इसको इटली-इटली बोलते रहते हैं।

सारे यूरोप में सूर्यपूजा चलती थी। आपको बड़ा अचम्भा होगा। सौ वर्षों में संक्रांति का जो तिथि पर्व है एक दिन आगे बढ़ जाता है। इसलिये 1800 साल पहले जब ईसाइयत ने प्रवेश किया रोम में, तब सूर्यपूजा का यह पर्व 25 दिसम्बर को चलता था। 25 दिसम्बर को सूर्यपूजा चलती थी मकर संक्रांति। 1800 साल में मकर संक्रांति 18 दिन आगे चली गयी। 5 दिन दिसम्बर के और 13 दिन जनवरी के। 18 दिन आगे चली गयी है। आप कहेंगे सो कैसे? 115 साल पहले 12 जनवरी को मकर संक्रांति पड़ती थी। क्योंकि स्वामी विवेकानंद का जन्म मकर संक्रांति के दिन हुआ। मकर-संक्रांति का पर्व था। ब्राह्ममुहूर्त का समय था,

प्रातःकाल लोग सूर्य को जलांजलियाँ दे रहे थे। उसी समय विश्वनाथ दत्त को शुभ संवाद मिलता है विवेकानन्द (नरेन्द्र) का जन्म हुआ है। पुस्तकों में स्पष्ट लिखा है 12 जनवरी को मकर संक्रांति के दिन विवेकानन्द का जन्म हुआ। तो 115 साल पहले मकर संक्रांति 12 जनवरी को थी। धीरे-धीरे 13 जनवरी को आयी। अब मकर संक्रांति 14 जनवरी की ओर जा रही है। 300 वर्ष पहले दशमेश गुरु गोविन्दसिंह महाराज ने, जिनकी जयन्ती कल के दिन पड़ती है, 15 जनवरी को। उन्होंने 300 साल पहले खालसा पंथ की स्थापना की वैशाखी के पर्व 10 अप्रैल को अब 300 साल बाद वही वैशाखी 13 अप्रैल को पड़ने लगी। वही वैशाखी 13 अप्रैल से 14 अप्रैल की ओर जा रही है। तो संक्रांति 100 साल में लगभग एक दिन आगे बढ़ जाती है। इसलिये जो क्रिसमस नाम से पर्व ईसाई लोग मनाते हैं ईसा के जन्म दिन के रूप में वह ईसा का जन्म दिवस नहीं है। वह वास्तव में सूर्यपूजा का पर्व है। मकर संक्रांति है जो रोम में 1800 साल पहले 25 दिसम्बर को मनायी जाती थी। इस बात को राधाकृष्णन् ने अपनी पुस्तक Recovery of Faith में स्पष्ट लिखा है। राधाकृष्णन् ने भी इसके बारे में लिखा और मैंने भी कुछ शोधपत्र लिखे हैं। मकर संक्रांति के पर्व को ईसाइयों ने चुरा लिया है और क्रिसमस के नाम से प्रचारित किया है। क्योंकि ईसा का जन्म वास्तव में ठण्डी ऋतु में हुआ ही नहीं। बाइबिल में स्पष्ट वर्णन है जब ईसा का जन्म हुआ तो रात भर पनहारिन पानी भरती रही। क्या दिसम्बर की कड़ाके की सर्दी में पनहारिन पानी भरेगी। रातभर चरवाहे वंशी बजाते रहे। रातभर भेड़ों के झुंड को लेकर खेतों में बैठे हुए वंशी बजाते रहे। क्या कड़ाके की सर्दी, नसों में खून जम जाय ऐसी दिसम्बर की सर्दी में चरवाहे वंशी बजायेंगे? भेड़ें चरती रहेंगी? यह असम्भव बात है। ईसा का जन्म सर्दी की ऋतु में हुआ ही नहीं। ईसा का जन्म वसन्त ऋतु में हुआ होगा। यदि हुआ होगा तो!

इसलिये मकर संक्रांति पर्व चुरा लिया गया है सूर्यपूजकों से और उसको क्रिसमस नाम दे दिया है। और जब तक ईसाइयत का प्रवेश नहीं हुआ था यूरोप में तब तक ईसाई लोग शनिवार को चर्च लगाते थे। क्योंकि बाइबिल में स्पष्ट लिखा है कि God ने प्रथम छः दिनों में सृष्टि बनाई और सातवें दिन आराम किया और इसलिये कहा गया उस दिन हमें ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये। तो प्रथम छः दिन कहाँ से गिनेंगे? जितने कैलेंडर हैं सबसे ऊपर Sunday लिखा रहता है। प्रथम दिन Sunday, Monday, Tuesday और सातवां दिन शनिवार है। Friday छठा दिन है। इसलिये शनिवार को चर्च लगते थे। सारे इजराइल में, यूरोप में ईसाइयत के प्रवेश से पहले। अभी यहूदी लोग शनिवार को चर्च लगाते हैं और Seven days Adventist Mission के लोग भी शनिवार को चर्च लगाते हैं। जब ईसाइयत पहुँची

रोम में तो उन्होंने देखा कि सूर्यपूजक सूर्य के दिन 'इतवार के दिन' सूर्य मन्दिर में बहुत बड़ी मात्रा में लोग पूजा करते हैं तो उन्होंने राजा को कहा कि हमें कोई तरीका बताओ कि हम कैसे ईसाइयत का प्रचार करें? तो राजा ने कहा तुम चालाकी करो। तुम सूर्यपूजकों के मंदिर में घुस जाओ। सूर्य मंदिरों में बड़ी भारी सूर्य की प्रतिमा बनी रहती है। चारों ओर बहुत बड़ी-बड़ी किरणें निकल रही हैं। उसके सामने तुम बैठ जाओ। वो पूजा करते हैं उस समय तुम भी सिर हिलाते रहो। उसके बाद तुम भी अपनी पूजा कर लो। सूर्य प्रतिमा के सामने तुम भी अपना छोटा सा क्रास रख देना। छोटा सा लकड़ी का क्रास रख देते थे सूर्य प्रतिमा के सामने। लोग पूछते थे What is this? यह क्या है? तो पादरी लोग चालाकी से कहते थे This is your Sun God. This is Son of God. यह तुम्हारा Sun God सूर्य देवता है, यह हमारा Son of God है ईसा को Son of God भी कहते हैं। यह खुदा का बेटा है। अतः Son of God कहकर चालाकी से उसको लगा देते थे। धीरे-धीरे उन्होंने सूर्य के मन्दिरों को भी तोड़-फोड़ करके गिरजाघर बना लिया। इतवार को सूर्य पूजा के दिन उन्होंने चर्च लगाने शुरू कर दिये और उन लोगों को धर्मान्तरित करके ईसाई बनाया। इसलिये सूर्य पूजा बहुत प्राचीन है।

इंग्लैण्ड में, लन्दन शहर में अभी भी एक पुराना मंदिर सूर्य का है मित्रोद्योदस कहते हैं। मित्रोद्योदस क्या है? उदीयमान सूर्य का मंदिर। मित्र सूर्य को कहते हैं। इसलिये मित्र, मित्राय ये सब नाम हैं। सूर्य का स्तवन करके और फिर यज्ञ करके नये अन्न को मित्रों में बांटना। ये सब परम्परा इसके साथ है।

विश्वकवि रविन्द्रनाथ ठाकुर ने इसी उत्तरायण के पर्व को पवित्र मान कर शान्ति निकेतन में जो उनका अपना निवास है उसका नाम रखा उत्तरायण। उन्होंने माघ के मास में माघ मेला शुरू किया। प्रतिवर्ष शांति निकेतन में अभी भी माघ मेला लगता है जिसमें वहाँ के सब पर्व, उत्सव, छात्रों के दीक्षान्त उत्सव इसी माघ मास में होते हैं। यह पर्व सबसे अधिक महत्त्व का है।

गाँव-गाँव में, नदी तीरों पर स्थान-स्थान पर, तीर्थों पर, दो नदियों के संगम स्थल पर, जहाँ कहीं नदियाँ मिलती हैं लोग तीर्थ करने जाते हैं। कोई किसी स्थान पर, कोई किसी स्थान पर। जहाँ पर दो नदियाँ मिलती है उसी को गंगा मान करके, उसमें स्नान करके अपने तन को पवित्र करते हैं, अपने मन को पवित्र करते हैं।

जीवन में नया संक्रमण, नयी क्रांति, नया परिवर्तन लाने का संकल्प करते हैं। संक्रमण का मतलब क्या है? संक्रांति। संक्रांति का मतलब क्या है? अच्छी प्रकार से क्रांति करना। आपने नारे सुने समग्र क्रांति, समूल क्रांति, सम्पूर्ण क्रांति। तो क्रांति शब्द का मतलब है बदलाव। लेकिन क्रांति अगर विचारपूर्वक न की जाय तो क्रांति कई बार घातक भी हो जाती है। अगर हम बदलने को लग जायें तब कल

कोई कहे कि तुम अपना नाम बदल दो, तुम अपनी माँ बदल दो तो कैसे काम चलेगा? किसी को कहो अपना घर बदल दो, कोट बदल दो, तुम अपना पेट बदल दो, अपना शरीर बदल दो, तुम अपनी आंखें बदल दो। इनके बदलने से काम नहीं चलेगा। इसलिये इसको सूझ-बूझ से करना पड़ेगा। जो चीज खराब हो गई है, जो चीज विकृत हो गयी है, जो रूढ़ि खराब हो गई है उसको बदलना है। तो किसको बदलना किसको नहीं बदलना इसकी अक्ल होनी चाहिये। यदि नाक के ऊपर किसी के मक्खी बैठती है, और कोई उसे कहे नाक साफ करो। तो इसका मतलब यही होता है नाक के ऊपर जो मल लगा हुआ है, नाक के ऊपर जो मीठा लगा हुआ है, नाक के ऊपर जो गन्दगी लगी हुई है उसको साफ कर दो ताकि नाक पर मक्खी न बैठे। अगर कोई मूर्ख यह समझे नाक साफ करने का मतलब है तलवार पकड़कर नाक ही साफ कर देना। तब तो और भी मक्खी बैठेगी। जब नाक ही नहीं रहेगा तब मक्खियाँ भरपूर आकर बैठेंगी। इसलिये क्रांति के नाम पर अपने देश की नींव न हिल जाय और समाज का ही नाश न हो जाय, हम अपने समाज को ही न मार डालें, इसका विचार करना पड़ेगा।

इसलिये जो कार्ल मार्क्स की रक्त-क्रांति है। कार्ल मार्क्स कहता है खूनी क्रांति करो, खूनी क्रांति करो। तो महात्मा गाँधी कहते हैं कि तुम्हारा इलाज जो है वह रोग से ज्यादा भयानक है। तुम इलाज करना चाहते हो समाज में जो विषमता है, गरीब-अमीर का जो फर्क है, इसका हम क्रांति के द्वारा इलाज करेंगे। गाँधीजी कहते हैं तुम्हारा इलाज रोग से ज्यादा बुरा है। रोग तो है भेद का और तुम इलाज करने चले हो हत्या का। तो हत्या के द्वारा ये भेद मिटेगा क्या? खूब रक्तपात हो जायगा। इसलिये सूझ-बूझ से, अक्ल से, समझदारी से, सम्यक् प्रकार से क्रांति करना है यह संक्रांति। अपने जीवन में बदलाव आये। जो बुराइयाँ हैं उनको हटायें, पिछले वर्ष में जो कमियाँ रह गयी उसको हम दूर करें। समाज में जो रूढ़ियाँ हैं, उनको इस ढंग से साफ करें ताकि समाज बचे। समाज अधिक अच्छा बने। और रूढ़ियाँ हट जाय, उसकी बुराइयाँ दूर हो जाय। इस प्रकार सम्यक् क्रांति लाने का दिन यह संक्रांति है। बदलाव कैसे आता है? कैलेंडर आप टांग देते हैं। कैलेंडर टंगा हुआ है। कैलेंडर की 365 आंखें हैं। वे 365 आंखें बारी-बारी से आपकी ओर देखती हैं। अरे मानव! क्या आज के दिन बदलेगा? पूरा दिन प्रभात से सायंकाल तक वह तिथि आती है और आपकी ओर देखती रहती है और देखते-देखते संध्या को वह आंख मुंद जाती है। दूसरे दिन दूसरी आंख देखना शुरू करती है। अरे मनुष्य, क्या आज बदलेगा? और देखते-देखते संध्या को आंख मुंद जाती है। और हम वैसे के वैसे रहते हैं। हम यह कोशिश नहीं करते कि हम कल की अपेक्षा आज कुछ अच्छे बनें। बीते हुए वर्ष की अपेक्षा आज कुछ आगे बढ़ें। हम बिल्कुल उसी कोल्हू के बैल की तरह उसी चक्र में घूमते रहते हैं। इस कारण से काल की 365 आंखें हमारी ओर आशा की दृष्टि से देख-देख करके धीरे-धीरे मुंद जाती हैं। 365 आंखें पथरा जाती हैं कि यह मनुष्य कुछ बदलने वाला नहीं है। तब दिसम्बर की सीलन भरी दीवार पर दिसम्बर की शीत लहर से

और खुली हवाओं से वह फटा हुआ कैलेंडर अविराम फड़फड़ाता है जैसे सूली पर मसीहा फड़फड़ाता है। जैसे ईसा सूली पर फड़फड़ा रहा है। हम उस कैलेंडर को उतार करके कूड़े में फेंक देते हैं और दूसरे मसीहा को सूली पर टांग देते हैं। हम बदलेंगे नहीं। तो क्या कैलेंडर बदलने से इंसान बदल जाता है? कैलंडर बदलने से इंसान नहीं बदलता। अरे! मन को बदलने से इंसान बदलता है। संकल्प मजबूत करोगे तो बदल जाओगे। आज हम महासंक्रांति के दिन यदि संकल्प करेंगे कि हम पहले से अच्छे बनेंगे। आज तक हमने अपने अभागे समाज की कोई परवाह नहीं की। हमारे समाज में पडोस में बैठा हुआ व्यक्ति भूखा रहा। हमने अपने ज्ञान को बांटा नहीं। हमने ज्ञान प्राप्त किया। हमने अपने ज्ञान का अंश झोपड़ी में जाकर वनवासी से नहीं बांटा। कालेज में हम पढ़ने जाते हैं, जो कपड़ा पहनकर जाते हैं वे कपड़े क्या हम स्वयं अपने हाथ से बनाते हैं? नहीं! किसी तंतुकार के बेटे ने कपड़ा बनाया हमारे लिए। जो जूता पहनकर जाते हैं, स्वयं बनाते हैं? नहीं! किसी चर्मकार के बेटे ने हमारे लिये जूता बनाया। जो पेन्सिल का उपयोग करते हैं वह स्वयं बनाते हैं? नहीं! किसी कर्मकार के बेटे ने हमारे लिये पेन्सिल बनायी। जिस भवन में पढ़ते हैं वह भवन हम स्वयं बनाते हैं? नहीं! किसी वास्तुकार के बेटे ने हमारे लिये भवन बनाया। जिस सुराही से पानी पीते हैं क्या स्वयं हमने बनायी? नहीं! किसी कुम्भकार के बेटे ने हमारे लिये सुराही बनायी। सबने हमको सहयोग दिया। और पढ़-लिख लेने के बाद भारत का ग्रेजुएट (Graduate) अपने ज्ञान का कुछ भी अंश-कुम्भकार के बेटे से, कर्मकार के बेटे से, वास्तुकार के बेटे से, चर्मकार के बेटे से, बांटता नहीं है। कुम्भकार, वास्तुकार, चर्मकार, कर्मकार का बेटा अनपढ़ का अनपढ़ रहा। हम उनकी मदद से पढ़-लिखकर Graduate हो गये। हमने इनकी परवाह नहीं की। हमको इनसे ज्ञान बांटने की फुरसत नहीं। दस हजार मील दूर से पादरी आता है। वह कहता हैं Ranchi (रांची) विश्वविद्यालय के पढ़े-लिखे Graduate हरामखोर हैं। वह तुम्हारी मदद से पढ़ा है। पर तुम्हें ज्ञान नहीं बांटता है। पर हमारे सीने में तुम्हारे लिये बहुत दर्द है। हम अपना देश बेल्जियम छोड़कर आये हैं। हम अमरीका जैसे देश को छोड़कर तुम्हारे देश में, तुम्हारे गाँव में आये हैं। हम तुम्हारी झोंपड़ी में आये हैं। हम तुम्हारे बच्चों की नाक पोंछते हैं। हम तुम्हारे बच्चों को A.B.C. लिखना सिखाते हैं, अंग्रेजी बोलना सिखाते हैं। और इस प्रकार उनका धर्मान्तरण द्वारा राष्ट्रान्तरण का क्रम प्रारंभ हो जाता है। अतः हम अपने कर्तव्य को समझें।

जिस समाज के स्नेह एवं सहयोग के बल पर हम पले-बढ़े, शिक्षित होकर योग्य बने, उस समाज के प्रति अपने दायित्व को भूलकर केवल स्वयं के एवं परिवार के पोषण-संवर्धन में लग जाते हैं। इस तरह से समाज के प्रति हम कृतघ्न नहीं बनें। तभी तो विदेशी पादरी हमारे ही समाज के पिछड़े हुए बंधुओं की निर्धनता और अशिक्षा का लाभ लेकर उन्हें धर्मान्तरित कर हमारे ही विरुद्ध खड़ा कर देते हैं। अतः समाज के प्रति कृतज्ञ बनें, उसके प्रति जो हमारा दायित्व है उसे निभायें। तभी हम सुखी, स्वस्थ अखण्ड भारत का निर्माण कर सकेंगे। अशांत विश्व को भी शांति की राह दिखा सकेंगे। और पुनः विश्वगुरु के पद पर आसीन हो सकेंगे।

विक्रम संवत् : (भाषण)

परम पवित्र भगवद् ध्वजदण्ड की अरुण त्यागमयी रश्मियों के छाया तले बैठे माननीय अधिकारी वर्ग और प्यारे स्वयंसेवक बंधुओ! हम नववर्ष प्रतिपदा उत्सव के उपलक्ष में नववर्ष की पूर्व संध्या को यह महोत्सव मना रहे हैं। प्रायः संसार भर में नये वर्ष की पूर्व संध्या को भी उत्सव मनाने की परम्परा है। उसको लोग New Year eve (ईव) कहते हैं, The evening before the new year नये वर्ष की पूर्व की संध्या। इसलिये इस दृष्टि से आज का यह उत्सव भी बहुत महत्त्वपूर्ण बन जाता है। एक वर्ष की परिपूर्ति हुई और नववर्ष के आगमन से पूर्व हम विगत वर्ष की गति-प्रगति पर विचार करके आगामी वर्ष की अगवानी के लिये मंगल कामनाएँ करते हैं।

यह नववर्ष प्रतिपदा क्या है? वेद के मंत्रों में परमेश्वर की स्तुति में कहा गया है—सम्वत्सरोसि परिवत्सरोसि हे परमेश्वर! तू ही संवत्सर है। तू ही परिवत्सर है। संवत्सर क्या है? संवत्सर का अर्थ है वर्ष का वह प्रथम प्रभात, जिससे वर्ष का शुभारंभ हो और जिस समय सारे भूमण्डल में एक साम्यावस्था, संवत्सर अर्थात् वत्सर-वार-दिन बराबर हो। दिन और रात बराबर हो, गर्मी-सर्दी बराबर हो, शीत-उष्ण संतुलित हो, प्रकृति में साम्यावस्था हो, उस विशेष घड़ी को जिस समय ये सब हो। उसी समय से संवत्सर प्रारम्भ होता है। ये कोई मजाक की बात नहीं है जब जिसके मन में आया शुरू कर दिया नववर्ष। एक जनवरी को क्या घटना घटी? प्रकृति की कौन-सी विशेष घटना घटती है? जनवरी को प्रकृति में कौन सी साम्यावस्था होती है, कौन से दिन-रात बराबर होते हैं, कौन-सी विशेष बात है जो एक जनवरी में है और 31 मार्च में नहीं है। कुछ नहीं है। यह मूर्खों का नया वर्ष है। ऐसे ही शुरू कर दिया है। वास्तव में उस नये वर्ष के पीछे केवल रोम के एक मूर्ख पादरी की मूर्खता का इतिहास छिपा हुआ है। क्योंकि सारे संसार भर में इसी समय हमारे संवत् के समय ही संवत्सर शुरू होता है। अभी एक-दो दिन में आप समाचार पढ़ेंगे कि ईरान ने नवरोज का दिन मनाया। नवरोज माने नया दिन। उनका नया वर्ष अभी भी इसी से शुरू होता है। एक-दो दिन में आप समाचार पढ़ेंगे कि थाई देश

(श्याम) ने नववर्ष का उत्सव मनाया क्योंकि उनका नववर्ष उसी से शुरू होता है। फिर सुनेंगे कम्बुज ने मनाया।

सारे भूमण्डल को काल की गणना भारत ने सिखायी, सारे यूरोप में भी यही चलता था। उसका प्रमाण मैं आपको दे रहा हूँ। स्वयं रोम के विश्वविद्यालय में इस विषय पर हमने कुछ शोधपत्र दिये। India's contribution in the formulation of Modern Calendar System. (आजकल के कैलेंडर सिस्टम को बनाने में भारत की देन)। आधुनिक कालगणना में भारत की देन। फिर रांची, पटना, भागलपुर, रेडियो स्टेशन पर मेरी वार्ताएं दीं। वह क्या दिन है? सिर्फ संवत् के दिन बता रहा हूँ। बाकी सब तो बहुत विशाल हो जायेगा। जब दिन-रात बराबर होते हैं। उत्तरी गोलार्ध में भी, दक्षिणी गोलार्ध में भी। पूरे 12 घण्टे का दिन पूरे 12 घण्टे की रात्रि। गर्मी और सर्दी तुला में तौलकर बराबर। शीत और उष्ण संतुलित। बाहर की प्रकृति और अंतःप्रकृति संतुलित। उस समय जब प्रकृति में कोई क्षोभ नहीं। प्रकृति में कोई आन्दोलन नहीं, प्रकृति में कोई उत्पात नहीं। न तेज आंधी-बवंडर है न तेज वर्षा है। न तेज घाम है न तेज शीत है। सब संतुलित है। उस ऋतु का नाम है वसंत। उस वसंत ऋतु को वेदों ने कहा, '**मुखं ऋतुनां इह कुसमाकर**' वसंत ऋतु सब ऋतुओं की मुखिया है। मुखिया कौन होता है? मुखिया नेता की तरह आगे चलता है। इसलिये वह 'मुखं ऋतुनां इह कुसमाकर' ये वसंत सब ऋतुओं की मुखिया है। इसलिये सबसे आगे-आगे चलती है। तो सबसे पहले यह वसंत ऋतु आती है। इसलिये इसी से वर्ष आरम्भ होता है। वसंत का परिपाक कब होता है। जब आपने होली उत्सव मनाया। यह वसंत का परिपाक है। 15 दिन पहले। लेकिन वर्ष का शुभारम्भ कोई न कोई दिन संवत् मनाते ही हैं। होली भी संवत् का ही उत्सव है। लेकिन वर्ष का शुभारम्भ कृष्ण पक्ष से न होकर शुक्ल पक्ष से होना चाहिये। यह प्राचीन वैदिक परंपरा है। इसलिये वर्ष का शुभारंभ। आज तक अमावस्या कृष्ण पक्ष की चली। होली से लेकर अब तक 14 दिन चला यह कृष्ण पक्ष। कल से शुक्ल पक्ष होने वाला है। इसलिये चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से वर्ष शुरू होता है। इसलिये इससे वर्ष आरंभ होता है। इस वर्ष मलमास होने से हमारा संवत् का दिन कुछ आगे बढ़ गया है। अप्रेल में मना रहे हैं। प्रायः 21 मार्च से 23 मार्च के बीच में आता है यह संवत्सर का दिन। प्राचीन रोम में और सारे यूरोप में 21 मार्च से ही नववर्ष शुरू होता है इसलिये मार्च प्रथम मास होने के कारण। दिसम्बर का नाम संस्कृत का नाम है। आप इनसाईक्लोपेडिया आफ ब्रिटेनिका, इनसाइक्लोपेडिया ऑफ अमेरिका और विश्व इतिहास की कोई पुस्तक खोज करके देख लें। आपको स्पष्ट मिलेगा दिसम्बर का नाम है दस अम्बर अर्थात् वर्ष ने तब दस ओढ़न ओढ़ लिये हैं। दस कपड़े ओढ़ लिये हैं। इसलिये दसवें महीने का नाम दिसम्बर होता है। यह

निश्चित ऐतिहासिक बात है इसको काटने वाले के लिये हम अपना सर कलम करवाने के लिये तैयार हैं क्योंकि हमने रोम में इस तथ्य को चुनौती के साथ कहा है और उन्होंने स्वीकार किया है। दिसम्बर दसवां मास था। नवम्बर नवां मास था। अष्टम्बर आठवां मास था जिसको अक्टूबर कहा है। सेपटेम्बर सातवां मास था। संस्कृत में कहते हैं षष्ठ, छठा। 'षा' का ईरानी भाषा में, पारसी भाषा में 'स' का 'ह' हो गया। इसलिये षष्ठ का हो गया हष्ठ। हष्ठ अभी भी जो फारसी जानते हैं उनको पता होगा हष्ठ का मतलब होता है छठा। उस हष्ठ का लैटिन में हो गया 'हेक्स' इसलिये हेक्सम्बर। हेक्सेगन आप जानते हैं ज्यामिति वाले, इसलिये पहले था पेंटेम्बर अर्थात् पाँचवां महीना। जिसको आज आप अगस्त कहते हैं, उसका नाम था हेक्सम्बर। उसमें ईसा से कोई डेढ़ सौ साल पहले एक रोम के राजा का जन्म हुआ। उस रोम के राजा ने कहा, इस छठे महीने को मेरे नाम पर कर दीजिये। इसका नाम अगस्त कर दो। तो छठे महीने का नाम आगस्ट किया गया। अब चालाकी देखिये आज अगस्त आठवां महीना बना हुआ है। यह चालाकी कब से शुरू हुई यह आपको अभी बता रहा हूँ। तो छठे महीने का नाम जो हेक्सम्बर था उसका अगस्त किया गया। क्योंकि राजा अगस्ट का जन्म उसमें हुआ। ईसा से डेढ़ सौ साल पहले। फिर ईसा से 57 वर्ष पहले जब भारत में सम्राट् विक्रमादित्य का राज्य था। लगभग उसी समय रोम में जो यूरोप का विक्रमादित्य कहा जाय, जो बड़ा प्रतापी राजा था जूलियस सीजर। उस जूलियस सीजर का राज्य था। जूलियस सीजर और विक्रमादित्य समकालीन थे। जूलियस सीजर का जन्म हुआ पाँचवें महीने में। इसलिये उसने कहा, इस पाँचवे महीने पेंटेम्बर का नाम मेरे नाम पर कर दो जुलाई। जुलाई पाँचवां महीना था जिसे आज सातवां महीना कहते हैं। कहाँ पर गड़बड़ी हुई है उसे मैं अभी बताता हूँ। जुलाई पाँचवां महीना था। अगस्त छठा महीना था। सेपटेम्बर सातवां महीना था। जुलाई का जुलाई से पहले पेंटेम्बर नाम था। अगस्त का अगस्त से पहले हेक्सम्बर नाम था। अर्थात् पेंटेम्बर पाँचवां महीना, हेक्साम्बर छठा महीना। सेपटेम्बर सातवां महीना, अक्टूबर आठवां महीना, नवंबर नवां महीना, दिसम्बर दसवां महीना। यह क्रम चलता था। जब यह क्रम चल रहा था, यह क्रम चलते-चलते सन् 1587 तक यह क्रम चलता रहा। 1587 में रोम में एक पोप हुआ। उस पोप का नाम था पोप 'ग्रेगरी'। उस पोप ग्रेगरी ने रोम के राजा को कहा, हम लोगों ने बहुत वर्षों तक Leap के वर्ष के दिन 28 रखे, 29 नहीं रखे। इसलिये हमारी काल की गणना में कुछ फर्क पड़ गया। जो वर्ष 'चार' पर भाग हो जाय उसको Leap (लीप) का वर्ष कहते हैं। उसमें फरवरी के 28 के स्थान पर 29 दिन होते हैं। उसने कहा, हम 28 ही गिनते रहे इसलिये हमारी गलती हो गयी। तो इस गलती को सुधारने के लिये हमें कुछ करना पड़ेगा। फरवरी 28 का कैसे बन गया। इसे समझें। बड़ा रोचक इतिहास है। जब अगस्ट का जन्म

छठे महीने में हुआ, उसने कहा, भई देखो, बाकी महीनों के तीस दिन है, और मेरे महीने के दिन अधिक होने चाहियें। मैं बड़ा राजा हूँ। इसलिये मेरे महीने के दिन 31 दे दो। तो ज्योतिषियों ने कहा, 31 कहाँ से लायें? उन्होंने कहा, 'एक' फरवरी से छीन लो। फरवरी से छीन लिया। फरवरी के 29 दिन रह गये और अगस्त का एक दिन बढ़ गया। 31 दिन हो गये। जब जूलियस सीजर का राज्य आया। जूलियस सीजर ने कहा, पाँचवें महीने का नाम जुलाई कर दो, तो उन्होंने कहा, अच्छा महाराज! कर देते हैं। इसमें भी 31 दिन कर दो। महाराज! 31 कहाँ से करें? तो उसने कहा, अगस्त तो सिर्फ रोम का राजा था। मैं सारे यूरोप का राजा हूँ और दुनिया भर के लोगों को गुलाम बना-बना कर, अपने रथों में बांध-बांध कर घूमता रहा हूँ रोम की सड़कों पर। मेरे जैसा प्रतापी राजा कौन होगा? तो मेरे महीने के दिन 30 के स्थान पर 31 होने चाहिए। उन्होंने कहा 31 दिन होने चाहिए तो 31 दिन कहाँ से लायें? तब उन्होंने कहा, फरवरी से एक और छीन लो। इसलिये फरवरी से एक दिन और छीन लिया। इसलिये बेचारी फरवरी के पास 28 दिन रह गये। क्योंकि एक छीन लिया जुलाई ने, एक छीन लिया अगस्त ने। तो पोप ग्रेगरी ने सन् 1587 में कहा कि Leap के वर्ष में 29 दिन होने चाहिये थे। यह गणना हमने नहीं कीं। इसलिये साल को ठीक करने के लिये 21 मार्च की जगह हमको वर्ष को एक जनवरी से शुरू करना पड़ेगा और वर्ष को दो महीना 21 दिन पीछे घसीटना पड़ेगा। राजा ने आज्ञा निकाल दी इस वर्ष से नया वर्ष अब 21 मार्च से शुरू नहीं होगा। यह एक जनवरी से शुरू होगा। लोगों ने विद्रोह कर दिया। लोगों ने कहा, पोप ग्रेगरी! तू कौन नामुराद आ गया है संसार में? खुदा ने हमें उम्र दी और तू हमारी उम्र लूटने वाला आ गया। किसी की उम्र बनती थी 18 साल और 18 साल में उसको नौकरी मिल सकती थी। सेना में या सरकारी नौकरी में भर्ती हो सकता था। अब पोप ग्रेगरी की इस चालाकी से उसकी उम्र कम हो गयी वह Under age हो गया। वह नौकरी से वंचित हो गया और उसने कहा, ओ पोप ग्रेगरी! तू हमारी उम्र का लुटेरा है। किसी को Retire होना था अढाई-पौने तीन माह बाद। उसे अढाई-पौने तीन माह पहले Retire होना पड़ गया। उन सब लोगों ने विद्रोह कर दिया। जनता ने जब विद्रोह कर दिया कि पोप ग्रेगरी को मारेंगे और जलती हुई लकड़ियाँ लेकर उसको मारने के लिये दौड़े। पोप ग्रेगरी भाग गया। पोप ग्रेगरी भागकर जंगल की ओर गया। जनता ने उसका काफी पीछा किया। अंत में पोप ग्रेगरी ने तंग आकर आत्महत्या कर ली। उस पोप ग्रेगरी जिसने वर्ष को पीछे घसीटा उसकी चालबाजी से दिसम्बर, जो दसवां महीना था, 12 वां बन गया। नवम्बर जो नवां महीना था, 11 वां बन गया। अक्टूबर आठवां महीना था दसवां बन गया। ये सब वर्ष पीछे घसीटने से हुआ है। अन्यथा उससे पहले सारे भूमण्डल में यह वर्ष प्रतिपदा नया वर्ष इसी समय से शुरू होता था। जिस समय हमारा विक्रम

संवत् शुरू होता था और विक्रम संवत् से पहले सृष्टि संवत् भी इसी से शुरू होता था। ज्योतिष के हिमाद्रि ग्रंथ के अनुसार—

चैत्रे मासे जगद ब्रह्मा संसर्ज प्रथमेऽहवि,
शुक्लपक्षे समग्रन्तु, तदा सूर्योदये सति।

अर्थात् चैत्र मास, शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन सूर्योदय के समय ब्रह्माजी ने जगत् की रचना की।

सृष्टि इसी से शुरू हुई। इसलिये कोई तमाशा नहीं है जब चाहे कोई वर्ष शुरू कर दे। अरे, यह सृष्टि के प्रारंभ का दिन है। ब्रह्मा ने सृष्टि प्रारम्भ की और हमारा सृष्टि संवत् चल रहा है। लगभग दो अरब वर्ष से सृष्टि संवत् है। एक अरब 97 करोड़ और 987 ऐसा करके सृष्टि संवत् हमारा है। तो ये सृष्टि संवत्। सतयुग संवत् इसी से। त्रेता संवत् इसी से। द्वापर संवत् इसी से। कलि संवत् इसी से। युधिष्ठिर संवत् इसी से। कलियुग में पुनः सम्राट् नरवीर विक्रमादित्य ने 2035 वर्ष पहले, बर्बर-शकों को परास्त करके पुनः उसी प्राचीन दिवस को यश देते हुए उन्होंने विक्रम संवत् प्रारम्भ किया। ये शक लोग कौन थे? चीन के उत्तर में एक तारीम नदी है। उस तारीम नदी के काठे (किनारे) में बहुत ही बर्बर जाति के लोग बसते थे जिनको शक कहते थे। बहुत बर्बर। वे बस्तियों को घेर लेते। चारों ओर आग लगा देते और स्त्रियों और बच्चों को मारते। लूट-पाट करना, आग लगाना, नाश करना, यही उनका काम-धंधा था। चीन भी उनसे तंग था। चीन उनसे इतना तंग था कि शकों के आक्रमणों से बचने के लिये दुनिया की सबसे बड़ी दीवार दीवारे-चीन, जो दुनिया का अजूबा मानी जाती है, को उसने इसीलिये बनाया कि उन शकों से बचा जा सके। फिर भी शक उनको तंग करते थे। वे शक लोग वहाँ से बढ़ते-बढ़ते सिक्यांग की तरफ आये। जिसे आज चीनी तुर्किस्तान कहते हैं। वहाँ उन्होंने बहुत लूट-खसोट मचायी। उसके बाद वे ईरान की तरफ आये। ईरान के राजा को उन्होंने एक पत्र लिखा। यदि अपनी प्रजा की भलाई चाहते हो, और अपनी राजधानी को लूट-पाट से, खून-खराबे से, आगजनी से बचाना चाहते हो तो अपने सिर को काटकर एक थाल में परोसकर हमारे पास भेज दो। अब सोचिये, ऐसा प्रस्ताव कोई किसी राजा को कर सकता है? उन्होंने ऐसा भयानक प्रस्ताव उसको किया और चेतावनी दी— अगर तू ऐसा नहीं करेगा, तो हम तुझे मारकर तेरी खोपड़ी को काटकर, और तेरी खोपड़ी का गुद्दा निकाल करके उस खोपड़ी का प्याला बनाकर तेरा ही खून पीयेंगे। यह इतिहास की बहुत ही दुःखदाई सचाई है कि उन शक लोगों ने उस ईरान के राजा को मारा। राजधानी को लूटा-खसोटा, स्त्री-पुरुषों का नाश किया, कुएं भर गये लोथों से और उस राजा को मारकर उसकी खोपड़ी में उसी का खून

डालकर पीया। ऐसे बर्बर लोग भारत पर आक्रमण करने आये। एक शक राजा जब कश्मीर की ओर से नीचे उतर रहा था तो जम्मू से कश्मीर जाते हुए रास्ते में पीर पंजाल की पहाड़ियाँ हैं। वहाँ वैष्णवदेवी से पहाड़ियाँ दिखती हैं। फिर पन्हिल दर्रा है, पास है। फिर टर्मिनल बनाई गई है। उस टर्मिनल से बस जाती है। उन पहाड़ियों से जब मिहिरकुल नाम का शक राजा उतर रहा था तो उसने जिंदगी में पहली बार एक हाथी को देखा। हाथी होता ही नहीं उनके देश में। हाथी को देखा तो हाथी का पांव अचानक पहाड़ी से फिसल गया। पांव फिसल जाने से हाथी नीचे गिरा। हाथी ऐसे गिरा कि दो तिरछी पहाड़ियों के ढलान के भीतर गिरा और नीचे जाकर पहाड़ियाँ इतनी संकरी हो गयी थी। जिनके भीतर वह पीठ के बल गिरा। हजार प्रयास करने के बाद भी वह अपने शरीर को सीधा नहीं कर सका। सीधा हुए बिना वह खड़ा नहीं हो सकता। पीठ के बल गिरा और नीचे बहुत संकरी जगह थी जिससे वह उठ नहीं सकता था। उस अवस्था में वह—सूंड मार रहा था। पूंछ मार रहा था। चारों पांव छटपटा रहा था। उठने की कोशिश कर रहा था, चिंघाड़ रहा था। मिहिरकुल को यह देखकर बड़ा आनंद आया। वाह! ऐसा मृत्यु संगीत मैंने जीवन में कहीं नहीं सुना। कई दिन तक वह हाथी रोता रहा, चिंघाड़ता रहा और अंत में हाथी की बड़ी दुःखदायी मृत्यु हो गई। उस शक राजा मिहिरकुल को यह दृश्य बड़ा रोचक लगा। उसने बाद में वहाँ से उतर कर आगे विजय करते हुए....विजय करते हुए क्या? बस्तियों को घेर लेना, चारों ओर आग लगा देना। भागने वालों को बर्छों से, भालों से मारना। स्त्री-पुरुषों की बड़ी दुर्गति करना, और बहुत भयंकर प्रकार के पापाचार करना। यही उसका तरीका था। तो जब वह नीचे उतर रहा था तो बस्तियों को लूटता-खसोटता मथुरा तक आकर उसने नाश किया और बहुत उजाड़ दिया सारे देश को। तब उसने एक सौ हाथी अपने विजय किये हुए क्षेत्र में से ले जाकर उस पहाड़ी की उसी जगह पर जाकर बारी-बारी से उनको गिराया और एक-एक हाथी को गिराने और 5-5, 6-6 दिन तक उनका मृत्यु संगीत सुनने में उसको वर्ष लग गया। वह वहाँ बैठा हुआ उनका मृत्यु संगीत सुनता रहा। उनकी मृत्यु की चिंघाड़ सुनकर आनंदित होने वाले, दूसरों को दुःख देकर, दूसरों को सताकर आनंद मनाने वाले ऐसे नर-पिशाच, शरीर तो मनुष्य का है पर प्रकृति पिशाच की है। दूसरों को सताना, दूसरों को तड़पाना और उसमें सुख मानना। ऐसे शक लोग बढ़ते-बढ़ते पहुँच गये उज्जैनी नगर के पास। अवन्तिका के पास। वहाँ पर एक मालव गणराज्य था। आज से हम 2035 साल पहले की बात कर रहे हैं। उससे दो सौ साल पहले जब सिकंदर ने भारत पर आक्रमण किया था तो वह मालव गणराज्य पंजाब में था। आप जयशंकर प्रसाद का नाटक पढ़ें—चन्द्रगुप्त। उसमें आपको संकेत मिलेगा। इतिहास के ग्रंथ देखें उनमें आपको संकेत मिलेगा

मालव गणराज्य का। अभी पंजाब के दो भाग हैं—माझा और मालवा। मालव वहाँ थे। उन्होंने सिकंदर की सेनाओं की खूब दुर्गति की थी, ऐसी मार दी थी कि सिकंदर परेशान हो गया था। भाग गया था। इसलिये वे मालव लोग, वह सारा का सारा जो पेप्सु का इलाका है वह मालवा का इलाका है। अमृतसर से उधर माझा, अमृतसर से इधर मालवा और ये मालवे के वीर बड़े बहादुर थे। इनके नाम पर पंजाब में कई नगर अभी भी हैं। एक है मालेर-कोटला। मालेर कोटला का नाम था मालवेर-कोटला। मालव लोगों का किला। एक है मनोद, उसका नाम था मानवोदय। इस तरह से मालवों का यश यहाँ भी था। उसके बाद किसी ऐतिहासिक उथल-पुथल से बढ़ते-बढ़ते चले गये मध्यप्रदेश की तरफ और जाकर उज्जैन के आस-पास बस गये थे। आज से 2035 वर्ष पहले जब शकों का हमला हुआ तब मालव गणराज्य वहाँ था। वहाँ उज्जैन के पास वह गणराज्य था। गणराज्य यानी गणतंत्र और उस गणतंत्र का अध्यक्ष था वीर विक्रमादित्य मालव गणाधिपति। मालवगण का अधिपति। लोगों ने सम्मान से उसको राजा विक्रमादित्य लिखना शुरू किया। लेकिन वो वास्तव में मालव गणाधिपति था। जैसे भगवान कृष्ण ने कभी राज्य नहीं किया। पर सब लोग आदर से कृष्ण महाराज, कृष्ण महाराज कहते ही हैं। उन्होंने राज्य ही नहीं किया तो महाराज का प्रश्न ही क्या? वह क्या थे? वृष्णि गणराज्य था द्वारिका में। भगवान श्री कृष्ण उस वृष्णि गणराज्य के अध्यक्ष थे। इसलिये गणराज्य था। इस तरह से बुद्ध के पिता को राजा शुद्धोधन, शुद्धोधन राजा नहीं था। वहाँ पर एक गणराज्य था। उस गणराज्य का अध्यक्ष था। इसलिये भारत के प्राचीनकाल में गणराज्य थे और मालव गणराज्य का अध्यक्ष था विक्रमादित्य, वीर पुरुष। वह गया महाकाल के मंदिर में। उस नर केसरी विक्रमादित्य ने महाकाल के मंदिर में जाकर और अपनी खड्ग निकाल करके अपनी भुजा का रक्त शंकर भगवान् को चढ़ा करके प्रतिज्ञा की—शंकर भगवान्! लोग आपका जलाभिषेक करते हैं मैं आपका रक्ताभिषेक कर रहा हूँ इस प्रतिज्ञा के साथ कि अपने शरीर की अंतिम रक्त बूंद भी इस राष्ट्र पर आयी हुई विपदा को निरस्त करने में लगा दूंगा और जब तक इन शकों को इस देश से खदेड़कर बाहर नहीं फेंक दूंगा तब तक मेरी अपराजित खड्ग पुनः म्यान में नहीं जायेगी। यह प्रतिज्ञा करके वह नरवीर निकला। देश के लिये प्राणोत्सर्ग करने के लिये वीरों की टोलियाँ जमायी और इन बर्बर शकों को, नर-पिशाचों को खदेड़ना शुरू किया और इनको खदेड़ते-खदेड़ते इसने हिन्दूकुश के पार फेंक दिया। जिसको हम लोग सिंधुद्वार कहते थे उसको मुसलमानों ने अपने आक्रमण के बाद दर्रा खैबर कहना शुरू किया। दर्रा खैबर नाम का एक नगर अरब में है। आपको लज्जा आनी चाहिये अरब के

नगर के नाम पर उसको दर्रा खैबर नाम दे दिया। उसका नाम सिंधुद्वार था। उसके पार खदेड़ दिया और अफगानिस्तान में, काबुल में अंगूर की बेलों के निकुंजों में जाकर उसकी सेनाओं ने विश्राम किया। उसने कहा, हमने पश्चिमोत्तर की सीमा को विजित कर लिया है। अब पूर्व की ओर हम लोग बढ़ेंगे। पूर्व की ओर आराकान, बर्मा तक जाकर उसने विजय किया।

सच्चे अर्थ में देश स्वाधीन तब होगा जब देश का बच्चा-बच्चा ऋणमुक्त हो जाय चाहे मेरी प्रजा में से किसी को किसी का ऋण देना हो, एक पैसा भी जिसको चुकता करना हो। जो जिसका ऋणी होता है उसकी आंखें सदा साहूकार के सामने झुक जाती है। वह गुलाम रहता है। चाहे किसी विदेशी का राज्य न हो, लेकिन उसके ऊपर किसी का, उसके ऊपर धन का राज्य बना हुआ है इसलिये वह उसका गुलाम है, उसके सामने झुकता है। विक्रमादित्य ने कहा, मेरी प्रजा में कोई भी किसी का ऋणी नहीं रहेगा। जिसको जितना ऋण देना हो आकर के हमारे दरबार में बताओ, हमारे कार्यालयों में बताओ, राजकोष से सबका ऋण चुकता कर दिया जायगा। सम्राट् विक्रमादित्य ने राज्यकोष से बच्चे-बच्चे का, व्यक्ति-व्यक्ति का ऋण चुका दिया। उसने कहा, अब सच्चे अर्थ में मेरी प्रजा भयमुक्त है, ऋणमुक्त है, आपदामुक्त है। अब मैं इस परम पवित्र नववर्ष प्रतिपदा के दिन संवत् संस्थापित करता हूँ। लोगों ने कहा, इसका नाम विक्रम संवत् रखो। उसने कहा, नहीं!

विक्रम संवत् मत रखो! मैं कौन हूँ? मैं तो एक गणराज्य का अध्यक्ष हूँ। इस संवत् का नाम कृतसंवत् है। विक्रमादित्य ने अपने समय में इसका नाम विक्रम संवत् नहीं रखा। उसने कृतसंवत् नाम रखा। कृत माने सत्ययुग का समय। इस देश में पुनः सत्ययुग आ गया है। सत्ययुग कैसे आता है? तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा— कलि शयानो भवति। सोये हुए व्यक्ति के लिये कलियुग आया है, जो जम्हाई ले रहा है उसके लिये द्वापर और उत्तिष्ठत् त्रेता भवति जब खड़ा हो जाता है उसके लिये त्रैतायुग आ जाता है। जब आदमी चलने लगता है। तो उसका नाम सत्ययुग हो जाता है। जो राष्ट्र सोया हुआ है वह कलियुग में है। जो राष्ट्र जम्हाई ले रहा है वह द्वापर में है। जो राष्ट्र उठ करके खड़ा हो गया है वह त्रेता में है। जो राष्ट्र वेग से चलने लगा है गतिमान हो गया है वह राष्ट्र सत्ययुग में है। इसलिये उसने कहा, इन पापी-नराधम शकों को निरस्त करने के लिये पूरा राज्य खड़ा होकर वेग से बढ़ा है। शत्रु को खदेड़ करके बाहर फेंक दिया है इसलिये यह सत्ययुग है। इसलिये कृतसंवत् नाम रखा। कृतसंवत् नाम चला। कुछ अवधि पश्चात् लोगों ने उसको परिचय करने के लिये लगभग तीसरी-चौथी शताब्दी में इसका नाम रख दिया गया मालव गण संवत्। क्योंकि मालव गणराज्य का संवत् था। इसलिये मालव गण संवत्। और 8-9वीं शताब्दी में यशोधर्मा ने जब पुनः हूणों को परास्त किया।

उसने प्राचीन संवत् को लोगों को परिचय देने के लिये कहा—विक्रम संवत्। इसको सम्राट् विक्रमादित्य ने संस्थापित किया, इसलिये विक्रम संवत् और विक्रमादित्य ने अपने समय में यह नाम नहीं रखा। बाद के लोगों ने श्रद्धा से उसको नाम दिया विक्रम संवत्। क्योंकि विक्रमादित्य ने अत्यंत विनम्रता से कहा कि यह मेरा पुरुषार्थ नहीं है पूरे राष्ट्र का पुरुषार्थ है। मैं राष्ट्र का प्रतिनिधि हूँ। मैं इस गणतंत्र का एक प्रतिनिधि-मात्र हूँ।

आज के दिन विक्रमादित्य ने नव-संवत्सर स्थापित किया। सच्चे अर्थ में वैभव का युग कैसा होना चाहिए? इसकी कल्पना मिलती है इस विक्रमादित्य के संवत्सर से। वह इतने से संतुष्ट नहीं हो गया था।

वह रात को वेष बदल करके निकलता था और गुप्त रूप में जाकर देखता था कि मेरे राज्य में कोई दुःखी तो नहीं है। किसी की कुटिया से रोने की आवाज तो नहीं आती। किसी के घर में बच्चे बिना दूध पीये सो तो नहीं गये हैं। बच्चे बिलखते तो नहीं हैं अन्न के बिना। वह घूमता था। एक कुटिया से एक बुढ़िया के रोने की आवाज आ रही थी। विक्रमादित्य ने पूछा, माँ! क्या बात है? तू क्यों रो रही है रात्रि के अंधेरे में। बुढ़िया ने कहा, मेरा एक नौजवान बेटा विक्रमादित्य की सेना में भरती हुआ था। वह लड़ने के लिये पश्चिमोत्तर की तरफ गया था। दस वर्ष हो गये। मेरा नौजवान बेटा लौटा नहीं है। उसी के वियोग में रो रही हूँ। मेरी आंखों पर मोतिया छा गया है। मैं देख नहीं सकती हूँ ठीक से। पर उस बच्चे के सिवा मेरा कोई सहारा नहीं था। इसलिये उसके वियोग में रोती हूँ। विक्रमादित्य ने उसके चरणों को पकड़ करके माथा उसके चरणों में रख दिया। कहा, माँ! तू भूल गयी। तू पहचानती नहीं है। मैं ही तो तेरा बेटा हूँ। मैं लड़ने के लिये गया था विक्रमादित्य की सेना में। हम विजयी होकर लौट करके आये हैं माँ। बताओ, मेरे लायक क्या सेवा है? माँ ने टटोल करके देखा। माँ ने कहा, नहीं बेटा! तू मेरा बेटा नहीं है। मेरा बेटा थोड़े हलके शरीर का था। तेरा डील-डौल कुछ बड़ा है। माँ! दस वर्ष हो गये। दस वर्ष में क्या डील-डौल बड़ा नहीं होता है। हम लोग खूब बहादुरी से लड़े। हम विजयी हुए। मैं तेरा बेटा हूँ और न मानते हुए भी रातभर माँ की सेवा करता रहा। उसने सुबह उठकर कहा—माँ! मेरे को राज दरबार में कुछ काम है। शाम को मैं फिर आ जाऊंगा। चला गया। शाम को फिर आ गया। उसकी सेवा करता रहा। पाँच-सात रोज के बाद उस बुढ़िया को संकेत मिल गया। यह जो मेरी सेवा करने आता है यह तो मालव गणाधिपति, सम्राट् विक्रमादित्य है। तब तो रात को विक्रमादित्य के आने पर अपने हृदय से विक्रमादित्य को खूब आशीर्वाद दिया। दोनों आंखों में गंगा-जमुना की धार बहाती हुई उस माँ ने कहा कि, ऐ विक्रम! तेरे जैसा पुरुषार्थी, तेरे जैसा वीर, तेरे जैसा प्रतापी राजा, सारे भारत का स्वामी होकर

भी मेरे जैसी एक निर्धन बुढ़िया की सेवा करने के लिये मेरे पास आता है। ऐ बेटा! तू मेरा बेटा बन करके आया है, मैं आशीर्वाद देती हूँ, जब तक चन्द्र-सूर्य-तारागण रहेंगे तेरा यश संसार में अमर रहेगा। बच्चा-बच्चा तेरे यश का तराना गायेगा। ऐ बेटा! तेरे यश को कोई मिटा नहीं सकेगा। उस बुढ़िया के आशीर्वाद में मानो साक्षात् भारतमाता का आशीर्वाद था और आज सचमुच पानी भरने वाली पनिहारिनें, भैंसें, भेड़-बकरी चराने वाले चरवाहे, खेतों में काम करने वाले किसान, घरों में रहने वाले, नगरों में, वनों में रहने वाले सब लोगों की जिह्वा पर विक्रमादित्य का नाम है। बच्चा माँ से कहता है, दादी से कहता है मुझे विक्रमादित्य की कहानी सुनाओ। विक्रमादित्य का सिंहासन देश के करोड़ों-करोड़ों लोगों के हृदयों में पिछले 2035 वर्षों से स्थापित हो चुका है। उस सिंहासन को कोई लूट नहीं सकता।

वह विक्रमादित्य एक बार रात्रि को घोड़े पर जा रहा था प्रजा का हाल जानने। एक खेत के भीतर से गया। खेत की रखवाली के लिये दो-चार लोग बैठे थे। उन्होंने कहा, ऐ! किधर जाता है? क्यों क्या बात है? अंधा है दिखता नहीं है। हल चलाया हुआ खेत है। बीज बोया हुआ है उसके भीतर से घोड़ा दौड़ाकर ले जा रहा है? उसने कहा, भूल हुई। भूल क्या हुई! गाँव का नियम है जो जोते हुए खेत के भीतर से चलेगा, घोड़ा दौड़ायेगा उसको पचास कोड़ा दण्ड मिलेगा। विक्रमादित्य घोड़े से उतरा और अपनी पीठ नंगी कर दी। पचास कोड़े खा लिये। यह था न्यायप्रिय विक्रमादित्य। जो सदा न्याय को नमस्कार करता है। मेरी प्रजा ने कुछ नियम बनाये है। मेरे सम्राट् होने का मतलब यह नहीं है कि मैं जो मरजी धांधली करता रहूँ, मैं जो मरजी अपराध करता रहूँ और कोई बोले तो उसको उठाकर मीसा में बंद कर दूं। डी. आई. आर. में बंद कर दूं, सीखचों में डाल दूं और देश के ऊपर इमरजेंसी लागू कर दूं। न्याय का सम्मान करने वाला वह विक्रमादित्य था, उसकी हजारों ऐसी गाथाएं आप सब जानते हैं।

आपने उसके न्याय की वह कथा अवश्य सुनी होगी। उसके दरबार में स्त्रियाँ एक बच्चे पर झगड़ा करती हुई आयीं। एक ने कहा, बच्चा मेरा है, दूसरी ने कहा—बच्चा मेरा है। बच्चा एक स्त्री का था। दूसरी कुलटा जो थी उसने क्या किया? उसका अपना बच्चा था नहीं। उसने इसका बच्चा छीन लिया था ताकि वह निपूती हो जाय और खुद इस बच्चे के साथ मनमानी करे। तो विक्रमादित्य के दरबार में यह मामला आया। दोनों अपना-अपना पक्ष कहने लगीं—बच्चा मेरा है, मेरा है। विक्रमादित्य का अनोखा न्याय था। विक्रमादित्य ने कहा, दोनों ही बच्चे को अपना कहती हैं। तो विक्रमादित्य ने मंत्री को कहा, उठो, दोनों को तलवार से आधा-आधा काट करके बांट दो। तलवार उठाकर दो टुकड़े कर दो और दोनों को

बांट दो। दोनों ही तो अपना कहती हैं! ज्योंही तलवार उठाना था कि जो सच्ची माँ थी वह हाहाकार कर उठी, ईश्वर के वास्ते ऐसा मत करो। मेरी आंखों के सामने मेरे कलेजे के टुकड़े को मत काटो। बेशक किसी दूसरे को दे दो लेकिन काटो मत। दूसरी जो कुलटा थी वह मन ही मन बड़ी प्रसन्न हो रही थी। विक्रमादित्य तुरंत समझ गये। यह तो उनकी परीक्षा थी। न्याय का ढंग था उनका। उन्होंने बच्चे को माँ को दिया और दूसरी को खूब दण्डित किया।

विक्रमादित्य के सिंहासन की कथा आपने सुनी होगी। प. पू. डॉ. जी का शरीर शांत होने के बाद प. पू. गुरुजी ने सरसंघचालक का पद का दायित्व लिया। उन्होंने उसी विक्रमादित्य की कथा को सुनाया। प्रथम भाषण में ही। विक्रमादित्य का सिंहासन एक टीले में दबा हुआ था। उस गाँव में लोगों को कुछ भी न्याय करवाना होता था तो न्याय ठीक से नहीं होता था। एक चरवाहे का लड़का था। लोग उसको कहते थे। वह उस टीले पर बैठकर जो न्याय करता था वह सबको स्वीकार होता था। बिल्कुल शुद्ध न्याय करता था टीले पर बैठ करके। तो उस टीले पर बैठकर न्याय करने से उसका न्याय ठीक होता था। वैसे कुछ न्याय करता तो न्याय गलत होता। बाद में खुदाई में देखा गया उस टीले के नीचे विक्रमादित्य का सिंहासन दबा हुआ था। हजारों वर्षों के बाद जो सिंहासन दब गया था, उस पर टीला बन गया था उस टीले पर बैठने वाला गडरिये का बच्चा भी न्याय ही करता था। प. पू. गुरुजी ने सरसंघचालक का पद संभालते समय कहा कि गडरिये का बच्चा भी विक्रमादित्य के सिंहासन पर बैठकर, उस टीले पर बैठकर न्याय ही करता है। उन्होंने कहा—मैं तो संघ के सरसंघचालक पद के योग्य नहीं हूँ लेकिन जैसे गडरिये का बच्चा भी विक्रमादित्य के सिंहासन पर बैठकर न्याय ही करता है तो विक्रमादित्य के इस पावन, इस विक्रम संवत् के दिन जिनका जन्म हुआ उन प.पू. डॉ. साहब के द्वारा संस्थापित संघ के इस पद को, जो मुझे सौंपा गया है उनके द्वारा प्रतिष्ठित इस पद पर बैठकर शायद मुझ गडरिये के बच्चे से न्याय ही होगा। ऐसा प. पू. गुरुजी ने अपने बारे में कहा है। ऐसा सम्राट् विक्रमादित्य का अलौकिक यश था और वह यश अमर यश है। अरब में, अरबी भाषा में विक्रमादित्य की स्तुति मिलेगी।

एक पुस्तक है, इराक सरकार ने छपवायी है 'सेअरूल ओकुल'। कविता के बाग की सैर। लोगों ने चुनौती दी, अरब को, इराक को, अरब-अरबी भाषा वाले देशों को कि आप जितनी कविता, साहित्य अरबी का बताते हैं वह इस्लाम के बाद का बताते हैं। क्या इस्लाम के पहले अरब देश नहीं था। या अरबी कविता नहीं थी। यदि थी तो उसके नमूने कहाँ हैं? इराक सरकार ने सारे संसार से अपील की, जिसके पास पुरानी अरबी कविता के जो नमूने हों, वह हमें देवें। हम उसको बड़े से

बड़ा पुरस्कार देवेंगे। अरबी कविता के बहुत से नमूने, जो इस्लाम से पूर्व के थे, नष्ट कर दिये गये इस्लाम के आने के बाद। लेकिन कुछ नमूने इस तरह से बचे थे कि जो वहाँ का काबा शरीफ, मक्का में जो बड़ा मंदिर, काले रंग के पत्थर के देवता, जिसको मक्केश्वर महादेव कहते हैं, वह वास्तव में विशाल शिवलिंग था। अभी भी वह शिवलिंग ही है। उसको काबा कहकर पूजा जाता है। उसके इर्द-गिर्द 360 और मंदिर थे। बीच में बड़ा देवता था और उसमें शिवरात्रि के अवसर पर बहुत बड़ा कवि-सम्मेलन होता था। उस कवि-सम्मेलन में जो सर्वश्रेष्ठ कवितायें होती थी उन कविताओं को लेदर के स्क्रोल पर, चमड़े की पट्टियों पर, सोने के अक्षरों से खुदाई करके उस मंदिर में टांगा जाता था। वह लेदर स्क्रोल जो है वह बड़ी कीमती वस्तु हो गई। जैसे तिब्बत के थंका, तिब्बत के मंदिरों में टांगने वाले चित्र, बड़ी दुर्लभ चीज हो गई। हजारों रुपयों में एक थंका बिकता है। इस तरह से अरबी के स्क्रोल जो मंदिर में टांगे जाते थे, जिसमें सर्वश्रेष्ठ कविता लिखी जाती थी, सोने के अक्षरों में वह हजारों रुपयों में, कभी-कभी लाखों रुपयों तक में एक-एक बिकता था और वे कुछ लोगों के प्राइवेट क्लेक्शन में थे। कुछ लाइब्रेरियों में भी थे। कुछ आधे जले आधे नष्ट किए हुए भी थे। उन सबको इकट्ठा करके और इराक सरकार ने एक ग्रंथ का संपादन शुरू किया। उस ग्रंथ के संपादन के समय जब ग्रंथ का संपादन हो रहा था सन् 1963 में मैं यूरोप के प्रवास से लौटते समय इराक में बगदाद गया। उस ग्रंथ का मैंने अवलोकन किया। अबुल हिक्म ने एक कविता में कमाल कर दिया। वह कहते हैं—अल्लाओं के अल्लाह महादेव! जीवन में आदमी ने कितना भी गुनाह किया हो, एक बार सच्चे हृदय से आपकी चरण-शरण में आ जाय तब आप उसके सब गुनाह माफ कर देते हैं। वह कहता है—हे अल्लाओं के अल्लाह महादेव! मैं आपकी चरण-शरण में आता हूँ। मेरे गुनाह माफ करें। फिर कहते हैं—अल्लाओं के अल्लाह महादेव! अगर जीवनभर में मैंने कोई पुण्य कमाया हो, सबाब कमाया हो, तो उससे मेरी एक मनोकामना पूरी कर दो। वह मनोकामना क्या है? वह कहते हैं—हे महादेव! आपने मेरे को धन-जन-परिवार दिया, बड़ी अच्छी नेक संतानें दी, बड़ी लम्बी उम्र दी और बड़ी अच्छी कवित्त्व शक्ति दी। हे महादेव! मेरा सबकुछ छीन लो, मेरा धन, जन-भवन-परिवार छीन लो, मेरी नेक, आज्ञाकारी संतानें छीन लो, मेरी कवित्व शक्ति छीन लो और मेरी सारी लंबी उम्र छीन लो और मेरा सब कुछ छीनकर इसके बदले मुझे दे दो सिर्फ एक दिन के लिये भारत का वासा। मैं एक दिन भारत में जी सकूं। यह मेरी मांग है। यही मेरी मुराद है। मैं अपनी आंखों से वेद और गीता जैसे दर्शन के देश का दर्शन कर सकूं, राम और कृष्ण के देश का दर्शन कर सकूं, गंगा-यमुना की धूलि को उठाकर अपनी आंखों पर चढ़ा सकूं, मैं जिंदगी निहाल कर जाऊं। इसके सिवा मुझे कुछ नहीं

चाहिये। यह कविता मैं नोट करके लाया और मैंने दिल्ली में, बाबू युगलकिशोर बिड़ला, जो बिड़ला बंधुओं में सबसे बड़े थे, उन्होंने एक बार पूछा, कुछ रोचक प्रसंग सुनाइये, तो मैंने उनको यह बताया कि इराक से यह एक चीज मैं लाया हूँ। तो वह सुनते ही उछल पड़े। उनकी आंखों से अश्रुधारा बहने लगी। कहते हैं इस्लाम के पैगम्बर के चाचा भारत में एक दिन जीने के लिये तरसते थे।

भारत की इतनी स्तुति करते थे। उन्होंने कहा, तुरंत इसको एक बड़े संगमरमर की पट्टी पर खुदवाकर के दिल्ली के बिड़ला मंदिर में लगवा दिया जाय। तब से वह बिड़ला मंदिर में लगी हुई है। ऊपर मूल अरबी में कविता, नीचे नागरी लिपि में कविता और उसके नीचे हिन्दी में अर्थ, नीचे पुस्तक का नाम और पृष्ठ संख्या 8 एक कालम में दी हुई है।

इसी तरह से विक्रमादित्य के बारे में स्तुतियाँ, विक्रमादित्य की स्तुति में कहा—हे विक्रमादित्य! जब हम लोग जाहिल थे, हम लोग अज्ञानी थे। जब हमें कोई अक्ल नहीं थी। मवेशियों की तरह, पशुओं की तरह रहते थे। हमें धर्म-कर्म का ज्ञान नहीं था। जब हमें साहित्य का कोई ज्ञान नहीं था। तब, हे विक्रमादित्य! तू सूर्य की तरह चमकता था हिंद में। तुमने हमारी भलाई के लिये बड़े-बड़े विद्वान् हमारे देश में भेजे थे जिन्होंने हमें गणित सिखाया, ज्योतिष सिखाया। जिन्होंने हमें अदब सिखाया अर्थात् कविता सिखायी। जिन्होंने हमें औषध विज्ञान, दवा-दारू की हिकमत का काम सिखाया। ये सब चीजें हमने हिन्दुस्तान से सीखी हैं। यह आपकी बरकत है आप इतने उदार थे। आपने हम जाहिलों को, हम बिल्कुल गिरे हुए, पशुतुल्य जीवन जीने वालों को आपने इस तरह से उठाकर हमें योग्य बनाया। ये श्रद्धा के फूल अरबी कविता में विक्रमादित्य के प्रति अभी भी मिलते हैं।

इसी तरीके से तिब्बत में विक्रमादित्य की स्तुतियाँ, चीन में विक्रमादित्य की स्तुतियाँ। ईरान में एक पुस्तक है 'अराजीबोजी'। अराजीबोजी क्या है? अराजीबोजी है 'अराज' राजा भोज की कथाएं। उसमें राजा भोज की और विक्रमादित्य की कथाएं हैं। वह पुस्तक इतनी प्रचलित है जो भी हिन्दुस्तान से व्यक्ति जाता है उससे कहते हैं विक्रमादित्य की कथा बताओ। विक्रमादित्य की कहानियाँ बताओ। विक्रमादित्य की कहानी की किताब दो। इतना विक्रमादित्य का यश पूरे एशिया में फैला हुआ। उस विक्रमादित्य का संस्मरण आज के पुनीत दिन पर हम करते हैं।

इस आधुनिक काल में, जिस काल में हम जी रहे हैं, उसी विक्रम की परंपरा को, भारत के विक्रम को, भारत के पराक्रम को पुनः जगाने के लिये एक महापुरुष का अवतार इसी विक्रम संवत् को हुआ। वे थे डॉ. हेडगेवारजी। आद्य सरसंघचालक जिनको प्रणाम हमने किया। आप हैरान होंगे कि जिस बालक को

अतिशय निर्धनता ने जकड़ रखा था। जिस बालक के नन्ही-अवस्था में (मात्र 6-7 वर्ष की उम्र में) माता-पिता दोनों प्लेग के शिकार होकर एक ही दिन काल-कवलित हो गये। जिस बालक को पालने-पोसने वाला कोई बचा नहीं। जिस बालक को अपने भोजन तक के लिये समस्या थी कि किस तरह अपने जीवन को चलाने के लिये भोजन प्राप्त करे। उस बालक ने अध्यवसाय से, परिश्रम से, ऊंची शिक्षा प्राप्त की। डॉक्टरी की शिक्षा प्राप्त करके भी अत्यंत अभाव में रहा। उस बालक ने डाक्टर बनने के बाद एक पैसा भी अपने लिये नहीं कमाया, उसने सारी योग्यता, सारा जीवन, सारा पुरुषार्थ, सारा कर्तृत्व भारतमाता के चरणों में समर्पित कर दिया।

उस बालक के मन में प्रारंभ से एक बात खटकती थी। ये दुष्ट अंग्रेज सात समुद्र पार से भारत में आये व्यापार करने के लिये और यहाँ शासक बन गये। वे प्रायः कहते थे The British reign in India is the greatest Historical Mockery. इतिहास का सबसे बड़ा मजाक है भारत में ब्रिटिश साम्राज्य। वह कहते थे कैसे? यदि मैं मान लूं हिन्दुस्तान की कोई Firm, रांची की Firm, कोई बोकारो की Firm अमेरिका में व्यापार करने के लिये जाय और वहाँ जाकर साइनबोर्ड लगा ले Indian Trading Co. और कोई कोयले का व्यापार करे, कोई चाय का व्यापार करे, कोई चीनी का व्यापार करे और व्यापार करने वाली कंपनी धीरे-धीरे पूरे अमेरिका पर राज्य करने लग जाय। वे कहते थे, क्या कल्पना की जा सकती है? इतना बड़ा मजाक हो गया है कि ब्रिटिश लोग व्यापार करने के लिये आये और यहाँ शासक बन बैठे। इसलिये उनके मन में बड़ी चुभन होती थी कि ये विदेशी शासन भारत से निरस्त होना चाहिये। उससे पहले के भारत के हजार वर्ष की पराधीनता का काल, ये भी उनके मन को बड़ा कचोटता था। हम सब इतिहास पढ़ते हैं। कल मेरे पास एक इतिहास में एम. ए. पास किया हुआ विद्यार्थी बैठा था। एक दूसरा था Research करने वाला। उससे दो-चार क्षण की बातचीत हुई तो मुझे लगा केवल पुस्तक-ज्ञान है। कुछ तथ्य घोट लिये, कुछ तथ्य रट लिये और परीक्षा भवन में रटी हुई चीजों को कै करके निकाल दिया, परीक्षा भवन में जाकर लिख दिया, मुहर लग गयी बस एम. ए. पास कर लिया। इतिहास से कुछ सीखा नहीं। इतिहास का बच्चा कहता है मैंने इतिहास का पाठ पढ़ लिया। अरे! क्या इतिहास का पाठ पढ़ लिया? What is the Lesson of History? इतिहास का पाठ क्या है? डॉ. हेडगेवार के मन में यही प्रश्न कचोटता रहता था। इतिहास हमें क्या सिखाता है? क्या केवल किताब में पढ़ लेना, उसको उत्तर पुस्तिका में लिख देना, मास्टर पूछे तो रट करके सुना देना, यह क्या इतिहास का पाठ हुआ। इतिहास से हमने कुछ नहीं सीखा। इतिहास कुछ चेतावनियों से भरा हुआ है। इतिहास हमारी भूलों का, इतिहास हमारे किये हुए राष्ट्रीय अपराधों का लेखा-जोखा है।

इतिहास हमारी विजय और पराजय की कहानी है। उत्थान-पतन की कहानी है। कब हम ठीक रास्ते थे तो हम विजयी हुए? कब हम गलत रास्ते थे तो हम पराजित हुए? हमें उससे कुछ सीखना, इसलिये उससे कुछ सीखने के पीछे लगे रहते थे। इतिहास हमें क्या सिखाता है? इतिहास ने हमें सिखाया हमारे देश में राष्ट्रीय चरित्र का अभाव था। इसलिये कोई भी व्यक्ति दर्रा खैबर में खड़ा होकर देखता भारत की ओर—यहाँ मौज-मंगल है। जिसको मरजी, लूट लो। हिन्दुस्तान सोया हुआ है, सोये हुए हिन्दुस्तान को लताड़ करके कोई भी निकल जाय।

अत्यंत अफसोस की बात है कि मुहम्मद बिन बख्तियार, जो खुद पहले गुलाम था, बाद में उसकी विजेता बनने की साध हुई, उसने 17 घोड़े लिये, 17 घुड़सवार लिये, 17 तलवारें ली, उनको लेकर चला। नैमिषारण्य का तीर्थ जो गोमती नदी के किनारे पर है वहाँ पर मार-काट मचायी। गोमती नदी का पानी लाल कर दिया। उस तीर्थ का नाम रख दिया यवनपुर जिसको आजकल आप जौनपुर कहते हैं। उसके बाद आगे बढ़ा तो बनारस में मार काट मचायी, गंगा का पानी लाल कर दिया। वहाँ से आया नालन्दा। नालन्दा विश्वविद्यालय में दस हजार स्नातकोत्तर शिक्षा पाने वाले नौजवान पढ़ते थे। एक हजार आचार्य पढ़ाते थे। क्या दस हजार नौजवान 17 को खत्म करने के लिये काफी नहीं थे? पर दुर्भाग्य देश का। हम करोड़ों थे, पर बिखरे थे। अरे हिन्दू! तुमने बिन्दु का जीवन जीया, तुमने सिन्धु का जीवन नहीं जीया। बिन्दु-बिन्दु करके तू बिखरा रहा, तू मार खा गया। ये दर्द कचोटता था डॉ. हेडगेवार के दिल में। तू बिन्दु रहा। तू सिन्धु नहीं बना। नहीं तो कोई कारण नहीं था कि 17 सैनिक आकर 10 हजार स्नातकोत्तर शिक्षा पाने वालों को मार दें। स्नातकोत्तर का मतलब पोस्ट ग्रेजुएट माने बी.ए. के बाद की उपाधि पाने वाला। उच्च विश्वविद्यालय था। वहाँ साधारण शिक्षा नहीं होती थी। स्नातकोत्तर की शिक्षा होती थी। तो दस हजार स्नातकोत्तर शिक्षा पाने वाले नौजवान, जो सब 20 वर्ष से ऊपर की अवस्था के थे, ऐसे नौजवान वहाँ पढ़ते थे। और एक हजार आचार्य थे पर 17 सैनिकों की तलवारें एक साथ पड़ती थी। 17 एक साथ टूट पड़ते थे और हमारे हजारों लोग अलग-अलग बिखर जाते थे। हरेक अपना प्राण लेकर भागता था। विश्वविद्यालय को आग लगा दी। 4-5 महीने तक आग नहीं बुझी। दुनिया का सबसे भरपूर खजाना ज्ञान का, धूलि-धूसरित हो गया। विद्यार्थियों को मारकर बोरों में बंद करके नदी-तालाबों में फेंक दिया गया। आचार्यों की दुर्गति हुई। यह कोई देश का इतिहास है? चुल्लू भर पानी में डूब मरने वाला इतिहास है। ये इतिहास की चेतावनियाँ हैं। हम इतिहास के पृष्ठों पर इसको पढ़ते हैं तो हमारे दिल में कोई जलजला नहीं उठता। हमारे दिल में बेचैनी नहीं उठती। कोई व्यथा नहीं जागती। अरे! तुम्हें लानत, तुम भारत के पुत्र नहीं हो। भारत की यह दुर्गति हो गई! तुम्हें हजारों वर्षों के बाद भी यह दर्द दिल को छूता नहीं

है? हेडगेवार के दिल को यह दर्द छूता था। हाय, यह क्यों हुआ? क्यों हुआ ऐसा? हम केवल पढ़ लेते हैं। आज से 2300 साल पहले मेकडोनिया का सिकंदर भारत पर हमला करने आया। सिकंदर का हमला हुआ, हूणों का हमला हुआ, शकों का हमला हुआ। परसियन का हमला हुआ, तुर्क, ततार, मुगल, पठान का हमला हुआ, ईरान का, यूनान, फ्रेंच, डच, अंग्रेज का हमला हुआ। ईरान, इराक, चीन, पाकिस्तान का हमला हुआ। सब हमने पढ़े। हम क्या कर रहे हैं? इतिहास के असहाय मूकदर्शक। जैसे हमारा कोई रोल नहीं है। हमें कुछ नहीं करना है। हम केवल कहानी पढ़ने वाले आदमी हैं। भारतमाता की छाती में लगते छुरे के घाव गिनने वाले। हम कपूत हैं सिकंदर का हमला भारतमाता की छाती में एक घाव। मुहम्मद बिन बख्तियार का हमला घाव। मुहम्मद बिन कासिम का हमला घाव। मुहम्मद गौरी का हमला एक घाव। मुहम्मद गजनी का हमला एक घाव। हम घाव गिनने वाले हैं। हमें कुछ करना नहीं है कि यह हमारी माँ है। इसके ऊपर कोई आक्रमण करे तो हमें कुछ करना है, ये कर्तव्यबोध हमारा नष्ट हो गया था। डॉ. साहब ने एक अच्छे डॉक्टर की तरह यह डाइग्नोसिस किया कि क्या कारण था कि भारत, इतना विशाल भारत, इतना महान भारत, इतनी अधिक जनसंख्या वाला भारत, मुट्ठी भर लोगों के सामने लुट गया? दुनिया के हर कमीने देश ने भारतमाता की छाती पर लात मारी, भारत पर लात मारी, हम देखते रहे। कारण क्या था? उन्होंने देखा, राष्ट्रीय चरित्र का अभाव हो गया था। हम लोग व्यक्तिगत जीवन जीने वाले बन गये थे। हमारा बिन्दु का जीवन हो गया था। सिन्धु का जीवन नहीं था। संगठन नहीं था। राष्ट्र की वृत्ति हमारी नष्ट हो गयी थी। हम भी राष्ट्र के हैं, राष्ट्र के पुत्र हैं, राष्ट्र के प्रति हमारा कर्तव्य है—ये चेतना ही लुप्त हो गयी थी। वे इस दिशा में बचपन से ही सोचने लगे थे। इतिहास उनके लिये केवल एक पुस्तक नहीं थी। इतिहास उनके लिये कागज के पन्ने पर काली स्याही से लिखे हुए अक्षरों की माला नहीं थी। इतिहास उनके लिये चेतावनियों से भरी हुई एक बहुत बड़ी, एक क्रान्ति की ज्वाला थी जिससे उन्होंने मन ही मन निश्चय करना शुरू किया कि मैं क्या करूँ? उनके घर से कुछ दूरी पर एक किला था। सीतामढ़ी का किला। उस पर यूनियन जैक फहराता था। अंग्रेज का राज्य था। उनके मन में निश्चय हुआ किसी तरह यूनियन जैक को हटाना चाहिये। नन्हा सा बच्चा यूनियन जैक कैसे हटाये? उनका एक दोस्त था। दोस्त के घर में पढ़ने के बहाने गये और कमरा बंद करके अंदर ही अंदर सुरंग खोदना शुरू किया। सोचा, नीचे ही नीचे सुरंग खोदकर किले तक जायेंगे और झण्डे को हटा देंगे। काम बड़ा असाध्य लगता है कि नन्हे बच्चे अपने छोटे हाथों से कहाँ तक सुरंग खोदेंगे। दूसरी-तीसरी कक्षा में पढ़ने वाला बच्चा और वह सुरंग खोदने जा रहा है। जब एक-आध दिन पूरा अंदर खट-खट होती रही, जमीन खोदी जाती रही, पूरे दिन कमरे से नहीं निकले तो घर के लोगों

ने किवाड़ तोड़कर के देखा—अरे! ये सुरंग खोद रहे हैं? कान मरोड़कर बच्चों को हटाया, यह क्या करते हो? लेकिन उसके मन में साध यही थी ये क्यों हुआ? जिसके मन में पीड़ा नहीं होती है माँ के दुःख को देखकर उस लानती व्यक्ति को भारत का पुत्र कहलाने का अधिकार नहीं है। पाँच वर्ष का नन्हा बच्चा स्कूल में पढ़ने गया और रानी विक्टोरिया का षष्ठीपूर्ति महोत्सव हो रहा था। साठ वर्ष राज्य करते हुए हो गया। लड्डू बाँटे सब बच्चों को। नन्हे से बच्चे ने लड्डू को कूड़े पर फेंक दिया। भाई ने पूछा, क्या आपको लड्डू नहीं मिले? फेंक दिया। क्यों फेंक दिया? कहा कि विदेशी रानी के भारतवर्ष पर राज्य करने के साठ वर्ष पूरे होने की खुशी हम भारत के पुत्र मनायेंगे? हम भारतमाता के पुत्र होकर विदेशी शासन के शासक की खुशी मनायेंगे? यह नहीं हो सकता। रानी विक्टोरिया के मरने के बाद एडवर्ड के शासन की स्थापना हुई। वह जो गंजा बिना ताज वाला राजा बैठा और उसके राज्यारोहण की खुशी में बड़ी आतिशबाजी हुई। बहुत बच्चों ने कहा, केशव चलो देखने के लिये। केशव ने कहा—नहीं। उन्होंने कहा, बहुत लज्जा की बात है। एक विदेशी राजा सिंहासन पर बैठता है और भारत पर शासन कर रहा है। भारतमाता को गुलाम बनाया हुआ है और इसकी खुशी भारत के बेटे मनायेंगे? हमारी माँ को गुलाम बनाने वाले गुण्डे हैं ये और राज्य पर बैठने की खुशी हम मनायेंगे? ये नहीं हो सकता। इस तरह की एक राष्ट्रीय वृत्ति उनमें थी। इसलिये वे बिल्कुल निर्भीक भाव से चल रहे थे। उन्होंने वंदेमातरम् आंदोलन में भाग लिया। लोकमान्य तिलक ने वंदेमातरम् आंदोलन शुरू किया। वंदेमातरम् आंदोलन क्या था? उसके पहले कांग्रेस के अधिवेशनों में इंग्लैण्ड का राष्ट्रगीत गाया जाता था। इंग्लैण्ड का राष्ट्रीय गीत क्या था? हे परमात्मा! राजा की रक्षा करो। हमारे परम दयालु राजा की रक्षा करो। यह इंग्लैण्ड का राष्ट्रगीत है। कांग्रेस के अधिवेशनों में इसका गान होता था। क्योंकि लार्ड ह्यूम ने कांग्रेस की स्थापना की थी जो खुद अंग्रेज थे। इसलिये इंग्लैण्ड का राष्ट्रगीत गाया जाता था। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, अरविन्द घोष, विपिनचन्द्र पाल गरम दल के नेता थे। उन्होंने कहा, लानत है तुम्हें। चुल्लू भर पानी में डूब मरो। भारत पर शासन करने वाले विदेशी राजा की उम्र लंबी करने के लिये प्रार्थना तुम कर रहे हो? भारत के पुत्र होकर प्रार्थना करते हो, विदेशी राजा की उम्र लंबी हो? नहीं, ये नहीं होगा। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने उन्हीं दिनों आनंदमठ लिखा था? योगीराज अरविन्द कहते हैं— संसार के इतिहास में किसी उपन्यास, किसी पुस्तक में ऐसा कोई गीत नहीं है, जिस गीत की पंक्तियाँ, पुस्तक के पन्ने पर काले अक्षर से लिखी हुई पंक्तियाँ, पुस्तक के पन्ने से उछलकर करोड़ों लोगों के हृदयों पर लिखी गई हों और लोगों ने उसको अपना राष्ट्रीय गीत बना लिया हो। बंकिमचन्द्र के गीत में वह शक्ति थी। उस पुस्तक के पन्ने से वे पंक्तियाँ उछल पड़ी करोड़ों की जिह्वा पर, करोड़ों के हृदय

पर लिखी गयी और उसके लिये लोगों ने बलिदान दिये। प्राण तक दिये। वंदेमातरम् आंदोलन शुरू हो गया। अरविंद घोष ने आह्वान किया। उस समय डॉ. साहब हाई स्कूल की कक्षा में पढ़ते थे। तब उन्होंने अपने स्कूल में इसी आंदोलन का नेतृत्व किया। ब्रिटिश शासन ने कह दिया था—जहाँ वंदेमातरम् बोला जायेगा, वहाँ गोली चलेगी। वंदेमातरम् बोलना अपराध है। भारतवासियों ने कहा—हम भारतमाता की जय बोलेंगे ही बोलेंगे। हमें अपनी माँ की जय बोलने से कोई रोक नहीं सकता है। इसलिये जिधर वंदेमातरम् की टोलियाँ बोलती वंदेमातरम् उधर तड़-तड़-तड़ करके गोलियाँ चलती थी और लोगों की लाशें गिरती। कोई जख्मी होता तो उधर से दूसरी टोली आती और बोलती—वंदेमातरम्।

स्कूल के प्यारे बच्चो! वह युग था जब स्कूली बच्चों ने वंदेमातरम् के आन्दोलन को जगा दिया था और वंदेमातरम् से सारा आकाश गुंजायमान हो गया था। निर्भीक बच्चे भारत के और आज की आजादी उन्हीं की देन है। **वंदेमातरम् गाकर बलिदान होने वाला खुदीराम बोस, गीता को छाती पर रखकर वंदेमातरम् गाते-गाते प्राण दे रहा है।** यह उन लोगों की देन है। आज स्कूलों में जाकर पूछते हैं बच्चों को वंदेमातरम् याद है? नहीं जी, ये तो कराया नहीं जाता। उनकी पहली पीढ़ी के बच्चों ने वंदेमातरम् के लिये प्राण दिये और आज का विद्यार्थी वंदेमातरम् बोलने का कष्ट नहीं कर सकता। वंदेमातरम् की चार पंक्तियाँ याद करने की उसके पास फुरसत नहीं है। इसलिये हमें संभलने की जरूरत है। उस वंदेमातरम् आंदोलन में डॉ. हेडगेवार ने ऐसी योजना की। एक मुसलमान स्कूल इंस्पेक्टर था। स्कूल में आने वाला था। स्कूल में एक बहुत बड़ा परिपत्र आया हुआ था। किसी भी विद्यालय में वंदेमातरम् गाने की अनुमति नहीं है। गाने वालों को कठोर दण्ड मिलेगा। जिस विद्यालय में गाया जायेगा वहाँ के हेडमास्टर, प्राचार्य आदि को दण्ड मिलेगा। तो केशव बलिराम हेडगेवार ने निश्चय किया कि जिस भी कक्षा में वह जायेगा सब लोग वंदेमातरम् गायेंगे। तो सब कक्षाओं में बोर्ड पर लिखा हुआ था वंदेमातरम्। और वह कक्षा में गया, सब लोग खड़े हो गये और कहा, वंदेमातरम्। वह बड़ा हैरान। हमने कल ही तो एक सर्कुलर भेजा है कि यह गाना अपराध है। गाने वालों को दण्ड मिलेगा। वह झुंझलाकर दूसरी कक्षा में गया। वहाँ भी सब खड़े होकर बोले, वंदेमातरम्। तीसरी कक्षा में, जहाँ जाये सुनाई दे—वंदेमातरम्। वह बड़ा परेशान हुआ। उसने तुरंत रिपोर्ट की। इस स्कूल में बहुत भयानक काम हो रहा है। वंदेमातरम् हो रहा है। विद्रोही लोग यहाँ भरे हुए हैं। स्कूल के हेडमास्टर पर बहुत नाराज हुआ। हेडमास्टर विद्यार्थियों पर नाराज हुआ। विद्यालय बंद कर दिया गया। कोई नाम न बतावे केशव का, अंत में बहुत मुश्किल से उनका नाम पता लगा तो बाद में उनको स्कूल से निकाल दिया गया। निकल गये, कोई चिंता नहीं की। यवतमाल में जो पहले बिहार के गवर्नर रह चुके थे उनका यवतमाल में एक

राष्ट्रीय विद्यालय था। वहाँ भर्ती किये गये। तो वहाँ गये। वे चाचा के साथ सुबह-सुबह सैर करने को जा रहे थे। डिप्टी कमिश्नर सामने से आ रहा था। डिप्टी कमिश्नर आराम से टहलते-टहलते आ रहा था। वहाँ नियम यह था कि अंग्रेज अफ़सर कोई सामने से आये तो उसके लिये रास्ता छोड़ देते थे, रोड उसके लिये छोड़ देते, रोड के एक किनारे खड़े होकर उसको प्रणाम करते थे। चाचा ने देखा, अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर आ रहा है तो सड़क से हट जाना चाहिये। पर क्यों? भारत की सड़क है, भारत के हम पुत्र हैं। अंग्रेज तो विदेशी है इसको हम प्रणाम करें? ये तो भारत का अन्न-जल खा रहा है, ये हमको प्रणाम करे। हम क्यों इसको प्रणाम करें? चाचा बड़े हैरान हुए। वही स्थिति हुई जब अंग्रेज अफ़सर सामने आ गया, तो केशव खूब अच्छी तरह से अकड़कर उसके सामने से जाने लगा। उसको लगा, बड़ा गुस्ताख लड़का है। उसने अपने एक कर्मचारी को कहा, इस बच्चे को बुलाओ। बुलाया। ये कौन साहब हैं? केशव ने कहा, मुझे जानने की जरूरत क्या है? यहाँ के डिप्टी कमिश्नर साहब हैं। होते होंगे। यहाँ की मर्यादा यह है कि लोग सड़क छोड़कर हट जाते हैं, प्रणाम करते हैं। उन्होंने कहा, नहीं! ये कोई मर्यादा नहीं है। ये देश मेरा है। मैं अपने देश में चल रहा हूँ। मैं एक विदेशी को प्रणाम क्यों करूं? चाचा ने कहा, दूसरे लोगों ने कहा, ऐसा नहीं करते। नहीं, केशव ने कहा— 'केशव किसी को भीति नमस्कार नहीं करता। भय से नमस्कार नहीं किया जायेगा। कुछ लोग भय से नमस्कार करते हैं, डर से नमस्कार करते हैं। भय का नमस्कार, नमस्कार नहीं है। कई लोग रीति नमस्कार करते हैं। रीति बनी हुई है। किसी ने कहा, राम-रामजी। राम-राम। ये वास्तव में नमस्कार नहीं है। कोई छोटा-बड़ा आदमी आ रहा है उसको कहा, प्रणाम। प्रणाम। यह रीति नमस्कार है। रीति निभाने के लिये नमस्कार करते हैं। कोई करते हैं नीति नमस्कार। अच्छा देखो। काम निकालना है न? तुम यहाँ ठहरो। मैं जाता हूँ। और, अफसर के पास गया और कसकर सैल्यूट मारा। ओ साहब! क्या कहें? आपके दर्शन नहीं होते हैं। हम तो आपके लिये तरसते रहते हैं। आप कभी-कभी दर्शन दिया करें। खूब प्रशंसा की, उसकी प्रशंसा के पुल-बांधे। उसको प्रणाम आदि किया, आवश्यकता हुई तो उसके पांव छू लिये। काम निकालने के बाद, उनके दस्तखत चाहिये उनके दस्तखत करा लिये और बाहर आकर कहा—देखा, हमने कैसे इसको गधा बनाया। जिसको प्रणाम किया उसको गधा बनाया। यह नीति का, कूटनीति का नमस्कार हुआ। यह नीति नमस्कार है। वास्तविक नमस्कार है—प्रीति नमस्कार। जिससे हमारा प्रेम है उसको नमस्कार करेंगे। भय से नमस्कार नहीं करेंगे। केवल रीति निभाने के लिये नमस्कार नहीं करेंगे, केवल नीति नमस्कार नहीं करेंगे। हम केवल प्रीति-नमस्कार करेंगे, और प्रीति नमस्कार होगा हमारा मातृभूमि के प्रति। नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमि, हे सदा वत्सला मातृभूमि, तुम्हें नमस्कार। मातृभूमि को नमस्कार। ऐसे

अलौकिक महापुरुष की जीवन गाथा गाते-गाते रात्रि से प्रभात हो जायेगी। इसलिये मैं कहाँ तक गाऊँ? जब कलकत्ता गये। वहाँ क्रान्तिकारियों का संग हुआ। और क्रान्तिकारियों के साथ रहकर अरविन्दजी के संपर्क में आये। भारतमाता की उपासना का व्रत उन्होंने लिया। अनुशीलन समिति में रहे। वहाँ से लौटकर फिर नागपुर आये तो फिर क्रान्तिकारियों का एक Golden Triangle था दिल्ली-कलकत्ता-मुंबई। इस Golden Triangle में क्रान्तिकारियों को बम सप्लाई करने में, हथियार सप्लाई करने में भी भाग लेते रहे। पंजाब में भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव इत्यादि इनके संपर्क में आते थे। राजगुरु तो खुद नागपुर का स्वयंसेवक था। वहाँ बम फेंकने के बाद जब लौटकर आया राजगुरु, तो डॉ. साहब ने भैयाजी दाणी की Firm में रखवाया, डॉ. साहब ने उससे कहा—देखो, पूना मत जाना। पूना जाओगे तो संकट आ जायेगा। एक बार गलती से राजगुरु पूना चला गया, वह वहाँ पकड़ा गया और उसको बाद में फांसी हुई। भगतसिंह भी इनके संपर्क में आता था। डॉ. साहब क्रान्तिकारियों को बम सप्लाई का काम करते थे। इसके लिये परीक्षण किया। लोगों को जंगल में ले जाते थे और अनेक प्रकार से टेस्ट लेते थे, परीक्षा लेते थे। ऐसे लोग उन्होंने खोजे जो नौजवान औरत का रूप धारण कर सके, औरत के वस्त्र पहन सके। जिसकी मूंछ-दाढ़ी नहीं आयी हो। आयी हो तो उसकी सफाई करके और वह कंचुकी पहनकर के अपनी छाती में दो बम रखकर यानी स्तनों की जगह बम रखकर के ऊपर कंचुकी पहनकर, ऊपर साड़ी पहनकर Travel करे और वह क्रान्तिकारियों को बम सप्लाई करे। ऐसे नौजवान खोजे जो कलकत्ता से लेकर नागपुर तक, नागपुर से मुंबई तक, मुंबई से पंजाब तक, पंजाब से पूना, नागपुर तक इस Triangle में घूमते थे। ये अद्भुत कार्य करते रहे। एक बार तो नागपुर के अंदर पूरी ट्रेन के ऊपर डाका डालने की एक योजना बनायी गयी थी। प्रातःकाल पुलिस की वर्दियाँ बनाई गई। चपरासी की वर्दियाँ बनाई गई, कुलियों की वर्दियाँ बनाई गई। कई-कई संघ के अधिकारियों को कुली बनाया गया। वे कुली बने। वे स्पेशल कुली बन गये, स्पेशल पुलिस अफसर बन गये, तांगा लेकर गये। देखो, हमारी गाड़ी आ रही है। अरे ओ कुली! देखो, यह बक्सा उठाओ। सब पुलिस अफसर बने हुए, फीते आदि लगाये हुए, बक्से को उठाकर तांगे पर चढ़ा दिया, तांगे से ले भी गये और सरकार खोजती रह गयी। डॉ. साहब की एक भी योजना सरकार कभी नहीं पकड़ सकी। ऐसे कुशल कार्यकर्ता थे। इतने बड़े क्रान्तिकारी। उनकी एक योजना को भी सरकार विफल नहीं कर सकी। यह उनकी महानता थी।

ये सारे अनुभव लेने के बाद वे कांग्रेस में गये, मालवीयजी के साथ रहे, गाँधीजी को निकट से देखा, अरविन्दजी के साथ रहे, तिलक के भक्त रहे, सावरकरजी को कई बार शाखाओं में बुलाया। बहुत ही अद्भुत कार्य करने के बाद उन्होंने सन् 1925 के बाद सारे अनुभवों के बाद निश्चय किया—देखिये, ये सारे

बाकी सब काम जो हैं, ये केवल वृक्षों के पत्तों को सींचने वाले काम हैं। राष्ट्र का वास्तविक निर्माण तब होगा जब राष्ट्र को शुद्ध राष्ट्रीय चरित्र की शिक्षा देंगे। उस राष्ट्रीय चरित्र की शिक्षा के लिये नवयुवकों का, किशोरों का, तरुणों का और प्रौढ़ों का दैनिक शाखा में आकर कार्यक्रमों में भाग लेना और प्रतिदिन हृदय पर हाथ रखकर मातृभूमि की वंदना करना। पतत्वेष कायो नमस्ते-नमस्ते हे मातृभूमि! तेरे लिये मेरा शरीर बलिदान हो जाय। मैं हृदय पर हाथ रखकर प्रतिज्ञा करता हूँ। ये संस्कार जब प्रतिदिन मिलेगा, तब राष्ट्र जाग सकेगा। इस प्रकार म्रियमाण राष्ट्र को, सोये हुए राष्ट्र को, 1300 वर्ष की मार खाये हुए राष्ट्र को, पुनः जीवमान करने, जीवन्त करने, प्राणवंत करने , उसको अपने पांव पर खड़ा करने, उसको संगठन का मंत्र देने और भविष्यत् की उज्ज्वल आशा देने का महान् कार्य इस दधीचि ने किया जिसने अपनी अस्थियों को राष्ट्र के लिये बलिदान कर दिया। अपना सर्वस्व होम कर दिया, राष्ट्र के लिये। मैं मरूं पर मेरा राष्ट्र जी जाय। इसलिये संघ उनका सबसे बड़ा स्मारक है। संघ उनकी सबसे बड़ी देन है। संघ के द्वारा जो राष्ट्रीय चरित्र संपन्न नवयुवक हैं वही देश की और भविष्यत् की सबसे बड़ी आशा हैं। तो आज इस पुनीत पर्व पर मालव गणाधिपति वीर विक्रमादित्य का पावन स्मरण करते हैं, उसके प्रति श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं तो आधुनिक काल में पुनः भारत के विगत वैभव को, पुनः भारत के विगत पराक्रम को, विगत पुरुषार्थ को पुनः जगाने का अभिनव कृत्य करने वाले नये विक्रमादित्य, विक्रम संवत् पर आने वाले डॉ. हेडगेवार को भी अनंत नमन समर्पित करते हैं। आज का यह पुनीत दिन, जिसको दक्षिण भारत के लोग युगादि कहते हैं, युग का आदि है। जिस दिन अनेक महत्त्वपूर्ण घटनायें घटी हैं और अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का जो प्रारम्भिक दिवस है, ऐसे इस वर्ष के प्रथम प्रभात पर और इस सृष्टि के प्रथम प्रभात पर और इस विजय के पर्व पर और महान् ऐतिहासिक उद्वेलन के ऐतिहासिक जागरण के इस पर्व पर हम यह संकल्प करें कि हम केवल बिन्दु का जीवन नहीं जीयेंगे, हम सिन्धु का जीवन जीयेंगे। जो गंगोत्री से गंगाजल चलता है वह एक बिन्दु है। वह बिन्दु जानता है कि पचास मील की गति से चलते हुए चालीस घण्टे के बाद मैं दो हजार मील की यात्रा करके गंगासागर में मिल जाऊंगा। गंगोत्री से चलने वाला जलबिन्दु चालीस घण्टे के बाद गंगासागर में, विराट् में मिल जाने वाला है। तो दो दिन की जिंदगी लेकर आता है बिन्दु, उसके बाद उसको विराट् में मिल जाना है। यदि वह बिन्दु कहे कि मैं तो दो दिन के लिये जीऊंगा। मैं धारा में क्यों बहूँ? अलग हो जाऊं। अरे! अलग होकर देख लो। बिन्दु तू सूख जायेगा, बिन्दु तू मर जायेगा। बिन्दु तेरा अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। अरे बिन्दु! तू धारा में मिल जा, दो दिन जिंदगी है तो क्या है? हर हिन्दू जो आया है उसको एक दिन मरना है पर हिन्दू समाज को मरना नहीं है। इसलिये हिन्दू तू बिन्दु का जीवन छोड़कर के सिन्धु का जीवन जी, धारा को अमर

बना जा। अमर गंगा सदा के लिये बहती रहेगी। बिन्दु रहे न रहे कौन-सा अंतर पड़ता है, लेकिन बिन्दु को यह समाधान होगा कि मैंने धारा में जीवन दिया है। इसलिये धारा को अमर बना दिया है। मैं अपने आपको धारा में समर्पित करके अपने जीवन को धन्य करने जा रहा हूँ। इस विश्वास के साथ हम जीयें कि हमारा जीवन धारा के लिये ही होगा, धारा को अमर बनाने के लिये होगा। अलग से सूख जाने वाले बिन्दु का हमारा जीवन नहीं होगा। यही परम पूज्य डॉ. साहब का, यही सम्राट् विक्रमादित्य का हमारे लिये आज के परिप्रेक्ष्य में सबसे बड़ा संदेश है।

यवन को दिया दया का दान,....
चीन को मिली धर्म की दृष्टि।....
मिला था स्वर्ण भूमि को रत्न,
शील की सिंहल को भी सृष्टि॥
किसी का हमने छीना नहीं,
प्रकृति का रहा पालना यहीं।....
हमारी जन्मभूमि थी यहीं,....
कहीं से हम आये थे नहीं॥

जयशंकर प्रसाद : स्कन्दगुप्त नाटक का गीत

× × ×

ब्रिटिश सांसद जे. समीर के. ने लिखा—'हम जब भारत पहुँचे तो हमने देखा कि वहाँ उनके पास एक प्राचीन सभ्यता है, जो पिछले हजारों सालों से वहाँ रह रही अतिशय बुद्धिमान जातियों के चरित्र में घुल-मिल गयी है। उनकी यह सभ्यता सर्वस्पर्शी और सर्वव्यापी है। उसने भारत को न केवल समाज के राजनीतिक जीवन के गठन की पद्धतियाँ दी है, बल्कि सामाजिक और कौटुम्बिक जीवन की अत्यन्त विविध और समृद्ध संस्थाएँ भी दी है। ये सारी संस्थाएँ कुल मिलाकर हितकारी हैं, यह बात हिन्दू जाति के चरित्र पर उनके प्रभाव को देखकर जानी जा सकती है। इस देश की जनता के चरित्र में उसकी सभ्यता का यह हितकारी प्रभाव जितना स्पष्ट है उतना किसी अन्य देश की जनता में शायद ही मिले। वे व्यापार में चतुर हैं, विचार और विवेचन की गहराइयों में जाने वाली तीक्ष्ण बुद्धि रखते हैं, मितव्ययी, धर्मपरायण, संयमशील, उदार, माता-पिता की आज्ञा मानने वाले, वृद्धों को आदर देने वाले, कानून का पालन करने वाले, व्यवहार में मीठे, असहायों के प्रति दयालु और आपत्ति आ पड़ने पर उसे धीरज से सहन करने वाले हैं।'

हिन्दू शब्द की उत्पत्ति

मुझे आपके पत्र में प्रकाशित सम्पादक के नाम पत्र Origin of Hindu हिन्दू शब्द का उद्‌गम (श्री एस. एन. चौपड़ा द्वारा) पढ़कर बहुत आश्चर्य हुआ। लेखक महोदय के अनुसार हिन्दू शब्द हिन्दसा (अंक) से निकला है क्योंकि हिन्दुओं ने ही सर्वप्रथम अंकों का ज्ञान विश्व को दिया था।

मेरे विचार से ऐसी काल्पनिक उड़ान में कोई तथ्य नहीं है। इनके शब्दों की उत्पत्ति के ज्ञान को किसी भी इतिहासकार या भाषाविज्ञानवेत्ता का समर्थन नहीं मिला है। और यह भाषाविज्ञान के मूल नियमों के भी प्रतिकूल है।

हम यह मानते हैं कि हिन्दू शब्द आर्यन या मानव (मनु भगवान् के वंशज) जितना पुरातन नहीं है। किन्तु जब मानव का वृहद् अर्थ पूरे विश्व की मानवता के लिये किया गया और आर्यन शब्द इस क्षेत्र की प्रमुख जाति के लिये प्रयोग में आता था, या विश्व के अन्य भागों में आर्य वंशजों के लिये प्रयोग होता था तब इस क्षेत्र के मुख्य निवासी समूह के लिए एक उपयुक्त नाम (शब्द) की जरूरत अनुभव हुई।

भारत के यूनान और परशिया (फारस) के साथ अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के कारण हिन्दू शब्द की उत्पत्ति हुई जिसका मूल सर्वथा भारतीय ही था। यह इतिहास से स्पष्ट है कि जो लोग वैदिक मन्त्र गाते थे, यज्ञ करते थे और सोमरस का पान करते थे, वे भारतवर्ष के उत्तरी भाग के निवासी थे। भारतीय कालक्रम विज्ञान के अनुसार सामवेद की ऋचायें सर्वप्रथम सिन्धु (Indus) नदी के तट पर गाई गई—परमपवित्र सिंधु नदी भारत के उत्तर-पश्चिम में बहती है। वृहद् अर्थों में सिंधु का अर्थ एक बड़ी नदी या समुद्र भी माना जाता है। वेदों के अनुसार आर्य जिस देश में रहते थे उसे सप्तसिंधु भी कहते थे। सप्तसिंधु अर्थात् सात पवित्र नदियों का देश। कुछ इतिहासकार पंजाब की पाँच नदियाँ (सतलुज, व्यास, रावी, चिनाब, झेलम) और बाएं गंगा, दाएं सिंधु मानते हैं। अन्य इतिहासकार सप्तसिंधु में गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु और कावेरी गिनते हैं और इन्हें सप्तसिंधु मानते हैं। इस विषय पर कुछ विवाद है किन्तु, सभी मानते हैं कि वैदिक काल और उसके बाद भी भारतवर्ष सप्तसिंधु के नाम से प्रसिद्ध था।

कालान्तर में जब ग्रीक-यूनान के निवासी जो मूलतः आर्य ही थे, ने आर्यों के देश भारत पर आक्रमण किया तो उन्होंने यहाँ के निवासियों को आर्य के सिवाय किसी अन्य नाम से बुलाना उचित समझा। भाषा विज्ञान के नियमों के अनुसार वे सिंधु को Indus (इण्डस) कहने लगे। आदि Persians परशियन लोग (ईरानी आर्यन) जो स्वयं आर्य मूल के थे, हमें आर्य के स्थान पर किसी अन्य नाम से जानना चाहते थे। जब अन्तर्राष्ट्रीय संबंध और बढ़े तो भाषाविज्ञान के मूल नियमों के अनुरूप भारत को सप्तसिंधु की जगह हफ्तहिन्दु कहने लगे। वे 'स' ध्वनि को 'ह' कहते थे। इस प्रकार संस्कृत का शब्द 'सप्त' फारसी का 'हफ्त' हो गया। 'सप्ताह' बदल कर फारसी का 'हफ्ता' बन गया। संस्कृत शब्द सुर (देवता) बन गया 'हूर' और असुर (राक्षस) शब्द फ़ारसी में 'अहूर' हो गया। जब सिकन्दर 'भारत जीतो अभियान' में भारत पहुँचा तो उसने अन्य फारसी लोगों से यहाँ के निवासियों के बारे में काफी सुना था—वह उन्हें 'इन्दू' कहने लगा।

धरती और वहाँ के निवासियों का गहरा संबंध होता है। यहाँ के निवासियों को भी 'हिन्दू' कहा जाने लगा। कालान्तर में फारसी लोग इस देश को हिन्द, हिन्दुवर, हिन्दुस्तान कहने लगे और यहाँ के निवासियों को हिन्दू या हिन्दी कहने लगे। फारसी के पुराने शब्दकोश जैन्दा और पहलवी के अनुसार हिन्दु शब्द संस्कृत शब्द सिंधु से बना है। Encyclopaedia Britannica में भी 'हिन्दु' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द सिंधु से दर्शाई गयी है और संसार के सभी भाषाविज्ञान-वेत्ता इसे स्वीकार करते हैं। 'हिन्दू' शब्द का गलत अर्थ गुलाम या नास्तिक बताया गया जो औरंगजेब के शासनकाल में फारसी भाषा के साथ धोखाधड़ी या बलात्कार था। यह गैर-मुसलिमों को बदनाम करने का षड्यंत्र था। गैर-मुसलिमों को मुगल शासक काफिर या नास्तिक कहते थे।

एक अन्य दृष्टिकोण से भी श्री चौपड़ा का मानना है कि 'हिन्दू' शब्द फारसी शब्द 'हिन्दसा' (अंकों) से बना है, पूर्णतया असत्य है। 'हिन्दसा' शब्द तो भारतीय मूल का नहीं है। यह अरबी शब्द है। अरबों द्वारा फारस (Persia) आक्रमण के पश्चात् फारसी इस शब्द को हिन्दसा कहने लगे जिससे एक अन्य फारसी शब्द 'अन्दाज' बना।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि हिन्दू शब्द मूल संस्कृत शब्द सिंधु से बना है जिसका 15 सौ वर्षों से अधिक का इतिहास है। आदि यूनानी (Greek) ऐतिहासिक ग्रन्थों में 'इण्डस', 'इन्दु' और 'इन्तू' शब्दों का प्रयोग एवं प्राचीन चीनी यात्रियों के यात्रालेखों में तू, इन्ट्र, एयन्ट्र शब्दों का प्रयोग दर्शाता है कि हिन्दू शब्द का मूल स्रोत बहुत ही प्राचीन है।

24 मार्च, 1956, समाचार सम्पादक हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली

भारत पर प्रथम विदेशी आक्रमण

प्रसिद्ध इतिहासकार और प्रख्यात लेखक H.G. Wells अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'A Short History of the World' के पृष्ठ 95 पर लिखते हैं— सिकन्दर कैसपियन सागर के पास से, पश्चिमी तुर्किस्तान के पहाड़ों से होता हुआ हैरात, काबुल और दर्रा खैबर होते हुए भारत पहुँचा। Indus नदी के तट पर उसका भारतीय राजा पोरस के साथ भयंकर युद्ध हुआ। यहाँ उसके Macadonian सैनिकों ने पहली बार हाथी देखे थे। उन्होंने भारतीय सेना को हरा दिया। पुस्तक के पृष्ठ 104 पर फिर लिखा है, 'हम पहले बता चुके हैं कि किस तरह सिकन्दर महान् भारत आया और Indus के तट पर युद्ध में पोरस को हराया। कोई भी जिसे इतिहास का कुछ ज्ञान हो, जानता है कि सिकन्दर और पोरस का ऐतिहासिक युद्ध पंजाब में 'झेलम' नदी के किनारे हुआ था न कि Indus नदी के तट पर। प्राचीन भारतीय इतिहासकारों ने इस नदी का नाम 'वितस्ता' लिखा है जो कि 'झेलम' नदी का पुराना नाम है। काश्मीरी लोककथाओं में आज भी इसे व्याथ कहा जाता है। यूनानी इतिहासकारों ने इस नदी को Hydaspes कहा है। सिकन्दर के युद्धों और आक्रमण का इतिहास, जो Curtilus द्वारा लिखित और Mecrindle द्वारा प्रकाशित पुस्तक Invasion-IX, अध्याय-II में इस युद्ध को 'Battle of Hydepes' बताया गया है।

प्रख्यात इतिहासकार राधाकुमुद मुकर्जी, यदुनाथ सरकार, के.पी. जायसवाल, जयचन्द्र विद्यालंकार और अन्य विश्वविख्यात इतिहासकारों का भी यही मत है। वास्तव में H.G. Wells के सिवाय और सभी इतिहासकार यही मानते रहे कि सिकन्दर और पोरस के मध्य युद्ध झेलम के स्थान पर हुआ था।

यह केवल कोई छोटी भूल नहीं है, किन्तु एक महान् ऐतिहासिक भ्रान्तिपूर्ण भूल है। H.G. Wells की 1300 पृष्ठों की बड़ी पुस्तक 'The Outline of History' में पृष्ठ 361 पर फिर यही भयंकर भ्रान्ति दोहराई हुई है, 'सिकन्दर ने ऊपरी Indus नदी के तट पर एक बलवान राजा पोरस से युद्ध किया, जिसमें पहली बार Macadonian सेना को हाथियों पर सवार सेना का सामना करना पड़ा और उन्हें हराया।'

इसी वृहत् इतिहास के पृष्ठ 104 पर H.G. Wells लिखते हैं, 'चन्द्रगुप्त, जिसे यूनानी Sandrecottus पुकारते थे, सिकन्दर से मिलने गए और उसे गंगा के मैदानी इलाका पहुँचकर पूरे भारत को विजय करने की सलाह दी।' यह तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर भ्रांति पैदा करने का एक और प्रयास है। यह मौर्यवंश के संस्थापक वीर चन्द्रगुप्त मौर्य को एक देशद्रोही दिखाने का यत्न किया गया है। चन्द्रगुप्त और चाणक्य के विषय में जवाहरलाल नेहरू की पुस्तक "The Discovery of India' के पृष्ठ 103 पर लिखा है, 'वे दोनों उत्तर-पश्चिम में तक्षशिला पहुँचे और वहाँ वे यूनानियों (सिकन्दर) से मिले जो वहाँ पर कुछ दिन पहले ही आए थे। उन्होंने सिकन्दर की वीरता और महत्त्वाकांक्षा के विषय में सुन रखा था और सिकन्दर की भांति अपनी प्रभुसत्ता बढ़ाने के इच्छुक थे। वे उचित अवसर की प्रतीक्षा में थे। सन् 323 ईसा पूर्व में बेबीलोन में सिकन्दर की मृत्यु का समाचार मिलते ही चन्द्रगुप्त और चाणक्य एकजुट होकर भारतीयों में राष्ट्रभक्ति की भावना फूंकने में लग कर, विदेशी आक्रामकों के विरुद्ध आन्दोलन चला दिया।.....चन्द्रगुप्त का साम्राज्य अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक और उत्तर में काबुल तक फैला था। पहली बार इतिहास के अनुसार एक विशाल साम्राज्य का निर्माण हुआ।'

पंजाब के प्रसिद्ध इतिहासकार श्री जयचन्द्र विद्यालंकार चन्द्रगुप्त और सिकन्दर की पहली भेंट के बारे में लिखते हैं कि चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर को स्पष्ट शब्दों में कहा कि वह विदेशी आक्रामक होने के कारण भारत में बहुत विरोध पायेगा और चन्द्रगुप्त स्वयं भी उसका विरोध करेगा। सिकन्दर बहुत क्रोधित हो गया और अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि चन्द्रगुप्त की हत्या कर दी जाय। किन्तु वह किसी प्रकार चतुरता से उनके कैंप से निकल आए, अपनी सेनाएं इकट्ठी की और सभी विदेशी आक्रामकों को भारत से भगा दिया।

प्रख्यात नाटककार जयशंकर प्रसाद अपने ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' में लिखते हैं कि चन्द्रगुप्त ने मालवों, शूद्रकों की बड़ी सेना तैयार की और व्यास नदी के तट पर हुए युद्ध में सिकन्दर की सेना को बहुत क्षति पहुँचाई जिसके फलस्वरूप उसे पीछे हटने का निर्णय लेना पड़ा। प्रसाद ने अपनी पुस्तक की प्रस्तावना में इतिहासकार Justinus का उल्लेख किया है जिन्होंने लिखा था, 'चन्द्रगुप्त और सिकन्दर की पहली भेंट में चन्द्रगुप्त की सम्मान रहित स्पष्टवादिता से क्रुद्ध हो सिकन्दर ने उसके वध की आज्ञा दे दी किन्तु, केवल युद्ध करके ही चन्द्रगुप्त बच सका।' इसी नाटक 'चन्द्रगुप्त' में सैल्यूकस की पुत्री कॉरनेलिया कहती है, 'सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया, मैंने भारत का अध्ययन किया है। यह केवल यूनानी एवं भारतीय सेनाओं के मध्य युद्ध नहीं, यह तो भारतीय और यूनानी ज्ञान-मनीषी—अरस्तू और चाणक्य के मध्य युद्ध है। सिकन्दर और चन्द्रगुप्त तो

केवल मोहरे भर, प्रतीक हैं।' इतिहासवेत्ताओं के अनुसार नाटक की ऐतिहासिक महत्ता भी साहित्यिक गुणवत्ता से कम नहीं है।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि H.G. Wells द्वारा Indus नदी के तट पर सिकन्दर-पोरस का युद्ध और चन्द्रगुप्त का राष्ट्रद्रोही के रूप में चित्रण बिल्कुल गलत और भ्रांति पैदा करने वाला वक्तव्य है।

क्या कोई भारतीय या विदेशी इतिहासकार इतिहास के पावन तथ्यों के साथ इस प्रकार के क्रूर अन्याय के विषय में अपने विचार प्रकट करेंगे?

हम (भारतीय) अपने इतिहास (संस्कृति और परम्परा) के जीवित और सर्वश्रेष्ठ अवतार हैं। हमसे अधिक हमारे इतिहास को और कोई (विदेशी) नहीं समझ सकता है।

—महान् इतिहासविद् यदुनाथ सरकार
यही अभिमत जयशंकर प्रसादजी का है।

× × ×

ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है, स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है...ब्राह्मण सबके लिए अपने को दान कर देता है।

—चाणक्य

× × ×

किसी भी अन्याय का प्रथम में प्रतिवाद करें, प्रतिकार करें, रुख कर खड़े होवें, उससे भी काम न चले तो प्रतिरोध करें, उससे भी काम न चले तब प्रतिशोध लेवें।

—श्यामा प्रसाद मुखर्जी

यमुना स्तम्भ का आह्वान
(कुतुब मीनार या यमुना स्तम्भ ?)

मैं भारत की राजधानी दिल्ली की छाती में खड़ा हुआ भारत का एक उच्चतम स्तम्भ 'यमुना स्तम्भ' हूँ। मैं दिल्ली की धरती पर पिछले साढ़े सात सौ वर्षों से खड़ा हुआ पिछली आठ सदियों के इतिहास का साक्षी हूँ। मैंने देखा तो नहीं पर सुना अवश्य है कि मेरे जन्म से बहुत पहले लगभग आठ हजार वर्ष हुए रघुवंश के महान् प्रणवीर नृपति सम्राट् दिलीप ने दिल्ली को बसाया था। कालांतर में उसी सूर्यवंश के एक नृपति चतुर्भुज ने हस्तिनापुर को जीतकर दिल्ली को राजधानी बनाया। द्वापरयुग में पाण्डवों ने वर्तमान खाण्डसा गाँव के पास के विशाल खाण्डव वन को जलाकर इन्द्रप्रस्थ नामक प्रसिद्ध राजधानी बसायी। कहा जाता है कि मेरे पार्श्व में जो चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की लोहे की लाट खड़ी है उसकी आयु मेरे से तिगुनी लम्बी है। किन्तु जहाँ मेरी दो मंजिलें काल-कवलित हो चुकी हैं वहाँ उस पर अभी तक जंग या मोर्चा तक नहीं लगा। काल की डाहभरी आँखों से बची हुई वह लोहे की अनोखी लाट किसने गाड़ी थी, कौन जानता है, किन्तु मैंने इतिहासकारों को प्रायः उसके पास खड़े होकर यह चर्चा करते सुना है कि वह चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का विजयस्तम्भ है तथा उस पर उस प्रतापी राजा की कीर्ति अंकित है। पास ही खड़ा भग्नप्राय किला भी विमल कीर्ति सम्राट् विक्रमादित्य का माना जाता है। मैंने इतिहासकारों के मुख से ही सुना है कि महरौली का वह शिलालेख विक्रमादित्य तथा कालिदास का काल-निर्णय करने में अतिशय सहायक सिद्ध हो रहा है। यह महरौली की जनता अपने गाँव का नाम 'महा-अरावली' मानती है।

भोले-भाले ग्रामीण यह भी कहते हैं कि उस लोहे की अनोखी कीली के स्थान पर धर्मराज युधिष्ठिर ने बड़ा भारी यज्ञ किया था या अपने राज्य को सदा स्थिर रखने के विचार से ज्योतिषियों से पूछकर धरती के केन्द्र में एक कीली ठुकवाई। कीली ठीक से केन्द्र में ठुक गई। किन्तु धर्मराज को सन्देह रहा कि शायद ठीक केन्द्र मिला या नहीं। जब कीली को उठाया गया तो धरती को उठाने वाले शेषनाग के शीश में

लगने के कारण वह खून से लथपथ हो गई थी। जो पुनः कीली लगाई गई तो शेष ने अपना फण उस स्थान से हटा लिया था। ऐसी कहानियाँ मैंने अनपढ़ ग्रामीणों के मुख से अनेक बार सुनी हैं।

लगभग एक हजार वर्ष पश्चात् राजा अनंगपाल दिल्ली के स्वामी बने। वे पाण्डवों के वंशज कहलाते थे। तत्पश्चात् महान् नरकेसरी पृथ्वीराज चौहान ने दिल्ली को राजधानी बनाकर इस धरती का गौरव बढ़ाया। उनकी एक प्यारी पुत्री प्रतिदिन यमुना का दर्शन करके ही भोजन किया करती थी। किन्तु उस कोमलांगी बालिका का प्रतिदिन कालिन्दी के तट तक पहुँचना कठिन था। अतः दिल्लीपति सम्राट् पृथ्वीराज चौहान ने चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के उस लौह स्तम्भ के पास ही मेरा निर्माण प्रारम्भ कराया। कई वर्षों के परिश्रम से मेरा निर्माण हुआ तथा मेरा नाम 'यमुना स्तम्भ' रखा गया। मेरी उस समय भी पाँच मंजिल ही थी। उन दिनों कालिन्दी मेरे से थोड़ी दूरी पर ही बहती थी तथा प्रतिदिन मेरी चोटी से पृथ्वीराज की पुत्री उसके दर्शन करती थी। अब यमुना तो मुझसे दूर चली ही गई है, मेरा नाम 'यमुना स्तम्भ' भी मुझसे छिन गया है। आज मुझे जब 'कुतुब-मीनार' के झूठे नाम से पुकारा जाता है तब मेरा पत्थर का कलेजा भी फटना चाहता है। मैंने देखा 17 बार पृथ्वीराज ने मुहम्मद गोरी को पराजित किया। किन्तु देशद्रोही जयचन्द ने भाई से द्वेष के कारण मान को वेश्यागिरी में बेच डाला। जब मैंने सम्राट् पृथ्वीराज को बन्दी अवस्था में घसीटकर गजनी ले जाते हुए देखा तो मैं आपादमस्तक काँप उठी। गजनी में पृथ्वीराज की आँखें निकालने का समाचार सुनकर तो मेरी पत्थर की आँखों से भी आँसू फूट पड़े।

पृथ्वीराज के पश्चात् उनका भाई हरिराज अजमेर के सिंहासन पर बैठा तथा उनका सुपुत्र दिल्ली की गद्दी का स्वामी बना। किन्तु गुलाम वंश के तुर्क शासक कुतुबुद्दीन ऐबक ने अजमेर पर हमला कर दिया। हरिराज को परिवार समेत चिता की ज्वालाओं में कूदकर राजपूती सम्मान को बचाना पड़ा। दिल्ली में पृथ्वीराज के बेटे को पराजित कर कुतुबुद्दीन ऐबक ने अपने अपवित्र हाथ मेरी ओर भी बढ़ाए। उसने 27 हिन्दू मन्दिरों को तुड़वाकर उनकी सामग्री से मेरे समीप ही एक बड़ी मस्जिद बनवाई जिसका नाम 'कुब्बत-उल-इस्लाम' अर्थात् 'इस्लाम की शक्ति' रखा। मैंने मौन व्यंग्य किया—'क्या दूसरों के धर्म-स्थान गिराना 'कुब्बत-इल-इस्लाम' है या 'जिल्लत-उल-इस्लाम'। ऐबक गुलाम वंश का था। उसके मन में गुलामी तथा कमीनापन घर कर चुके थे। उसने उस व्यंग्य का दण्ड देने के लिए हजारों मजदूर-कारीगर लगाकर तेज नश्तरों द्वारा मेरी छाती से संस्कृत के श्लोक तथा हिन्दू धर्म के चिह्न उखाड़ने शुरू कर दिये। जैसे देश में हिन्दुओं की यज्ञोपवीत-शिखा जबर्दस्ती काटकर उनके धर्म पर डाका डाला जा रहा था वैसे ही मुझे

बलात्कार से मुसलमान बनाया गया, हर छैनी और हथौड़े की मार पर मैं चीत्कार कर उठी पर उस राक्षसी शासन में मेरा अरण्यरोदन कौन सुनता था। मुझे जबर्दस्ती कलमा-नमाज पढ़ाकर मेरा नाम 'शेख कुतुब मीनार' रख दिया था। किन्तु मैं हृदय से हिन्दू ही रही। हर इतिहासकार को मैं अपनी मौन भाषा में पुकार-पुकारकर कहती, 'मैं हिन्दू हूँ , निश्चय ही हिन्दू हूँ। मुझे मुसलमान कहकर मेरे जख्मों पर नमक मत छिड़को।' किन्तु पत्थर के कलेजे की चीत्कार कौन सुनता। सदियों तक मुझे तुर्क और पठान-कला का नमूना माना जाता रहा। कुतुबुद्दीन के पीछे अल्तमश ने मेरे ऊपर दो मंजिलें अवश्य बनवाई थीं जिनमें से एक तूफानों के थपेड़ों से गिर गई। एक यूरोपीय इतिहासकार ई. बी. हबेल ने मेरे छिपे हुए हिन्दुत्व की ध्वनि सुन ली। उसने देखा कि मैं उसी हिन्दू कला का वरदान थी जिसने चित्तौड़ के महल तथा राजस्थान के विजयस्तम्भ निर्माण किए थे। गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर के भूतपूर्व इतिहास-प्राध्यापक रायबहादुर कंवरसेन, बार-एट-लॉ ने भी मेरी करुण पुकार सुनी। उन्होंने मेरी निर्माण-कला में छिपे हुए कमल के फूल तथा घंटियाँ देखीं, चौथी मंजिल पर संस्कृत के दो शिलालेख देखे, सारे स्तम्भ का हिन्दू स्वरूप देखा तथा मुझे पुनः हिन्दू घोषित किया। मुसलमान-कला की मीनार तो बीजापुर की चारमीनार जैसी है। मैं उनसे सर्वथा भिन्न, चित्तौड़ के विजयस्तम्भ जैसी हूँ। क्या भारतीय जनगण मुझे इतिहास के सत्यान्वेषी-चक्षुओं से देखकर मुझे मेरा धर्म लौटा देंगे?

दर्शन के क्षेत्र में एक-धारा विशेष के प्रवर्तक विक्टर कजिन ने लिखा—'जब हम पूर्व के और खासकर भारत के काव्य या दार्शनिक चिन्तन के आन्दोलनों का, जिनका प्रभाव अब यूरोप में भी फैलता दिखाई दे रहा है, ध्यान से अध्ययन करते हैं तो हमें वहाँ इतने अधिक और इतने गहरे सत्यों का साक्षात्कार होता है कि हम पूर्व की प्रतिभा के सामने घुटने टेकने के लिये विवश हो जाते हैं और यह माने बिना नहीं रह सकते कि मनुष्य-जाति के पालने जैसी यह भूमि उच्चतम दार्शनिक चिन्तन की जन्मभूमि है। यूरोप की प्रतिभा जिन परिणामों तक पहुँचकर रुक गयी है उनकी क्षुद्रता और पूर्व की प्रतिभा द्वारा प्रकाशित इन सत्यों के महदन्तर को देखकर सचमुच आश्चर्य होता है।'

गढ़ रूपनगर की राजसुता

(1)

इक वृद्ध बिसातिन दिखा रही
थी कई खिलौने मनहारी,
मिट्टी के रंग-बिरंगे बुत
दिखते सजीव, जीवनधारी।
उनमें अकबर और शाहजहान्
बाबर का वंशज जहांगीर,
योद्धाओं के थे सुन्दर पट,
अश्वारोही रजपूत वीर।
फिर था दिल्ली का शहनशाह
औरंगजेब पापाचारी।
पर उनमें चित्र सिलोना इक
था राजसिंह भालाधारी।
राणा प्रताप का प्रबल पौत्र
उदयपुर सिंहासन-धारी।
उस रूपनगर के महलों के
आंगन में निज सखि वृन्द संग
वह रूपनगर की राजसुता
वह चारुमति अति सुकुमारी
लख रही प्रेम विह्वलता से
वह राजसिंह-मूरत प्यारी,
उस वीर प्रवर की छवि न्यारी
लख निर्निमेष दृग-मीनों से
शतबार गई वह बलिहारी।

उस वृद्ध-बिसातिन ने फिर इक
दढ़ियल लम्बा बुत दिखलाया
'दिल्ली का अधिपति मुगलराज
औरंगजेब' यह समझाया।
पर उस शूकर-मुख को लखकर
बकरे सी दाढ़ी को लख कर—
बंकिम कुबड़ी कटि को लखकर
चंचल बालायें हंस पड़ीं—
'दिल्ली का अधिपति मुगलराज,
—यह हाड़-मांस का पिंजर-सा,
अपनी मृत्यु के पल गिनता,
राजा क्या, यह तो रंकराज?
दिल्ली का अधिपति मुगलराज!'
इस हंस-हिंसोड़े में ही तो
औरंगजेब-बुत फूट गया
दर्जन टुकड़ों में टूट, गया॥
वह बुढ़िया शोर मचाती सी
बालाओं को धमकाती सी
बोली, 'बुत की कीमत लाओ'
नासा को खूब फुलाती सी।
उस चंचल बाला चारुमति ने
तुरंत चित्र का मूल्य पटक

सब सखियों को आदेश दिया,
'सब बुत पर मारो तीन जूत।'
कहना क्या था बस पलभर में,
हो गई वहां कुतूहलकारी
अगणित जूतों की वर्षा सी,
वह मूरत हो, खण्डित सारी,
मिट गया 'जेब' दाढ़ीधारी॥
इस पर वह बुढ़िया बिगड़ उठी
बोली, 'मैं अभी-अभी जाकर
दिल्लीपति को सब बतलाती,
यह तिरस्कार घटना सुनकर
इस चंचलता का प्रतिकार
लेवेगा अधिपति मुगलराज।'
बालाएं हंस कर बोल उठीं—
'क्या वह दिल्लीपति मुगलराज,
जो अभी हमारे जूतों की,
धूलि चटकर मिट गया आज?'

(2)

पुत्री दिल्ली के शहनशाह
ने भेजा है इक संदेशा—
'सुकुमारी चारुमति को झट
मेरे, रनिवासियों में भेजो,
अथवा इस रूपनगर की तो
भारी शामत आई समझो।'
'मैं क्या कर सकता हूँ बेटी!
है मार्ग यही कि भेंट करूं।
मैं रूपनगर का रजवाड़ा,
वह है दिल्ली का शहनशाह,
सारे भारत का बादशाह,
उस में सेना का बल अथाह,
यदि तुझे न भेंट किया मैंने
तो इस धरती की ईंट-ईंट
बज कर हो जाएगी तबाह।'
'हे वीर वंश के पितृ देव!
मेरा तुझ को शत नमस्कार,
पर ऐसे शब्दों के कारण
हमको क्या, कुल को भी धिक्कार!
मैं राजपूत सुकुमारी हूँ
कोमल कंचन की क्यारी हूँ
पर पापी को स्वाहा करने में
मैं जलती चिंगारी हूँ।
हे तात यदि मम रक्षा में
पाते हो निज को निर्बलतर
तो अबला नहीं बला हूँ मैं,
वह मुण्ड मालिनी काली हूँ।
दुर्गा की वह रणहाला है,
मीरा का विषधर प्याला है,
अथवा पद्मिनी सम विहस विहस
जलने को जौहर ज्वाला है।
ओ राजपूत कुल अभिमानी
इस राजपूत की बाला को
क्यों बनवाते हो मुगलानी?
इस से अच्छा है यहीं स्वयं
दो चिता-ज्वाला में डाल मुझे
महलों से वंचित कुटिया में,
वन में रहना स्वीकार मुझे।
पर धर्म भ्रष्ट हो, जाति भ्रष्ट हो,
वीर-वंश-मर्यादा भ्रष्ट हो,
मुगलानी बन या बेगम बन
वह निन्द्य पतित जीवन यापन कर
इक राज घराने का ही क्या,
दुनिया का वैभव नहीं कभी

स्वीकार मुझे, स्वीकार मुझे!
निज राष्ट्र धर्म मर्यादा हेतु
मर मिटना अंगीकार मुझे।'

(3)

'हे राजपूत कुल के गौरव
भारत-भू के मणि-मुकुट रूप
सतियों के रक्षक पुण्य रूप
हे त्यागी राणा राजसिंह
यह परम्परा का पुण्य-सूत्र
'रक्षक का व्रत' का परिचायक
तन्तु-तन्तु में त्याग लिए
औ, राष्ट्र धर्म अनुराग लिए,
कुछ हाव लिए कुछ भाव लिए,
कुछ अरमानों के घाव लिए,
निबल-रक्षा दायित्व लिए,
रण में बढ़ने का चाव लिए,
हिन्दू संस्कृति का अजर सूत्र,
मैं भेज रही हूँ आज नाथ
यदि वीर बाहुओं में बल है,
तो आओ ले तलवार हाथ!
अथवा मैं तो क्षत्राणी हूँ,
(यह चारुमति है नहीं दीन)
पापी के हाथों में पड़ने
से पूर्व ही कर सकती हूँ मैं—
अपनी इस तेज कटारी से,
यह कंचन काया प्राण हीन।
यदि बचा सको तो बचाओ,
संकट में सत्य सती का है,
अन्तिम क्षण में बस इतना ही
कहना इस चारुमति का है।'

(4)

'ओ बांके योद्धा घुड़सवार,
घोड़ा तुरंत ही दौड़ाओ,
उस रूपनगर के महल में,
मेरा संदेश पहुँचाओ।
राणा प्रताप का वीर रक्त,
नस-नस में ठाठें मार रहा,
बाप्पा रावल केशरी तुल्य
अन्तर में आज दहाड़ रहा,
वह सदियों के अरमानों का,
बीते युग के अफसानों का,
मौत के मंगल गानों का,
वह रक्षा-व्रत मरदानों का,
तूने भेजा है आज मुझे
हे वीरे! मैं तो धन्य हुआ।
इक कर में बांधे विजय सूत्र,
दूजे में भीषण चंग लिए—
भैरव ललकारें भरती सी,
अपनी सेना को, संग लिए,
आता है राणा राजसिंह,
रक्षा की प्रबल उमंग लिए,
राखी की लाज बचाऊँगा
ले खड्ग हस्त भिड़ जाऊँगा
औरंगजेब के काम भरे
कानन में आग लगाऊँगा,
तू चिंतित मत हो राज सुते,
यह रक्षक जीवित है तेरा,
जब तक इस तन में प्राण रहें,
तब तक है कौन जो बालबंक,
तक भी कर सकता है तेरा?'

(5)

गढ़ रूपनगर के बाहर ही,
मुगलों के सैनिक शिविरों पर,
मतवाला योद्धा राजसिंह,
भूखे नाहर के ही समान,
टूटा लेकर सेना महान।
वह प्रलय काल की आग बना
'जयजय शिवशंकर' बोल उठा
हलचल फैली बैरी दल में
औरंगी तख्ता डोल उठा।
थी धार मिली तलवारों की,
भागे थे जान बची न बची,
बोटी दढ़ियल सरदारों की।
दिल्ली का अधिपति मुगलराज
भागा था कायर के समान।
चिल्लाते थे अल्ला अल्ला,
रण में गिरते तुर्की जवान,
पापी शोणित सागर महान,
भीषण लहरें लेता उफान,
जिसमें वीरों ने किया स्नान,
रख लीं सतियों की आनबान
राणा की थी रमणीय शान,
कन्धे पै भाला, कर कृपाण,
रंजित थे सारे गात्र-त्राण,
पुलकित थे वे प्रण-पूर्ण प्राण,
बजते थे रण बाजे, विषाण,
लहराता था भगवा निशान,
गुंजाता 'हर हर' विजय गान,
धन्य यह रक्षा बन्धन आज,
सती की रख ली जिसने लाज,
धन्य है राजसिंह युवराज,
विमल यश गाता विज्ञ-समाज।
धन्य यह सत्य प्रेम का दीप,
देश का उज्ज्वल काल समीप।

'हिन्दू शब्द हमारे साथ विशेष रूप से हमारे इतिहास के गत एक सहस्र वर्षों के संकटपूर्ण काल से जुड़ा रहा है। पृथ्वीराज के दिनों से लेकर हमारे समस्त राष्ट्र-निर्माताओं, राज्य-वेत्ताओं, कवियों और इतिहासकारों ने 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग हमारे जन-समाज और धर्म को अभिहित करने के लिये किया है। गुरु गोविन्द सिंह, विद्यारण्य और शिवाजी जैसे समस्त पराक्रमी स्वतंत्रता-सेनानियों का स्वप्न 'हिन्दू-स्वराज्य' की ही स्थापना करना था। 'हिन्दू' शब्द अपने साथ इन समस्त महान् जीवनों, उनके कार्यों और आकांक्षाओं की मधुर गंध समेटे हुए है।'

—गुरुजी (माधव सदाशिव गोलवलकर)

स्वातंत्र्य की बलिवेदी पर

विश्व के अनादि एवं अविनश्वर साहित्य, वेद में, मातृभूमि के प्रेम में आप्लावित हो कर हृदय से निकलने वाली निश्छल भावधारा का श्रुतिमधुर गेय पदावली में गायन किया गया है—

उपस्यास्ते अनमीवा अयक्ष्मा
अस्मभ्यं सन्तु पृथिवी प्रसूताः।
दीर्घ न आयुः प्रतिबुध्यमाना
वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम।।

अर्थात् हे मातृभूमि! तेरी गोद हमारे लिए हर प्रकार की बीमारी से मुक्त हो। इस में हम खूब खेल सकें। तू हमें दीर्घ आयु प्रदान करती रहे और हम तेरी वेदी पर बलियाँ चढ़ाते रहें।

'हे माँ! हम तेरी वेदी पर हँस-हँस कर बलियाँ चढ़ाते रहें, तेरे सौभाग्य की रक्षा के लिए हम अपने प्राण न्योछावर कर दें, अपना सर्वस्व लुटा देवें' यह उदात्त राष्ट्रीय भावना विश्व में सभ्यता के प्रथम प्रकाश की वेला में भी भारतीय हृदय में ध्रुव संकल्प बन कर साकार हो चुकी थी। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में, भारत का ऋषि मातृभूमि के स्वर्णिम प्रभात को देख कर गीत के माध्यम से नृत्य कर उठता है—

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

'यह धरती मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ।' और माँ-पुत्र का सम्बन्ध एक महान् ऋण का, एक महान् उत्तरदायित्व का सम्बन्ध है। भौतिकवाद की चकाचौंध से जिनकी आंखें अंधी हो रही हैं वे मातृभूमि को भले ही एक भूमिखण्ड मात्र मानें किन्तु जिनकी प्रज्ञा की आंख अभी बन्द नहीं हुई है तथा जिनके हृदय की श्रद्धा की क्यारियाँ अभी पूर्णतया सूख नहीं गई हैं, वे सहज अनुभव कर सकते हैं कि जिस भूमि ने उन्हें अपने अन्न-जल से पाला-पोसा, अपने अंक में रहने को स्थान दिया, जहाँ उनके अनेकानेक महान् पूर्वजों के चरित अंकित हैं, जहाँ के आचार, विचार,

सभ्यता, संस्कृति ने उनके जीवन को सच्चे अर्थों में जीने योग्य बनाया, उस मातृभूमि के प्रति हमारा अनन्त ऋण है, एक महान् कर्तव्य है, जिसको न निभाने से हम घोर कृतघ्नता के दोष से लांछित होंगे। याज्ञवल्क्य मुनि का कथन है—

'कृतघ्नेर्नास्ति निष्कृतिः।'

अर्थात् कृतघ्नता के घोर पाप से कोई छुटकारा नहीं।

एक जवान पुत्र की नसों में जवानी का गर्म रक्त बहते यदि उसकी जन्मदात्री माता पराधीन रहे तो उस की भरी जवानी पर सौ-सौ लानत है। इस ज्वलंत देशभक्ति की भावना से प्रेरित हो कर पराधीनता के कलंक को धो डालने के लिए अनेक बार माता के वीर लाल समरांगण में कूदे। उन की एक ही आकांक्षा रही— 'तेरा वैभव अमर रहे माँ, हम दिन चार रहें न रहें।' सन् 1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर उसी पवित्र प्रेरणा का ज्वलंत रूप था। क्रान्ति के अनेक कारण गिनाए जाते हैं। देशी राजाओं द्वारा बच्चों को गोद लेना और ब्रिटिशराज का उन्हें मान्यता न देना, अवध की बेगमों से दुर्व्यवहार, नन्द कुमार की फांसी, भारत का आर्थिक शोषण, कारतूसों में गाय या सूअर की चर्बी का प्रयोग, इत्यादि। पर इतना तो निश्चित है कि इन सब कारणों में बड़ा कारण था गुलामी के अपमानजनक तोहफा को उखाड़ फेंकने के लिए बेचैनी। बस स्वातंत्र्य प्रेम से प्रेरित भारतीय जनगण जाग उठा तथा विश्व के इतिहास ने एक बार सिद्ध कर दिखाया कि हम कोई पतित जाति के लोग नहीं हैं जो गुलामी का जीवन बसर कर मालिक के दिए हुए टुकड़ों पर ही जीते रहें। हम स्वातंत्र्य के सब से प्रमुख एवं सब से प्रबल ग्राहक हैं तथा उसके लिए बड़े से बड़ा मूल्य दे सकते हैं।

103 वर्ष पूर्व के भारत का चित्र बड़ा रोमांचकारी है।

मेरठ जहाँ क्रान्ति ज्वाला की चिनगारी सुलगी वहाँ 85 सैनिकों का चर्बी वाले कारतूसों के विषय में विरोध, शेष सैनिकों की उदासीनता। गांव लौटने पर गांव की स्त्रियों द्वारा उन जवानों के स्वाभिमान पर तीक्ष्ण व्यंग्य, मंगल पाण्डे का स्वाभिमानपूर्ण प्रतिकार, बेगम पुल पर अंग्रेज अफसरों की हत्या, मंगल पाण्डे को फांसी देने के लिए किसी भारतीय सैनिक का तैयार न होना। ये सब कुछ अत्यन्त रोमांचकारी घटनाएं हैं जो भारतीय जनगण के हृदय में स्वाभिमान का एक ज्वार उभारने वाली हैं। मेरठ के वे प्राचीन वृक्ष, जहाँ सैकड़ों माताओं के पुत्रों को फांसियाँ दी गई, आज भी एक मर्मस्पर्शी स्मृति लिए खड़े हैं।

मेरठ के वीर सिपाही 'मारो फिरंगी मारो फिरंगी' उच्चारते हुए दिल्ली पहुँचे। उन्होंने रात्रि को यमुना पार की। यमुना के पवित्र जल में स्नान कर उन्होंने मानो पारतंत्र्य के कलंक को धो डाला। लाल किले में बैठे बहादुरशाह को अपने साथ

मिलाया। फिर दिल्ली के गली-कूचों में 126 दिन तक जो घमासान युद्ध हुआ, उस सबका शब्दों में वर्णन ही सम्भव नहीं। दिल्ली की धरती ने अपनी ही छाती पर वह सब कुछ सहा। अपने ही पुत्रों के रक्त से नहा कर धरती कांप उठी। यमुना मैया का पानी लाल हो गया। दिल्ली के इर्द-गिर्द बनी साढ़े 5 मील लम्बी दीवार में लगे हुए तोपों के गोलों के घाव आज तक हरे हैं। 103 वर्ष पश्चात् भी वे एक मूक सन्देश दे रहे हैं।

यह खूनी दरवाजा, दिल्ली गेट के पास जहाँ बहादुरशाह के जवान बेटों को फांसी दी गई। यह चांदनीचौक, सड़क के बीचोंबीच चलने वाली नहर में अनेकों सिसकते प्राण और तड़पती आत्माएं आज तक पड़ी हैं। फव्वारा, जहाँ मुगलों का फांसीघर था। मातृभूमि के प्रेम पर जीवन को न्योछावर करने वाले अनेक वीरों ने यहाँ हंस-हंस कर फाँसी की डोरी को चूमा।

हुमायूँ के मकबरे में बहादुरशाह को कैद किया गया। अंग्रेज कर्नल हेडीसन ने बहादुरशाह के बच्चों की हत्या करने के पश्चात् उनके शीश थाली में डाल कर बहादुरशाह को भेंट किए। उस बूढ़े पिता के कलेजे पर जैसे छुरियाँ चल गईं। फिर कर्नल हेडीसन ने जले पर नमक छिड़कते हुए बहादुरशाह को व्यंग्य से कहा—

दमदमे में दम नहीं, अब खैर मांगो जान की।
शाह, हमने देखली, तलवार हिन्दोस्तान की।

तुरंत बहादुर के भीतर से भारत का स्वाभिमान गरज कर बोल उठा—

गाजियों में बू रहेगी, जब तलक ईमान की।
तख्ते लन्दन तक चलेगी, तेग हिन्दोस्तान की।

फिर इस बूढ़े शाह के साथ क्या कुछ हुआ वह आंसू भरी कहानी है। अपने प्यारे स्वदेश से दूर रंगून में जलावतन किया गया। यह देशभक्त शाह वहीं तड़प-तड़प कर मर गया।

कानपुर और कालपी का चित्र भी बड़ा रोमांचकारी और बड़ा भयानक है। नानाजी का वह शौर्य, उनकी देशव्यापी योजना, लाल कमल और चपाती के चिह्न द्वारा देश में क्रान्ति का सन्देश प्रसारित करना, वह युद्ध नीति और वह रण चातुर्य, क्रान्ति के प्रचारकों—सन्तों-फकीरों को भारत के कोने-कोने में भेजना, विदेशों में प्रचार के लिए मन्त्री अजीमुल्ला खां को विलायत भेजना। सब कुछ एक चित्रपट की नाईं आंखों के सम्मुख दौड़ा चला आता है।

जहाँ जवानों के जौहर चमके वहाँ वृद्धों की वीरता भी पीछे नहीं रही। देशव्यापी महाक्रान्ति में बिहार प्रांत ने भी अपना गौरवपूर्ण योग दिया। जगदीशपुर के 80 वर्ष के वृद्ध राणा कुंअरसिंह की नसों में एक अभिनव जवानी जाग उठी

थी। उस बूढ़े किन्तु पक्के शिकारी ने चुन-चुन कर ब्रिटिश सेनाओं का शिकार किया। उस बूढ़े रणबांकुरे ने आरा, कालपी, बांदा, रीवां और आजमगढ़ में अपने रण कौशल से अंग्रेज को खूब छकाया। अंग्रेज उसकी व्यूह रचना देखकर दंग रह गये। विजयी कुंअरसिंह जगदीशपुर लौटते हुए जब गाजीपुर के पास गंगा पार कर रहे थे तो एक अंग्रेज की गोली से उन की भुजा आहत हो गयी। यह विचार कर कि इस कारतूस में जिस अपवित्र चर्बी का प्रयोग किया गया है, उसके शरीर में रहने से मेरा धर्म नष्ट होता है, वीर कुंअरसिंह ने अपनी ही तलवार से बायीं भुजा काट कर गंगा की धारा में समर्पित कर दी। इस प्रकार गंगा मैया को अपना हस्तकमल भेंट करने वाले वीर शिरोमणि कुंअरसिंह का यश आज तक बिहार के गांव-गांव में वहाँ की नारियों के मुख से सहज निसृत होने वाले लोकगीतों में गूंजता है—

बाबू कुंअरसिंह तुम्हरे राज बिन
नेता कुंअरसिंह तुम्हरे राज बिन
राणा कुंअरसिंह तुम्हरे राज बिन
अब न रंगैहू केसरिया
अब न रंगैहू केसरिया।

बिहार की ललनाओं के सुहाग की रक्षा करने वाले राणा कुंअरसिंह के राज बिना अब वहाँ की युवतियाँ सुहागसूचक केसरी परिधान रंगा कर क्या करें?

जहाँ गंगा और यमुना के तटों पर खून की होली खेली गयी, वहीं पंजाब की नदियाँ भी लाल हुए बिना न रहीं। 26 नंबर पलटन के कुछ थके हुए सिपाही अजनाले से 6 मील दूर रावी नदी के तट पर पड़े हुए थे। इन निहत्थे सिपाहियों पर गोलियों की वर्षा प्रारम्भ कर दी गयी। कुछ जल में डूब मरे, कुछ गोलियों से मरे, जो तैर कर एक छोटे से टापू में पहुँचे उन 282 सैनिकों को संगीनों के साये में अजनाला लाया गया। वहाँ बकरीद के दिन उन्हें बकरों के समान उड़ा दिया गया। 45 सैनिकों को एक गुम्मद में से घसीट-घसीट कर एक कुएं में फिंकवा कर कुएं को भरवा दिया गया और उस पर एक टीला बनवा दिया गया।

फिर कानपुर से प्रयागराज तक, जी. टी. रोड के दोनों और वृक्षों से लटकती हुई भारतीयों की लाशों का दृश्य कितना हृदयविदारक था। अत्याचार की दारुण कहानी का ज्ञान ब्रिटिश सैनिकों के उन पत्रों से प्राप्त होता है जो उन्होंने उन्हीं दिनों अपने सम्बन्धियों को लिखे। एक अंग्रेज सैनिक लिखता है, 'हमने एक बड़े गांव में आग लगा दी। जनपूर्ण इस गांव को हमने घेर लिया। आग की लपटों से लोग गांव से निकल कर भागने लगे। तब हमने उन्हें गोलियों से उड़ाना आरम्भ कर दिया।' यह पत्र Charles Balls Indian Mutiny Vol. I के पृष्ठ 243, 244 पर मुद्रित

है। एक अन्य अंग्रेज का वर्णन है—'सड़कों के चारों रास्तों पर और बाजारों में जो लाशें टंगी हुई थीं उनको उतारने में सूर्योदय से सूर्यास्त तक मुर्दे ढोने वाली 8 गाड़ियाँ लगातार 3 महीनों तक काम करती रहीं। इस प्रकार एक स्थान पर 6000 मनुष्यों को देखते ही देखते खत्म कर के सुला दिया गया।'

बिजली और आंधी का साकार पुतला तांत्या टोपे। उसका स्मरण ही कितना रोमांचकारी है। देश पर संकट के बादल देखकर, एक छोटे से आश्रम में बैठा हुआ बच्चों को संस्कृत पढ़ाने वाला उपाध्याय तांत्या एकदम सेनापति तांत्या बनकर जाग उठा। देश में जहाँ से भी सहायता की पुकार आई; वह वहाँ पहुँचा और ब्रिटिश सेनापतियों के छक्के छुड़ा दिये। स्वयं ब्रिटिश इतिहासकारों की स्वीकारोक्ति है कि 'यदि तांत्या जैसे 6 सेनापति और हो जाते तो भारत में ब्रिटिश राज्य सदा के लिये समाप्त हो जाता।' कई इतिहासकारों का मत है कि जब ब्रिटिश सेना ने तांत्या टोपे को सोते हुए ही आकर घेर लिया तो उनके एक परममित्र नारायण राव ने तांत्या के वस्त्र पहन कर स्वयं को समर्पित किया तथा अपने वीर मित्र के मूल्यवान प्राण बचाने के हेतु वह स्वयं फांसी पर चढ़ गया।

झांसी का दृश्य कितना गौरवपूर्ण था। 22, 23 वर्ष की विधवा लक्ष्मीबाई ने बड़े-बड़े ब्रिटिश सेनापतियों के साथ एक रोमांचकारी युद्ध किया। वह मर्दानी वीरांगना लक्ष्मीबाई सचमुच दुर्गा के समान हाथों में दो नंगी तलवारें लिए, पीठ पर अपने नन्हे से बच्चे को बांधे हुए समरांगण में बिजली के समान अरिदल का संहार कर रही है। एक बार 9 दिन-रात लगातार युद्ध में बीते, बच्चा भूख-प्यास से व्याकुल हो छटपटाने लगा। युद्धस्थल से तनिक दूर हट कर रानी ने अपने भूखे पुत्र को नदी का जल पिलाया, कुछ चने खिलाये, अचानक लेफ्टीनेंट बौकर आ धमका। उसने अपना खड्गधारी हाथ बढ़ाकर उस बच्चे को दुलार देती हुई माता के ऊपर मारा।

लक्ष्मीबाई दुर्गा के समान घोड़े की एक रकाब पर पैर रखे खड़ी थी साक्षात् चंचला के समान नीचे से खड्ग का एक अद्‌भुत वार मारकर बौकर का वह खड्गधारी हाथ खड्ग समेत काट कर परे फेंका। बौकर चिल्लाता रहा पर रानी हवा हो गई। ऐसी वीरता की साक्षात् प्रतिमा उस मस्तानी, मरदानी रानी लक्ष्मीबाई का स्मरण हृदय को कितना उद्वेलित करने वाला है। उसके दर्शन से हृदय की सुप्त वीरता एकदम जाग उठती है। राष्ट्र के हृदय में सोई हुई स्वातंत्र्य स्वाभिमान की भावना जीवित जागृत होकर खड़ी हो जाती है।

इन सब वीरों की वंदना, क्रान्ति के प्रचारक सन्तों-फकीरों की वन्दना, रोटी और लाल कमल की वन्दना, देश के शहीदों की अनवरत वन्दना, अनन्त वन्दना।

सन् 1857 की स्मृतियों को हृदय में संजोए हुए देश के खण्डहरों की वन्दना, खून भरी नदियों की वन्दना, युद्ध के मैदानों की वन्दना, समरस्नात दुर्गों की वन्दना, फांसी वाले वृक्षों की वन्दना, शहीदों के रक्त की वन्दना, तड़पती आत्माओं की वन्दना, सिसकते प्राणों की वन्दना, स्वातंत्र्य ज्वाला की वन्दना, भरतभूमि की, भारतमाता की वन्दना, कोटि-कोटि वन्दना, असंख्य कोटि वंदना।

अब आर्थिक गुलामी

राजनीतिक गुलामी दुनिया से उठ गई इस सदी में आकर क्योंकि राजनीतिक गुलामी महंगी पड़ने लगी। राजनीतिक की जगह आर्थिक गुलामी (इकोनामिक स्लेवरी) नई ईजाद हो गई। राजनीतिक गुलामी का मतलब है, एक मुल्क पर पूरा कब्जा रखो। आखिर कब्जे का फायदा यह है कि उसका शोषण करो। यह पुराना ढंग था। अब नया ढंग यह है कि कब्जा रखने में बड़ी मुश्किल होती है, तो मुल्क इनकार करता है शोषण से। झगड़ा करता है, विरोध करता है। दिन-रात गोली चलाओ, पुलिस बिठाओ, मिलिटरी बिठाओ फिर भी झंझट जारी रहती है। तब एक दूसरी नई तरकीब ईजाद हो गई, वह है इकोनामिक स्लेवरी—आर्थिक गुलामी, राजनीतिक नहीं। राजनीतिक रूप से मुक्त कर दो और आर्थिक रूप से भीतर बाजार में हाथ डालकर शोषण जारी रखो।

इसलिये दुनिया में सब मुल्क आजाद हो गये और सब मुल्कों को, जो उनके मालिक थे उनको आजाद कर दिया है, सिर्फ उनके बाजारों पर कब्जा कर लिया है। उनके बाजारों का शोषण जारी है। हम समझते हैं स्वतंत्र हो गये, लेकिन बाजार में जाकर देखें तो आलपीन से लेकर हवाई जहाज तक सब कहीं और से बनकर चला आ रहा है, वहाँ से आर्थिक शोषण जारी है। सारी दुनिया में यह समझ आ गई कि अब राजनीतिक गुलामी महंगी पड़ती है, अब आर्थिक गुलामी ही उचित है। बाजार पर कब्जा रखो। इसलिये सारी दुनिया स्वतंत्र हो गई है।

—आचार्य रजनीश

आर्य जाति का यूरोप में विस्तार

मनु के जलप्लावन की घटना विश्व की सर्वप्रसिद्ध ऐतिहासिक अथवा प्रागैतिहासिक घटना है जिसका उल्लेख भारतीय, ईरानी, यहूदी, ईसाई, इस्लामी, बेबिलोनी, मिस्री, यूनानी, चीनी तथा चाल्डिया के प्राचीन ग्रंथों में पाया जाता है। मनु के जलप्लावन के समय सारा तत्कालीन आर्यावर्त्त हिमालय से विंध्याचल तक जल में डूब गया था। मनु भगवान ने अपनी नौका को हिमालय के उत्तुंगशिखर (सम्भवतः मनाली) से जाकर बांधा था। उस समय आर्य जाति के बहुत से सदस्यों ने अफगानिस्तान, ईरान के रास्ते से जाकर एशिया एवं यूरोप की सीमा पर स्थित सबसे ऊँचे पर्वतशिखर ऐलबुरूण (काकेशस पर्वत) की छाया में शरण ली।

डॉ. ज्वालाप्रसाद सिंहल ने अपने ग्रंथ The Sphink Speaks से मनु के जलप्लावन की घटना को प्राचीन भूगर्भ शास्त्र के आधार पर पाँच लाख वर्ष पुराना सिद्ध किया है।

मनु के जलप्लावन की घटना को कुरान में 'तूफाने नूह' तथा बाइबिल में Noahs Great Deluge कहा गया है। काकेशस पर्वत की तलहटी में तथा कश्यप सागर (कैस्पियन सागर) के तट पर जहाँ आर्य जाति के बीज की रक्षा उस भयंकर जलप्रलय में हुई उसे आर्यानाम्बीजम् कहा गया। वही कालांतर में आर्यनम् बायजो कहलाया तथा आजकल 'अजरबेजान' कहलाता है। वर्तमान काल में 'अजरबेजान' नाम का एक राज्य सोवियत रूस के अन्तर्गत है जिसकी राजधानी प्रसिद्ध ज्वालामुखी वाला नगर बाकू है तथा इसी नाम का उसकी सीमा से सटा हुआ अजरबेजान ईरान में भी है।

इसी आर्यानाम्बीजम् (अजरबेजान) को यूरोप के अनेक विद्वानों ने भ्रान्ति से आर्यों का मूल स्थान मानकर यूरोपवासी आर्यों को काकेशियन कहना प्रारम्भ किया। आर्यानाम्बीजम् क्षेत्र यूरोप तथा एशिया के मिलन बिन्दु पर स्थित होने के कारण इस क्षेत्र को यूरेशिया नाम से भी पुकारा जाता है। किन्तु वास्तव में अजरबेजान आर्यों के बीज का स्थान न होकर जलप्रलय के समय आर्यों के बीज की रक्षा का स्थान बना था।

उसी जलप्रलय की उथल-पुथल में एशिया तथा यूरोप दोनों महाद्वीपों में बहुत बड़े-बड़े परिवर्तन हुए। भूगर्भवेत्ता स्वीकार करते हैं कि लगभग उसी समय दक्षिण भारत का त्रिकोण लैमूरिया महाद्वीप से पृथक् होकर आर्यावर्त्त से आ मिला। सम्भवतः उसी समय ब्रिटिश द्वीप यूरोप से पृथक् होकर अस्तित्व में आया।

आर्यानाम्बीजम् के प्राचीन हिन्दू मन्दिर तथा वहाँ संस्कृत शिलालेख के चित्र संस्कृति विहार रांची में सुरक्षित हैं।

जलप्लावन के बाद अजरबेजान से आर्यों की एक शाखा लौटकर पुनः भारत में आयी तथा एक वहीं से आगे यूरोप की ओर बढ़ गई। अतः रूस, लिथूनिया, आर्मेनिया, रूमानिया, बुल्गारिया, चेकोस्लोवाकिया, जर्मनी, इटली, फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल तथा इंग्लैण्ड आदि में स्थानीय जंगली जातियों पर अपनी विकसित सभ्यता का प्रभाव जमाती हुई आर्य जाति सारे यूरोप तथा अमरीका, कनाडा तक फैल गई। रूस में स्लाव जाति के लोग भी थे जो यूगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया तथा रूस में आज तक विद्यमान हैं। किन्तु ये सब जातियाँ आर्य जाति में घुल-मिल कर आर्य ही बन गईं।

ईरान देश का मूल नाम आर्यान देश है। वह हमारे पड़ोस में होने के कारण उसे पार्श्व आर्यान कहा गया। पार्श्व से पारस, फ़ारस और पर्शिया शब्द बने तथा आर्यान से ईरान। ईरान के शाह अभी तक मुसलमान होने के उपरान्त भी आर्यमिहिर (आर्यों का सूर्य) की उपाधि धारण करते हैं। अफगानिस्तान में संस्कृत की पढ़ाई अनिवार्य है तथा उन्होंने अपने देश की वायु सेवा का नाम Aryan Air Ways रखा है।

लिथूनिया में भारतीय देवताओं इन्द्र, वरुण, नासत्य आदि का प्रचार हुआ। आर्मेनिया में प्राचीन कृष्ण मन्दिर का प्रमाण मिला है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन रूसी शब्द की ऋषि से व्युत्पत्ति मानते हैं, मैक्समूलर जर्मनी को शर्मण्य देश (ब्राह्मणों का देश) मानता था, 'पाल डायसन' नामक जर्मन विद्वान अपने आप को 'पालदेव सन' कहते थे। जर्मन सरकार अपने प्राच्य विद्या प्रकाशनों में जर्मनी को वेदों का दूसरा घर (Veda's Second Home) प्रचारित करती है.....जर्मन कवि रूखर्ट (Ruckert) की भारत सम्बन्धी कविता अभी तक सर्वश्रेष्ठ कविता में गिनी जाती है। हिटलर अपने आपको सबसे शुद्ध आर्य मानता था। जर्मनी के राष्ट्रध्वज पर स्वस्तिक लहराता था।

इंग्लैण्ड के बुद्धिजीवी अपने आर्य रक्त पर गर्व करते हैं, इंग्लैण्ड के पड़ोस में आयरलैण्ड द्वीप नाम से ही आर्यों का देश सिद्ध होता है। वहाँ के राष्ट्रपति डी.

वलेरा ने कहा है 'आयरिश लोग आर्य जाति की पूर्वी लीलाभूमि से आये हैं। Irish people came from the Eastern Cradle of the Aryan Race. अमरीका के प्रसिद्ध दार्शनिक एवं प्राच्यविद्या मनीषी विलडूरेन्ट ने छः खण्डों में प्रकाशित लगभग 6000 पृष्ठों के अद्वितीय ग्रंथ सभ्यता का इतिहास (The Story of Civilisation) में स्वीकारा है।

अपनी विदेश यात्राओं में मैंने अमरीका की नार्थ कोरेलाइना यूनिवर्सिटी में यह पाठ पढ़ाते हुए देखा है—यूनान ही विश्व सभ्यता की जननी है। मैंने प्रतिवाद किया—मानव सभ्यता की आदि जननी भारत है न कि यूनान। इस पर एक रोचक वाद-विवाद छिड़ गया। मैंने पूछा—2300 वर्ष पूर्व जब सिकन्दर की विश्वविजय की आकांक्षा थी तो उसने यूनान से, जो यूरोप का एक भाग है, अन्य यूरोपीय देशों की ओर प्रयाण क्यों नहीं किया। इसके उत्तर में वहाँ के अध्यापक ने कहा—इसका कारण हम नहीं जानते हैं। मैंने हंसकर कहा—बेचारा सिकन्दर इन देशों का अभियान तो तभी कर सकता था जब इन देशों का कहीं कोई अस्तित्व होता। उस समय तक लगभग सारे यूरोप में मनुष्यों और पशुओं का कच्चा मांस खानेवाले, असभ्य, नंगे, बर्बर लोगों का निवास था। जिनकी चर्चा करना तक भी यूनानी इतिहासकारों ने अपनी लेखनी का अपमान समझा।

चौथी शताब्दी तक इंग्लैण्ड तो रोमन साम्राज्य का गुलाम था। उस काल की लैटिन भाषा के कोष में आंग्ल, एंग्लो आदि शब्दों का अर्थ ही गुलाम किया जाता था। इंग्लैण्ड के लोग रोम के बाजारों में गुलामों की तरह बिकते थे। उन्हें नग्न-अर्ध नग्न रूप में मण्डी में बैठाकर क्रय-विक्रय किया जाता था।

मास्को से प्रकाशित 'Ancient History' Davies द्वारा लिखित An outline of the History of World तथा C या O Stephenson द्वारा लिखित Mediaeval History के अनुसार रोम गुलामों पर सबसे अधिक अत्याचार करने वाला साम्राज्य था। वहाँ अन्य गुलामों के समान अंग्रेज गुलामों को भी रोमन अमीरों के द्वार पर गले में जंजीर बांध कर कुत्ते की तरह बैठाया जाता था। उन्हें गलियों या चौराहों में सोना पड़ता था। उनसे अपराध होने पर उन्हें समुद्र में मगरमच्छ के सामने जीवित ही डाल दिया जाता था और उनके निरपराध होने पर उन्हें खुले गोलाकार क्रीड़ाक्षेत्र (Stadium) में हिंस्र पशुओं से अथवा गुलामों को आपस में शस्त्रों से लड़वाकर मनोविनोद किया जाता था। हार जाने पर उनको मारकर उसके शव को रथ के पीछे फंसाकर घसीटा जाता था।

यूरोप के अंधकारयुगीन इतिहास का एक पुराना मानचित्र मिला है ई. पू. 6 शती का। जिसमें धरती को एक गोल थाली जैसा दिखाया गया है तथा उसमें यूरोप

और एशिया का बेढप चित्र ऊपर-नीचे दिखाया गया है। उसमें इंग्लैण्ड का कोई संकेत नहीं है।

बाइबिल में धरती को चपटा मानने के कारण गलैलियो, जीनो तथा ब्रूनो आदि वैज्ञानिकों द्वारा धरती को गोल कहने के कारण सताया गया, जीवित जलाया गया। भारत के वेद में भूगोल शब्द का प्रयोग भूमि के गोल होने का प्रमाण है।

भारत गौरव

भूलोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है॥ 15॥

शैशव दशा में देश प्रायः जिस समय सब व्याप्त थे,
निःशेष विषयों में तभी हम प्रौढ़ता को प्राप्त थे।
संसार को पहले हमीं ने ज्ञान-भिक्षा दान की,
आचार की, व्यापार की, व्यवहार की, विज्ञान की॥ 45॥

'हाँ' और 'ना' भी अन्य जन कहना न जब थे जानते,
थे ईश के आदेश तब हम वेद मंत्र, बखानते।
जब थे दिगम्बर रूप में वे जंगलों में घूमते,
प्रासाद-केतन-पट हमारे चन्द्र को थे चूमते॥ 46॥

जब मांस-भक्षण पर वनों में अन्य जन थे जी रहे,
कृषि-कार्य करके आर्य तब शुचि सोमरस थे पी रहे।
मिलता न यह सात्त्विक सु-भोजन यदि शुभाविष्कार का,
तो पार क्या रहता जगत् में उस विकृत व्यापार का॥ 47॥

कविवर मैथलीशरण गुप्त : भारत-भारती

पुराणों में नील नदी का अन्वेषण

वर्तमान विज्ञान के पारंगत पाश्चात्य विद्वानों ने भी भूगोल आदि विषयों को जानने के लिये पुराणों से कितनी शिक्षा ली है, उसका एक निदर्शन मिस्र (इजिप्ट) की सुप्रसिद्ध नील नदी है। वह इतनी बड़ी है कि उस देश का विभाग-सा कर देती है। भौगोलिक दृष्टि से नील नदी का वही स्थान है जो भारत में गंगा का है।

वह नील नदी कहाँ से निकलती है, उसका उद्‌गम स्थल कौनसा है? इसका पता कुछ शताब्दियों पहले वहाँ किसी को नहीं था। परन्तु उसके उद्‌गम स्थल की जिज्ञासा प्रायः सबको बनी रहती थी।

भारतीय पुराणशास्त्र के ज्ञाता और भूगोल सम्बन्धी अन्वेषक यशोलब्ध श्री विल्फोर्ड महाशय ने पुराणों के वर्णनों के आधार पर नील नदी के उद्‌गम-स्थल का पता लगा लिया। उन्होंने पहले पुराणों के वर्णन के अनुसार नील नदी के उद्‌गम स्थल का मानचित्र बनाकर उसे प्रकाशित कर दिया।

यूरोपीय विद्वानों का एक ऐसा वर्ग भी था, जो भारतीय साहित्य के गौरव का अनुभव करने में अपने को असमर्थ पाता था। उनमें श्री एच. एच. विल्सन, श्री कनिंघम, बोसेण्ट मार्टिन आदि यूरोप के प्रसिद्ध विद्वानों ने श्री विल्फोर्ड का उपहास किया तथा नील नदी के उद्‌गम स्थान के सम्बन्ध में पुराणों के आधार पर जो कुछ श्री विल्फोर्ड ने कहा था, उस सबका खण्डन किया। श्री विल्फोर्ड के द्वारा विरचित नील नदी के मानचित्र को उन्होंने अविश्वसनीय ठहरा दिया और स्पष्ट रूप से कहा कि श्री विल्फोर्ड ने व्यर्थ ही पुराणों का महत्त्व स्वीकार करके पक्षपात से काम लिया है।

उस समय एक लेफ्टिनेण्ट जे. एच. एस्पीक नामक विद्वान ने भी नील नदी के उद्‌गम-स्थल के विषय में परिश्रम आरंभ किया। उन्होंने पहले सभी विचारों का अध्ययन किया, फिर स्वयं नील नदी के उद्‌गम स्थल को प्रत्यक्ष देखने के उद्देश्य से श्री विल्फोर्ड का मानचित्र लेकर मिस्र में भ्रमण आरंभ किया और उसी मानचित्र के आधार पर मिस्र के उन सभी स्थानों को ढूंढ़ निकाला।

अंततः मानचित्र के आधार पर ही यात्रा करते हुए उन्होंने नील नदी के उद्‌गम स्थान को भी अपनी आंखों से देखा। यह समस्त विषय 'डिस्कवरी ऑफ दि सोर्स

ऑफ दि नील' नामक पुस्तक में उन्होंने नील नदी के अन्वेषण के विषय में तथा श्री विल्फोर्ड के विषय में स्पष्ट लिख दिया है।

इस विषय का विवरण एशियाटिक रिसर्चेज के तीसरे भाग में मुद्रित हुआ है। हिन्दी की पुरानी पत्रिकाओं में भी उनका सारांश अनेक बार प्रकाशित हुआ है।

त्रिविष्टव (तिब्बत)=स्वर्ग

प्राचीन काल में तिब्बत ही स्वर्ग था। गंगा तिब्बत (स्वर्ग) से आती है। भगीरथ से पूर्व उसका सारा जल हिमालय से उत्तरी पठार की ओर बहता था। भगीरथ ने (इंजीनियरिंग की) तपस्या द्वारा गंगा को भारत में आने का मार्ग दिया। गंगा मनुष्य द्वारा निर्मित सबसे बड़ी नदी है।

शंकरधाम कैलास तिब्बत में है। प्राचीनकाल में लोग तपस्या के लिये कैलासवास या तिब्बत जाते थे और फिर लौट आते थे। तिब्बत का अधिपति अर्जुन भी वहीं तपस्या के लिये गया जहाँ उर्वशी का प्रसंग आया, वहीं से गांडीव लाया और नेपाल से पाशुपातास्त्र शंकर भगवान् से लाये। पांडव लोग अपने उत्तरजीवन में उसी मार्ग से स्वर्ग गये। वहाँ शीत और हिम अधिक होने से अनेकानेक लोग गल जाते थे इसलिये स्वर्गवास का अर्थ मृत्यु रूढ़ हो गया। अभी भी मृत्यु के पश्चात् सिर उत्तर दिशा में कर दिया जाता है।

—प्रो. ओबराय

सनातन धर्म स्वयं जीवन है; यह ऐसी वस्तु है जिस पर उतना विश्वास करना नहीं, जितना इसे जीना होता है। यह वह धर्म है जिसे प्राचीनकाल से इस प्रायद्वीप के एकांत में मानवता के उद्धार के लिये प्रेम-पूर्वक रखा गया। यही धर्म (मानवता को) देने के लिये भारत का उदय हो रहा है। यह उस प्रकार नहीं उदित हो रहा जैसे दूसरे देश होते रहे हैं अपने स्वार्थ या जब वह शक्तिवान हो तो निर्बलों को पददलित करने के लिये। यह इसलिये उदित हो रहा है ताकि जो प्रकाश इसे दिया गया था वह पूरे जगत् पर फैलाये। भारत सदैव मानवता के लिये अस्तित्व में रहा है, अपने लिये नहीं और मानवता के लिये, न कि अपने लिये उसे (पुनः) महान् होना है।

—ऋषि अरविन्द

भारत तथा ईरान—इतिहास के सहोदर भाई

इतिहास के रंगमच पर भारत तथा ईरान के सांस्कृतिक एवं जातिगत सम्बन्ध उतने ही पुराने हैं जितना पुराना आर्य जाति का इतिहास अथवा विश्व इतिहास का प्रथम अध्याय हो सकता है। ईरान के शाह के ये शब्द बड़े युक्ति-युक्त हैं, 'हमारे दोनों देशों की संस्कृतियाँ महान् और मूल रूप से एक रहीं और समय की हजारों साल की दौड़ में हम निरन्तर साथ रहे।'

स्वयं ईरान देश का नाम ही आर्यानः (अर्थात् आर्याणां देशः) था। यही आर्यान नाम धीरे-धीरे ईरान उच्चारण किया जाने लगा। स्वयं ईरान सरकार ने अपनी प्रकाशित पुस्तक Six Centuries of Glory के प्रथम पृष्ठ पर स्वीकार किया है—'ईरान का ऐतिहासिक व्याकरण के अनुसार, यौगिक अर्थ है 'आर्यों का देश।'

आर्यों की ही एक शाखा आर्यों के आदिदेश आर्यावर्त्त अथवा सप्तसिंधव में बसती थी तथा आर्यों की ही दूसरी शाखा पड़ोस के देश आर्यान (ईरान) में जा बसी। हमने उन्हें पार्श्व आर्यान (पड़ोस के आर्य) कहा। पार्श्व से पारस, पारसी, पारसीक, फारस, पर्शिया आदि नाम पड़े। आर्यान से ईरान नाम की व्युत्पत्ति हुई। कुछ विद्वान पारस नाम की व्युत्पत्ति परशु जाति वाचक नाम से मानते हैं जो मद्रदेश (पश्चिमी पंजाब) से ईरान गए थे, इन्हीं के नाम पर ईरान में मीडियन राज्य का नाम चला। दूसरी ओर हमारे ईरानी बंधुओं ने हम आर्यावर्त्त के आर्यों को सप्तसिंधु क्षेत्र में बसने के कारण हफ्त हिन्दु अथवा हिन्दू आर्य कहा। इस प्रकार हमने उन्हें प्रेम से पड़ोस के आर्य कहा तथा उन्होंने हमें सिंधु आर्य या हिन्दू आर्य कहा। प्राचीन पारसी भाषा में सैकड़ों शब्दों में 'स' का उच्चारण 'ह' हुआ है, यथा सप्त-हफ्त। सप्ताह-हफ्ताह। सुर-हुर। असुर-अहुर। सोम-हौम। सरयू-हरयू। सरस्वती-हरहवती। सेना-हेना।

ईरान देश के पश्चिमोत्तर कोने पर कृष्ण सागर तथा कश्यप सागर के बीच काकेशस पर्वत की तलहटी में वह ऐतिहासिक स्थान है आर्याणां बीजम्, जिसे आर्यनम बायजो तथा आजकल अजरबेजान कहा जाता है। यह वह स्थान है जहाँ मनु के जलप्लावन के समय पश्चिमोत्तर के सूखे पठारों की ओर बढ़ते हुए आर्यों ने काकेशस पर्वत श्रृंखला में एल ब्रूज नामक यूरेशिया क्षेत्र के सर्वोच्च शिखर पर

जाकर शरण ली। कई इतिहासकार इसे ही आर्यों की शरणभूमि के स्थान पर मूल भूमि मानते हैं। अजरबेजान नाम का एक प्रान्त ईरान में है तथा उसी का आधा भाग अजरबेजान, आर्मेनिया (रूस) में है। ईरान विज नाम भी उसी का पर्याय है।

वंक्षु नदी (जिस का वेदों में वर्णन है) से लेकर हिन्दुकुश पर्वत तक प्राचीन वाह्लीक प्रदेश है जिसे आजकल के ईरान में बलख कहा जाता है। भारतीय पुराणों में इसी वाह्लीक देश को केतुमालवर्ष भी कहा गया था। इसे ही यूनानियों ने बैक्ट्रिया कहा था। वेंदिदाद नामक ग्रंथ में इसी को पताकाओं का नगर कहा गया है जो केतु (पताका) की माला का ही समानार्थक है।

ईरान में सरयू नामक नदी है जिसका उच्चारण हरयू तथा हरिरुद होता है। इसका प्रसिद्ध नगर हेरात है। इतिहासकार प्लिनी के अनुसार सैल्यूकस निकाटोर ने चंद्रगुप्त मौर्य से सन्धि के पश्चात् आर्याना प्रदेश, जिसकी राजधानी हेरात थी, भारतीय सम्राट् को भेंट कर दिया था।

सरस्वती (हरहवती) क्षेत्र को यूनानी लेखकों ने अराचोसिया लिखा। वहाँ नदी पर अनेक पुल होने के कारण उसे संस्कृत साहित्य में सेतुमन्त तथा ग्रीक उच्चारण में हेतुमन्त तथा वर्तमान उच्चारण में हेलमन्द कहा जाता है। इस क्षेत्र का प्रसिद्ध नगर गजनी आजकल अफगानिस्तान में है।

ईरान के प्राचीन पारसी धर्म पर वैदिक धर्म की छाप सुस्पष्ट है। अनेक वैदिक मंत्र मात्र थोड़े परिवर्तन से ईरानी धर्म पुस्तक जेदं अवस्ता (छंद अवस्था) तथा गाथा साहित्य में गूंजते हुए दिखाई देते हैं—

(पारसी मंत्र)	(संस्कृत रूप)
तम अमवन्तय याजतम्।	**तम अमवन्तम याजनम्**
सूरग दामोहु सविस्तम।	**शूरम् धामसु शविष्ठम्**
मिथ्रम वजाइ जओथाव्यो।।	**मित्रम यजै होत्राम्यः।।**

अर्थ—मैं उस रक्षा करने वाले, कल्याणकारी, बलवान, धामों में सृष्टि करने वाले मित्र (सूर्य) देवता का हविष से यजन करूँ।।

ऋग्वेद का इंद्र-वृत्रासुर युद्ध जेंद में भी वर्णित है। पारसी लोग सदा से अग्नि पूजा करते आए हैं। वह वेद की यज्ञाग्नि ही है। मित्र पूजा (मिथ्र पूजा अर्थात् सूर्य पूजा) ईरान ने ही सारे संसार में प्रचारित की। रोम के सम्राट् जूलियस सीजर भी सूर्य पूजक थे। भारतीय देवी-देवता—सूर्य, चंद्र, इन्द्र, वायु, जल, यम, अग्नि आदि सभी प्राचीन ईरानी धर्मग्रंथों में प्रतिष्ठित हैं।

पारसी जनों के सबसे बड़े देवता अहुरमज़दा हैं जिसका अर्थ है महान् देवता।

पारसियों के प्राचीनतम धर्म संस्कारक अवतारी पुरुष जरदुस्त्र हुए हैं जिनका काल ईसा से कम से कम 600 वर्ष पूर्व माना जाता है। जेंद नामक धर्मग्रंथ में

वर्णन है कि पृथ्वी ने गौ का रूप धारण कर ईश्वर के पास जाकर अपनी रक्षा के लिए जरदुस्त्र को माँगा। यह अवतार हेतु प्रार्थना शत-प्रतिशत भारतीय कल्पना है। वे भी अपने को गो एवं वेद (ज्ञान) के रक्षक मानते हैं।

पारसियों के प्राचीन ग्रंथ 'शातीर' में वर्णन है कि ईरान के गश्ताशप नामक बादशाह ने अपने गुरु जरदुस्त्र से धर्म चर्चा करने हेतु भारत से व्यास नाम के मनीषी को बुलाया था। 'अकनु बिरह मने व्यास नाम अज हिन्द आमद वस कि दाना चुनानेस्त्र।' अर्थात् हिन्द से व्यास नाम का एक हिन्दू ब्राह्मण आया। उसके समान बुद्धिमान कोई दूसरा नहीं था।

ईरान के सर्वप्रथम सर्वाधिक प्रतापी आर्य राजा हुए कुरुष् जिसे यूनानी इतिहासकारों ने Cyrus लिखा। उसने असीरिया, बेबीलोनिया, लीडिया तथा लघु एशिया को जीता। दिग्विजय में वह चंद्रगुप्त मौर्य के समान तथा न्यायप्रियता में प्रियदर्शी अशोक के समान था। सन् 1971 में उस प्रतापी आर्य सम्राट् की स्मृति में उसके साम्राज्य संस्थापन के 2500 वर्ष पूर्ण होने पर एक विराट् आर्य महोत्सव किया गया। उसकी प्राचीन राजधानी पसारगढ़ी (यूनानी नाम पर्सिपोलिस) में अलौकिक वैभव एवं ऐश्वर्य के साथ यह महोत्सव मनाया गया। भारत सरकार ने राजा कुरुष् की स्मृति में विशेष डाकटिकट चलाए तथा भारत के महामहिम राष्ट्रपति स्वयं उस आर्यों के गौरव सम्राट् कुरुष् को नमनांजलि चढ़ाने पर्सिपोलिस गये। पर्सिपोलिस में विराट् नंदी वृषभ की मूर्ति संसार में बेजोड़ है। राजा कुरुष् के पश्चात् उसके वंशज राजा धारयवसु (Darius) ने भी आधी दुनिया को जीता। 480 ई. पूर्व में धारयवसु के पुत्र सम्राट् खषयार्श (जेरेक्सेज) ने अपनी सेना में भारतीय धनुर्धरों को साथ लेकर यूनान पर चढ़ाई की। इन भारतीय धनुर्धरों के तीर का फल इस्पात का बना हुआ था। तब तक पश्चिम के किसी देश को इस्पात का ज्ञान तक न था। इन वीर धनुर्धरों के शौर्य से खषयार्श ने मिस्र, अरब, सीरिया, फलस्तीन, मोसोपोटामिया, तुर्की, आर्मेनिया आदि को जीतने के बाद यूनान के थर्मोपिली के युद्ध में ऐतिहासिक विजय प्राप्त की।

प्रारम्भ से अब तक ईरान के सम्राट् आर्यमिहिर (आर्यों का सूर्य) की उपाधि धारण करते आए हैं। वे अपने आपको सूर्यवंशी आर्य मानते हैं अतः प्राचीन पहलवी राजाओं के ताज में भी मणियों से सूर्य बना हुआ है।

भारत व ईरान के सांस्कृतिक सम्बन्धों में मधुरतम कड़ी तब जुड़ी जब सातवीं शती में ईरान पर अरब आक्रमण होने पर सहस्रों पारसी अपनी आस्था की रक्षा तथा अपने अग्नि देवता की प्रतिष्ठा के लिए भारत की शरण में आए तथा इस चिर कल्याणमयी जगत् जननी भारत-माता ने अपने उन शरणागत पुत्रों को अपनी गोदी में अपार स्नेह एवं भावात्मक सुरक्षा का स्थान दिया।

ईरान में कई प्राचीन शिव मन्दिर हैं तथा प्राचीन सिक्कों पर शिव की प्रतिमा भी है। सर विलियम जोन्स का कथन है,'जेंद अवस्ता ग्रंथ के कोश में प्रत्येक दस शब्दों में से 6-7 शुद्ध संस्कृत के हैं।' भूतपूर्व ईरानी राजदूत श्री अली असगर का कथन है, 'ईरान का इतिहास और विशेषतया उसके प्रारम्भिक इतिहास को समझने के लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान बहुत ही जरूरी है। प्राचीन ईरानी तो लगभग संस्कृत ही थी। वर्तमान फारसी में भी संस्कृत के सहस्रों शब्द गूँज रहे हैं—

मातृ=मादर; पितृ=पिदर, भ्रातृ=बिरादर, दुहितृ=दुख्तर, श्वसुर=सुसुर, स्वसृ=हमशीरा, अगुष्ठ=अंगुश्त, उष्ट्र=उश्तर (ऊँट)। पुरोहित=फरिश्ता, आपताप= आफताब (सूर्य); मासताव=महताब (चंद्रमा), यक्ष्मा=जेरत्म; श्लाका=सलाख, गोधूम=गंदुम। वसिष्ठ=वहिश्त। अस्ति=अस्त; नास्ति=नेस्त। अहिफेन=अफ्चून, द्वार=दर, मास=माह.....इत्यादि।

ईरान के राजा नौशीखाँ ने पंचतत्र का प्रथम फारसी अनुवाद करवाया था जो 'अनवार सहेली' नाम से अभी तक प्रचारित है। तक्षशिला में अशोक ने ईरानी-लिपि में एक सुन्दर शिलालेख खुदवाया था। भारत के सम्राट् पुलकेशी (7वीं शती) के दरबार में ईरान के शाह खुसरो (2) ने अपना राजदूत श्रद्धाभाव से भेजा था। फैजी का गीता का फारसी अनुवाद तथा दाराशिकोह के गुरु सर्मद शहीद द्वारा करवाए गये उपनिषदों के फारसी अनुवाद ने सारे यूरोप को भारतीय तत्त्वज्ञान का प्रथम परिचय देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। गुरु नानक ने भी अपनी यात्रा में ईरान के पाटल बागानों तथा अंगूर बेलों के निकुंजों में अध्यात्म का अमृत बाँटा। विश्वकवि रवीन्द्र नाथ का जो सम्मान ईरान के शाह रजाशाह पहलवी ने किया उसके लिए बड़े-बड़े सम्राट् तो क्या देवता भी तरसते होंगे।

भारत में गुरु गोविन्दसिंह एवं छत्रपति शिवाजी फारसी में सुन्दर कविताएँ रचते थे। फारसी के जितने लेखक ईरान ने पैदा किए भारत ने उससे कुछ अधिक ही पैदा किए होंगे। शेख सादी की एक पंक्ति ने लाला लाजपतराय को बचपन से ही बलिदान के महायज्ञ के लिए प्रेरित कर दिया था। स्वामी रामतीर्थ की वाणी पर सूफियों के प्रेरक शेर मानो नृत्य करते रहते थे। सूफी धर्म तो मानो वेदान्त का ही ईरानी संस्करण है। मौलाना रूम, हाफिज़, शम्स तब्रेज आदि ने मानवता को जगाने में अपनी आत्मा की वाणी को गुँजाया।

एक फारसी कथा है कि दो भाई एक-दूसरे को पूर्णतया भूल गये। युगों के बाद वे पुराने गीतों की धुनें गुनगुनाते हुए, अपनी बांसुरी पर धुन बजाते हुए निकट आए। उन धुनों से दोनों कुल वालों ने एक-दूसरे को परस्पर पहचान लिया। आज आशा है इतिहास की कुछ बिसरी हुई धुनों को पुनः सुन कर भारत तथा ईरान, दोनों भाई पुनः गले मिलेंगे।

विश्व सभ्यता को भारत की देन–उजबेकिस्तान

सबसे बड़ा प्रजातन्त्र

उजबेकिस्तान जनसंख्या के विचार से मध्य एशिया के प्रजातन्त्रों में सबसे बड़ा प्रजातन्त्र है। जनसंख्या लगभग 70 लाख है। राजधानी ताशकंद की जनसंख्या 9 लाख है।

मुख्य नदियाँ

शिर दरिया, आमू दरिया, जरफसाँप और चिरचिक आमू दरिया उजबेकिस्तान और अफगानिस्तान के बीच की सीमारेखा है। कुछ उजबेक लोग हिन्दुकुश पर्वत तक बसे हुए हैं।

आर्यों की मूलभूमि कहाँ ?

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के मत में यही आर्यों की भूमि रही। इसके पड़ोस में आर्यन एम्बाइजो (आर्यानाम्बीजम्) है, जिसका वर्तमान नाम अजरबेजान है। कई इतिहासकार इसे ही आर्यों की मूलभूमि के रूप में प्रचारित करते हैं। वास्तव में आर्यानाम्बीजम् (आर्यन एम्बाइजो) आर्यों के बीज की उत्पत्ति का स्थान नहीं वरन् मनु के जलप्लावन के समय पश्चिमोत्तर में बढ़ने वाले और काकेशस पर्वत की अलबरूज चोटी (18,000 फुट से अधिक) में शरण पाने वाले आर्यों का शरणार्थी शिविर था। यहाँ आर्यों के बीज का सूत्रपात नहीं हुआ वरन् जलप्लावन के समय आर्यों के बीज की रक्षा हुई। रक्षा भी एक नये जन्म के समान है इसलिए काकेशस पर्वत से पश्चिम की ओर यूरोपीय देशों में फैलने वाले आर्य अपने आप को काकेसियन कहने लगे। यहाँ पर अंगरेजों ने भारत की स्वाधीनता के लिए आन्दोलन करने वाले भारतीयों का मनोबल नष्ट करने के उद्देश्य से लार्ड मेकाले की शिक्षा पद्धति के माध्यम से इतिहास में यह असंगत एवं तथ्यहीन पाठ पढ़ाना प्रारम्भ किया कि आर्य लोग भारतमाता के पुत्र न होकर मध्य-एशिया के मैदानों से भारत को लूटने के लिए आने वाले डाकू एवं आक्रान्ता थे। यह मात्र कुछ तो अज़रबेजान नाम की भ्रान्ति के कारण और कुछ भारत को

पराभूत एवं पराधीन रखने के राजनीतिक षड्यन्त्र के तहत प्रचारित किया गया। यह भ्रान्त विचार अब आधारहीन सिद्ध हो चुका है।

(क) यदि मध्य एशिया आर्यों की मूल-भूमि रही होती तो आर्यों के वहाँ से यूरोप एवं एशिया में फैल जाने के उपरान्त भी वहाँ आज भी आर्यों के बीज वर्तमान रहते, किन्तु वहाँ शक, हूण और स्लाव जातियों का ही बाहुल्य है।

(ख) यदि आर्य लोग मध्य एशिया से आये होते तो वे स्वाभाविक ही अपने साथ मध्य एशिया के मैदानों, पर्वतों, नदियों, सम्राटों एवं प्राकृतिक सम्पदा की स्मृतियों को अपने साहित्य, भाषा, बोली, नृत्य, गान, मेले, उत्सव आदि में अभी तक सुरक्षित रखे होते। आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ तथा मानव सभ्यता के प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता। इसकी तुलना में भारत से विदेशों में जाकर बस जाने वाली घुमन्तू जातियों (gypsies जिप्सीज) के भाषा-साहित्य, नृत्य-गान आदि पर हजारों वर्षों के भारत से भौगोलिक अलगाव के उपरान्त भी भारत के हिमालय, गंगा, काशी, होली, दीवाली, राजा विक्रमादित्य आदि की स्मृतियाँ अभी तक जीवित हैं।

(ग) आर्यों के वैदिक वाङ्मय में सबसे महत्त्वपूर्ण यज्ञ अश्वमेध यज्ञ है। मध्य-एशिया में अश्व ही बहुत कम मिलते हैं तो अश्वमेध यज्ञ कैसे सम्भव है?

(घ) वेद के मन्त्र ऋषियों को जिस-जिस नदी-तीर अथवा पर्वतीय-उपत्यका में प्राप्त हुए उनका नाम संकेत वेद में ही है उसमें किसी भी विदेशी नदी, पर्वत का नाम संकेत नहीं, उसमें सप्तसिन्धु उत्तर भारत की सात प्रसिद्ध नदियों का नाम है—ऊपर में सिन्धु, नीचे सरस्वती और बीच में पंजाब की पाँच नदियाँ (सतद्रु, विपासा, इरावती, चन्द्रभागा, वितस्ता)।

(ङ) यदि आर्य बाहर से आक्रान्ता बनकर आये होते तो इस देश का आर्यों से पूर्व का नाम क्या था? इतिहास एवं वैदिक वाङ्मय के अनुशीलन से पता चलता है कि इस देश का प्राचीनतम नाम आर्यावर्त्त ही है। यदि आर्यों से पूर्व यहाँ कोल्ह-भील, द्रविड़ आदि का निवास था तो इस देश का नाम कोल्हावर्त्त, भीलावर्त्त या द्रविड़ावर्त्त होना चाहिए था, जिसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। आर्यावर्त्त इस देश का जातिपरक नाम है। इस देश का भूगोलपरक नाम हुआ—सप्तसिन्धु। मनु के जलप्लावन के समय आर्यों की ही एक शाखा अपने पश्चिमोत्तर के पड़ोसी देश में जाकर बसी। उसे पार्श्व, पारस, परसु, परशियन, फ़ारस, फारसी आदि नाम मिले तथा आर्यों का ही देश होने के कारण उन्होंने उसे पार्श्व आर्यान कहा।

(च) ईसा से 500 वर्ष पूर्व ईरान का सबसे प्रतापी राजा कुरू (Cyrus) शुद्ध आर्य हिन्दू राजा था। उस शक्तिशाली राजा ने बक्त्रीया, सुत्ध, एसीरीया, सीरिया, आरमेनिया, केपिडोसिया, तुर्की, मिस्र, आदि सब देशों को अपने विस्तृत साम्राज्य के अधीन कर लिया था। तब तक ईसा और ईसाईयत के जन्म को 500 वर्षों की देरी थी।

मोहम्मद और इस्लाम के जन्म को लगभग 1200 वर्षों की देरी थी। तब हमारे ईरानी—आर्य भाइयों ने हमें सिन्धु-आर्यान पुकारा। फारसी भाषा में 'स' का उच्चारण 'ह' हो जाने के कारण सप्त-हप्त, सप्ता-हप्ता, सुर-हुर, असुर-अहुर, सरयू-हरयू , सरस्वती-हरहवती के समान ही सप्तसिन्धु को हप्तहिन्दू, सिन्धु आर्यान को हिन्दू-आर्यान पुकारा गया। अतः हिन्दू नाम किसी विधर्मी का घृणा से दिया हुआ नाम नहीं है। औरंगजेब के शासनकाल में ही हिन्दुओं का मनोबल गिराने के उद्देश्य से फारसी शब्दकोशों में हिन्दू का घृणित अर्थ दिया जाने लगा। उसके पहले के सभी कोशों में हिन्दू का अर्थ—हिन्द का निवासी ही दिया हुआ है।

(छ) स्वयं हजरत मुहम्मद के चाचा अब्दुल हिक्म ने अपनी अरबी कविता में हिन्द एवं हिन्दू की प्रशस्ति गाई है—

वा साहबी कयाम फीम काबुल हिन्दे योवन (—हे प्रभु! मेरा समस्त जीवन ले लो और उसके बदले मुझे मात्र एक दिन के लिए हिन्द का वास दे दो।)

(ज) एक फारसी ग्रन्थ में उल्लेख है—अफ्रुबिर हमने व्यास नाम अज हिन्द आमद बस खेदाना चुनानेस्त यथार्थ हिन्द से एक हिन्दू ब्राह्मण—व्यास नाम का यहाँ आया जिसकी तुलना का बुद्धिमान व्यक्ति इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं था। इससे सिद्ध होता है कि औरंगजेब के बाप शाहजहाँ के समय तक हिन्दू और हिन्दू नाम का फारस और फारसी में बड़ा सम्मान था।

(झ) ईसा से 300 वर्षों पूर्व जब सिकन्दर ईरान जीतने के पश्चात् भारत की ओर बढ़ा तो उसने ईरानियों से अगले देश का नाम पूछा। ईरानियों ने इसे सिन्धु से हिन्दू किया। यूनानी लोग उस 'ह' का उच्चारण बहुत हलका होने के कारण हिन्दू को ईन्डू पुकारने लगे। ग्रीक प्रभाव से अंगरेजी के अनेक शब्दों में 'ह' की ध्वनि लुप्त हो रही हैं जैसे hour का आवर, honest का ऑनेस्ट। यूनानी लोग हर देश का नाम स्त्रीलिंग वाचक लगाने के अभ्यासी थे। हम उनके देश को कहते हैं—ग्रीस, वे कहते हैं ग्रेसिया। हम कहते हैं यवन, वे कहते हैं आयोनिया। वही सारे यूरोप के गुरु बने। उन्होंने ही ब्रिटेन को ब्रिटेनिया, रूस को रसिया, अरब-अरबिया, पारस-परसिया करते हुए इन्डूज का नाम इंडिया कर दिया।

इस प्रकार इंडिया नाम अंगरेजों का दिया हुआ नहीं वरन् ईसा के 300 वर्ष पहले यूनानी लोगों का दिया हुआ है। यूनानी यात्री मेगस्थनीज ने भारत के विषय में एक मोटा ग्रन्थ लिखा है—इंडिका। यूनानी लोगों ने दक्षिण-पूर्व एशिया में लगभग 3500 द्वीप देखे जिनमें हिन्दू संस्कृति भी जगमगा रही थी। उन्होंने उसे नाम दिया इन्डू अर्थात् हिन्दू+निजज अर्थात् द्वीप और स्त्रीवाचक निजिया अर्थात् इन्डोनिजिया। उसे भारतीय ग्रन्थों में कहा जाता था—द्वीपरूपभारत या बृहत्तर भारत या आग्नेय द्वीपसमूह। ग्रीक प्रभाव से ही कम्बुज को कम्बोडिया, मंगोल को मंगोलिया, मंजुश्री को मंचुरिया, कुरू को कोरिया और एशिया के सबसे ऊँचे हिमाच्छादित देश को जहाँ बर्फ की अधिकता के कारण पक्के मकान बनाकर रहना कठिन था तथा लोग शिविर (Tent) लगाकर रहते थे तथा उसे शिविर देश कहा जाता था। उसे ही बदलकर साईबेरिया कर दिया गया।

(ञ) दिल्ली के एक सम्मेलन में मैंने भरी सभा में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन को पकड़ लिया तथा उन्हें इस बात को प्रमाणित करने के लिए कहा कि संस्कृति की धारा रूस की वोल्गा नदी से भारत की गंगा नदी की ओर कैसे प्रवाहित हुई? आपने मार्क्स की भक्ति में बहकर ऐसा प्रतिपादन किया है। जबकि रूसी भाषा में साहित्य का प्रारम्भ 13वीं सदी से हुआ है और रूसी भाषा के नमूने 11वीं सदी के मध्य के आस-पास के हैं। इसकी तुलना में भारतीय संस्कृत भाषा के ग्रंथ ईसा से हजारों वर्ष पूर्व के मिलते हैं। ऋग्वेद जो विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ है तथा कम से कम ईसा से 10 हजार वर्ष पुराना माना जाता है, उसमें आर्यों की मूल भूमि के रूप में सप्तसिंधु (उत्तरी भारत) का वर्णन है। अतः स्पष्ट है—वोल्गा से गंगा नहीं, 'गंगा से वोल्गा' होना चाहिए।

हिन्दू कौन ?

हिन्दू वह जो हिन्दुस्तान के पवित्र तीर्थों, ऋषि-मुनियों, महापुरुषों, उसकी सभ्यता व संस्कृति के प्रति सच्ची श्रद्धा रखता है और भारत भूमि को अपनी मातृभूमि, पितृभूमि एवं धर्मभूमि मानता है।

—स्वामी विवेकानन्द

सोवियत रूस देश श्वेत ऋषि देश है तथा रूसी भाषा संस्कृत की पुत्री

रूस आर्यों की पश्चिम यात्रा का यूरोप में प्रथम पड़ाव है। मनु के जलप्लावन के समय जब भारत, अरब, ईरान का अधिकांश भाग, मध्यपूर्व के देश, आदि जलमग्न हो गये थे तब आर्यों की पश्चिमोन्मुखी शाखा को, जहाँ काकेशस पर्वत की तलहटी में, कश्यप सागर के तट पर शरण योग्य भूमि मिली उसे 'आर्याणां बीजम्' कहा जाता था। कालांतर में उसी का नाम 'आर्यनम बायजो' बोला जाने लगा। उसी के पड़ोस में आर्मेनिया नामक देश है। उसका नाम भी आर्याणां था। 23 शती पूर्व सिकन्दर के काल में उसे आर्यनम अथवा आर्यमन कहते थे। यूनानी लोग प्रत्येक देश का नाम स्त्रीलिंग वाचक बनाते थे। अतः इतली (इटली) का इतालिया, रूस का रशिया, अरब का अरेबिया, लिथून का लिथूनिया, आर्यमन का आर्मेनिया नाम हो गया। इसीलिए रूसी, आर्मेनी, लिथूनी भाषाओं में सहस्रों संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्द हैं।

आर्य जाति की मूल भूमि—भारत से यूरोप तथा अमरीका तक फैली हुई विशाल आर्य जाति की मूल भूमि तथा मूल भाषा संस्कृत के विषय में पश्चिमी इतिहासकारों ने कई अटकलें लगायी हैं—

(क) अजरबेजान (आर्याणां बीजम्) का सीधा अर्थ आर्यों का बीज स्थान लगाया। यह कहा जा रहा है कि आर्य लोग काकेशस से ही आर्यावर्त्त (भारत) में आकर बसे तथा कुछ काकेशस से ही यूरोप की ओर फैल गये।

(ख) मध्य एशिया में प्राचीन भारतीय संस्कृति के अवशेषों को पाकर कुछ इतिहासकारों ने यह अनुमान लगाया है कि आर्य लोग वहीं से भारत तथा यूरोप की ओर फैले होंगे।

(ग) महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपने ग्रन्थ 'वोल्गा से गंगा' तथा 'मध्य एशिया का इतिहास' में यही संभावना प्रकट की है कि भारतीय आर्य रूस

के अजरबेजान क्षेत्र से ही पूरब में भारत की ओर पश्चिम में यूरोप की ओर फैले होंगे।

आर्यों की शरण भूमि : आर्याणां बीजम्

आर्यों की मूल भूमि-आर्यावर्त्त—वास्तव में आर्यों की मूल भूमि आर्यावर्त्त ही है किन्तु जलप्लावन जैसे भयंकर प्राकृतिक प्रकोप के समय (जिसका वर्णन भारत में शतपथ ब्राह्मण, पारसियों की धर्म पुस्तक जेन्दावस्था, यहूदियों की पुरानी बाइबिल, ईसाइयों की बाइबिल, अरबों के कुरान शरीफ, इत्यादि सभी में है।) आर्यों की एक बहुत बड़ी शाखा इस जल संकट से बचने के लिए पश्चिम की ओर बढ़ी। जैसे राजर्षि मनु को जल-प्लावन से बचने के लिए अपनी नौका हिमालय पर्वत में मनाली शृंग (हिमाचल प्रदेश) से बाँधनी पड़ी, वहीं पश्चिमोन्मुखी आर्यों को इस जलप्लावन के समय (जब सभी मैदानी क्षेत्र जल में डूब जाते हैं तब) यूरोप एवं एशिया के संगम स्थल यूरेशिया क्षेत्र में तत्रस्थ, काकेशस पर्वत की सर्वोच्च चोटी, एल. ब्रुज (ऊँचाई 19237 फुट) में शरण मिली। वहाँ आर्यों के बीज की रक्षा होने से वह क्षेत्र 'आर्याणां बीजम्' कहलाया। वह आर्यों की मूल भूमि न होकर आर्यों की शरण भूमि थी।

आर्य भाषा संस्कृत रूसी से अधिक प्राचीन—प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'रूसी भाषा के प्राचीनतम नमूने 11वीं सदी मध्य के आस-पास के हैं।....सच्चे अर्थों में रूसी भाषा में साहित्य का आरम्भ 13वीं सदी से हुआ है। ब्लूमफील्ड एवं मैक्समूलर भी यह मानते हैं कि रूसी भाषा के अभिलेख 12 वीं शताब्दी से मिलते हैं। इसकी तुलना में भारतीय संस्कृत भाषा के ग्रन्थ ईसा से हजारों वर्ष पूर्व के मिलते हैं। ऋग्वेद जो विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है तथा कम से कम 10 हजार वर्ष पुराना माना जाता है, उसमें आर्यों की मूल भूमि के रूप से सप्तसिन्धु (उत्तरी भारत) का वर्णन है।

गंगा से वोल्गा—अतः आर्यावर्त्त को ही आर्यों की मूल भूमि मानकर इतिहास को भूगोल के चौखटे में बिठाने से प्राचीन इतिहास एवं भाषा विज्ञान के प्रायः सभी गुप्त रहस्य प्रकट होने लगते हैं। इस प्रकार सभ्यता एवं संस्कृति का प्रवाह 'वोल्गा से गंगा' की ओर न होकर 'गंगा से वोल्गा' की ओर ही प्रमाणित होता है।

संस्कृत—यूरोपीय भाषाओं की जननी

प्रख्यात यूरोपीय प्राच्यविद्या मनीषी श्री लूई रेणु (Louis Renou) ने कहा है कि 'संसार की सब भाषाएं संस्कृत से प्रभावित हैं।' प्रख्यात अमेरिकी संस्कृति शोधकर्ता श्री विल डूरंट (Wil Durant) ने लिखा है, 'India was the Motherland of our Race and Sanskrit the Mother of European

Languages. अर्थात् भारत ही हमारी जाति की जन्मभूमि थी तथा संस्कृत ही यूरोप की भाषाओं की जननी है।'

श्वेत-सोवियत—महापंडित राहुल सांकृत्यायन 'सोवियत' विशेषण को संस्कृत के श्वेत शब्द से व्युत्पन्न मानते हैं। संस्कृत में श्वेत का अर्थ सफेद रंग, उजला अथवा उजाला (प्रकाश) होता है। रूसी भाषा में स्वेत तथा 'त्स्वेत्' शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। जैसे—स्टालिन की पुत्री श्वेतलाना का संस्कृत में अर्थ होगा श्वेतानना—श्वेत मुखवाली।

ऋषि-रूसी—राहुल जी के अनुसार रूसी शब्द संस्कृत के ऋषि शब्द से निकला है, जिसका अर्थ है ज्ञानी अथवा द्रष्टा। मेरा तथा कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि रूस या रूसी शब्द 'ऋक्ष' शब्द से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है रीछ। यह मनोरंजक तथ्य है कि संस्कृत के ऋषि एवं ऋक्ष (रीछ) दोनों एक ही धातु ऋ से निकले हैं जिसका अर्थ है गमन करना या देखना। रीछ की लौकिक दृष्टि बड़ी तीक्ष्ण होती है तथा ऋषि की अलौकिक दृष्टि बड़ी व्यापक। दोनों की गति विशेष महत्त्व की है। ऋषि मोक्ष का मधु विद्या-पान करता है तथा रीछ मधु के छत्ते का मधु। अतः संस्कृत एवं रूसी दोनों में रीछ को मध्वद (मधु खानेवाला) कहा जाता है। उत्तरी ध्रुव की परिक्रमा करने वाले सप्तर्षि (7 ऋषिगण—कश्यप, अत्रि, भृगु, वसिष्ठ, विश्वामित्र, जमदाग्नि, भरद्वाज) को रूसी एवं अन्य यूरोपीय भाषाओं में सात बड़े रीछ (Seven Stars of the Great Bear) कहा जाता है। रूस में वैसे भी रीछ की इतनी प्रतिष्ठा है कि रीछ रूस का प्रतीक ही बन गया है। उत्तरी ध्रुव के हिम प्रदेश के श्वेत रीछ प्रसिद्ध हैं।

रास-रासे—डा. भोलानाथ तिवारी के अनुसार रूसियों के एक प्राचीन कबीले का नाम रास या रासे था। इसी आधार पर देश तथा भाषा का नाम रूस-रूसी पड़ा। कुछ लोग इन नामों का सम्बन्ध रूस के दक्षिणी भाग में बहने वाली नदी रास से जोड़ते हैं।

श्रवः-स्लावा—प्राचीन संस्कृत में श्रव शब्द यश, धन, स्तुति आदि के अर्थ में प्रयुक्त होता था तथा अनेक सुन्दर नामों के अंत में श्रवा प्रयुक्त होता था। जैसे सोमश्रवा, वाजिश्रवा, भूरिश्रवा इत्यादि। उसी श्रवा शब्द से रूसी भाषा में स्लाव शब्द प्रचलित हुआ है जो व्यक्तिगत नामों तथा देशवाचक नामों में भी प्रयोग हुआ है। जैसे श्वेत-स्लाव, व्याचि-स्लाव, स्व्यातोस्लाव इत्यादि व्यक्ति-वाचक नाम हैं तथा चेकोस्लाव, यूगोस्लाव आदि देशवाचक नाम हैं। पूर्वा स्लाव भाषाओं में रूसी, बोल्गारी तथा सेर्बो भाषाएं गिनी जाती हैं। तथा पश्चिमी स्लाव भाषा में स्लोवानी, चेक तथा पोलो भाषाएं परिगणित हैं।

रूसी भाषा में संस्कृत शब्द

रूसी भाषा में जो सहस्रों संस्कृत मूल वाले शब्द आज भी गूँज रहे हैं, उनमें से कुछ के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

संस्कृत	रूसी (नागरी लिपि)	रूसी (रशियन लिपि)	हिन्दी अर्थ
भूमि वर्ग के शब्द			
ज्या	जेम्त्या	земля	भूमि
पथ	पुत्	путь	मार्ग
गिरि	गोरा (गरा)	уора	गिरि (पर्वत)
द्रोणा	दोलिना (दलिना)	долина	द्रोणा, दून
अश्मन्	कामेन्	уамень	पत्थर
उदक वर्ग के शब्द			
वंदा	वोदा	Вода	पानी
उदक	वोद्का	ВодҺа	शराब
फेन	पेना	πена	फेन (झाग)
स्नेह	स्नेग्	снег	बर्फ
रोधश्	ल्यो	лед	बर्फ (फारसी रूद नदी)
अग्नि वर्ग के शब्द			
अग्नि	ओगोन्	оуонь	अग्नि
अंगार	उगार (उगलि) उगोल	Уголь	अंगारा
ज्वाल	नर, नरा	жар, жара	ताप
तम	तम, तेम्नोता	тьма Те мио Та	अंधेरा
धूमः	तुमान्	туманл	धुआं, कुहरा
धूमः	दिम् यजति, यजल	д Ы м	धुआं
यज्ञ	जेर्त्य	жсртва	यज्ञ

वायु वर्ग के शब्द

वात	वेतेर	ветер	वात, वायु, वाद (फारसी)
उड्डीयन (वातः)	उरागान	урагли	उड़ती हुई (आँधा)

नभ वर्ग के शब्द

स्वर्ग	स्वेर्ख, स्वेर्खु	сверху	ऊपर
नभस्	नेबो	небо	आकाश, स्वर्ग
अभ्र	ओव्लका	облэհa	बादल
सूर्यः, सूरः	सोलन्त्से	со'лнпе	सूर्य
मालिनी	मोल्निया	мо'лниа	बिजली

काल वर्ग के शब्द

दिन	देन्	день	दिन
नक्त, निशा	नोच्	ночь	रात्रि
मास	मेस्यत्स	ме'сяд	मास
ऋतु	लत्		वर्ष
वसन्त	वेस्ना	весна'	बसंत
हिम (हेमन्त)	जिना	зима'	हेमन्त

इस प्रकार पाँचों तत्त्वों के प्रायः सभी नाम संस्कृत से ही हैं। मानव सम्बन्धों नामों में, शरीरांगों के नामों में, तथा अन्य वर्गों में सर्वत्र संस्कृत ही गूँज रही है, कुछ वाक्यों के नमूने देखिए—

संस्कृत	**रूसी (नागरी लिपि)**	**रूसी (रशियन लिपि)**	**हिन्दी अर्थ**
श्रृगालः क्रुध्यति	शकाल इग्रोणत	LLIaчaл	गीदड़ क्रुद्ध होता है।
देवो चायं एवं शर्करा देहि	देवुश्का चाय इ सावर दाइ		देवी चाय और शक्कर दो
न जीवनं न मृत्युम्	निव झाव नि म्योर्त्य		न जीवन न मृत्यु
भगवान सर्व बेदयति	भग वसे वेदित		भगवान सब कुछ जानता है।
स्वयं ददामि	सम दाम		मैं स्वयं देता हूँ।

रूसी भाषा पर संस्कृत का प्रभाव

संस्कृत	रूसी भाषा
देवी चायं एवं शर्करा देहि	देवया चाय ऊं शाकर दी
भगवान सर्व जानाति	भग (Bog) सोब जानीस्त
	भग = तेज
जंगल मध्ये	In the midst of a Jungle
यत्र पिककान्तः कूजन्ति	yither Peacoke are cooving
गावा घासं चर्वन्ति	Cow are chewing grass
नारंग तरवः प्रफुल्लति	Orange trees are flowering
नारंग यूषाः सुमिष्ठः	Orange juice is sweet
माता सुनुं लालयति	Mother loves the son
सर्पाः सि सृपन्ति	Serpents are creeping
श्रृगालाः बुकूयन्ति हल्लाकुर्वन्ति	Jockals are barking and rearing
तत्र त्रयाः युवानः सताः	Thither three young Saint
उपरि स्थले	as an upper stall
नवकुटयान्तरे	in a new college
विभूति य बहुत्वं चिन्तयन्ति	Think of the beauty deity of God
स्थारि चरयन्ति	will stay
पार्थ चिण्यन्ति च	will play

गाँधीजी ने अपने विशद अध्ययन के आधार पर लिखा है—'दुनिया में आज भी इतने लोग जिन्दा हैं, इससे सिद्ध होता है कि संसार की नींव शस्त्र-बल पर नहीं है, बल्कि सत्य, दया एवं आत्मबल पर है।... हजारों बल्कि लाखों मनुष्य प्रेम से रहकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। करोड़ों परिवारों के छोटे-मोटे झगड़े प्रेम भावना में डूब जाते हैं। सैकड़ों कौमें मिल-जुल कर रह रही हैं।'

यूनानी और रोमन जगत् को भारत की देन

छठी शताब्दी ईस्वी पूर्व भारत और यूनान के गहरे संबंध थे जो फारस के साम्राज्य जिसकी सेना में भारतीय सैनिक हुआ करते थे, से उपजे संबंधों के कारण थे। यूनानी इतिहासकारों ने एथेन्स में भारतीयों की उपस्थिति की चर्चा की है। उस शक्तिशाली साम्राज्य की सातवीं शताब्दी ईस्वी पूर्व की 'संचार तंत्र' व्यवस्था ने दोनों समृद्ध देशों के आपसी सम्पर्क को सरल और सहज बना दिया था। यूनान और भारत के आपसी ज्ञान के आदान-प्रदान ने इन दोनों देशों के लोगों को अत्यन्त प्रभावित किया।

फारस की सेना में भारतीय टुकड़ियाँ

यूनानी संस्कृति के महान् चिन्तक सर फ्लिन्डर्स ने भारतीय सत साधना की चर्चा करते हुए लिखा है कि फारस की सेना में भारतीयों की टुकड़ियों ने 480 ई.पू. अपनी उपस्थिति से किस प्रकार पाश्चात्य जगत् को प्रभावित किया। उन्होंने बताया है कि पाँचवी शताब्दी ई.पू. मेम्फिस में भारतीयों के प्रतीकचिह्नों की खोज से पता चलता है कि वहाँ भारतीय लोग व्यापार के लिये रहते थे। अतः इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि पाश्चात्य जगत् की नवीन सत साधना का स्रोत भारत ही है।

एथेन्स में भारतीय चिन्तक

चौथी शताब्दी ई.पूर्व में एथेन्स में भारतीयों की उपस्थिति का तत्कालीन साक्ष्य भी उपलब्ध है। 'यूसेबिन्स' (315 ई.पू.) एक ऐसी परम्परा को संजोये हुए थे जिसका श्रेय अरिस्टोक्सेनस, (Aristoxenus अरस्तू के शिष्य) को था। अरस्तू एक सुप्रसिद्ध समतावादी और सात्त्विकतावादी विचारक थे, जिनका समय 330 ई.पूर्व बताया जाता है (देखिये—Preparatic Evangelica प्रिपरेटिक इवेन्जेलिक॥-3)। गायक 'अरिस्टोक्सेनस' एक कहानी में इन भारतीयों के विषय में लिखते हैं, 'इनमें से कोई भारतीय अरस्तू से एथेन्स में मिला और उन्होंने (अरस्तू ने) पूछा कि आपके दर्शन 'ऐन एनक्वायरी इन्टू ह्यूमन फेनोमेनन' का क्षेत्र क्या है?

इस प्रश्न पर भारतीय ने अट्टहास करते हुए पूछा, 'किस प्रकार हम मानव फेनोमेनन Human Phenomenon पर प्रश्नचिह्न लगा सकते हैं जबकि हम उस दैवी शक्ति को ही नहीं जानते जिससे हमारी उत्पत्ति है।'

प्लेटो (अफलातून), अरस्तू और यूडोक्सस

कहीं-कहीं अरस्तू के संबंध में उल्लिखित 'डायोजिनिस लारटियस' में भारतीयों के एथेन्स में रहने की चर्चा है। 'प्लिनी' यूडोक्सस, जो प्लेटो के मित्र और ज्योतिषी थे, के अनुसार वे भारतीय विचारधारा में गहरी रुचि रखते थे।

भारतीय दूतावास

रोमन इतिहासकार 'स्ट्राबो' दमिश्क के निकोलस के आधार पर कहता है कि दूतावास के भारतीय ने 20 ई.पू. एथेन्स में आत्मदाह कर लिया जिसे भारतीय बादशाह पुरु (पोरस) ने 'सीजर' के पास भेज दिया था। प्लूटार्क ने भी इस आत्मदाह के बारे में कहा है कि उस भारतीय का मकबरा एथेन्स में 2 बाहरी व्यक्तियों के लिये एक दर्शनीय यादगार है।

स्वामी रंगनाथानन्द India's Contribution to the Greaco-Roman World P. 651

सिकन्दरिया के क्लीमेन्ट पालीहिस्टार की पुस्तक की चर्चा करते हुए उद्धृत करते हैं कि भारतीय नर-नारियों द्वारा, जो ब्रह्मचर्य व्रत में रहते थे और सदैव सत्य के अनुसंधान में लगे रहते थे, अपने इष्टदेव की अस्थियों के संग्रह स्तूपों की आराधना करते थे। त्याना के फिलोस्ट्रेटस, अपलोनियस, जो प्रसिद्ध यायावर थे, भारत की यात्रा विवरण में कहते हैं कि भारत के संतों के मठों में चार माह तक रहे।

विदेशी पर्यटकों का ज्ञान और धन हेतु आगमन

भारत विश्व के सभी देशों द्वारा समृद्धि और ज्ञान के भण्डार के रूप में जाना जाता था। धन ने अन्य देशों को व्यापार हेतु आकर्षित किया, वहीं भारत के चिन्तकों के ज्ञान ने ज्ञानपिपासुओं को आमन्त्रित किया। कुछ तो व्यापार करने आये और अन्य भारतीय मनीषा से शिक्षा अर्जित करने आये। सिकन्दर, जो किंवदंती सा बन गया, धन-लोलुपतावश आया। प्राचीन भारत विश्व में अपने व्यापार हेतु प्रसिद्ध था। भारत के पूर्वी एवं पश्चिमी घाटों पर रोम और पूर्व के राजाओं, जिसमें एशिया के निकट-पूर्व से लेकर पश्चिम तक, चीन और दक्षिण-पूर्व से सुदूर पूर्व तक के राज्यों द्वारा व्यापार हेतु आवागमन होता था। आज भी प्राचीन स्मारकों के उत्खनन में रोम के सिक्के दक्षिण भारत में पाये जाते हैं। इससे प्रमाणित होता है कि भारत और रोम साम्राज्य का आपसी व्यापार अत्यधिक

समृद्ध था। रोम से ऐश्वर्य-युक्त सामग्री का व्यापार होता रहा। रोम की महिलाएं भारतीय प्रसाधनों को बहुत पसन्द करती थीं। इसी कारण बहुत अधिक सामग्री का निर्यात समुद्री जहाजों से हुआ करता था। भारत भी इन देशों से धातु के सामानों, घोड़ों आदि का आयात करता था। इसी कारण भारत ने रोम से अत्यधिक सोना लेना प्रारम्भ किया। परिणामतः रोम को बाद में भारत से व्यापार करने पर प्रतिबंध लगाना पड़ा। कोई भी राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से ऐश्वर्य के प्रसाधनों का व्यापार तब तक नहीं करता जब तक वह स्वयं एक समृद्ध और सर्वथा सम्पन्न औद्योगिक स्थिति में न हो। प्राचीन समय से ही भारत के लोग चतुर एवं कुशल, कर्मनिष्ठ, मितव्ययी होते थे। उसके कलाकार, शिल्पकार एवं कारीगर सौन्दर्य प्रसाधनों के निर्माण में दक्ष हुआ करते थे जिनकी मांग अन्य देशों में भी थी। वर्तमान भारत की भी यही तस्वीर है।

भारत की दूसरी तस्वीर यह है कि इसे ज्ञानभूमि समझा जाता था। इसके वेद, उपनिषद् और अन्य साहित्य से इसे दर्शनशास्त्र और उच्चकोटि के अध्येताओं की खान समझा जाता था। क्योंकि मानव जीवन की विविध समस्याओं से वे जूझते एवं समाधान निकालते थे। दार्शनिक विचारों की यह परम्परा भारतीयों में अद्वितीय, पूर्णत्व और योग्यता की परिचायक थी।

भारत का ज्ञान-कौशल

पाश्चात्य का प्राचीन-कालीन व्यक्ति भारत की प्रतिभा से अत्यन्त प्रभावित था। मध्यकाल में भारत के इस ज्ञान-विज्ञान का प्रसार पाश्चात्य देशों में अरबों के माध्यम से हुआ, जिनका साम्राज्य मध्य-पूर्व के देशों में फैला हुआ था। अरबों ने भारत के विज्ञान का प्रसार पाश्चात्य देशों में भी किया जिसे वे पहले ही भारत से अर्जित कर चुके थे। कई शताब्दियों तक अरबों के साम्राज्य भारत के ज्ञान के प्रसार-बिंदु बने रहे। भारतीय विचारधारा और संस्कृति को अरबों ने स्वतंत्रतापूर्वक ग्रहण किया। उसी प्रकार उन्होंने यूनान एवं रोम से भी विचारों एवं संस्कृति को ग्रहण किया। उन्होंने अत्यन्त समुन्नत सभ्यता का निर्माण अपने यहाँ किया। आठवीं शताब्दी में पूर्व में भारत और पश्चिम में यूरोप को भी अपनी सभ्यता से आप्लावित किया।

तेरहवीं शताब्दी में जब उनके साम्राज्य का पतन हुआ और उसका स्थान तुर्कों के साम्राज्य ने लिया तो भारत से सम्पर्क समाप्त हो गया। पाश्चात्य के पूरे इतिहास, विशेषतः पश्चिमी यूरोप के इतिहास में हम देख सकते हैं कि वहाँ के लोगों में एक सतत ललक भारत के सम्पर्क में बने रहने की जगती रही। जब तुर्कों द्वारा इस ललक को रोक दिया गया तो पश्चिमी यूरोप ने भारत जाने का समुद्री मार्ग ढूढ़ने का प्रयास किया। इतिहास का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है कि किस प्रकार

इंग्लैंड, फ्रांस, हालैंड, स्पेन और पुर्तगाल ने लगातार अपनी पूरी शक्ति भारत का समुद्री मार्ग ढूंढ़ने में लगा दी और उनमें से एक पुर्तगाल ने समुद्री मार्ग, जो दक्षिण अफ्रीका की परिक्रमा करते हुए था, ढूंढ़ निकाला। वास्को-डि-गामा ने यह मार्ग प्रशस्त किया और 1498 ई. में केरल के कालीकट नामक स्थान पर भारत-भूमि पर पदारोपण (पदार्पण) किया।

अमरीका

इस घटना ने एक बार फिर भारत को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस धारा से जोड़ दिया। उसी प्रकार कोलम्बस ने पश्चिम दिशा में समुद्री मार्ग से बढ़ते हुए अमरीका की भूमि पर सन् 1493 में अपने पांव रखे, जिसे उसने भारत समझ लिया। यद्यपि यह उसकी भूल थी परन्तु वहाँ के आदिवासियों को उन्होंने भारतीय कहना प्रारम्भ कर दिया।

वास्तविक भारत की खोज

मुझे गतवर्ष अमरीका के कई विश्वविद्यालयों और वहाँ के श्रोताओं को सम्बोधित करने का अवसर मिला जिसमें मैंने उन्हें बताया कि उन्होंने भारत की खोज करते हुए अमेरिकी महाद्वीप को बड़ी उपलब्धि के रूप में पाया था। यह भी बताया कि वे अपनी खोज के साथ भारतीय महाद्वीप की भी खोज को निरंतर चलाते रहे, जिससे भारत की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक स्थिति को जान सके। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के उपरान्त अमेरिकी लोगों का खोज अभियान और अधिक उत्साह के साथ चल रहा है। आज भारत अमरीका को आकर्षित कर रहा है। भारत का यह आकर्षण उन्नीसवीं शताब्दी में भी विद्यमान था जिसका प्रमाण वाल्ट ह्विटमैन की पुस्तक 'पैसेज टू इण्डिया' जैसी पुस्तकों में मिलता है। यूरोपीय देशों ने जिन बातों का अनुभव पहले ही कर लिया था, उसे अमरीका के लोग आज बीसवीं शताब्दी में कर रहे हैं।

पाश्चात्य की ओर प्रथम अभियान

हमें यह स्मरण रहना चाहिये कि जब स्वामी विवेकानन्द ने भारत के वर्तमान समय में अपनी पाश्चात्य देशों की यात्रा की उससे 5000 वर्ष पूर्व तक भारत का कोई प्रसिद्ध मनीषी, आध्यात्मिक प्रतिनिधि या लब्धप्रतिष्ठ सांस्कृतिक व्यक्ति इन देशों को नहीं गया था। भारत के अपने ज्ञान-प्रसार का कार्यकलाप केवल प्राच्य जगत् तक ही सीमित रहा जिसमें पश्चिमी एशिया भी सम्मिलित है।

बौद्ध धर्म प्रचार

अपने अनुभव की अजस्रधारा के प्रसार का कार्य भारत द्वारा गतिशील एवं प्रभावशाली रीति से महात्मा बुद्ध के समय में ही हुआ। इस बात के पर्याप्त प्रमाण

हैं कि एशिया महाद्वीप के विभिन्न देशों तक बुद्ध के पहले भी भारतीय विचारधारा पहुँच चुकी थी, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से उन देशों तक महत्त्वपूर्ण सम्पर्क बुद्ध के समय में ही विशेष रूप से परिलक्षित होता है। विश्व में भारतीय ज्ञान की शृंखला का प्रसार मुख्य रूप से इन देशों में उन्हीं के समय में हुआ। बौद्ध धर्म के प्रचारकों ने पर्वतों के उस पार, समुद्र की सीमाओं को लांघकर लंका, दक्षिण-पूर्व एशिया, मध्य एशिया, मध्य-पूर्व एवं निकट-पूर्व चीन और कुछ सीमा तक कोरिया और जापान तक बुद्ध के धर्मोपदेशों का प्रचार-प्रसार किया। बुद्ध का शान्ति, प्रेम और आध्यात्मिकता का सन्देश इन देशों तक अबाध रूप से पहुँचा। उनके धर्म-सन्देशों का इन मध्य-पूर्व एशिया के देशों के साथ गहरा संबंध स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

इस प्रकार धर्म प्रसार का अनुभव और उसका सक्रिय प्रचार इस ऐतिहासिक काल में पूरे एशिया तक ही सीमित रहा। इसमें अशोक ने तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व मध्य-पूर्व एशिया में अपने राजदूत भेजे जिन्होंने सीरिया के अन्योकस, मिस्र के प्टोलेमी, फिलाडेलफस, मकदूनिया के एन्टीगोनस, गोनाटस, साइरेना के मेगास और एपिरस के अलैक्जेन्डर तक पहुँच कर बौद्ध धर्म का प्रचार करना जारी रखा। (स्वामी रंगनाथानन्द India's Contribution To The Greaco-Roman World - Page 653)

पाश्चात्य का भारत आगमन

पश्चिमी दुनिया के लोग भारत आकर जो भी ज्ञान प्राप्त कर सके उसे स्वतः लिया। इस सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि पाश्चात्य जगत् के लोगों पर ईरानी साम्राज्य के समय से ही व्यापार के सम्बन्ध में भारतीयों से सामाजिक सम्पर्क का प्रभाव पड़ा और भारतीयों पर भी उसी प्रकार प्रभाव पड़ा जो यूनान और अन्य देशों के सम्पर्क में आये।

सिकन्दर और भारतीय संत

भारत के पश्चिमी प्रान्तों में सिकन्दर चौथी शताब्दी ई.पू. में आया और उन पर विजय प्राप्त की। जिस मार्ग से वह गया उसके देशों को भी उसने जीत लिया परन्तु उसकी इच्छा थी कि पूर्व के आध्यात्मिक संतों और दार्शनिक विचारों से वह अवगत हो जाय। यूनान के इतिहासकारों ने सिकन्दर की एक भारतीय (पंजाब) के संत से मिलने की घटना को संजोकर रखा है। शास्त्रीय अभिलेखों में सम्राट् सिकन्दर के उस संत से मिलने और उनकी बातों से प्रभावित होकर उन्हें अपने साथ यूनान चलने के अनुरोध की विस्तृत चर्चा है। संत ने उसकी प्रार्थना को ठुकरा दिया तो वह बार-बार अनुरोध करता रहा परन्तु संत किसी प्रकार भी सहमत नहीं हुए।

तब सम्राट् अपने प्रभुत्व का रोब जताते हुए तलवार निकाल कर उन्हें जान से मार डालने की धमकी देने लगा। इस पर संत ने अट्टहास की हंसी हंसी। जब सिकन्दर ने संत से हंसने का कारण पूछा और कहा कि आपको डर नहीं लगा तो संत ने उत्तर दिया कि सिकन्दर का वह कृत्य उसके जीवन की सबसे बड़ी मूर्खता थी। भौतिक सुखों का आकांक्षी सम्राट् उसे कभी भी मार नहीं सकता। क्योंकि वे केवल शरीर ही नहीं थे वे तो आत्मा थे जो अमर और स्वतंत्र है और जिसे न तो आग जला सकती है न पानी गीला कर सकता है और न कोई शस्त्र काट ही सकता है। अपने विश्व-विजय अभियान में उसे पहली बार एक ऐसा व्यक्ति मिला था जो उससे भयभीत नहीं हुआ। सारा विश्व उससे भय खाता था और उसके सामने नतमस्तक होता था। उसे पहली बार एक ऐसा व्यक्ति भारत में मिला था जो उससे भयभीत नहीं हुआ और शान्त और निर्भय रहा, सम्राट् के प्रभुत्व के सामने झुका नहीं।

भौतिकतावाद बनाम अध्यात्मवाद

भौतिकतावाद ने, जो पाश्चात्य देशों की उपज है, यूरोप और अमरीका के विचारों को पूर्णतः प्रभावित किया है। इन पाश्चात्य देशों ने भारत को तथा पूरे विश्व को अपनी गिरफ्त में ले लिया और उसके ऊपर एशिया के अन्य देशों पर भी भौतिकतावाद का जाल बिछ गया। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, स्वामी विवेकानन्द के पाश्चात्य भ्रमण अभियान का प्रश्न है उन्होंने पाश्चात्य देशों के भौतिकवादियों को अध्यात्मवाद का उपदेश देना ही लक्ष्य बनाया था। वे भारत का अध्यात्मवाद उनके ऊपर थोपना नहीं चाहते थे। जैसा कि विदेश भ्रमण के पश्चात् उन्होंने प्राच्य देशों में अपने प्रथम भाषण में व्यक्त किया था। विश्व की समस्या के केन्द्र-बिन्दु पर ही वे आक्रमण करना चाहते थे। उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य भारत की प्राचीन परम्परा की तरह पाश्चात्य देशों की भौतिकतावादी संस्कृति पर प्रहार करना ही था।

चुनौतियाँ

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक पाश्चात्य भौतिकतावाद अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका था। यह अभियान केन्द्रीभूत होने वाला था तभी उसे एक ऐसे देश से चुनौती मिली जो विदेशी साम्राज्य के अधीन था और अपनी मर्यादा छोड़कर इस भौतिकतावाद के आगे आत्मसमर्पण करने को उद्यत था। यह चुनौती किसी गाजे-बाजे अथवा.....फौजी दस्ते (cohorts) के साथ नहीं दी गयी थी। यह तो एक युवा संन्यासी द्वारा दी गयी। रोम्याँ रोलां कहते हैं, 'वह एक जन्मजात नृपति थे, जिसकी आत्मा में नेपोलियन का ओज भरा था। उनका मुखमण्डल देदीप्यमान था, वाणी में संगीत का आकर्षण था और हृदय और मन में पूरे विश्व के कल्याण की भावना भरी पड़ी थी।'

विश्व सभ्यता को भारत की देन

भूलोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लीलास्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल कहाँ?
वह ही कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन भारत-वर्ष है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की उक्त भारत-प्रशस्ति विश्व में भारत की महत्ता पर प्रकाश डालने वाली है। 'भारत की विश्व को देन' दो भागों में विभाजित की जा सकती है—

(क) सभ्यता के क्षेत्र में देन,

(ख) संस्कृति के क्षेत्र में देन।

सभ्यता जीवन का शृंगार है किन्तु संस्कृति जीवन का सार है। दोनों का यथास्थान अपना-अपना महत्त्व है किन्तु सार के बिना शृंगार साधना प्राणहीन मृतक की शव-पूजा के समान है। सभ्यता जीवन के साधनों का विकास है किन्तु संस्कृति जीवन का विकास है। जीवन के मूल्यों एवं आदर्शों का विकास है। भारत ने सभ्यता एवं संस्कृति दोनों क्षेत्रों में भूमण्डल के प्रायः सभी देशों को अपनी अलौकिक एवं अप्रतिम देन दी है।

विश्व-विजेता स्वामी विवेकानंद के शब्दों में :

सभ्यता के क्षेत्र में मानव को मानव, मैन (Man), मनुष्य, मनुज आदि नाम भी इसीलिए मिले क्योंकि वह मनु की संतान है। अब प्रश्न होता है कि मानव को घर बनाना, समाज में रहना, सभा में बैठना, योग्य-सभ्य होने का ज्ञान, किसने दिया।

संसार में सर्वप्रथम गेहूँ की खेती

रूसी वैज्ञानिक वाविलोव के मतानुसार, संसार में गेहूँ की उत्पत्ति सर्वप्रथम पंजाब के समीप हिन्दुकुश तथा हिमालय के बीच वाले भाग में हुई और यहाँ से इराक, यूरोप, अमरीका आदि सभी जगह फैल गई। इन देशों में जिस गेहूँ की खेती होती है उसका मूल स्थान पंजाब है।

संसार को शर्करा की देन

आज से 23 शती पूर्व जब सिकन्दर के नेतृत्व में यूनानियों ने भारत पर प्रथम आक्रमण किया तो आधी दुनिया के विजेता सिकन्दर एवं उसके साथियों को प्रथम बार भारत में इक्षुदण्ड (ईख, गन्ना) से रस निकालते हुए देखकर महत् आश्चर्य हुआ। उन्होंने आंखें मलते हुए परम आश्चर्य से कहा, 'भारतीय लोग भी क्या विचित्र लोग हैं। ये लकड़ियों को निचोड़कर रस निकालते हैं।' इसका अर्थ है कि तत्कालीन सारे सभ्य संसार (यूरोप के यूनान देश से लेकर एशिया तक) में गन्ना एवं खाण्ड कहीं उपलब्ध नहीं थे, जिससे यवन विजेताओं की जिह्वा मीठी हो सकी हो। संस्कृत के शर्करा शब्द से ही हिन्दी में शक्कर, रूसी में शाखर, जर्मन में ज़ूखर, यूनानी में शूगर, लातीनी में सूकरोज, सेकेरीन, आदि सभी संसार भर की भाषाओं के शर्कराबोधक शब्द व्युत्पन्न हुए हैं। अतः विश्वभर के मानवों की जिह्वा पर जो मिठास है उस पर तो राज्य भारत का ही है। भारत ने ही संसार को सर्वप्रथम मीठा और मिठास का स्वाद चखाया।

चावल का यूरोपीय नामकरण

यूरोप के अंग्रेज लोग जब भारत के दक्षिण में व्यापार हेतु आकर बसने लगे तो उन्होंने तमिल के अरिशा (चावल) से अंग्रेजी भाषा में राइस (Rice) शब्द अपना लिया। अतः पश्चिम को चावल का ज्ञान भी भारत से ही हुआ।

संसार को कपास (कर्पदा) एवं वस्त्र कला का ज्ञानदान

23 शती पूर्व जब यूनानी भारत में आए तो पंजाब में कपास की खेती को देखकर उन्होंने विस्मित होकर कहा, 'भारत में लोग पेड़-पौधों पर ऊन पैदा करते हैं। सचमुच ही यह बड़ा विचित्र देश है।' इससे स्पष्ट है कि विश्वविजय की आकांक्षा से आधी दुनिया पार करके भारत में पहुंचने वाले तत्कालीन पश्चिम के सर्वाधिक सभ्य देश यूनान (जिसे यूरोपीय विद्वान् विश्व सभ्यता की जननी मानते हैं), उस सर्वाधिक सभ्य देश के सर्वाधिक सभ्य मानव सिकन्दर ने भारत पहुँचने से पूर्व न कपास का दर्शन किया था तथा न ही वस्त्र पहनना सीखा था। कपास के लिये संस्कृत शब्द कर्पदा है। रुई के लिये तूल शब्द से भ्रान्तिवश वूल (wool) शब्द प्रचलित हो गया। यूनानी भाषा में आज तक कपास को बोलबोले बोला जाता है। जर्मन तथा अन्य अनेक यूरोपीय भाषाओं में भी इससे मिलते-जुलते शब्द हैं। रुई को कातने अथवा वस्त्र को काटने के लिये संस्कृत शब्द कर्त्तन है। इसी से अरबी भाषाओं में कत्तन शब्द बना है। वही यूरोपीय भाषाओं में कॉटन शब्द बन गया। प्राचीनकाल में भारत की मलमल सिन्धु प्रदेश के बंदरगाहों से विदेशों में निर्यात होने के कारण बेबिलोनिया, मिस्र तथा रोम तक में सिन्धु नाम से

पुकारी जाती थी। ढाका की मलमल इतनी महीन तथा सूक्ष्म होती थी कि उसका पूरा थान एक अंगूठी के भीतर से पार हो सकता था। प्राचीन रोम में भारत की वह महीन मलमल तुला में सोने के भार के बराबर तौलकर बिकती थी। वहाँ के एक इतिहासकार प्लिनी ने कहा कि उस मलमल द्वारा भारत प्रतिवर्ष रोम से तीस हजार (30000) पौण्ड, (15000 सेर) सोना कमा लेता था। उसने चेतावनी दी कि यदि रोम की स्त्रियाँ उस महीन मलमल की खरीद बंद न करेंगी तो रोम लुट जायगा तथा रोम का सारा स्वर्णकोष भारत चला जायेगा। उसने उस सूक्ष्म पारदर्शी वस्त्र की आलोचना करते हुए उसे वस्त्र न मानकर उसे लहरदार हवा कहा, जिसके भीतर से स्त्रियों के सारे अंग नंगे दिखाई देते थे। उसने स्त्रियों से अपील की वे इस पारदर्शी पतली मलमल का प्रयोग बंद करें ताकि उनके शील तथा देश के सोने की रक्षा हो सके। किन्तु रोम की स्त्रियाँ भारत की उस महीन मलमल पर ऐसी मुग्ध थीं कि उन्होंने प्लिनी के विरुद्ध बड़ा भारी जनप्रदर्शन किया, तथा भारत के मलमल के व्यापार को बचा लिया।

कपास तथा रेशम दोनों प्रकार के वस्त्रों में भारत की महती ख्याति रही है। संस्कृत के वस्त्र शब्द से अंग्रेजी में वेस्टर शब्द बना है जिसका अर्थ वही है। इसी प्रकार वस्त्र-शिल्पी (दर्जी) के लिये अंग्रेजी में शब्द है—वेस्त्री मैन (वस्त्र मानव)। इन सब तथ्यों से प्रमाणित होता है कि संसार के बर्बर, जंगली, अधनंगे, अधभूखे लोगों को सर्वप्रथम वस्त्र पहनना तथा मानवीय गरिमा से भोजन करना भारत ने ही सिखाया।

फलों का दाता—भारत

फल राज रसाल (फलों का राजा आम) संसार को भारत की ही देन है। तमिल भाषा में आम के लिये प्रयुक्त शब्द मंगुई से ही अंग्रेजी तथा यूरोपीय भाषा में मैंगो (Mango) शब्द चल पड़ा है। संस्कृत के नारंग शब्द से आरेंज (Orange), काजू से कैस्यू, चंदन के लिये सन्दल, तरु के लिये ट्री, फूल के लिये फ्लावर, आदि-आदि नाम भारत की तद्‌विषयक देन के परिचायक हैं।

हाथी दांत तथा कीमती रत्न

हाथी दांत को संस्कृत में इमुदन्त, इमुरीय कहते हैं। इसी से अंग्रेजी में आइवरी शब्द बना है। हाथी दांत की कला में भारत अभी भी संसार में बेजोड़ है। भारत के मूंगा, मोती, पुखराज, पन्ना, नीलम, वैदूर्य आदि नवरत्न भारत ने ही संसार को दिये। आज तक विश्व का सर्वाधिक मूल्यवान हीरा कोहनूर, जो ब्रिटिश साम्राज्य के ताज में चमक रहा है, वह भारत की ही देन है।

मूल्यवान इमारती लकड़ी तथा सुगन्धियाँ

तुर्की के लेम्पेरकास नामक स्थान से ईसा की प्रथम शताब्दी की रोम की बनी हुई चांदी की एक सुंदर तश्तरी प्राप्त हुई है जिसमें केन्द्र में भारतमाता सिंहासनासीन है। भारतमाता उन सब वस्तुओं से अलंकृत और घिरी हुई दिखाई गई है जो प्राचीनकाल में भारत से रोम आदि देशों में निर्यात होती थी। भारतमाता सिर पर गंध-मुकुट पहने हुए है (जो इत्र में डूबे हुए तमाल-पत्रों से बनता था)। इसको पहनने से शिरो-वेदना दूर होती थी, मस्तिष्क को शीतलता मिलती थी। यह यूरोप के देशों में बहुत प्रचलित हो चुका था। उस गंध-मुकुट में ईख की दो पोरें खोंसी हुई हैं। उसका अर्थ है गन्ना तथा शर्करा, जो भारत से निर्यात होता था। उसका शरीर एक मलमली साड़ी से आवृत है। मलमल भारत से निर्यात होती थी तथा रोम आदि देशों में सोने के भार से तौलकर खरीदी जाती थी। जिस आसन पर वे बैठी हैं उसके पाये हाथी दांत के बने हुए हैं, जो भारत से निर्यात होता था। तश्तरी में दाहिनी ओर चितकबरा मुर्गा और एक शिकारी कुत्ता है। बायीं ओर सुग्गा और एक लंगूर है। चित्र में भारतमाता के चरणों के पास दो शिकारी चीते अपने रक्षकों के साथ हैं। ये सब पशु-पक्षी भी भारत से निर्यात होते थे।

मिस्र देश के प्राचीनतम पिरामिडों (शवादि मंदिरों) में राजाओं के शवों को रखने के लिए जो सुंदर पेटिकाएं मिली हैं वे सागवान (शाकवन) की लकड़ी की बनी हुई हैं जो भारत से निर्यात होती थी। शवों को लपेटने के लिये जो मलमल प्रयोग होती थी वह भारत से ही निर्यात होने वाली तथा सिन्धु नाम से प्रसिद्ध थी। इमली की लड़की को अरब एवं मिस्र देशों में तमरे-हिन्द कहा जाता है। जिसका अर्थ है हिन्द की लकड़ी। इसी से यूरोपीय भाषा में इमली के लिये तेमेरिन्द शब्द प्रचलित हो गया। इसी प्रकार आबनूस की लकड़ी, देवदारु की लकड़ी आदि भी भारत की ही देन है। भारत का राष्ट्र-पक्षी मयूर भी भारत की ही विश्व को देन है।

खेल एवं मनोरंजन प्रसाधन

शतरंज का खेल सारे संसार को भारत की ही देन है। सौ-सौ लोगों का रंजन करने के कारण इसे शतरंज कहा गया है। इसे चतुरंग भी कहते हैं, क्योंकि इसमें चार रंग की गोटियाँ प्रयुक्त होती हैं। ताश के पत्तों का खेल भी मूलतः भारत की ही देन है। प्राचीनकाल में ये पत्ते पीपल के पत्ते के समान अथवा गोलाकार होते थे जिन पर भगवान विष्णु के दशावतारों के चित्र बने होते थे। गेंद का खेल भी भारत की देन है। भगवान कृष्ण की कंदुक-क्रीड़ा तो प्रसिद्ध ही है। बाद में उसी का आधुनिक रूपान्तर गेंद, बल्ला (क्रिकेट), फुटबाल तथा वॉलीबाल आदि खेल बन गये हैं। हॉकी भी मूलतः एक भारतीय खेल था, जो दण्ड-कन्दुक के रूप में खेला जाता था। मल्लयुद्ध, अक्षक्रीड़ा, द्यूतक्रीड़ा, चौपड़ का खेल, वोटा क्रीड़ा

(गिल्ली-डंडा), गधक्रीड़ा, चित्रक्रीड़ा, बाजिबाह्य क्रीड़ा (घोड़े पर चढ़ कर पोलो का खेल), गज (वाह्य क्रीड़ा) हाथी पर चढ़कर गेंद खेलना, घटक्रीड़ा (शिर पर घड़ों को रखकर रस्सी पर, डंडे पर अथवा अंगारों पर चलना, कभी नेत्र बंद कर चलना), शब्दसंधान (शब्दवेधी बाण चलाना) आदि सब खेल भारत की ही देन हैं। कबड्डी के प्रसिद्ध खेल का प्राचीन नाम कोबधीह प्रतीत होता है जिसका भाव यह है कि सांस भर कर जाने वाला खिलाड़ी अन्यों को चुनौती देते हुए पूछता है कि मेरा वध करने की इच्छा कौन रखता है वह सामने आवे? योगासन तथा अन्य यौगिक क्रियायें तो भारत की इतनी महान् देन हैं कि आज सारे भौतिकवादी पश्चिम में भी तन एवं मन के स्वास्थ्य के लिये योगासन का सर्वाधिक प्रचलन हो चला है।

भारत के विश्वप्रसिद्ध गर्म मसाले तथा पाक-विज्ञान

पाक-विज्ञान के क्षेत्र में भारत संसार का सर्वप्रथम सभ्य देश हुआ। अरणियों द्वारा मंथन करके अग्नि प्रकट करने की कला भारत में सबसे प्रथम विकसित हुई तथा अग्नि को पवित्र मानकर अग्निष्टोम एवं हवन-यज्ञ प्रथा भारत की ही देन है। अग्नि द्वारा अन्न एवं वनस्पतियों को सिद्ध करके भोजन बनाने की पाककला भी भारत की देन है। भोजन को स्वादिष्ट बनाने हेतु नाना प्रकार के व्यंजन (गर्म मसाले) आदि भी संसार को भारत की ही देन है। प्राचीनकाल में भारत के गर्म मसालों की यूरोप में इतनी ख्याति थी कि एला, लवंग, जीरक, मरिच, शतपुष्पा (सौंफ), तेजपत्र, यवाजिका (अजवायन) इत्यादि की सुगंधि के लिये घर-घर की पाकशाला लालायित रहती थी। भारत के इन गंध-द्रव्यों से आकृष्ट होकर गाथिक जाति के एक लुटेरे-आक्रान्ता एलारिक ने रोम पर आक्रमण कर दिया था। तब रोम के बड़े-बूढ़े लोग उसके पास गये तथा उससे प्रार्थना की कि वह मुंह-मांगा पुरस्कार लेकर रोम को छोड़ दे। एलारिक ने पैंतीस मन भारत के गर्म मसालों की मांग की। रोमवासियों ने पैंतीस मन कालीमिर्च इत्यादि गर्म मसाले एकत्र कर एलारिक को भेंट किये तथा इस प्रकार पैंतीस मन कालीमिर्च में रोम की स्वाधीनता तुल गई।

भवन एवं नगर निर्माण कला

विश्व की प्राचीनतम सभ्यता का प्रमाण मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा की खुदाई में प्राप्त सिंधुघाटी सभ्यता में मिला है। उसमें बड़े सुंदर-सुव्यवस्थित तथा सीध में बने हुए मार्गों वाले समकोणात्मक अधोभूमि प्रणालीयुक्त नगर ईसा से कम से कम पाँच हजार वर्ष पूर्व के काल के मिले हैं। इस प्रकार संसार में सबसे प्राचीन नगर व्यवस्था भारत की ही देन है। भारत के प्राचीन मंदिरों, राज-प्रासादों तथा

कलात्मक भवनों की रचना को देखकर बड़े-बड़े विदेशी वैज्ञानिक आज भी विस्मय से ठगे से रह जाते हैं। एलोरा का कैलास मंदिर पहाड़ के एक ही पत्थर को ऊपर से नीचे तक चीरकर व्यवस्थापूर्वक कई खण्डों में विभाजित अलौकिक मंदिर है जिसमें उसी एक ही पत्थर के शिखर, पत्थर की दीवारें, पत्थर की छत, पत्थर के कई ऊपर के खण्ड, पत्थर के आंगन, पत्थर के द्वारपाल, पत्थर के सैकड़ों कक्ष तथा उसी पत्थर को तराश कर बनाई गई सहस्रों कलात्मक मूर्तियाँ विश्व भर में बेजोड़ हैं, जो एक ही पत्थर पर अनेकानेक वर्षों तक छेनी तथा हथौड़े द्वारा की गई मानव की महानतम कला-साधना की गाथा गा रहे हैं।

ललित कलाओं की जन्मभूमि भारत

चित्रकला में अजंता विश्व का महानतम कलातीर्थ है। उसी की प्रेरणा पाकर लंका के राजाओं ने सिंहागिरि (सिगिरिया) की गुफा में पाँचवीं शती में भित्ति चित्र बनवाये। उसी से प्रेरणा प्राप्त कर चीन की तुनहुआंग गुफाओं में, तिब्बत के गुहा-मंदिरों में, कोरिया की वज्रगिरि गुफाओं में तथा बामियान (अफगानिस्तान) की विशाल गुफाओं में अलौकिक मूर्तियाँ एवं भित्ति-चित्र निर्मित हुए। अतः अजंता के द्वारा भारत की कला क्षेत्र में जो विश्व को देन है वह शाश्वत एवं अमोघ है। मूर्तिकला के क्षेत्र में चावल के दाने पर गीता के पद अंकित करने से लेकर बामियान (अफगानिस्तान) में 175 फुट ऊँची बुद्ध मूर्ति तक भारत की ख्याति विश्वभर में व्याप्त है। संगीत कला में भारत बेजोड़ है। शास्त्रीय संगीत भारत की अमूल्य निधि है तथा नृत्य कला भारत की शाश्वत-विभूति। साहित्य कला में आज तक कालिदास, तुलसी, टैगोर बेजोड़ हैं।

विज्ञानों का आदिगुरु भारत

विज्ञान के क्षेत्र में भारत ही विश्व का गुरु कहा जा सकता है। जहाँ 16वीं शती तक पश्चिम को धरती की गोलाई का ज्ञान तक भी न था वहाँ भारत के वेदों में भूगोल नाम भूमि के गोल होने का परिचायक है। आर्यभट्ट तथा भास्कराचार्य, वसुबन्धु तथा ब्रह्मभट्ट की गणित तथा ज्योतिष के क्षेत्र में देन आज भी भारत को आदिजनक सिद्ध करती हैं। कालगणना के क्षेत्र में भी भारत ही जगद्गुरु है। पोप ग्रेगरी (सन् 1587) से पूर्व सारे यूरोप में दिसंबर दसवां मास ही था, नवंबर नवां, अक्टूबर आठवां, सितम्बर सातवां, आदि। वर्ष का आरंभ मार्च (वसंत ऋतु) के विक्रम संवत् के समय ही हुआ करता था। संस्कृत के मासम् से लातीनी भाषा का मेंसम शब्द, संस्कृत दिव, दिवस से ही डे शब्द बने। गणित के अंकों को अभी तक अरबी भाषा में हिन्दसा कहा जाता है। जिसका अर्थ ही है भारत से सीखा हुआ। भारत के आयुर्वेद से ही यूनान का चिकित्सा शास्त्र प्रभावित है। चरक एवं

सुश्रुत के ग्रंथों के अनुवाद मंचूरिया से अरब तक में उपलब्ध है। मंगोलिया में तथा तिब्बत में अमृत कलश लिए हुए धन्वन्तरि की मूर्तियों की प्रतिष्ठा है।

संस्कृति के क्षेत्र में भारत विश्व गुरु

भारत की देन सभ्यता के क्षेत्र में महान् है ही किन्तु उसकी महानतम देन तो संस्कृति के क्षेत्र में है, जिसकी चर्चा के लिए एक स्वतंत्र प्रबंध की आवश्यकता है। योगीराज अरविन्द ने कहा है—मानवता को यदि सचमुच महानतम जीवनमूल्य चाहिएं, जिसके आधार पर मानवता का त्राण हो सकता है, तो वे जीवनमूल्य जगद्गुरु भारत की महान् मृत्युंजय संस्कृति ही प्रदान कर सकती है। संसार के दुःखी प्राणियों को संस्कृति की सुधा पिला कर अमरत्व का वरदान भारत ही दे सकता है।

अमरीकी इतिहासकार विल डयूरंट ने दस खण्डों में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'स्टोरी आव सिविलाइजेशन' के प्रथम खण्ड 'अवर ओरियंटल हेरिटेज' में इस बात का उल्लेख किया है कि आधुनिक विश्व भारत से क्या आशा कर सकता है। उन्होंने कहा है (पृष्ठ सं. 633)

'यह सत्य है कि हिमालय की सीमाओं से पार भी भारत ने हमें व्याकरण, तर्कशास्त्र, दर्शन, कथाओं, सम्मोहन और शतरंज तथा इन सबसे बढ़कर हमारे अंक और दशमलव प्रणाली की महान भेंट दी है परन्तु ये सब उसकी आत्मा का सार नहीं है। भविष्य में हम उससे जो सीख सकते हैं उसके मुकाबले में ये सब तुच्छ है। जैसे-जैसे नए आविष्कार, उद्योग तथा व्यापार महाद्वीपों को एकता में बाँधेंगे या एशिया के साथ हमको संघर्ष में डालेंगे, हम उनकी सभ्यताओं का अधिक निकटता से अध्ययन करेंगे तथा शत्रुता में भी उनके कुछ आचार-विचार को अपना लेंगे। संभवतः विजय, उद्दंडता और लूटमार के बदले में भारत हमें परिपक्व बुद्धि की सहनशीलता और शालीनता, असंग्रहशील आत्मा का शान्त-संतोष, समझदार व्यक्तित्व की शान्ति और सभी जीवित प्राणियों के प्रति एकता और प्रेम की शिक्षा देगा।'

विश्व के वक्षस्थल पर फहराता हुआ भारत का विजय-केतु

'यदि मुझ से पूछा जाये कि किस गगन के नीचे मानव-मन ने ऊँची से ऊँची प्रतिभाओं का विकास किया है, जीवन की बड़ी से बड़ी समस्याओं पर विचार करके ऐसे ऊँचे हल ढूंढ़े हैं जो प्लेटो तथा काण्ट का अध्ययन करने वाले विद्वानों के ध्यान को भी आकर्षित करने का अधिकार रखते हैं, तो वह महान् देश है 'भारत'। बीसवीं शताब्दी के संस्कृत के सब से बड़े विद्वान, महामहिमा-मण्डित डॉ. मैक्समूलर की भारत को वह श्रद्धांजलि कितनी हृदयहारी और मनोमुग्धकारी है। इसी भाव को राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी भारत-भारती में गाया है—

भू-लोक का गौरव प्रकृति का, पुण्य लीला-स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि, हिमालय और गंगाजल कहाँ?
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उस का कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है।

विष्णु-पुराण में भारत की प्रशस्ति में लिखा है—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गस्य च हेतूभते, भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।

अर्थात् स्वर्ग के तैंतीस कोटि देवता यही गीत गाते हैं कि भारतभूमि पर जन्म पाने वाले लोग धन्य हैं क्योंकि इस भूमि पर जन्म पाने मात्र से ही उनका स्वर्ग और अपवर्ग अपने आप सिद्ध हो जाता है। इसलिए भारत में जन्म पाने वाले लोग निश्चय ही देवताओं से भी ऊँचे हैं।

यह शस्यश्यामला भारत-धरणी विश्व संस्कृति की जननी है। भारतमाता के शीश पर दो हजार मील लम्बे हिमालय पर्वत की बरफानी चोटियों वाला चमकता हुआ चांदी का मुकुट रखा है। इस की हरी-भरी छाती पर गंगा-यमुना मोती और नीलम के समान झूल रही हैं। इस की कमर पर करधनी के समान विन्ध्य और सतपुड़ा पर्वतों की मेखला सुशोभित है। कृष्णा और कावेरी आंचल फहरा रही हैं।

पद-प्रान्त में स्वर्ण की कमल कली सी लंका सुशोभित है। दक्षिणी छोर पर कुमारी अन्तरीप के पास रत्नाकर की लहरें उछल-उछल कर भारतमाता के चरण पखारने के लिए दिन-रात होड़ करती रहती हैं। यह है सदावत्सला भारतमाता, जिस की गोदी में खेले राम और कृष्ण, भीम और अर्जुन, मनु तथा याज्ञवल्क्य, व्यास और वाल्मीकि, शिवि और हरिश्चन्द्र, बुद्ध और शंकर, चन्द्रगुप्त और विक्रमादित्य, नानक और कबीर, रामतीर्थ और विवेकानन्द, गांधी और अरविन्द। मनु से महात्मा गांधी तक तथा भगवान राम से रमण महर्षि तक कोटि-कोटि महापुरुषों की जन्मदात्री यह भारतमाता निखिल विश्व के धर्मों एवं संस्कृतियों की जननी है।

हमारा यह गौरव है कि जब समूचा संसार अन्धकार एवं अज्ञान के गर्त में पड़ा गोते खा रहा था, जब संसार के शेष देशों के लोग मानव का और पशुओं का कच्चा मांस खाकर अधनंगे घूमते थे, जब अमरीका अन्धकार में खोया हुआ था, और यूरोप के लोगों ने अपनी बन्दर की पूंछ काटकर इनसान बनना नहीं सीखा था, उस समय हमारे भारत के ऋषि हाथ में वेद के ज्ञान की मशाल लेकर सारे संसार को आलोक-मार्ग दिखा रहे थे। भारत की सारे संसार को सब से बड़ी देन यही है कि इसने अज्ञान में पड़ी हुई मानवता को सबसे पहले सभ्यता के प्रकाश का दान दिया। इसीलिए भगवान मनु ने आदेश दिया है कि इस देश के लोग पृथ्वी भर के सब मानवों को ज्ञान एवं विज्ञान की शिक्षा देवें। भारत की इस महान् देन को शोपनहावर, मैक्समूलर, कीथ और कांट, प्रभृति पश्चिमी विद्वानों ने भी मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। भारत की पराधीनता के काल में भी लंदन के ट्रेफल्गर स्क्वेयर में खड़े होकर दोनों भुजा उठाकर मैक्समूलर कहा करता था, 'भारत सारे संसार का आध्यात्मिक पूर्वज है। जिस जाति में राम और कृष्ण पैदा हुए हैं उसे गुलाम बनाना सारी मानव जाति के साथ घोर अन्याय करना है'।

भारत की आध्यात्मिक महिमा निराली है। सारे के सारे हिन्देशिया द्वीपसमूह में भारतीय संस्कृति की अमिट छाप अभी तक दृष्टिगोचर होती है। वहाँ के मन्दिरों की दीवारों पर महाभारत और रामायण के सुन्दर चित्र खुदे हुए हैं। ऋषि अगस्त्य का पूजन होता है। जावा का एक हजार स्तम्भों वाला विष्णु मन्दिर सारे संसार में बेजोड़ है। स्वयं भारत में भी उतना बड़ा मन्दिर नहीं है। इंडोनीजिया द्वीपसमूह में आज तक होने वाली रामलीला और रामायण, महाभारत गाथाओं का प्रचार देखकर वहाँ के करोड़ों मानव हृदयों पर अंकित भारतीय संस्कृति की छाप का अनुमान लगाया जा सकता है। सम्भवतः बहुत कम लोगों को पता है कि इंडोनीजिया के राष्ट्रपति डॉ. सुकर्ण के पिता महाभारत के महान् विद्वान थे। महाभारत में कर्ण का चरित्र उन्हें बड़ा पसन्द आया। परन्तु कर्ण का कौरवों के पक्ष में होना उन्हें अच्छा नहीं लगा। इसलिए उन्होंने अपने पुत्र का नाम रखा 'सुकर्ण'

अर्थात् अच्छा कर्ण।

भिक्षु चमनलाल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्दू अमरीका' में लिखा है कि कोलम्बस के अमरीका खोजने से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व अमरीका में हिन्दू साम्राज्य था। वहाँ के मन्दिरों और मूर्तियों के आधार पर एक सुन्दर चलचित्र तैयार करवा कर उन्होंने सारे संसार के सम्मुख इस सत्य को घोषित किया है। अमरीका से आते हुए जब मैक्सिको के एक जज ने उनसे पूछा कि 'आप हमें दोबारा हिन्दू धर्म में कब अपनायेंगे?' तो उनकी आंखों में आंसू भर आये।

इतिहास प्रमाण है कि काबुल में दसवीं शताब्दी तक ब्राह्मणों का राज्य था। काबुल नदी का नाम 'कुंभा' तथा कुर्रम नदी का नाम 'क्रमु' वेदों में भी आया है। देवभाषा संस्कृत को उस का सब से मूल्यवान व्याकरण देने वाला ऋषि पाणिनि, काबुल में ही तो पैदा हुआ था। ईरान की पुरानी भाषा अवेस्ता संस्कृत के शब्दभण्डार से भरपूर है। जिन के इतिहास के नेत्र बन्द नहीं हो गए हैं वे साफ समझ सकते हैं कि तुर्किस्तान राजा ययाति के पुत्र तुरु द्वारा बसाया हुआ तुरुस्क स्थान ही है। कंधार का पुराना नाम गन्धार देश था और कौरवों की माता गान्धारी वहाँ के राजा की पुत्री थी।

जर्मन देश का नाम शर्मण शब्द से बना है। प्राचीन काल में वहाँ अनेक ब्राह्मण विद्वान रहते थे जिन की उपाधि शर्मा प्रसिद्ध है। हिटलर अपने आप को आर्य कहने में गौरव मानता था और हिन्दुओं के चिह्न स्वस्तिक को अपने राष्ट्रीय झण्डे पर चित्रित करने में गर्व का अनुभव करता था।

वर्तमान युग के शक्तिशाली देश रूस की रूसी भाषा में संस्कृत के अनेकानेक तत्सम और तद्भव शब्द आज तक गूँजते हैं और इस बात का प्रमाण देते हैं कि भारत और भारती का डंका उन देशों में भी अवश्य बजा होगा। अपनी यात्राओं में संसद सदस्य डॉ. रघुवीर ने मन्चूरिया में लोगों को गायत्री पाठ करते देखा और मंगोलिया में ही गौड़पाद की सांख्यकारिका का प्रचार देखा। चीन, जापान, कोरिया, श्रीलंका, तिब्बत और ब्रह्मदेश करुणावतार भगवान बुद्ध की चरणधूलि को माथे पर चढ़ाने वाले भारत-भक्त ही हैं।

अमरीका में वर्तमान काल में भी भारतीय संस्कृति अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रही। गीता के भक्त महात्मा थोरो का शिष्य इमर्सन जब इंग्लैण्ड के सन्त कवि कार्लायल से मिलने के लिए यूरोप में गया तो दोनों विद्वानों ने एक दूसरे को श्रीमद्भगवद्गीता की प्रति ही भेंट की। जब स्वामी विवेकानंद अमरीका में भारत की विजय-पताका फहराने के लिए पहुँचे तो वहाँ की एक महिला ने कहा—यदि अमरीका की धरती पर कभी ईश्वर ने चरण रखा है तो स्वामी विवेकानंद के रूप

में। स्वामी रामतीर्थ के अमरीका पहुँचने पर उस देश के पत्रों ने लिखा कि एक जीवित ईसा मसीह ने अमरीका की धरती पर चरण रखा है। स्वयं ईसा मसीह के विषय में रूसी विद्वान निकलसन नोटोविच की खोज के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि वे आध्यात्मिक शिक्षा के लिए भारत आए थे। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने ठीक ही लिखा है—

था हिन्दुओं का शिष्य ईसा यह पता भी है चला।
ईसाइयों का धर्म भी है बौद्ध सांचे में ढला।

अरब पर भारतीय संस्कृति की जो छाप है उसे लोग प्रायः भूल गए हैं। किंतु सूफी धर्म भारत के वेदान्त का ही एक दूसरा रूप था और 'अनलहक' गाने वाले मंसूर को फांसी देकर इस्लाम ने साबित कर दिया कि सूफी धर्म इस्लाम से नहीं जन्मा। इसी परम्परा में एक सूफी फकीर सरमद शहीद 'अनलहक' गाता हुआ भारत पहुँचा। वह औरंगजेब के बड़े भाई दाराशिकोह को वेदान्त और उपनिषद् पढ़ाया करता था। औरंगजेब ने दाराशिकोह को दिल्ली के चांदनी चौक में घुमवा कर मरवाने के बाद वेदान्त की मस्ती वाले फकीर सरमद को बन्दी बनाकर अपने दरबार में बुलाया और पूछा कि तुम काफिरों की तरह नंगे क्यों फिरते हो? सरमद ने उत्तर दिया कि 'मैं बालक के समान निर्दोष हूँ, तुम्हारे जैसे काफिर को ही अपने कुफर छिपाने के लिए सफेद लिबास की आवश्यकता पड़ती है।' इस पर क्रुद्ध होकर औरंगजेब ने पूछा—'तुम अपने आप को खुदा क्यों कहते हो? अनलहक मत कहो।' सरमद ने उत्तर दिया कि 'यह मेरी आत्मा की आवाज है इसे कोई रोक नहीं सकता।' जब दिल्ली के लाल किले के बाहर सरमद शहीद को सूली पर चढ़ाया गया तो सरमद ने कहा—'बहुत देर से मन्सूर की आवाज धीमी पड़ चुकी थी, शम्स तब्रेज की आवाज भी लोग भूल चुके थे, रूमी का सन्देश भी विस्मृत होने लगा था। उनकी आवाज को दोबारा गुंजाने के लिए मैं इस देश में आया हूँ जिस देश से अनलहक की आवाज हमारे देश तक पहुँची थी। मन्सूर को फांसी दे दो, सरमद को सूली पर लटका दो, पर अनलहक की अमरध्वनि कभी नहीं मरेगी।' दिल्ली के बिरला मन्दिर में संगमरमर की एक शिला पर हजरत मुहम्मद के चचा अबुल हिकम की एक अरबी कविता का अंश खुदा हुआ है। अबुल हिकम ईश्वर से प्रार्थना करता है—'हे प्रभु, मेरा समस्त जीवन लेकर भी मुझे केवल एक दिन के लिए भारत का वास दे दो।' इससे पता चलता है कि हजरत मुहम्मद के बाप-दादा हिन्दू थे और भारत के दर्शन के लिए लालायित रहते थे। यह भी कहा जाता है कि अरब का संगे-अस्वद असल में शिव-लिंग का काला पत्थर ही है।

जब सिकन्दर विश्व-विजय करने के लिये भारत की ओर जाने वाला था तो उस के गुरु अरस्तू ने उसे कहा था—'भारत से मेरे लिए श्रीमद्भगवद्गीता लाना।'

प्लेटो के दर्शन पर भी भारतीय संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। स्वास्तिक को ग्रीक क्रोस माना जाता है। नक्षत्र विज्ञान के क्षेत्र में तो अरब और यूनान दोनों ही भारत के शिष्य रहे हैं। बाइबिल में धरती को चपटा माना गया है। धरती को गोल कहने वाले गेलिलियो को जीवन भर दारुण दुःख दे कर भी उनकी धर्मान्धता का प्रतिशोध न हुआ। कुरान शरीफ के अनुसार धरती पहले थी और इसके अन्धकार को दूर करने के लिए अल्लाताला ने चांद और सूर्य बनाए। इसके विपरीत हमारे यहाँ ज्योग्राफी के लिए भूगोल नाम वेदों तक में मिलता है। इस नाम से ही स्पष्ट ज्ञात होता है कि धरती गोल है। संसार में सबसे पहले भारत ने धरती के सूर्य से उत्पन्न होने और परिक्रमा करने के बारे में घोषणा की थी। आज तक भारत के चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण की गणना अन्तिम पल तक ठीक निकलती है।

गणित के अंक सबसे पहले भारत ने खोजे, बाद में अरबों ने भारत से सीखे। अंक के लिए अरबी नाम हिन्दसा यह साबित करता है कि वे हिन्दुओं से उधार लिए गए हैं। साहित्य, कला और विज्ञान के क्षेत्र में भी भारत सब देशों का सिरमौर रहा है। इसके अविनश्वर गौरव के कारण ही यह समस्त भूमण्डल में सम्मानित हुआ है और विकराल काल की कठोर क्रूरताओं के बावजूद मृत्युंजय बना हुआ है।

भारत की विश्व को देन के विषय में बोलते हुए आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में डॉ. राधाकृष्णन ने पश्चिम के लोगों को कहा था—'यह सच है कि तुम ने आकाश में पक्षी के समान उड़ना और पानी में मछली के समान तैरना सीख लिया है पर धरती पर इनसान के समान चलना तुम ने अभी तक नहीं सीखा। यह तुम्हें भारत से सीखना होगा।'

वह संस्कृति बिना किसी राजनीतिक उद्देश्य से बढ़ सकती है, वह व्यापार आगे बढ़ सकता है बिना किसी साम्राज्यवादी रूपरेखा के, बस्तियाँ बन सकती है बिना उपनिवेशिक प्रयास के, वह साहित्य, धर्म तथा भाषा का प्रसार विदेशी को नकार के या युद्ध तथा जाति विषमता के बिना, यह सब भारत के पड़ोसियों के सम्बन्ध के इतिहास से प्रमाणित है।

—अरुण भट्टाचार्य

दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति का प्रसार

संस्कृति के क्षेत्र में भारत एशिया का हृदय एवं जगत् का गुरु रहा है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में, 'भारतीय संस्कृति एक पूर्ण-प्रस्फुटित पुष्प के समान है, जिसके पराग के बीज अनुकूल पवनों द्वारा दूर-दूर देश-विदेशों में ले जाये गये तथा कालांतर में उन देशों में भी भारतीय संस्कृति के सुन्दर पादप लहराने लगे एवं इस प्रकार सारा भूमंडल भारतीय संस्कृति की पावन सुगंधि से सुवासित हो उठा।'

भारत के प्राचीन ऋषियों ने जो वेदों में उद्घोष किया था, '**कृण्वन्तो विश्वनार्यम**', उसके पीछे विश्वकल्याण की भावना ही निहित थी। सारे विश्व को आर्यत्व सिखाने का अर्थ संसार के मानव-मात्र को अपने जीवन का माधुर्य, सौन्दर्य, ज्ञान एवं शाश्वत शान्ति का सुख बाँटना है। जहाँ मध्यकाल के पश्चिमी कट्टरपंथी धर्मप्रचारकों ने अपने-अपने सम्प्रदाय के विस्तार हेतु रक्तरंजित सर्वसंहार किये, अन्य मतावलम्बियों को जीवित जलाया तथा अनेक वर्ष पहले मरे हुए अन्य मतावलम्बियों की कब्रें खुदवा कर उनके कंकालों को टॉवर ऑफ लंदन पर फांसियाँ दी, जहाँ तबलीग के नाम पर अन्य देशों के लोगों को अपने मत के झंडे के नीचे लाने के लिए मानव जाति की ग्रीवा पर अंधे मजहबी जुनून की नंगी तलवार कई शताब्दियों तक नाचती रही, वहीं भारत ने अपनी महान् संस्कृति की सुवास बांटने के लिए त्याग, तपस्या, तितिक्षा एवं जीवनव्यापी अहिंसक साधना का मार्ग अपनाया। अपने मन के गुने हुए ज्ञान तथा साधी हुई सुख-शान्ति को समूचे मानव-परिवार में बांटने के पवित्र संकल्प से प्रेरित हो अनेक संस्कृति के ज्योतिधर ऋषि-मुनि तथा अहिंसाव्रती बौद्ध भिक्षु तिब्बत-चीन आदि उत्तरी एशिया के देशों में पैदल जाते हुए हिमालय पर्वत की हिमानी चोटियों में गल गये, किन्तु उनके शिष्यों ने ज्ञान का प्रकाश बाँटने का यह महान् यज्ञ खण्डित नहीं होने दिया तथा एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी उसी बलिदानपूर्ण साधना के पथ पर आगे बढ़ती रही तथा अनेकों के धीरज, साहस एवं बलिदान के प्रताप से सारा उत्तर एशिया भारत का शिष्य बन गया। हिमालय की बाधा के समान दक्षिण-पूर्व के

देशों एवं द्वीपों में अपनी संस्कृति के महायज्ञ का प्रकाश बाँटने हेतु जाने में महासमुद्रों की विकराल सर्वग्रासी लहरों की चुनौती थी किन्तु अगस्त्य जैसे ऋषियों के सामने महासमुद्रों की बाधाएँ न टिक सकीं। संस्कृति के अनेक संदेशवाहक लकड़ी के बंधे हुए तख्तों पर, खोखले ताड़ के तनों पर, पोपले बाँस के लट्ठों पर, छोटी-छोटी डोंगियों और नावों पर, समुद्री तूफानों से जूझते हुए सुदूर द्वीपों में संस्कृति का प्रकाश पहुँचाने हेतु इस जोखिम भरे महाअभियान पर निकल पड़े। अनेकों को महोदधि के तल में जल-समाधि लेनी पड़ी, अनेकों अहिंसक संस्कृति दूतों को सागर के विकराल हिंस्र-जंतुओं ने लील लिया। किन्तु इस महान् संस्कृति के सपूतों ने साहस नहीं त्यागा तथा एक दिन समूचे दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति के मंगल गीत गूंजने लगे।

महाकवि कालिदास ने हिमालय पर्वत को न्याय की तुला का विशाल दंड कहा है। हिमालय से ऊपर, उत्तर एशिया के देश हैं। हिमालय से नीचे दक्षिण एशिया के देश हैं। ब्रह्मदेश से लेकर इन्दोनीजिया तक के देश दक्षिण-पूर्व एशिया में गिने जाते हैं।

ब्रह्मदेश—भारत के असम, मणिपुर, नागालैंड प्रदेशों को स्पर्श करता हुआ ब्रह्मदेश सन् 1936 तक तो भारत का अंग ही था। उससे पूर्व भी सहस्राब्दियों तक वह भारतीय संस्कृति से परिपूर्ण देश रहा है। भगवान बुद्ध के काल से पूर्व ही भारतीय बर्मा में बस चुके थे। बर्मा का प्राचीनतम राज्य श्रीक्षेत्र कहलाता था। इसकी राजधानी 'विष्णोमिया' अर्थात् विष्णुपुरी थी। इसको आजकल प्रोम कहा जाता है। बौद्धकथाओं के अनुसार इसका निर्माण भगवान विष्णु ने विश्वकर्मा की सहायता से किया था। बुद्ध-पूर्व काल में ही कपिलवस्तु के शाक्य वंश का राजकुमार अभिराज उत्तरी ब्रहादेश में आया तथा इरावती नदी के उत्तरी भाग पर उसने सेकिस्सा (तगौंग) नामक नगर बसाया।

ब्रह्मदेश में निम्नलिखित हिन्दू राज्य स्थापित हुए—

1. धन्यावती—अराकान
2. बसीन—बसीन
3. रामावती—रंगून
4. हंसावती—पेरू
5. सुधम्भावती—शदान

बुद्ध के समय में ही क्षत्रियों का एक दूसरा दल गंगा की घाटी से उत्तरी ब्रह्म आया। यह बहुत ही रोचक तथ्य है कि ब्रह्मदेश की वर्तमान राजधानी रंगून का नाम ही रामावती अर्थात् राम की नगरी था। रामावती से रम्मनवती, रंगनवती इत्यादि

नाम परिवर्तित होते-होते रंगून नाम हो गया है। वहाँ रामलीला 'यामाप्वे' के अत्यंत सुन्दर चित्र से संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। वहाँ की लीला में अभिनीत शेफालिका नृत्य भी भारत की देन है, जिसमें नर्तक गिरते हुए शेफाली के श्वेत पुष्प के समान दिखाई देता है।

मध्यकाल में एक भारतवंशी राजा अनिरुद्ध द्वारा सन 1044 में संस्थापित राजधानी अनोरथपुर (पगान) के ध्वंसावशेषों को देखकर दर्शक मुग्ध हो जाता है। 16 वर्गमील में 5000 स्तूप अभी तक विद्यमान हैं। राजा मिन्दोन द्वारा निर्मित 'कथोदा पेगोडा' माण्डत्वे में 729 संगमरमर पट्टिकाएं सुसज्जित हैं, जिन पर समूचे बौद्धग्रन्थ उत्कीर्ण हैं।

हैलांग में भगवान विष्णु का लगभग 1 हजार वर्ष पुराना मंदिर विद्यमान है, जहाँ की प्रधानमूर्ति गरुडवाहन विष्णु बर्लिन म्यूजियम में ले जाई जा चुकी है, किन्तु दशावतार की मूर्तियाँ अभी तक विद्यमान हैं, जैसे भूदेवी के साथ वाराह, हिरण्यकशिपु का संहार करते हुए नरसिंह, त्रिभंग मुद्रा में श्रीराम, परशु खड्ग एवं धनुष धारण किए परशुराम, भगवान कृष्ण, बुद्ध, कल्कि आदि सभी विष्णु अवतारों की बहुत सुन्दर मूर्तियाँ खण्डित हैं। इस मंदिर में सूर्य भगवान की मूर्ति भी है। ब्रह्मदेश में गणेश की उपासना 'महापिसेन' के नाम से अभी भी प्रचलित है।

पगान का श्वेत रंग का आनन्द मंदिर बर्मा का दुग्ध धवल स्थापत्य चमत्कार ही है। कुछ दृष्टियों से वह भारत के ताजमहल से भी अधिक कलात्मक है। इस मंदिर के चारों ओर 1500 मूर्ति पटलों पर भगवान बुद्ध की पूर्वजन्म की जातक कथायें चित्रित हैं, जिनका विवरण पाली अथवा मोन भाषा के शिलालेखों में दिया गया है। पगान के धर्मप्रवण राजा किन्जिथा ने मणियों का एक विशाल संग्रह भारत में बौद्धगया के स्तूप के पुनरुद्धार के लिए जलयान से भेजा था। चीनी यात्रियों के वर्णन के अनुसार श्रीक्षेत्र में व्यू राज्य में एक हजार (1000) बौद्ध मंदिर थे।

बर्मा का सबसे महान् ऐतिहासिक मंदिर है रंगून का 2500 वर्ष पुराना द्वितीय डैमॉन पेगोडा, जो सोने से मढ़ा हुआ संसार का सर्वाधिक मूल्यवान मंदिर है। यह रंगून नगर के एक कोने में सिगुत्रा पहाड़ी पर निर्मित है। इसके चारों ओर चौसठ पेगोडा हैं। जिसके चौसठ शिखर हैं। केन्द्रीय शिखर 368 फुट की ऊँचाई तक उठा हुआ सूर्य प्रकाश में इतना चमकता है कि दृष्टि चौंधिया जाती है। चारों ओर 166 विशाल सीढ़ियाँ है, जिन पर हाथी भी सुगमता से चढ़ सकता है। पेगोडा में 40 टन तथा 16 टन के दो बड़े घंटे लगे हुए हैं। गर्भगृह में ठोस सोने की भगवान बुद्ध की मूर्ति है। कई टन सोने के अतिरिक्त इस मंदिर में 5448 हीरे तथा 3000 बहुमूल्य रत्न जड़े हुए हैं। सोने की इतनी अधिकता के कारण ही दक्षिणी बर्मा को स्वर्णभूमि

कहा जाता था। महाजनक जातक के अनुसार राजकुमार महाजनक भारत से व्यापारियों के साथ समुद्र मार्ग से सुवर्ण भूमि की यात्रा पर जाते हैं। कौटिल्य ने भी सुवर्ण भूमि की महिमा लिखी है।

कम्बुज—कम्बुज देश राजर्षि कम्बुज द्वारा संस्कारित देश है। भारत की सांस्कृतिक दिग्विजय संपादित करने वाले महापुरुषों में निम्नलिखित का नाम आदरपूर्वक लिया जाता है।

अगस्त्यः कम्बु कौण्डिन्यः राजेन्द्रश्चौलभूषणः।
सर्वे दिग्जियिनाः ख्याताः शैलेन्द्रो बपा रावलः।।

अगस्त्य ऋषि, जो पुराणों के वर्णन के अनुसार सागर को तीन चुल्लू में पान कर गये थे, वे वास्तव में समुद्र पार कर मलाया या इन्दोनीजिया में भारतीय संस्कृति के सर्वप्रथम संदेशवाहक बनकर पहुँचे तथा मलाया एवं जावा में अभी तक उनके मंदिर हैं जिनमें उन्हें शिवगुरु के नाम से पूजा जाता है। राजर्षि कम्बु कम्बुज के आदिपुरुष माने जाते हैं। कौटि नामक दक्षिण भारत के एक ब्राह्मण प्रचारक ने चम्पा (वियेतनाम) में वहाँ की राजकुमारी सोमा को भारतीय संस्कृति में दीक्षित कर वहाँ सांस्कृतिक साम्राज्य का विस्तार किया था। चोलवंश के महाराजा राजेन्द्र चौल ने लगभग सारे दक्षिण-पूर्व एशिया पर शासन किया। शैलेन्द्र साम्राज्य सुमात्रा एवं हिन्दूचीन तक फैला हुआ था। बप्पा रावल ने अफ़गानिस्तान एवं अरब तक सांस्कृतिक विजय सम्पादित की।

कम्बुज में संसार का सबसे बड़ा विष्णु मंदिर अंकुरवट स्थित है। अंगकोरवट् एक महान् विष्णु मंदिर है, जिसका घेरा 211 मील लम्बा है। इसके चारों ओर 800 फुट चौड़ी खाई है। मंदिर की पीठिका में हजारों गरुड अंकित हैं, जिन्होंने मंदिर के विमान को अपने शीश पर उठाया हुआ है। उस विमान के सात सोपान हैं, अर्थात् सात एक-दूसरे के ऊपर उठती परिक्रमाएं हैं जो भूलोक, भूवःलोक, स्वःलोक, महालोक, जनःलोक, तपलोक, सत्यलोक के नाम से प्रसिद्ध हैं। चारों ओर ऊँचे शिखर हैं तथा सातों परिक्रमाओं में सुन्दर जगत्-विख्यात चित्रशालाएँ हैं। इनमें रामायण, महाभारत एवं हरिवंश के कथानक चित्रित हैं।

अंगकोरवट् के समान अङ्कोरधाम एक महान् शिवमन्दिर है, जिसमें 54 शिखरों के प्रत्येक कोने पर लोकेश्वर शिव की मूर्तियाँ अंकित हैं। उक्त मन्दिर में समुद्रमंथन का मूर्तिशिल्प बड़ा अलौकिक है। वहाँ दक्षिण भारत जैसी नटराज की मूर्तियाँ भी बहुत मिली हैं। राजा जयवर्मन, यशोवर्मन, धरणीन्द्र वर्मन, भवर्मन इत्यादि ने अनेक शैव, वैष्णव एवं बौद्ध मन्दिर बनवाये। वहाँ के संस्कृत शिलालेख भी महान् ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। वहाँ हरिहर की मूर्तियाँ भी मिली हैं

जिनमें शिव एवं विष्णु का समन्वय किया गया है। दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति का प्रसार लवदेश, लाओस देश का नाम वहाँ के निवासी अभी तक लव-देश ही लिखते हैं। थाई देश के लवपुरी नामक नगर के समान ही इस देश का नामकरण हुआ। वहाँ लव भाषा में लिखी रामायण बहुत लोकप्रिय है। राम का धनुषभंग, सीता की अग्निपरीक्षा, बाली वध, उड़ते हुए गरुड आदि की मूर्तियाँ बड़ी चित्ताकर्षक हैं।

सहस्र बुद्ध मन्दिर तथा रक्त मन्दिर बहुत सुन्दर हैं। भाषा पर संस्कृत एवं पाली का प्रभाव बहुत अधिक है। इन्द्र, ब्रह्मा, देवी, धरणी देवी, मेखला ऋषि इत्यादि शब्द लव भाषा में आज तक गूंज रहे हैं।

वियेतनाम (चम्पा)—जिस चम्पा देश में कौण्डिन्य नामक प्रचारक ने भारतीय संस्कृति की लौ जलायी वहाँ महाराजा भद्रवर्मा, राजा सत्यवर्मा, राजा इन्द्रवर्मा, हरिवर्मा आदि बड़े प्रतापी हिन्दू राजा 1500 वर्षों तक राज्य करते रहे। वे शैव और वैष्णव धर्म को मानते थे। चौथी शताब्दी में राजा भद्रवर्मा प्रथम द्वारा बनाया हुआ भद्रेश्वर स्वामी नामक शिव मन्दिर चम्पा की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया। चम्पा में सौ से भी अधिक शिलालेख ब्राह्मी लिपि में मिले हैं, जिससे प्रमाणित होता है कि वहाँ की राज्यभाषा संस्कृत रही है। आज भी वहाँ 8000 से भी अधिक बौद्ध भिक्षु हैं। किन्तु अमरीका और चीन के संघर्ष में उन्हें पूर्ण धार्मिक स्वाधीनता प्राप्त नहीं है, जिसके कारण अनेक बौद्ध भिक्षुओं ने आत्मदाह करके अपनी स्वाधीनता का संकल्प दोहराया है।

मलयदेश—ईसा की प्रथम शताब्दी में यूनानी इतिहासकार मलय प्रायद्वीप को स्वर्ण भूमि कहते थे। उड़ीसा तथा दक्षिण भारतीय लोगों के प्रभाव के कारण भारतवंशी लोगों को अभी तक वहाँ ओरांग कालिंग कहा जाता है, जिसका अर्थ है उड़ीसा (कलिंग) से आये हुए लोग। मलय नाम दक्षिण भारत के मलय पर्वत के नाम पर ही पड़ा। मलय की भाषा में अनेक प्राकृत रूपी तमिल शब्द प्रचलित हैं। इसकी पुरानी लिपि भी भारत की पल्लवकाल की लिपि है। 15वीं शताब्दी में लंका के शासक की उपाधि परमेश्वर थी। उसके सेनापति को दत्तश्री विजयाधिराज कहा जाता था। सातवीं शती में मलय देश में शैलेन्द्रों का प्रतापी श्रीविजय साम्राज्य था। सिंगापुर में एक राजकुमार नित्य उत्तम प्रवास पर गया था। उसने सतह पर उतरते ही सामने एक सिंह देखा जिसके कारण उसका नाम सिंहपुर हो गया। मलयदेश की राजधानी कुआलालुम्पुर का नाम कैवल्यम्पुर था। प्रधानमंत्री तुंकु अब्दुर्रहम के छोटे भाई का नाम तुंकु लक्ष्मण है। तुंकु उपाधि भी संस्कृत के तुंग शब्द से है, जिसका हिज हाइनेस के समान ही अर्थ है 'ऊँचा'। मलाया, मलका, सिंगापुर, सारावाक, वरुणीय द्वीप (बोर्नियो) के मुस्लिम सुल्तानों के गले में भी

एक सोने की कंठी रहती है, जिसमें गणपति की मूर्ति बनी होती है। सुल्तानों की उपाधियाँ भी संस्कृत के मन्त्रों द्वारा ब्राह्मण ही करवाते हैं। मलय देश की रामकथा 'हिकायत सेरी राम' बहुत रोचक तथा आज तक लोकप्रिय है।

इन्दोनीजिया—इन्दोनीजिया नाम दो यूनानी शब्दों के योग से बना है। 'इन्दो' अर्थात् हिन्दू और नैसेस अर्थात् द्वीप। अतः इन्दोनीजिया का अर्थ है द्वीपों का भारत अथवा हिन्दू द्वीपसमूह।

भारत के प्राचीन साहित्य में इसे द्वीपस्थ भारत, द्वीपान्तर भारत, वृहत्तर भारत इत्यादि नामों से पुकारा जाता था। तब यहाँ डच लोगों का अधिकार था। तब इसे डच ईस्ट इण्डीज कहा जाता था। जिसका अर्थ है डच जाति के अधिकार में पूर्व में बसे हुए हजारों छोटे-छोटे भारत।

मलय देश तथा आस्ट्रेलिया के बीच में समुद्र में 3 हजार मील लम्बाई में फैले हुए लगभग 3000 द्वीपों में भारतीय संस्कृति अपने अविनश्वर गौरव से आज भी जगमगा रही है। महर्षि अगस्त्य के पश्चात् उत्कल के प्रचारकों एवं व्यापारियों ने यवद्वीप (जावा) में प्रवेश किया तथा वहाँ की खेती देखकर उसे यवद्वीप नाम दिया।

वाल्मीकि रामायण में वर्णन है कि जब सुग्रीव ने वानरों को सीता की खोज के लिए भेजा तो उन्हें यवद्वीप तथा स्वर्णद्वीप (सुमात्रा) भी जाने के लिए आदेश दिया। इन्दोनीजिया की प्राचीन राजधानी का नाम जोग्जाकर्ता (अर्थात् अयोध्याकर्ता) था। नई राजधानी जर्काता के मुख्य रेलवे स्टेशन के सामने एक गोलाकार उद्यान में चारों ओर जलक्रीड़ा करते हुए फव्वारों के बीच में ऊँची पीठिका पर भगवान गणपति की स्वर्णिम प्रतिमा विराजमान है।

'प्रम्बनम' राम कथा पर उत्कृष्ट मूर्तिकला का अद्वितीय पुण्यस्थल है। मूर्तिशिल्प तीर्थ में रामचरित पर हजारों मूर्ति पटल इस सुन्दर शैली में उत्कीर्ण किए गये हैं कि उसकी भारत में भी किसी वस्तु से तुलना नहीं हो सकती। इन्दोनीजिया का राष्ट्रीय महोत्सव है तेरियन सेन्दरात्रि रामायण, जिसका अर्थ है नृत्यमय नवरात्रि रामायण।

सर्वप्रथम इन्दोनीजिया ने अपने देश में अंतर्राष्ट्रीय रामायण महोत्सव आयोजित कर विश्व भर में अपनी सांस्कृतिक निष्ठा की प्रबल उद्घोषणा की।

जावा का प्रसिद्ध बोराबुदूर (बृहद् बुद्ध मंदिर) भी विश्व में बेजोड़ है। यह पहाड़ी को काटकर बनाया गया। इसमें गोलाकार परिक्रमा में ही उत्तरोत्तर उठते हुए 9 खण्ड हैं। 12 स्तूप हैं। इन्दोनीजिया की हर धर्मपुस्तक इस प्रार्थना से प्रारम्भ होती है, 'ओम अविघ्नमस्तु' अर्थात् हमारे कार्य में कोई विघ्न-बाधा न आवे।

रामायण तथा महाभारत को आज तक राष्ट्रीय महाकाव्य का सम्मान प्राप्त है।

राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन आदि राष्ट्रीय महापुरुष के रूप में सम्मानित हैं। भूतपूर्व राष्ट्रपति सुकर्ण का नाम महाभारत महारथी कर्ण के नाम पर था। इन्दोनीजिया का बाली द्वीप तो शत-प्रतिशत हिन्दू धर्मावलम्बी है। बाली में हर घर के दो भाग हैं नरगृह, और देवगृह। नरगृह में लोग रहते हैं तथा देवगृह में दैनिक पूजा-उपासना करते हैं। वहाँ अभी तक वर्ण व्यवस्था, गो पूजा, शिव-विष्णु उपासना, अंत्येष्टि संस्कार, श्राद्ध आदि सभी प्रथाएं प्रचलित हैं।

जब सन् 1945 में इन्दोनीजिया स्वाधीन हुआ तो बाली निवासियों ने भगवत्गीता की सौगन्ध खाकर स्वाधीनता की रक्षा के लिए संकल्प किया।

इस प्रकार सारे दक्षिण-पूर्व एशिया के अनेकों देशों तथा सहस्रों द्वीपों में भारतीय संस्कृति का प्रकाश आज तक जगमगा रहा है।

विश्व का अध्यात्मिक गुरु होने का गौरव भारत को ही प्राप्त है। भारत ने एशिया के समस्त देशों को अध्यात्मिक ज्ञान की अखण्ड ज्योति दी है और वह आज भी बर्मा और दक्षिण पूर्व एशिया के देशों को उनके राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय जीवन में आलोक प्रदान करती है।

—श्री द्दान-ठून

× × ×

आज संसार संघर्षमय है, क्योंकि तरह-तरह के विभेद संसार में हैं, इस संसार को सुख का, शांति का रास्ता यदि दिखाना होगा तो वह हिन्दुस्तान ही दिखा सकता है, क्योंकि अलग-अलग कारणों से इस देश में इतनी विविधतायें हैं कि इन सब विविधताओं के रहते हुए यदि एकात्मकता का सूत्र यहाँ बतलाना हो सका और विविधता में एकात्मकता का सूत्र रखने वाला समाज यदि यहाँ मॉडल के रूप में निर्मित हो सका तो फिर उसी का अनुकरण करके सम्पूर्ण संसार किस तरह विविधता के अन्तर्गत एकात्मकता के सूत्र में बाँधा जा सकता है, यह प्रयोग करने की प्रेरणा प्राप्त हो सकती है।

—आरनाल्ड टायनबी

श्याम देश में रामचरित्र का पवित्र प्रकाश

रामायण की महागाथा विश्व की सर्वप्रसिद्ध इतिहास गाथा है जिससे मानव जगत् के अधिक से अधिक प्राणी सुपरिचित हैं। इसी कारण इन्डोनीजिया के तेरियन-तेरियन सेन्दरात्रि रामायण महोत्सव तथा विगत वर्ष के अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन से लेकर मैक्सिको (अमरीका) में अभी तक प्रचलित रामसीता महोत्सव तक सारे विश्व में, भूमंडल के पूर्वी छोर से पश्चिमी छोर तक सर्वत्र रामकथा गूँज रही है।

भारत के पूर्व में ब्रह्मदेश है, जो सन् 1936 तक भारत का ही अंग था। उसके पूर्वी सीमान्त को स्पर्श करता हुआ एक अन्य देश श्याम (थाई देश) है। जो कुछ दृष्टियों से वर्तमान भारत से भी अधिक भारतीय संस्कृति में रंगा हुआ है।

राम-राज्य आदर्श-विभूषित देश

थाई देश संसार का एकमात्र धन्य देश है, जिसने राम-राज्य के अलौकिक आदर्श को अपने देश में साकार करने का सबसे प्रामाणिक प्रयास किया है। यह इतिहास की एक विचित्र विडम्बना ही है कि राम के अपने देश भारत में राम-राज्य उतने अलौकिक रूप में साकार नहीं हुआ जितना पड़ोसी देश श्याम में। आंग्ल भाषा में जिसे थाईलैंड पुकारा जाता है, उसे वहाँ के निवासी श्याम या थाई देश कहकर ही संबोधन करते हैं। थाई एक जाति का नाम है, जो लगभग दो हजार वर्ष पूर्व चीन से निर्वासित होकर इस क्षेत्र में आ बसी थी। अतः थाई देश, जाति से चीनी नृवंश का होते हुए भी हृदय से इतना अधिक भारतीय है कि उसकी राम-राज्य निष्ठा के सम्मुख स्वयं भारतीय भी लज्जित हो जावें।

श्याम देश का संकेत हमारे रामायण महाकाव्य में भी मिलता है। सुग्रीव ने जब सीता की खोज के लिये वानरों को भिन्न-भिन्न दिशाओं में भेजा तो उसने मलय, यव द्वीप तथा श्याम देश की ओर जाने का भी संकेत किया। श्याम 1350 ई. तक कम्बोडिया (कम्बुज देश) का अंग था, जिसे भारत के प्रातःस्मरणीय ऋषि कम्बु ने नाम संस्कार देकर भारतीय संस्कृति की दीक्षा दी।

राम ही राजा

महर्षि वाल्मीकि ने कहा—'न हितद्भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपति।' अर्थात् वह राष्ट्र राष्ट्र ही नहीं जहाँ राम राजा नहीं। थाई देश ने इसी कथन को मानो जीवन का आदर्श स्वीकार कर लिया है। इसलिए वहाँ के राजाओं के नाम राम नाम से विभूषित हैं। यथा—रामखम्हेङ् (राम राजा) सन् 1283, श्री सूर्यवंश राम—सन् 1355, रामाधिपति—सन् 1350, रामराजा—सन् 1394, देवनगर के राम— सन् 1767, महवज्र बुद्धराम, महामतंक राम, सुखदेव राम, रामामात्य, रामाधिपति, रामसुवन, रामपुत्र इत्यादि।

अयोध्या तथा भारतीय तीर्थों की गरिमा

थाई देश में भारतीय तीर्थ धामों को भी उचित सम्मान मिला है। श्याम देश की प्राचीन राजधानी द्वारावती नामक नगर में थी। इसी के समीप सन् 1350 में श्याम के नरेश रामाधिपति ने जो षष्ठ राम कहलाते थे अयोध्या नामक नगरी बसायी, जो श्याम देश की सर्वप्रसिद्ध राजधानी बन गई। सन् 1369 में रामाधिपति के स्वर्गवास के पश्चात् उनका पुत्र रामसुवन (जो लवपुरी में शासक था) सिंहासन पर बैठा। अयोध्या तथा लवपुरी श्याम देश के अब तक समृद्ध नगर हैं। थाई देश की प्राचीन राजधानी अयोध्या वर्तमान राजधानी बैंकाक से लगभग पचास किलोमीटर उत्तर में स्थित है तथा लवपुरी बैंकाक से लगभग 155 किलोमीटर की दूरी पर श्याम देश के मध्य में स्थित है। अयोध्या नगर जिस प्रान्त में स्थित है उसका नाम विष्णु लोक है। इससे पूर्व की राजधानी सुखोदय है जिसे आजकल सुखोथई उच्चारण किया जाता है।

इसी प्रकार श्याम देश में स्वर्ग लोक, इन्द्रपुरी, राज्यपुरी, प्राचीनपुरी, सुरेन्द्रपुरी, महाराष्ट्र, स्वराष्ट्र, धर्मराज्य आदि नगर आज तक प्रसिद्ध हैं। श्याम देश की प्राचीन राजधानी अयोध्या के समान ही इण्डोनीजिया की राजधानी का नाम भी अयोध्याकर्ता रखा गया था जो रूपान्तरित होकर जोगजाकर्ता तथा जकार्ता (वर्तमान राजधानी) बन गया। अट्ठारहवीं शताब्दी में श्याम देश की राजधानी समुद्र तट पर स्थित एक नये नगर, वर नगर में स्थापित की गयी जिसका उच्चारण परिवर्तित होते-होते आजकल बैंकाक हो गया है।

रामायण का जीवन्त रूप (राजा राम का प्रतिनिधि)

श्याम देश ने रामायण को इतनी आत्मीयता से अपना लिया है कि राम शत-प्रतिशत उनके अपने हो गये हैं।

थाई देश के राजा के सिंहासन के पीछे ऊँचा सोने के पत्र पर खचित राम के सिंहासन का चित्र है जिसे मारुति (हनुमान) ने शीश पर उठाया हुआ है। मूल चित्र

सोने का है जिस पर कीमती मणियों द्वारा नक्काशी का काम किया गया है। राजा का सिंहासन आगे, उक्त सिंहासन के चरणों में स्थित है। राजा अपने आपको राम का प्रतिनिधि मानता है। वह कहता है जैसे भगवान श्रीराम के वनवास जाने पर पीछे उनकी पादुका राज्य करती थी वैसे ही मैं उनकी पादुका के स्थान पर बैठा हूँ। राम सिंहासन के उक्त सुवर्ण चित्र की प्रतिकृति संस्कृत विहार संग्रहालय में सुरक्षित है।

राजपुरोहित वामदेव

थाई देश में आज तक राजपुरोहित का उपनाम वामदेव ही प्रचलित है। वामदेव वसिष्ठ के साथ महाराज दशरथ के दूसरे पुरोहित थे। चाहे आज श्याम देश में बौद्ध धर्म ही राज धर्म है फिर भी आज तक थाई देश के राजा भूमि बलराम का राज्य-तिलक राजपुरोहित वामदेव वेदमंत्रों के साथ उसी प्रकार सम्पन्न करवाता है जिस प्रकार कभी त्रेतायुग में भगवान राम का राज्याभिषेक वसिष्ठ-वामदेव ने वेद मन्त्रोच्चार सहित करवाया होगा।

धनुर्धारी राम की ओजस्वी मूर्ति

थाई देश के राष्ट्रीय संग्रहालय के मुख्यद्वार पर धनुर्धारी भगवान श्रीराम की ऐसी अलौकिक एवं ओजस्वी मूर्ति स्थापित है जिसकी तुलना की दूसरी मूर्ति सम्भवतः विश्व में दुर्लभ ही है। 18 फुट ऊँची ओजपूरित, विश्व को चुनौती देती हुई यह कांस्य मूर्ति देखते ही मन ओज से ऊर्जस्वित हो उठता है। इस अलौकिक प्रतिमा के चित्र अभी तक थाई देश के डाकटिकटों तथा दस टिक्कल के मुद्रा-पत्रों (नोटों) पर छपते हैं। उक्त मूर्ति के रंगीन चित्र संस्कृति विहार संग्रहालय में सुसज्जित हैं।

रामकीर्ति : रामाकिएन (थाई देश की राम कथा)

थाई भाषा में रामकथा को रामकिएन कहते हैं जिसका अर्थ रामकीर्ति ही होता है। यह थाई देश के कोटि-कोटि रामभक्तों की श्रद्धा का ही चमत्कार है कि थाई लोग राम को अपने देश का तथा रामायण की घटनाओं को साक्षात् अपने देश की घटनाएँ ही मानते हैं।

थाई देश की रामलीला

थाई देश में रामलीला कई प्रकार से होती है। मुखौटा लीला जिसमें नर्तक खोन (मुखावर्त) पहन कर नृत्य करते हैं। भिन्न-भिन्न पात्रों के लिए भिन्न-भिन्न मुखौटे होते हैं। पात्रों के स्थान पर मंच निदेशक बोलता रहता है। पात्र ऊँची कुदान लेने में अभ्यस्त हैं। अभिनय के लिए दो रामकिएन लिखे गये—एक महाराजा राम प्रथम द्वारा और दूसरा महाराजा राम द्वितीय द्वारा।

छायाचित्र लीला

थाई देश में छायाचित्रों द्वारा रामलीला भी अत्यन्त रोचक एवं प्रभावोत्पादक रहती है। रामायण के भिन्न-भिन्न पात्रों के चलते-फिरते कठपुतली चित्र बड़ी सुन्दर लीला प्रस्तुत करते हैं। दो दण्डों के द्वारा छाया-चित्र को चलाया जाता है। इसे थाई देश में नाङ् कहा जाता है।

इस प्रकार थाई देश में राजा से लेकर प्रजा तक, अतीत से लेकर वर्तमान तक, राजनीति से लेकर व्यवहार नीति तक, साहित्य कला से लेकर लोक कला तक, मूर्ति-शिल्प से लेकर कठपुतली नृत्यों तक जनजीवन के रोम-रोम में रामचरित्र की पवित्र सुवास सर्वत्र, सर्वव्यापक तत्त्व के रूप में आज तक विद्यमान है। श्याम देश के हृदय में प्रतिष्ठित उस राम को हमारी शत-कोटि वन्दनाएँ समर्पित हो।

'भारतीय इतिहास के महान् तथा घटनापूर्ण-काल में अपने व्यस्त जीवन की संध्या-बेला में मैंने रामायण की जो कहानी कही है, मेरी राय में, भारतवासियों के प्रति की गयी यह मेरी सर्वोत्तम सेवा है। इस कार्य से मुझे मन की शांति और तृप्ति मिली है।'

—च. राजगोपालाचारी

× × ×

'...हालांकि मध्य तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के अधिकांश भूभाग भारतीय सभ्यता के (उत्कर्ष) समृद्ध केन्द्र थे परन्तु वे स्थान कभी भी भारत के राजाओं द्वारा आधिपत्य नहीं थे न ही वे स्थान भारत द्वारा किसी सैनिक योजना के द्वारा भयानकता व डर का गवाह बने। (वे पूर्णतः स्वतंत्र थे, राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से) और उनके लोगों ने भारतीय तथा स्थानीय तत्त्वों के मध्य एकात्मता का प्रतिनिधित्व किया। उनका किसी भारतीय राज्य से सम्बन्ध नहीं था, भारत भूमि को पवित्र भूमि के रूप में देखते थे...'

—अरुण भट्टाचार्य

× × ×

सांस्कृतिक दृष्टि से भारत ने चीन पर विगत 20 शताब्दियों से न केवल विजय प्राप्त की है अपितु उस पर वर्चस्व भी बनाया। जबकि इस सफलता के लिए उसने एक भी सैनिक नहीं भेजा।

—हू शिह, अमरीका में पूर्व चीनी राजदूत

क्या प्राचीन इंग्लैण्ड भारत का एक उपनिवेश था ? (भाग-एक)

राँची एक्सप्रेस, दिनांक 20 जून, 1971 के अंक में जो इस लेख का पूर्वांश प्रकाशित हुआ है उसमें निम्नलिखित बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है।

1. श्री अमरनाथ का यह मत कि सहस्राब्दियों पूर्व इंग्लैण्ड भारत का उपनिवेश था। इतिहास, पुरातत्त्व, पुराण-गाथा किसी से प्रमाणित नहीं होता।
2. भारतीय संस्कृति का प्रसार करने वाले दिग्विजयी वीर प्रशान्त महासागर के मार्ग से इण्डोनीज़िया होते हुए, कोलम्बस से लगभग 1500 वर्ष पूर्व, मैक्सिको में जा पहुँचे थे।
3. ईसा से लगभग एक सहस्राब्दि पूर्व आर्यों की एक शाखा ईरान, अजरबेजान (आर्याणांबिजम्), आर्मेनिया, रूस, जर्मनी, रोम, फ्रांस होती हुई इंग्लैण्ड जा पहुँची। इन्हें यूनानी इतिहासकारों ने कैल्ट (Celts) कहा। इटली, फ्रांस तथा स्विटजरलैण्ड की सीमाओं पर स्थित एल्पस् पर्वत के उत्तर की आर्यभाषा बोलने वाली जनता को कैल्टिक बोला जाने लगा।
4. ईसा पूर्व प्रथम शती से चौथी शती तक ब्रिटेन रोम का गुलाम रहा। पाँचवीं तथा छठी शती में जर्मनी से एंग्लो तथा सेक्शन कबीलों ने आक्रमण किया। एंग्लो जनजाति के सर्वाधिक प्रभाव के कारण छठी शती के बाद ब्रिटेन का इंग्लैण्ड नाम रूढ़ हो गया। छठी शती में ही ब्रिटिश द्वीपसमूह में ईसाइयत का भी प्रवेशारम्भ हुआ।
5. सारे यूरोप तथा अमेरिकावासी बुद्धिजीवी अपने आर्य मूलत्व पर गर्व करते हैं।
6. ईसाइयत से पूर्व आर्यावर्त्त से आयरलैण्ड तक मित्र (सूर्य) पूजा प्रचलित थी। अर्नेस्ट रेनन (Ernest Renan) ने कहा है, 'यदि ईसाइयत का विकास इसके इतिहास के प्रारम्भिक काल में ही रुक जाता तो आज सारा विश्व मित्रपूजक होता।'

ईसाइयत पर मित्र पूजा का प्रभाव

ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित तथा H. A. Davies द्वारा लिखित संसार के इतिहास में स्वीकार किया गया है, 'जब ईसाइयत रोमन साम्राज्य का राजधर्म बन गया तो उस में बिना समझौते के सन्देह की चिन्ता किए, यथासम्भव बहुत से पुराने सूर्यपूजक (Pagan) विश्वासों को आत्मसात् कर लिया गया। इस प्रकार क्रिसमस के समय उपहार देने की प्रथा एवं प्रेम-सद्‌भावना के सामान्य भाव, ये सब किसी ईसाई प्रथा से नहीं उपजे, वरन् सेटरनेलिया (Saturnalia) के महान् सूर्यपूजक शीतकालीन महोत्सव से ही अपना लिए गये हैं।' ब्रिटेन के विश्वकोश के अनुसार शनैश्चर देवता का यह महान् उत्सव सेटरनेलिया ईसा पूर्व सन् 45 में महान् रोमन सम्राट् जुलियस सीजर द्वारा संवत्सर में सुधार के बाद 17 दिसम्बर से 19 दिसम्बर तक सारे रोमन साम्राज्य में अपार हर्ष एवम् स्वच्छंदता के साथ मनाया जाता था। Davies के मतानुसार ईसाई-पादरियों ने चौथी शती में रोमन साम्राज्य में सूर्यपूजकों के शनि महोत्सव को ही क्रिसमस के रूप में स्वीकार कर लिया। शनि सौरमण्डल का सबसे बड़े ग्रह-पथ वाला ग्रह है। शनि ग्रह सूर्य से जन्म लेने के कारण सूर्य की संतति तुल्य है। शनि ग्रह सूर्य के चारों ओर अपनी परिक्रमा धरती की अपेक्षा 29.46 गुणा अधिक समय में पूरी करता है। शनैः-शनैः चलने के कारण उसे शनैश्चर कहा गया। उसी शनैश्चर शब्द से लैटिन भाषा में Saturn शब्द बना। शनि को रविनन्दन (सूर्य का पुत्र) माना जाता है।

मित्र-पूजा से ईसाइयत ने निम्नलिखित बातें भी उधार ली।

मित्र-पूजा	ईसाई-मत
(क) मित्र, मनुष्य और ईश्वर के बीच मध्यस्थ और ईश्वर का पुत्र है।	ईसा, मनुष्य और ईश्वर के बीच मध्यस्थ और ईश्वर का पुत्र है।
(ख) वसंत संपात में सूर्य की विजय की शोभायात्रा	ईस्टर (वसंत-संपात) पर ईसा के पुनर्जीवित होने की शोभायात्रा
(ग) सांस्कारिक भोज की प्रथा	ईसाई धर्म में संस्कार देने पर भोज की प्रथा
(घ) सूर्य का एक पवित्र वृक्ष पर अस्त होना	ईसा का पवित्र क्रूस पर बलिदान होना
(ङ) सूर्य का अस्ताचल गुफा में छिप जाना	ईसा के मृत शव का एक गुफा में गाड़ा जाना
(च) सूर्य का पुनरोदय	ईसा का कब्र से पुनरुत्थान

(छ) वर्ष भर के लिए नियत उत्सव सूची	वर्ष भर के लिए नियत उत्सव सूची
(ज) वसंत संपात पर बलिदानोत्सव एवं हर्षातिरेक	वसंत-संपात पर बलिदानोत्सव एवं हर्षातिरेक
(झ) आदित्यवार (एतवार) पूजा के लिए पवित्र	आदित्यवार (एतवार) पूजा के लिए पवित्र माना गया है।

सूर्य (मित्र) ज्योति का देवता है। उसे वेदों में हिरण्यगर्भ, सविता, हेममालि, स्वर्णभाज आदि कहा गया है। सुवर्ण शब्द, स का ह हो जाने के कारण प्राचीन फारसी (अवेस्ता) में ह्वेर्ण हो गया है जिसका अर्थ सोना, सूर्य का प्रकाश मण्डल तथा राजा का तेज माना गया। ईरान के प्राचीन राजा सूर्योपासक होने के कारण यह मानते थे कि उन पर सूर्य का सुनहला तेजमण्डल अवतरित हुआ है अतः उसे राजाओं के मुख के चारों ओर तेजमण्डल के रूप में दर्शाया जाता था। ईरान के वर्तमान बादशाह भी आर्यमिहिर (आर्यों का सूर्य) की उपाधि धारण करते हैं। सूर्य का यही तेजमण्डल सूर्यपूजा के प्रभाव से ईसा के मुखमण्डल के चारों ओर दिखाया जाता है जिसे Helio (सूर्य) से व्युत्पन्न Halo (प्रकाश मण्डल) कहा जाता है।

सूर्यपूजा का मकर संक्रांति पर्व ही क्रिसमस बना

रोमन साम्राज्य में जब सूर्यपूजा राजधर्म था तब मित्रपूजकों का सब से बड़ा पर्व मकर संक्रांति था। जिस दिन सबसे ठंडे एवं सबसे छोटे दिन के पश्चात् दिन पुनः बढ़ने लगते हैं तथा उष्णता एवं प्रकाश की वृद्धि होने लगती है। रोमन साम्राज्य के (इंग्लैण्ड सहित) मित्रपूजक उस दिन सूर्य की उत्तरायण यात्रा के शुभारम्भ पर सूर्य देवता के नये जन्म जैसा उत्सव मनाते थे। सूर्य की शिशु प्रतिमा का पूजन कर पकवान बांटते थे। रोम में ईसाइयत के प्रवेश के बाद ईसाई पादरियों ने मित्रपूजकों के मकर संक्रांति (Winter Solstice) पर्व को ही क्रिसमस के रूप में मान लिया। Chambers Encyclopaedia में स्वीकार किया गया है कि ईसा की वास्तविक जन्मतिथि (तथा मास) के विषय में कोई प्रामाणिक परम्परा नहीं है तथा जन्म के वास्तविक वर्ष के विषय में भी सन्देह है। संसार में सबसे पहला क्रिसमस का उत्सव रोम में 336 ई. में मनाया गया किन्तु संत जेरोम (Jerome) ने 5वीं शती तक जो लेख लिखे उनसे ज्ञात होता है कि ईसा की जन्मभूमि यरुशलम में 5वीं शती के प्रारम्भ तक ईसा की जन्मतिथि (क्रिसमस) को कोई जानता ही नहीं था। Edwyn Bevan ने अपने ग्रंथ (Christianity in the light of modern knowledge 1929 A.D., P. 103) में इस तथ्य की पुष्टि की है, 'इस बात में कोई सन्देह नहीं कि ईसाई चर्च ने 25 दिसम्बर के दिन क्रिसमस मनाने की प्रथा मिथ्राइज्म (मित्र पूजा) से उधार ली जो कि सूर्य का जन्म दिवस माना जाता था।'

इस तथ्य को डॉ. राधाकृष्णन ने अपने ग्रंथ 'रिकवरी ऑफ फेथ' के पृ. 14 पर भी उद्धृत किया है। डॉ. एम. एन. ढल्ला ने History of Philosophy, Eastern & Western में अपने लेख 'Mithraism' में इसी तथ्य की पुष्टि की है कि सूर्योपासकों द्वारा 25 दिसम्बर के दिन मनाये जाने वाले शीत अयनान्त को ही ईसाइयों ने क्रिसमस के रूप में अपना लिया।

25 दिसम्बर कृष्णायन नहीं, उत्तरायण-पर्व

श्री अमरनाथ ने अपने जिस आलोच्य निबंध में प्राचीन इंग्लैण्ड को भारत का एक उपनिवेश सिद्ध करने का प्रयास किया है उसमें यह भी प्रमाण एवं तर्क विहीन मत प्रस्तुत किया है कि 25 दिसम्बर (क्रिसमस) 'वस्तुतः प्राचीन हिन्दू कृष्णायन समारोह है।' उनके मत में इसी दिन भगवान् कृष्ण ने महाभारत युद्ध के प्रारम्भ में यान पर सवार होकर अपना प्रसिद्ध गीता-संदेश दिया था।' यह बड़ी विचित्र व्युत्पत्ति एवम् निराली कल्पना है। भगवान् कृष्ण के गीतोपदेश की तिथि गीता जयन्ती है—मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी, जो चान्द्र तिथि के परिवर्तन के कारण कभी दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में पड़ती है, कभी द्वितीय एवं तृतीय में, कभी चतुर्थ सप्ताह में तथा कभी जनवरी में भी पड़ सकती है। वर्ष 1971 में गीता जयंती 28 नवम्बर को पड़ती है। इसके विपरीत 25 दिसम्बर एक सौर पर्व मकर संक्रांति का दिन था। छः मास के लिए सूर्य भू-मध्य रेखा से नीचे, दक्षिणी गोलार्द्ध की ओर चला जाता है। इसे दक्षिणायन कहते हैं। मकर-संक्रांति के पश्चात् सूर्य की उत्तरायण यात्रा प्रारम्भ होती है। आज भी शीत अयनान्त की ऋतु परिवर्तन की तिथि 23 दिसम्बर के लगभग पड़ती है। उसके बाद दिन लम्बे एवम् उष्णताप्रधान होने प्रारम्भ होते हैं। किन्तु भारत में मकर संक्रांति का पर्व 13 अथवा 14 जनवरी को मनाया जा रहा है। इसका कारण यह है कि अयनों के चलन के कारण लगभग 100 वर्ष में ऋतु-परिवर्तन की भौगोलिक तिथि तथा पर्व की तिथि में एक दिन का अन्तर पड़ जाता है। उदाहरणार्थ, 108 वर्ष पहले 12 जनवरी 1863 के दिन विवेकानन्द का जन्म हुआ। उस दिन मकर संक्रांति पर्व था। 100 वर्ष बाद मकर संक्रांति 13 जनवरी को पड़ने लगा तथा अब 14 जनवरी की ओर बढ़ रहा है। इसी प्रकार (300 वर्ष पूर्व) गुरु गोविन्दसिंह ने वैशाखी के पर्व (मेष संक्रांति) पर जब खालसा पंथ की स्थापना की तब अंग्रेजी तिथि 10 अप्रैल थी। आजकल वही वैशाखी पर्व 13 अप्रैल (कभी-कभी 14 अप्रैल) को पड़ रहा है।

उक्त गणना के अनुसार आज से 19 शती पूर्व मकर संक्रांति पर्व 25 दिसम्बर को पड़ता था तथा पिछले उन्नीस सौ वर्षों में ऋतु-परिवर्तन की तिथि वही 23-24 दिसम्बर रहते हुए पर्व की तिथि 19 दिन आगे बढ़कर आजकल 13-14 जनवरी को पड़ने लगी है। इस उत्तरायण के पर्व को कृष्णायन या कृष्णयान कहना यथोचित नहीं है।

ऐक्समस (X-mas) यानी क्रिसमस

श्री अमरनाथ ने अंग्रेजी के 'ऐक्समस' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है, 'ऐक्समस का वास्तविक अर्थ दसम मास है। रोमन में दस का अंक (X) के रूप में लिखा जाता है और संस्कृत में मास शब्द का अर्थ महीना है।' यह भी श्री अमरनाथ की निराधार खींचतान है। ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार क्रिसमस का अर्थ है—क्राइस्ट का उत्सव (The Mass of Christ)। इसी क्रिसमस शब्द को संक्षिप्त लिखने के लिए यूनानी लोगों ने ऐक्समस शब्द प्रयोग किया। क्रास (क्रूस) जिस पर ईसा को लटकाया गया था उसका प्रतीक + धीरे-धीरे X लिखा जाने लगा तथा क्राइस्ट का प्रतीक बन गया। इसलिए ऐक्समस शब्द को दिसम्बर का पर्याय मानना तथा लैटिन शब्द Mass (उत्सव भोज) को संस्कृत मास (महीना) का पर्याय मानना अंग्रेजी, लैटिन, ग्रीक, संस्कृत एवं प्राच्य विद्या सभी के साथ अन्याय है।

कृष्ण, बुद्ध तथा क्राइस्ट

कृष्ण, बुद्ध तथा क्राइस्ट के चरित्रों में आश्चर्यजनक समानता को देखकर कई शोधकर्ताओं ने क्राइस्ट नाम को कृष्ण से ही व्युत्पन्न माना है। लोकमान्य तिलक, डॉ. राधाकृष्णन, स्वामी विवेकानन्द आदि ने यह सिद्ध किया है कि ईसा के जन्म से पूर्व फिलस्तीन के क्षेत्र में तीन प्राच्य दर्शन धाराओं का प्रचार था।

(क) ऐसीन लोग संन्यासी थे।

(ख) सेदूस लोग जैन साधु थे।

(ग) थेरापुट (स्थविर पुत्र) बौद्ध भिक्षु थे।

ईसा का वास्तविक नाम जीसस था। क्राइस्ट उनको उपाधि मिली थी। ईसा को जल-दीक्षा (बपतिस्मा) देने वाले जॉन John the Baptist स्वयं ऐसीन संप्रदाय के थे। उन्होंने जनता को कह रखा था कि क्रिस्टोस (अवतार, संभवतः कृष्ण) आने वाला है। जीसम के मिलने पर उन्होंने कहा, यही क्रिस्टोस (कृष्ण) है। ईसा के उपदेशों में गीता एवं बौद्ध सिद्धांतों का स्पष्ट सम्मिश्रण है।

'भूल में मत रहो, ये आयरलैंड वास्तव में आर्यलैंड ही है। आर्यावर्त्त से आर्य जाति के लोग ही सारे यूरोप में फैलते हुए आयरलैंड तक पहुँचे थे।' एवं आर्यावर्त्त एवं आयरलैंड दोनों को अंग्रेजों की दासता से मुक्त होना है।

—पी.डी. वलेरा, राष्ट्रपति आयरलैंड

क्या प्राचीन इंग्लैण्ड भारत का एक उपनिवेश था ? (भाग-दो)

श्री अमरनाथ ने अपने विवादास्पद लेख में इंग्लैण्ड की प्राचीन बस्तियों के नामों के विषय में एक अन्य विलक्षण तर्क दिया है। उनका कथन है कि इंग्लैण्ड में कुछ बस्तियों के नाम 'बरी' के साथ समाप्त होते हैं जैसे कि वाटरबरी, मेड्सबरी और ऐन्सबरी और 'बरी' शब्द संस्कृत का पुरी प्रत्यय ही है जैसे भारत में सुदामापुरी, मुम्बापुरी और जगन्नाथपुरी। यह भाषा विज्ञान तथा सभ्यता के इतिहास द्वारा पुष्ट नहीं होता।

'बरी' बनाम पुरी

अंग्रेजी में 'बरी' का अक्षर विन्यास Bury है जबकि पुरी शब्द का रोमन लिपि में लेखन Puri होता है। अंग्रेजी अथवा संस्कृत के किसी भी कोश में बरी शब्द की व्युत्पत्ति पुरी शब्द से नहीं मानी गई। आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार बरी शब्द के दो अर्थ हैं :

(क) गाड़ना, कब्र में रखना, ढकना, सुरक्षित करना।

(ख) चारों ओर से सुरक्षित अथवा घेरा हुआ स्थान, शवाधि (कब्र) अथवा कब्र वाला गांव।

पुरानी जर्मन भाषा में Begraben (गाड़ना) से पश्चिम जर्मन में Burgzan शब्द बने, उससे पुरानी अंग्रेजी Byrzan, पुरानी ट्यूटनिक में Burg शब्द बने। इससे आधुनिक डेनिश में Begrave, स्वीडिश में Begrava तथा अंग्रेजी में Burie, Bury धातु बने जिनका अर्थ गाड़ना, सुरक्षित करना है। दूसरी ओर इसी शब्द के Burh, Burgh, Borough, Bury, Berry शब्द बने जिनका रूढ़ अर्थ घिरा हुआ स्थान (कब्र के समान), गांव, पुर, नगर, न्यायालय आदि बन गया। कैण्टरबरी Canterbury नगर का नामकरण इसलिए प्रसिद्ध हुआ कि वहाँ पर 29 दिसम्बर 1170 ई. को सेंट टामस आफ कैण्टर की हत्या कर दी गयी थी तथा वहाँ पर उसकी शवाधि (कब्र) अभी तक बनी हुई है। इस प्रकार बरी शब्द का

संस्कृत के पुरी शब्द से कोई सीधा सम्बन्ध प्रमाणित नहीं होता। संस्कृत में पुर अथवा पुरी देवता के वास-स्थान के अर्थ में प्रयुक्त होता है जबकि अंग्रेजी का Bury शब्द शवाधि (कब्र) या मृतक-स्थान के शब्द से प्रचलित हो गया।

थाई देश में 'पुरी'

थाईदेश में रजाबुरी और चोलबुरी नामक नगरों के नाम से समानता दिखाते हुए श्री अमरनाथ ने यह खींचतान की है कि जिस प्रकार थाई भाषा में पुरी शब्द आजकल बरी उच्चरित होता है उसी प्रकार इंग्लैण्ड में पुरी शब्द से बरी शब्द बन गया होगा। यह तर्क भी थोथा है। संसार के भिन्न-भिन्न देशों की यात्राओं में लेखक ने पाया कि थाईदेश स्पष्टतः भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित है तथा वहाँ लवपुरी को लवबुरी, इन्द्रपुरी को इन्द्रबुरी, राजपुरी को राजबुरी उच्चारण किया जाता है। इसका अंग्रेजी के बरी, बैरी, बर्ग इत्यादि से कोई संबंध नहीं। मात्र शब्द साम्य से थाईभाषा के बुरी (पुरी) शब्द को अंग्रेजी Bury शब्द से जोड़ देना भी वैसा ही हास्यास्पद होगा जैसा लंका के रावण को लंकाशायर (इंग्लैण्ड) में भी खोजना।

महात्मा गाँधी ने कहा है, 'अंग्रेज हमें यह सिखाने की कोशिश करते रहे हैं कि हम कभी एक राष्ट्र नहीं रहे और अभी शताब्दियाँ लगेंगी हमें एक राष्ट्र बनने में। यह प्रचार झूठा है। इसका कोई आधार नहीं है। हम विदेशियों के भारत आने से पहले से एक राष्ट्र रहे हैं। हमारे मूलभूत विचार पूरे राष्ट्र में एक ही थे। हमारी जीवन शैली एक ही थी। आपसी मतभेद तो हर राष्ट्र में होते हैं, परन्तु परस्पर एक-दूसरे की भाषा, विचार, रीति-रिवाज और बुद्धि (जानने-समझने की), हमारी पूर्वजों की प्रवृत्ति एक थी। इसलिये हरिद्वार, सेतुबन्ध रामेश्वर, जगन्नाथपुरी आदि चारों धामों एवं विविध तीर्थों की प्रतिष्ठा उन्होंने की। हिन्दुत्व ही हमारी राष्ट्रीयता का आधार था।

'यह हमारी सभ्यता विश्व में बेजोड़ है। हिन्दुस्तान आज भी अपनी नींव पर अटल है। अटल रहना ही भारत का गौरव है। वे इसे ही हमारे दोष-दुर्गुण की तरह पेश करते हैं। उनकी सब सलाहें भारत चुपचाप सुनता रहता है और आत्मस्थ, ध्यानस्थ रहता है। यही उसका सौन्दर्य है।

सूर्योदय से एवं मध्यरात्रि से दिवसारंभ की प्रथाएँ

श्री अमरनाथ ने अपने लेख में प्राचीन इंग्लैण्ड पर भारतीय शासन होने के प्रमाण में सबसे विस्मयजनक तर्क यह दिया है, 'अंग्रेजों द्वारा मध्यरात्रि के अलौकिक क्षण में अपने तिथि परिवर्तन की यह विस्मयजनक प्रथा भी उसके अतीत में भारत का ही एक उपनिवेश होने का प्रमाण है।...क्योंकि भारतीय तथा ग्रीनविच रेखांश समय के मध्य साढ़े पाँच घण्टे का अन्तर है अतः जब भारत में सूर्योदय होता है तो इंग्लैण्ड में रात्रि के 12 बजे होते हैं।' वे आगे लिखते हैं कि भारत से संदेश पा कर इंग्लैण्ड के निवासियों को मध्यरात्रि में अपने बिस्तरों से उठ कर तिथि बदलनी पड़ती थी।

वास्तव में दिवसारंभ की तीन प्रथाएँ संसार में प्रचलित हैं—

(क) भारत में जन्म-पत्रादि कार्यों के लिए सूर्योदय से दिवसारंभ माना जाता है। विश्व की उत्पत्ति (सृष्टि संवत् के अनुसार) सूर्योदय से मानी गई है। सूर्य दर्शन का नाम ही दिन है।

(ख) मुसलमान लोग सायंकाल से वार प्रवेश मानते हैं (चान्द्र वर्ष का प्रभाव)।

(ग) भारत में ही व्याकरण शास्त्र में अद्यतनकाल का प्रयोग मध्यरात्रि से दूसरी मध्यरात्रि तक के लिए होता है। सिद्धान्त शिरोमणि (लेखक भास्कर द्वितीय, जन्म 1114 ई.) तथा केशवार्क के अनुसार देवताओं का अहोरात्र भी मध्यरात्रि से बदलता है, क्योंकि उत्तरायण देवताओं का दिन तथा दक्षिणायन रात्रि है। इसी प्रकार पितृ-अहोरात्र भी मध्यरात्रि से बदलता है। सूर्योदय से पूर्व होने वाले धार्मिक कृत्यों में भी अर्धरात्रि से वार-प्रवेश माना जाता है। निम्बार्क सम्प्रदाय भी उसी एकादशी को शुद्ध मानता है जो अर्धरात्रि के समय अवश्य हो। आर्यभट्ट (चौथी शती) ने भी सूर्योदय तथा मध्य रात्रि दोनों से वार-प्रवेश माना है।

अंग्रेजों के प्रभुत्वकाल में ग्रीनविच (इंग्लैण्ड) के औसत समय को विश्वव्यापी समय (Universal Time) मानकर सभी घड़ियों के प्रथम घंटे का रात्रि 12 बजे के बाद से गिना जाने लगा। वास्तव में दिन का प्रथम घंटा 1 a.m. (एक बजे) ही होना चाहिए, 5 बजे नहीं। घण्टों (होरा=Hour की गिनती एक से प्रारंभ होती है। 5 या 5 1/2 से नहीं। यदि भारत का प्रभाव पुनः विश्वव्यापी बन सका तो काशी

या उज्जैन के समय को विश्वव्यापी समय घोषित करके दुनियाभर की घड़ियों में भारत के वार-प्रवेश के घण्टे को 1 बजे (1 a.m.) घोषित किया जा सकता है।

पाश्चात्य कालगणना पर भारतीय प्रभाव

श्री अमरनाथ ने अपने लेख में इंग्लैंड पर भारतीय शासन होने के प्रमाण में यह तर्क दिया है कि 1752 ई. तक इंग्लैण्ड का नववर्ष 25 मार्च से शुरू हुआ करता था। वे अपने मत के प्रमाण में आगे लिखते हैं कि वर्ष के ठीक उसी समय पर ही भारतीय नववर्ष का शुभारम्भ भी होता है। चाहे इंग्लैंड में 1752 ई. तक तथा रूस के ग्रीकचर्च तथा बलकान राज्यों में 1923 तक मार्च से नव वर्षारंभ माना जाता रहा किन्तु इससे यूरोप के इन सभी प्रदेशों का प्राचीनकाल में भारत का उपनिवेश होना सिद्ध नहीं हो सकता।

आकाशवाणी रांची से प्रसारित अपनी वार्ता तथा अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन में प्रस्तुत अपने शोध-प्रबन्ध में मैंने 'आधुनिक कालगणना में भारत की देन' की विस्तृत व्याख्या की है। भारत में वर्षारंभ को संवत्सर कहते हैं जिसका अर्थ है सम्+वत्सर अर्थात् सारे भू-मंडल में दिन-रात समान होने का दिवस। यह वसंत सम्पात (23 मार्च) पर ही सम्भव है। रोम के सम्राट् जुलियस सीज़र (45 ई. पूर्व) तथा सम्राट् ऑगस्टस (27 ई. पूर्व) के समय, जो भारत के सम्राट् विक्रमादित्य के समकालीन थे, सारे रोमन साम्राज्य में भारतीय संवत्सर ही प्रचलित था जो वसन्त संपात (23 मार्च) से प्रारम्भ होता है। इसी कारण दिसम्बर (दश+अम्बर) दसवां मास, नवम्बर नवां मास, अक्टूबर (अष्ट=अक्ट+अम्बर) सितम्बर (सप्तम्बर) आदि क्रमशः आठवाँ तथा सातवाँ मास माने जाते थे। जुलियस सीजर का जन्म पाँचवें मास (Quintilis) में होने के कारण उसका नाम जुलाई प्रसिद्ध कर दिया गया। इसी प्रकार आगस्टस का जन्म छठे मास (Sextilius) में होने के कारण उसका नाम अगस्त रख दिया गया। सन् (1582 ई.) में रोम के पोप ग्रेगरी ने रोम के प्राचीन कैलेण्डर को बदल कर वर्ष का आरंभ 23 मार्च के स्थान पर 1 जनवरी से घोषित करवा दिया। किन्तु इंग्लैंड में 1752 ई. तक तथा रूस में 1923 तक पुराना संवत्सर (23 मार्च, वसन्त संपात से आरंभ होने वाला संवत्) चलता रहा। इससे भारतीय सभ्यता का प्रभाव प्रमाणित होता है न कि भारत का यूरोप पर शासन।

अंग्रेजी भाषा पर संस्कृत की छाप

श्री अमरनाथ ने संस्कृत के हन्ता, हन्तारौ, हन्तारः (हत्या करने वाला) से अंग्रेजी के हण्टर (Hunter) शब्द की व्युत्पत्ति बता कर एक अन्य रोचक कल्पना की सृष्टि कर ली है, 'संस्कृत भाषी हिन्दू नरेश किसी समय इंग्लैण्ड के प्रशासन का संचालन करते थे।'

यह एक विश्वविख्यात भाषा वैज्ञानिक तथ्य है कि संस्कृत अंग्रेजी सहित यूरोप की सभी भाषाओं की आदि-जननी है। इससे श्री अमरनाथ सारे यूरोप पर भारत के प्रशासन की बात कहना क्यों भूल गये। यूरोपीय परिवार की सभी आर्य भाषाएं आर्य संस्कृति की छाप लिए हुए हैं, किन्तु अनिवार्यतः भारतीय शासन का इतिहास लिए हुए नहीं। यदि आज हिन्दी में इटली का कमरा (Camera) शब्द हर घर में प्रचलित है तो इसका यह अर्थ नहीं कि प्राचीन भारत पर इटली का प्रशासन था। संस्कृत के विद् (जानना) शब्द से लैटिन में Uidere, यूनानी में Oida, गाथिक में वितम्, अंग्रेजी में विट, फ्रेंच में Esprit, जर्मनी में Witz, रूमानियन में ज्ञात (Znat) चेक में वेद। इसी प्रकार गौ माता के लिए यूरोप की भाषाओं में शब्द इस प्रकार हैं।

प्राचीन अंग्रेजी = Cu,	आधुनिक अंग्रेजी = Cow Mother
जर्मन = Kui Mutter	रूसी = Govya Mat
चेक = Krava Matka	फारसी = गाव मादर
लैटिन = Vacca वशा Mater	

(वेदों में एक वशा गौ का वर्णन है जो यजमान की जब इच्छा हो तभी दूध देती है, उसी प्रकार जैसे मानव माता बच्चे की जब इच्छा होती है तभी स्तनपान करा देती है)।

संस्कृत = जंगल मध्ये, गावाः घास चर्वन्ति, नारंग तरवः प्रफुल्लन्ति, पिक-काकाः कूजन्ति, नव कुट्यान्तरे त्रयः युवानः दिव्याः सन्ताः तिष्ठन्ति प्रार्थयन्ति च।

हिन्दी अर्थ = जंगल के मध्य में, गौएं घास चरती हैं, नारंग वृक्ष फूलते हैं, मोर कूजन करते हैं तथा नई कुटी में तीन दिव्य युवक सन्त रहते हैं और प्रार्थना करते हैं।

अंग्रेजी = In the midst of a jungle, cows are chewing grass, orange trees are flowering, pea-cocks are cooing and three young divine saints are staying and praying in a new cottage.

उपर्युक्त अंग्रेजी वाक्य का प्रत्येक शब्द सीधे ही ऊपर दिए गये संस्कृत के वाक्य के शब्दों से व्युत्पन्न हुआ है।

मध्य = Midst	घास = Grass
जंगल = Jungle	चर्व = Chew
गौ = Cow	नारंग = Orange

तरु = Tree		त्रयः = Three	
(प्र)फुल्ल = Flower		युवानः = Young	
पिक-काक = Peacock		दिव्याः = Divine	
कूजन्ति = Cooing		सन्ताः = Saints	
नव = New		स्था (तिसु) = Stay	
कुटी = Cottage		प्रार्थः = Pray	

भाषा विचारों का वाहन है। भारतीय भाषा भण्डार से आपूरित यूरोपीय भाषाएं भारतीय संस्कृति की सुवास से निश्चय ही सुवासित हैं। संस्कृति के पुष्पदान में उपनिवेशवाद की राजनीति को खोजना संस्कृति का भी अपमान है।

भारतीय संस्कृति के प्रभाव का साक्ष्य

इंग्लैण्ड पर भारतीय संस्कृति के प्रभाव के परिचायक निम्नलिखित बिंदुओं पर भी विस्तार से प्रकाश डाला जा सकता है। यहाँ मात्र संकेत किये जाते हैं।

(क) इंग्लैण्ड के प्राचीन धर्म ड्रुइडिज्म (Druidism) में आत्मा की अमरता का भारतीय सिद्धान्त मान्य था।

(ख) इंग्लैण्ड में प्राचीन एवं आधुनिक बौद्ध-धर्म प्रभाव।

(ग) आयरलैण्ड में प्रचलित आर्य-धर्म प्रथाएं (गौ, यज्ञ एवं वृक्ष-पूजा)

(घ) इंग्लैण्ड में भारतवंशी घुमन्तू जातियाँ तथा उनकी रोमणी भाषा।

(ङ) इंग्लैण्ड में ऋग्वेद का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद।

(च) चार्ल्स विल्किन्ज द्वारा गीता का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद।

(छ) इंग्लैण्ड के प्राच्य विद्याशास्त्री, संस्कृतज्ञ तथा भारत-भक्त।

(ज) इंग्लैण्ड में भारतीय कला एवं साहित्य का अमूल्य भण्डार।

(झ) कुछ अंग्रेजी विद्वानों का भारतीयकरण (कार्लायल, एनीबीसेंट, एंड्रूज, मार्गरिट नोबेल (निवेदिता), प्रो. निक्सन, एडविन आर्नाल्ड, पाल ब्रटन।

(ञ) इंग्लैण्ड पर भारतीय विभूतियों की छाप (राममोहन राय, तिलक, सावरकर, मालवीय, गाँधी, हरदयाल, विवेकानंद, टैगोर, रामतीर्थ, राधाकृष्णन)।

(ट) इंग्लैण्ड में हरे कृष्ण आन्दोलन, श्रीकृष्ण मंदिर, रथयात्रा महोत्सव, रामकृष्ण मिशन, भारत सेवाश्रम संघ, विश्व हिन्दू परिषद् आदि का कार्य।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति ने अपनी दिव्य दिग्विजय मानवों के हृदयों पर की, उन्हें अपना ज्ञान एवं माधुर्य बांट कर न कि किसी अन्य देश को अपना राजनीतिक दास बना कर।

पश्चिम का धर्मगुरु, प्राच्य का पुत्र तथा भारत का शिष्य : महात्मा ईसा

विश्व के धर्मों के आंकड़े संकलित करने वाले सुविज्ञ लेखक प्रायः एक ऐतिहासिक भूल के शिकार होते हैं। दुनिया के लगभग अढ़ाई अरब लोगों में से लगभग एक अरब से कुछ कम लोगों को ईसाई, आधे अरब से कुछ अधिक लोगों को बौद्ध, आधे अरब से कुछ कम लोगों को मुसलमान तथा केवल 33 करोड़ लोगों को हिन्दू बताकर वे हिन्दू धर्म के गौरव को बहुत कम कर देते हैं। वस्तुतः, भगवान बुद्ध स्वयं हिन्दू थे। हिन्दू धर्म की सर्वोच्च ज्ञानराशि वेदांत से प्रभावित थे तथा उनका चलाया हुआ बौद्धमत इस विशाल हिन्दू धर्म की एक शाखा है। परन्तु अधिकांश लोगों को संभवतः यह ज्ञात नहीं कि विश्व के शत कोटि ईसाई धर्मावलम्बियों के धर्म-संस्थापक महात्मा ईसा, भगवान बुद्ध तथा वेदांत दोनों से प्रभावित, भारतीयता के भक्त तथा स्वयं भारत के दीक्षित शिष्य रहे हैं।

ईसा हिन्दुओं का शिष्य था

भारत भारती के अमर गायक राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने सन् 1912 में हिन्दी संसार में भूकंप मचा देने वाली निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखीं—

योरप भी जो बन रहा है आजकल मार्मिकमना,
यह तो कहे उसके खुदा का पुत्र कब धार्मिक बना?
था हिन्दुओं का शिष्य ईसा यह पता भी है चला,
ईसाइयों का धर्म भी है बौद्ध सांचे में ढला।

तिलक की घोषणा

लोकमान्य तिलक ने सन् 1915 में अपने 'गीता रहस्य' में भी इस महान् रहस्य का संकेत किया।

'ईसा अपने बारहवें वर्ष से लेकर क्या करता रहा अथवा कहाँ था इस विषय में बाइबिल में कुछ भी लिखा नहीं मिलता। यह समय उसने ज्ञानोपार्जन अथवा

धर्म चिंतन और प्रवास में निकाला, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। इस अवधि में उसका बौद्ध भिक्षुओं से संपर्क नहीं हुआ होगा, ऐसा कौन कह सकता है? क्योंकि उस समय बौद्ध भिक्षु यूनान तक पहुँच चुके थे। नेपाल के एक बौद्धमठ के ग्रंथ-संग्रहालय में एक पुस्तक है जिसमें स्पष्ट लिखा है कि ईसा भारत में आया था। इस ग्रंथ को एक रशियन प्रवासी निकल्सन नोटोविश ने देखा था। उसने सन् 1894 में उस ग्रंथ को प्रकाशित किया था।

वासवानी जी का साक्ष्य

साधु स्थाणुदेव लीलाराम वासवानी जी लिखते हैं कि 'हमारे बहुत से भारतवासी ईसा को अपरिचित कहते हैं, परन्तु उसे एक अपरिचित न समझो, वह प्राच्य का ही एक योगी था, अपितु उससे भी कहीं अधिक था। निकोल्स रोरिक को एक बौद्धमठ में पड़ी हुई एक प्रतिलिपि मिली है जिसमें लिखा है कि ईसा भारत में आया था, वह कुछ समय तक तिब्बत में ठहरा और वहाँ पर योग-सम्बन्धी हिन्दू तथा बौद्ध सिद्धांतों का अध्ययन करता रहा। 29-30 वर्ष की अवस्था में वह पैलेस्टाईन लौटा। वह अपने देशवासियों के लिए भारत के विवेक का संदेश लेकर गया। उसने ईश्वर को प्रेम की प्रतिमा बतलाया। उसने उनको अंतर्ज्ञान के विषय में बताया और 'तत्त्वमसि' का संदेश दिया। परन्तु उन्होंने उसके सच्चे स्वरूप को न पहचान कर उस पर पत्थर फेंके और अंत में फांसी पर चढ़ा दिया। योगी ईसा ने उसी प्राचीन सत्य का संदेश दिया, 'ईश्वर ही प्रेम है।'

स्वामी विवेकानंद की उक्ति

भारत के गौरव स्वामी विवेकानंदजी लिखते हैं—

हम जीवन का दिव्य संदेश देने वाले इस महापुरुष के जीवन का मूलमंत्र यही पाते हैं कि 'यह जीवन कुछ नहीं है, इससे भी उच्च कुछ है और उस इन्द्रियातीत तत्त्व को अपने जीवन में परिणत कर उसने यह परिचय दिया है कि वह प्राची का सच्चा पुत्र है।'

नरदेव शास्त्री की युक्ति

गुरुकुल ज्वालापुर के प्रिंसिपल श्री नरदेव शास्त्री ने मार्च 1954 में प्रकाशित गुलदस्ता नामक पत्रिका में विभिन्न मतों के आधार पर यह प्रतिपादन किया है कि ईसा दो बार भारत आया था।

ईसा की प्रथम भारत यात्रा, नोटोविश की खोज

विश्व के इतिहासकारों की प्रज्ञा को प्रथम चुनौती सन् 1865 में मिली, जब प्रसिद्ध रशियन यात्री निकल्सन नोटोविश ने तिब्बत में प्राप्त हुए 'ईसा के जीवन-चरित' का फ्रेंच में अनुवाद प्रकाशित किया।

निकल्सन नोटोविश कहता है कि मैं सुरम्य देशों को देखने की इच्छा से तिब्बत में पहुँचा तब मुझे पता चला कि यहाँ के लामाओं को ईसा का नाम ज्ञात है। ईसा पश्चिम से आया था, यह बात भी परंपरा से लामाओं में प्रचलित थी। मैंने लामाओं से पूछा कि कहीं ईसा का चरित्र मिलेगा? बहुत कुछ पूछताछ करने पर हिमिस नामक बौद्धमठ में ईसा का चरित्र मिला। उसका सारांश यह है—

काशी, पुरी, राजगृह में शिक्षा-दीक्षा

'ईसा का जन्म इस्राइल के एक गरीब, धर्मनिष्ठ कुटुंब में हुआ। बचपन से ही उसकी वृत्ति धार्मिक थी। इसलिए तेरहवें वर्ष में वह घर से निकला और किसी व्यापारी कारवां के साथ सिंध में आया। उसने जगन्नाथपुरी, राजगृह, बनारस में विद्याध्ययन किया। फिर उसने बौद्ध भिक्षुओं के पास रहकर पाली भाषा सीखी और बौद्ध धर्म के तत्त्वों को भली-भांति अवगत किया। फिर इराक के मार्ग से जूडिया गया और वहाँ प्रवचन करने लगा। वहाँ के गवर्नर पायलेट ने उसको कारावास में डाल दिया। उसको क्रूस पर लटका दिया। वह मर गया, पर तीन दिन पश्चात् उसकी कब्र खुली हुई मिली और ईसा का पता न चला कि वह कहाँ गया।'

बाइबिल का अन्तर्साक्ष्य

नोटोविश ने इस पुस्तक को फ्रैंच भाषा में प्रकाशित किया। इस ग्रंथ की खूब चर्चा रही। ईसाई-पंडितों ने जनता को यह बतलाने का प्रयत्न किया कि नोटोविश ने जिस ग्रंथ के आधार पर यह सब कुछ लिखा है वह ग्रंथ बनावटी है। इस प्रकार नोटोविश को मिले हुए ग्रंथ को संशय-युक्त मान लेने पर भी तिब्बत और कश्मीर में ईसा आया था, यह दंतकथा प्रचलित थी।

बाइबिल कहती है कि ईसा का जन्म पैलेस्टाईन में हुआ। ईसाइयों का कथन है कि ईसा ईश्वर का पुत्र था और वह मरियम नाम की कुंवारी लड़की से पैदा हुआ।

न्यू टेस्टामेंट में ईसा के चार शिष्यों ने अपने-अपने शब्दों में ईसा के विषय में काफी कुछ लिखा। ईसा अपने बारहवें वर्ष से लेकर तीसवें वर्ष तक कहाँ रहा, इस बात के विषय में उन्होंने कुछ नहीं लिखा। वे अस्पष्ट शब्दों में यह मानते हैं कि इस अवधि में वह कहीं अध्यात्म-चिंतन में रहा।

ओल्ड टेस्टामेंट में उल्लिखित अनेक स्थानों के नाम कश्मीर में प्रचलित हैं। कश्मीर के एक पहाड़ी प्रदेश में आराबा और हेब्रान—ये हिब्रू नाम प्रचलित हैं। कश्मीरी ब्राह्मणों की मुखाकृति यहूदियों जैसी है और उनके नाम, जाति, उपजाति के नाम ओल्ड टेस्टामेंट में वर्णित नामों जैसे हैं।

न्यू टेस्टामेंट में ईसा कहीं लुप्त हो गया था, ऐसा लिखा है। ईसा इधर आया था, यह बात प्रचलित है।

ईसा की द्वितीय भारत यात्रा—रोरिक का अनुसंधान कार्य

प्रसिद्ध रशियन चित्रकार निकोल्स रोरिक ने सन् 1929 में 'हार्ट आफ एशिया' नामक ग्रंथ प्रकाशित किया है। उसमें वह लिखता है कि—'मैंने कश्मीर में प्रथम बार इस विलक्षण दंतकथा को सुना, फिर हमको पता चला कि भारत, लद्दाख और मध्य एशिया में भी यही दंतकथा प्रचलित है। न्यू टेस्टामेंट में ईसा कहीं बीच में लुप्त हो गया था, ऐसा लिखा है। उस काल में ईसा इधर आया था, यह बात प्रचलित है। श्रीनगर के मुसलमानों ने मुझ से कहा कि ईसा की मृत्यु क्रॉस पर नहीं हुई। उसके शिष्य उसको दूसरी जगह ले गए और उसको अनेक उपायों से अच्छा किया। फिर ईसा श्रीनगर आया और यहीं वह स्वाभाविक मृत्यु से मरा। यहाँ एक मकान है उस घर में यूसफ के पुत्र ईसा की कब्र है। वहाँ इस आशय का खुदा हुआ पत्थर भी लगा है।'

कश्मीर में ईसा की समाधि

रोरिक पुनः लिखता है, 'जब हम लेह (कश्मीर) गए तब हमने वहाँ यही दंतकथा सुनी। लेह के हिन्दू पोस्टमास्टर और बौद्ध लोगों ने हमको एक बाजार के समीप ही एक तालाब दिखलाया और कहा कि पैलेस्टाईन जाने से पूर्व ईसा ने यहाँ प्रवचन किया था, ऐसी दंतकथा बतलाई। ईसा ईसाई व्यापारियों के कारवां के साथ इधर आया था, इस प्रकार की दंतकथा हमने लद्दाख सिकियांग, मंगोलिया आदि भागों में भी सुना। सब दंत-कथाओं में एक बात यही समान थी कि ईसा पैलेस्टाईन से जो गुम हुआ तो वह सीधे भारत, एशिया में आया।

काश्घर से छः मील पर मरियम मझर ईसा की माता की कब्र है। दंतकथा यह है कि जब ईसा को सताया जाने लगा तब मेरी काश्घर आई। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसको वहाँ दफनाया गया।

कश्मीर में यहूदी जाति के चिह्न

एलिस-ई-विशार्ट नामक एक यूरोपियन देवी कश्मीर में बीस वर्ष से रह रही है। वह 'इण्डिया एंड इजराइल' नामक दिसंबर 1951 की एक अंग्रेजी पत्रिका में लिखती हैं—'कश्मीर में भेड़-बकरी पालने वाली एक गूजर जाति अपने आपको 'वानी इजराइल' कहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि रूवेन और गैड जाति (ज्यू) के वंशज होंगे। उनमें से बहुत से लोग अपने नाम के अंत में 'जू' उपपद जोड़ते हैं। उनकी मुखाकृति ज्यू जैसी है। 17वीं शती के प्रसिद्ध इतिहासकार फ्रांसिस बर्नियर

ने अपनी 'मुगल साम्राज्य की सैर' में यही मत प्रतिपादित किया। निकोल्स रोरिक लिखता है कि जो लोग कश्मीर में जाते हैं उनको एक कब्र दिखलाई जाती है। यहाँ एक घेरा है उसमें सात फुट लंबा, ढाई फुट चौड़ा और एक फुट ऊँचा चौबारा है। उस पर दो पैरों के निशान हैं। लोग कहते हैं कि यह ईसा की कब्र है। इस कब्र पर फूस का छप्पर है।

ईसा क्रूस पर नहीं मरा

सन् 1908 में सर फ्रांसिस यंग हसवंड ने अपनी 'कश्मीर यात्रा' पुस्तक प्रकाशित की है। उसमें उन्होंने लिखा है कि 'इस वर्ष (1908 ई.) सितंबर मास में पंजाब के एक विचित्र पंथ का संस्थापक मर गया। उस संस्थापक का कथन है कि मैं यहूदियों का 'मसीहा' और इस्लाम का 'मेहदी' हूँ। उसके कथनानुसार ईसा क्रूस अथवा क्रॉस पर नहीं मरा, वह जीवित रहा और श्रीनगर में उसकी कब्र है।

सन् 1929 में प्रकाशित 'ईसा के रहस्यपूर्ण जीवन' में डॉ. स्पेन्सर लिखते हैं कि ईसा सूली पर नहीं मरा। वह 60-70 वर्ष जीवित रहा। वह यह भी लिखते हैं कि ईसा अपनी 12 वर्ष से 30 वर्ष की आयु के मध्य भारत आया तथा उसने योग एवं वेदांत की उच्च शिक्षा प्राप्त की।

भारत की शरण में

मौलाना मुहम्मद अली ने लंदन में अहमदिया पंथ की कुरान का अंग्रेजी अनुवाद किया है। उसमें उन्होंने ईसा के विषय में स्पष्ट लिखा है कि जीसस क्राइस्ट (ईसा) सूली पर चढ़ा था, किन्तु वह क्रॉस पर मर गया ऐसा दिखलाने की व्यवस्था की गई थी। उसको और उसकी माता को एक ऊँची हरी झरने वाली जगह में आश्रय दिया गया था।

जीसस क्राइस्ट (ईसा) क्रॉस पर नहीं मरा, इस विषय में टिप्पणी करते हुए मौ. मुहम्मद अली लिखते हैं कि बाइबिल की इन बातों की ओर ध्यान देना चाहिए—

1. ईसा क्रॉस पर केवल कुछ घण्टे रहा।
2. जब चोरों को क्रॉस पर चढ़ाया गया तब वे कई घण्टे जीवित रहे।
3. चोरों के पैर तोड़ डाले गए थे परन्तु ईसा के पैर नहीं तोड़े गए थे।
4. जब ईसा को क्रॉस पर से उतारा तब सिपाहियों ने ईसा की बगल में कुछ चुभोया था। तब ईसा का रक्त निकला था जो ईसा के जीवित रहने का चिह्न था।
5. इतनी देर में ईसा मर गया होगा ऐसा पायलेट का विश्वास नहीं था।

6. जिन दो चोरों को क्रॉस पर चढ़ाया था उनके मरने पर उनको गाड़ दिया गया था, किन्तु ईसा के शरीर को उसके एक श्रीमान् शिष्य के सुपुर्द कर दिया गया। उस शिष्य ने ईसा की बड़ी सावधानी से शुश्रूषा की और एक पहाड़ी गुफा में ले जाकर रखा था। इससे प्रमाणित होता है ईसा क्रूस पर नहीं मरा था तथा उसके कब्र से लुप्त हो जाने या स्वर्ग में उड़ जाने की किंवदंती का अर्थ यही है कि वह माली का भेष बदलकर अपने शिष्यों के साथ पुनः भारत आ गया था। अंत में यहीं के संदेश से अनुप्राणित महात्मा ईसा का प्राण इसी भारत भूमि के अंक में सदा के लिए सो गया। अतः विश्व के शतकोटि ईसाई धर्मावलम्बियों के धर्मगुरु ईसा का भी ज्ञान-गुरु होने के कारण भारत, सदा की भांति, आज भी विश्व का धर्म-गुरु है। आज संसार के करोड़ों ईसाइयों को मैत्री, करुणा एवं दया के मूर्तिमान अवतार जिस महात्मा ईसा की शरण में जाने से परम शांति लाभ होती है, 20वीं शती पूर्व स्वयं अपने ही स्वदेश वासियों द्वारा तिरस्कृत उस सुशील संत ईसा को अपने विशाल अंक में शरण देने वाली इस शरणागत-वत्सला भारत-भूमि की जय! धर्मगुरु ईसा की जय!! जगद्गुरु भारत की जय!!!

'यदि विश्व को परमाणु विध्वंस से बचाना है तो भारत को विश्व की कमान अपने हाथ में लेनी होगी।

—आर्नोल्ड टायन्बी

× × ×

भारत का दान है धर्म, दार्शनिक ज्ञान और आध्यात्मिकता। धर्म-प्रचार के लिए यह आवश्यक नहीं कि सेना उसके आगे-आगे मार्ग निष्कंटक करते हुई चले। ज्ञान और दार्शनिक तत्त्व रक्त से लथपथ घायल मानवों के ऊपर से सदर्प विचरण नहीं करते। वे शांति और प्रेम के पंखों से उड़कर शांतिपूर्वक आया करते हैं और सदा हुआ भी यही है।

—स्वामी विवेकानन्द

यहूदी एवं ईसाई धर्मग्रन्थों में संस्कृत शब्द-भण्डार

अमरीका के विश्वविख्यात विद्वान एवं 6 खण्डों में लिखित विराट् ग्रंथ 'सभ्यता की कहानी' के यशस्वी लेखक डॉ. विल डूरेण्ट ने लिखा है—

'भारत ही हमारी जाति की जन्मस्थली थी तथा संस्कृत ही यूरोप की सब भाषाओं की जननी। भारतमाता हमारे दर्शन की भी जननी थी, अरबों के माध्यम से हमें प्राप्त होने वाले अधिकांश गणित ज्ञान की भी जननी, बुद्ध के माध्यम से हमारे ईसाई आदर्शों की भी जननी, अपनी ग्राम पंचायत परम्परा द्वारा हमारे लोकतंत्र एवं आत्मशासन की भी जननी—भारतमाता अनेक दृष्टियों से सारे विश्व की जननी है।'

यूरोप की समस्त भाषाएँ भारोपीय परिवार की होने के कारण तो संस्कृत की पुत्रियाँ हैं ही, किन्तु हीब्रू (यहूदी) भाषा सेमेटिक परिवार की भाषा होने के कारण संस्कृत के भाषा परिवार से बिल्कुल पृथक् है। फिर भी यहूदी भाषा के प्राचीनतम ग्रंथ Old Testament में संस्कृत भाषा के शब्द-भण्डार की छटा बड़ी मनोहारी एवं ज्ञानवर्धक है।

बाइबिल के दो खण्ड हैं—पुरातन समाचार Old Testament या पुरानी पोथी तथा नूतन समाचार New Testament। पुरानी पोथी यहूदियों का धर्मग्रंथ है और नूतन पोथी ईसाइयों का। पुरानी पोथी Old Testament में ऐसा वर्णन आता है कि टायर (Tyre) के राजा हिरम (Hiram) तथा सॉलमन (Soloman) के नौकरों का जहाजी बेड़ा प्रति तीसरे वर्ष किसी ओफिर नामक देश या स्थान से सोना, कुछ बेशकीमती पत्थर तथा अल्मग (Almug) लकड़ी ले आया करता था। उसी बेड़े पर हाथीदाँत, बन्दर तथा मोर आदि और भी चीजें आती थी। पुरानी पोथी के अध्येताओं के समक्ष यह एक पुराना प्रश्न है कि यह ओफिर किस देश या स्थान का नाम था। यहाँ हम लोगों को भी अपने विषय को स्पष्ट करने के लिए इस प्रश्न को उठाना होगा।

काप्टिक भाषा में भारत का नाम सोफिर (Sofir) मिलता है। इस सोफिर शब्द से ओफिर का निकलना असम्भव नहीं है।

पुरानी पोथी के बहुत से अनुवादकों द्वारा Ophir के स्थान पर Sophir या Sophira शब्द का प्रयोग किया गया है। जोसेफस ने भी यही किया है। और, जोसेफस तो स्पष्ट कहता भी है कि यह भारत का एक अंग था।

पुरानी पोथी का अनुवाद करने वाले पुराने अरब के विद्वानों ने भी कम से कम तीन स्थानों पर 'ओफिर' का अनुवाद 'भारत' किया है।

ओफिर से आने वाली सभी चीजें—सोना, बेशकीमती पत्थर, चन्दन, मोर, बन्दर, हाथीदाँत आदि भारत में उपलब्ध हैं तथा पुराने जमाने में बाहर भेजी जाती रही हैं।

जैसा कि आगे हम देखेंगे, इन चीजों में चन्दन, मोर, बन्दर तथा हाथीदाँत के पुरानी पोथी में पाये जाने वाले नाम हिब्रू के नहीं हैं, अपितु भारतीय भाषाओं के हैं।

भारत के पश्चिमी किनारे पर सिन्धु नदी के मुहाने के आस-पास बहुत प्राचीन काल से आभीर जाति के रहने का वर्णन मिलता है। 'आभीर' शब्द से बिगड़ कर 'ओफिर' होने की सम्भावना है। इसके अतिरिक्त गोआ के पास सुपारा, (Supara) शूपरिक, उपारा (Uppara) नामक कोई पुराना स्थान था। इसका भी अपभ्रंश 'ओफिर' हो सकता है। इसके आस-पास बन्दर मिलते ही हैं। कश्मीर की ओर मिलने वाला सोना सिन्धु नदी के रास्ते इधर आता रहा होगा। यहीं गुजरात में मोरों के पाये जाने का भी पुराना वर्णन मिलता है। मालाबार का चन्दन भी यहाँ से बहुत दूर नहीं है। इस प्रकार इसके पक्ष में सारी सम्भावनाएँ हैं।

अब अफ्रीका, अरब और भारत के तर्कों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। अफ्रीका का जहाँ तक सम्बन्ध है, वहाँ सोना अवश्य अधिक होता है, पर Tukki, जिसे अधिकांश विद्वानों ने तोता न मानकर मोर माना है, वहाँ नहीं मिलता। ओफिर से आनेवाली चीजों में चन्दन प्रमुख है, पर वह भी अफ्रीका में नहीं होता। तीसरी बात यह भी है कि यदि अफ्रीका में ओफिर होता तो वहाँ से आनेवाली चीजों के लिए यदि हिब्रू नाम न रहता, तो अवश्य ही अफ्रीकन नाम लिया गया होता। पर ऐसा नहीं है। वस्तुओं के नामों में एक भी अफ्रीकी भाषाओं का नहीं है, अतः ओफिर का अफ्रीका में होना असम्भव है।

अब अरब का प्रश्न उठाया जा सकता है। खनिज विद्या-विशारदों का कहना है कि अरब में कहीं भी सोना नहीं है और भूतकाल में कभी होता रहा हो, ऐसी भी आशा नहीं है। यदि कभी निकाला गया होता तो खानों के अवशेष अवश्य मिलते।

चन्दन, हाथीदाँत, मोर आदि के तो अरब में होने की और भी सम्भावना नहीं है। अतः 'ओफिर' के अरब में होने की सम्भावना बिल्कुल नहीं है। इसके अतिरिक्त स्वयं अरब के पुराने अनुवादकों ने भी 'ओफिर' का अनुवाद 'भारत' किया है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि ओफिर से आने वाली वस्तुओं के नाम व्युत्पत्ति की दृष्टि से अरबी नहीं है, और यह सम्भव नहीं है कि चीजें तो अरब से लेते और नाम भारत से, जैसा कि हम आगे देखेंगे। अतः अफ्रीका की भाँति ही अरब में भी 'ओफिर' नहीं था।

भारत के सम्बन्ध में उपर्युक्त प्रकार की कोई भी कठिनाई नहीं है। वे सभी चीजें यहाँ उपलब्ध हैं तथा जातकों से सिद्ध है कि उनका व्यापार भी होता था। ओफिर नाम भी 'आभीर' या 'सुपारा' से उद्भूत हो सकता है तथा उन सभी चीजों के हिब्रू या पुरानी पोथी में प्रयुक्त नाम भारतीय भाषा के हैं, अतः यह प्रायः निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि ओफिर भारत में ही था। मैक्समूलर का भी यही मत है।

निष्कर्ष यह है कि ओफिर भारत में था और उस समय यहूदियों का भारत से व्यापार होता था तथा सोना, मोर, चन्दन, बन्दर आदि वस्तुएं भारत से वहाँ जाती थीं।

Ophir ओफिर—भारत के आभीर शब्द का ही विकसित रूप है।

(रिटर, लैस्सेन, मैक्समूलर)

Algum (Bible) अल्मग—हिब्रू के चोटी के विद्वान इसे भारत से आने वाली चन्दन या लाल चन्दन की लकड़ी मानते हैं। संस्कृत में चन्दन के लिए एक शब्द वल्गुम भी है। वल्गुम = वल्गम = अल्गम (लैस्सेन तथा रिटर जैसे विद्वान)

Koph (Bible)—कोफ भी हिब्रू शब्द नहीं है। कपि कोफ। विलियम ड्रेक ने माना है कि अंग्रेजी Ape व जर्मन Affe, Anglo, Somen, Afa—सभी शब्द मूलतः संस्कृत के कपि से बने हैं।

Shenhabbim (Bible)—शेन (हिब्रू शब्द) का अर्थ दन्त है। संस्कृत इभ Eboy (काप्टिक)—Habba (असीरियन)—हैबिम (हिब्रू) मैक्समूलर ने भी हैबिम की व्युत्पत्ति इभ से मानी है। इभ:दन्त—इभूरीय-Ivory.

Tukhim Tucciyyim (Bible)—तुखिम शब्द भी हिब्रू का नहीं है। इसका अर्थ मोर है, तोता नहीं है। तमिल शब्द Tokei (तोकी)-तोगी का अर्थ मोर है। मैक्समूलर का मत है शिखिन से तुखिम शब्द बना है।

(Bible)—कर्पस बाइबिल में कपड़ा या रुई के अर्थ में प्रयोग हुआ है।

कर्पास (संस्कृत)—कर्पस (पुरानी बाइबिल में) 'Karpas—the Habbis

word, which appears also in Arabic, Greak and Latin is derived from Poro. KIRPAS and ultimately from Sanskrit KARPASA'— Norman & Turner

आब्रह्म = Abraham;

आत्मा-अत्तः Auto

स्व Sui, Soul, Self सूर्य, सूर, सौर Solar

संन्यासी—एसीन

साधू—Seducee

स्थविर—थेरा Thera

Therapeutea स्थविर पुत्रः—

Therapeutics औषध विज्ञान—

बोधिसत्व—Josaphet

कृष्णः कृष्ट- कृष्टो Christos

न केवल एशियायाः एव, प्रत्युत समग्रस्य अपि योरूपस्य भाषा-जिज्ञासुकानां संस्कृत वाचः अनुशीलनम् आवश्यकम्। मतः संस्कृतेन सह सर्वासां निकटतमः संबंधः।

संस्कृत भाषा न केवल भारतवर्षम् एव अपितु अखण्डं क्षोणी-खण्डंस्त्र वाङ्मय सुधारस-सागर-समुद्भूत-प्रभूत प्रभाव प्रवाहैः पुनाति प्रतिपादम् इति पाश्चात्य विपश्चितः अपि निसंकोचम् अस्याः स्वरूपोद्घाटन-विषयम् अभ्यूपयन्ति

गौरवायच स्पृहयन्ति, ते संस्कृत गुण-निषध-गुरुताम्
गायन्ति, मानयन्ति महामहनीय-महिम महत्ताम
अस्य गीर्वाण-भारतीयम वाणी संस्कृत भाषायाः।
जयतु जय सुरभारती।।

संस्कृत ही हमारी (यूरोप की) सब भाषाओं की जननी है।

—विल डूरेन्ट

वैटिकन रोम
पोप की रहस्यमयी नगरी

1. संसार का सबसे छोटा राज्य।
2. ईसा के प्रतिनिधि पोप का राज्य।
3. चौथी मंजिल पर पोप का निवास।
4. पोप के अनुयायी 34600000।
5. लगभग एक घंटे में व्यक्ति वैटिकन के एक छोर से दूसरे छोर तक जा सकता है।
6. सेंट पीटर्ज संसार का सबसे बड़ा गिरजाघर। इसकी सीढ़ियों से रोम का तथा टाईबड नदी का दृश्य बड़ा अलौकिक है। यह गिरजाघर वैटिकन का केन्द्र बिन्दु है। इसके चारों ओर रोम नगर फैला हुआ है।
7. प्राचीन रोम नगर से आवृत वैटिकन का निर्माण छः शताब्दी पूर्व एक कब्रिस्तान पर हुआ था, जहाँ सम्राट् नीरो ने सर्वप्रथम ईसाइयों की बलि दी थी।
8. सेंट पीटर्ज के गिरजा में माइकेल एंजेलो जैसे प्रख्यात और सिद्धहस्त कलाकारों ने उसे अनुपम सौंदर्य प्रदान करने के लिए वर्षों तक दिन-रात अथक परिश्रम किया है।
9. सिर का वस्त्र और चोगे पहने भिक्षुओं और भिक्षुणियों के समूहों से भरे इस गिरजाघर में 666 खंभे हैं, 395 मूर्तियाँ, 44 वेदिकाएं और पाप-स्वीकृति कक्ष हैं जिनसे हर समय आंसुओं से भीगे चेहरे और तरल कंठ से अपने पाप-कर्मों को स्वीकार करती और रोती स्त्रियाँ दीख पड़ती हैं।
10. सेंट पीटर्ज के प्रबंध और देख-रेख का काम 16वीं सदी से ही सत्तर सदस्यों के एक कार्पोरेशन के हाथ में चला आ रहा है।
11. पोप का प्रासाद शायद संसार का सबसे अधिक रहस्यपूर्ण निवास स्थान है,

क्योंकि उसमें 30 तो गुप्त जीने हैं, और ज्ञात जीनों की संख्या भी 999 है।

12. इस आश्चर्यजनक प्रासाद में, जो पोप का राजकीय निवासस्थान है, लगभग 10,000 भवन, कक्ष, गलियारे और तहखाने आदि हैं। जिसमें से कुछ ऐसे हैं जिन्हें मौजूदा पीढ़ी के लोगों ने कभी देखा तक नहीं। अगर किसी के पास समय हो और उसे शौक भी हो तो वह इस प्रासाद की खिड़कियाँ गिन सकता है जिसकी संख्या 12,530 है। इनमें कितनी ही खिड़कियाँ कभी खोली नहीं गई हैं।

13. वैटिकन की आबादी 1031 है, जिनमें 15 राष्ट्रों के व्यक्ति हैं। कुल 153 परिवार यहाँ रहते हैं। उनमें 750 पुरुष हैं और 281 स्त्रियाँ। उनकी सरकारी भाषा इटालियन है। चर्च की भाषा लैटिन है।

14. वैटिकन नगर के चारों ओर एक मोटी प्राचीर है। नगर के भीतर प्रवेश के लिए तीन द्वार हैं—कांसे का द्वार, घंटियों का द्वार और सेंट आना का द्वार।

15. 651 फुट लंबे और 435 फुट ऊँचे गिरजाघर की छाया में दो और गिरजे हैं। एक रेलवे स्टेशन, एक न्यायालय, दो कारागार, चार डाकखाने, चार फौजी बैरकें, चार समाचार-पत्र कार्यालय और तीस चौक एवं गलियाँ हैं।

16. साधारण आदमी के लिए वैटिकन में निस्संदेह आकर्षण की दो ही वस्तुएं हैं—सेंट पीटर्ज गिरजाघर और अजायबघर, जो विश्व के श्रेष्ठतम संग्रहालयों में से एक है।

17. वैटिकन राज्य की राजकीय आय का सबसे बड़ा स्रोत राज्य द्वारा समय-समय पर जारी किए जाने वाले डाकटिकट हैं, जो विश्वभर के डाक-टिकट संग्राहकों को बेचे जाते हैं। इसके अलावा राजस्व के दूसरे साधन भी हैं, परन्तु इस राजकीय आय-व्यय का न तो कोई निश्चित बजट है और न हिसाब-किताब।

18. वैटिकन के निवासियों को कोई कर नहीं देना पड़ता और न कोई मकान-भाड़ा। उन्हें रोम से आधे से भी कम भावों पर राज्य से अपना दैनिक राशन मिलता है।

19. कहा जाता है कि राज्य बहुत घाटे में चल रहा है, हालांकि यह भी बताया जाता है कि वैटिकन का एक विशाल स्वर्ण-भंडार न्यूयार्क के फेडरल रिजर्व बैंक के पास जमा है और उसकी देख-रेख का भार मैसर्स जे. पी. मॉर्गन एण्ड कंपनी पर है।

20. वैटिकन में न कोई कॉफी हाउस है, न मदिरालय, न होटल, न रेस्त्रां और न कोई रात्रि-क्लब। बाहर से आने वाले पर्यटकों के लिए नगर की प्राचीर से बाहर इन चीजों की कमी नहीं है।

21. पोप चौबीसों घंटे किसी-न-किसी कार्य में व्यस्त रहते हैं। वे वैटिकन के अधिपति हैं। उनका अपना सचिवालय है जिसमें पादरी आधुनिक रेडियो, टेलीफोन, बिजली के टाइपराइटर और स्वचालित गणनायंत्रों का तीव्रगति से और बिना किसी कठिनाई के प्रयोग करते दिख पड़ते हैं।

22. वैदेशिक विभाग, धार्मिक विभाग और आंतरिक विभाग सचिवालय के मुख्य विभाग हैं, किन्तु प्रचार विभाग आदि और भी विभाग हैं। सन् 1929 से पोप वैटिकन नगर के शासक हैं और साथ ही वह कैथोलिक ईसाई- संप्रदाय के नेता भी हैं।

23. पोप के पास में न तो विमान है, न रेलगाड़ी और न जहाज। उनके पास ऐसी मोटरकारें हैं जिनमें स्वर्णजटित सिंहासन लगे हुए हैं। वैटिकन की सभी मोटरों पर विशेष नंबर-प्लेटें लगी रहती हैं जिन पर एस.वी.सी. चिह्न अंकित होता है। वैटिकन से संबद्ध राजनयिक नगर से बाहर रोम में रहते हैं। नगर-प्रवेश के लिए न कोई सीमा चौकी लांघनी पड़ती है और न पारपत्र की औपचारिकता में से गुजरना पड़ता है।

24. पोप की न कोई निजी संपत्ति है, न कोई उत्तराधिकारी और न कोई विश्वासभाजन मंत्री या सलाहकार। वे एकांत जीवन व्यतीत करते हैं जो पूर्णतः ईश्वर और धर्म को अर्पण रहता है।

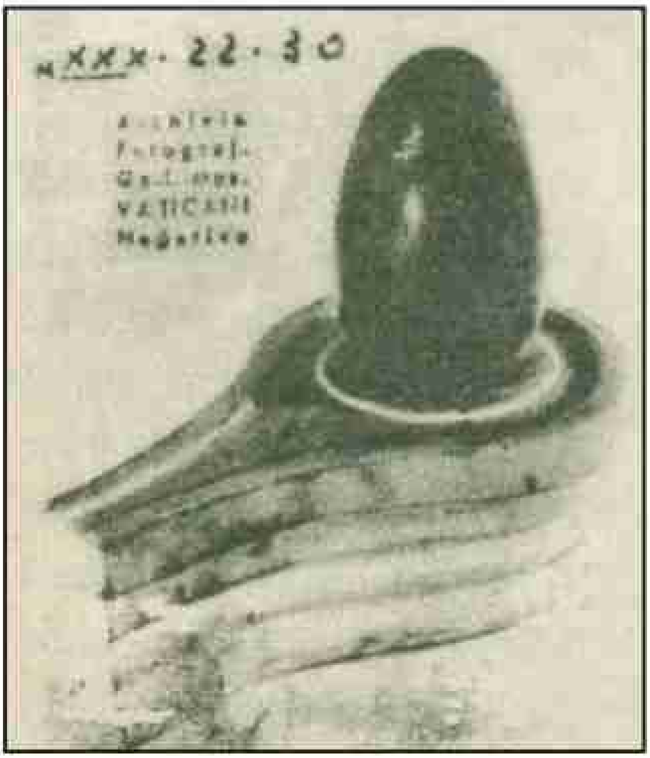
25. वैटिकन प्रासाद की चौथी मंजिल पर राज्य का वैदेशिक विभाग है। वैटिकन के राजदूत संसार के सभी देशों की राजधानियों में स्थित हैं, दिल्ली में भी है। वैदेशिक विभाग अन्य सरकारों के वैदेशिक विभागों की भांति विश्व की आर्थिक और राजनीतिक प्रवृत्तियों का अध्ययन करता है। अन्य देशों के कार्य का समर्थन या विरोध करता है। किन्तु उसके चिंतन और कार्य की पद्धति बिल्कुल भिन्न है। उसके मूल में कैथोलिक जगत् का हित निहित रहता है।

26. पोप सब तरह से नितान्त एकांतजीवी हैं। वह अकेले खाते हैं और अकेले ही पढ़ते हैं।

1481 ई. में विज्ञानवादियों का दमन करने के लिए ईसाइयों ने Court of inquisition नाम की विशेष अदालत स्थापित की थी, जिसमें

ईसाई मत के विरुद्ध विज्ञान के किसी सिद्धांत का प्रचार करने वाले वैज्ञानिकों पर अभियोग लगाकर उन्हें सजा दी जाती थी। यही नहीं, नाना तरह की यंत्रणाएं देकर उनसे स्वीकार कराया जाता था कि उनका 'सिद्धांत' झूठा है। जो स्वीकार नहीं करते थे, उन्हें जीते-जी जला दिया जाता था। उक्त अदालत की आज्ञा से प्रथम वर्ष में ही 2000 विद्वान् जलाये गये। इस अदालत का अध्यक्ष 'तारकी माडा' नामक व्यक्ति 18 वर्षों तक रहा। इसके समय में 10220 वैज्ञानिक और उनके भक्त जीते-जी जलाये गये और 87327 मनुष्यों को अन्य प्रकार के दण्डों से दंडित किया गया। दूरदर्शक यंत्र (Telescope) के आविष्कारक गैलेलियो को इसलिये जेल में ठूंस दिया गया कि वह पृथ्वी का भ्रमण करना बताता था! ब्रूनो को इसलिये जीवित ही जला दिया गया कि वह सृष्टि में पृथ्वी की तरह के अनेक लोक-लोकान्तर बतलाता था।

रोम में शिव



रोम में पोप की नगरी वैटिकन में भी एक विशाल शिवलिंग है। पोप स्वयं प्रतिदिन इसके सामने मौन एकान्त ध्यान साधना करते हैं। मैंने स्वयं वैटिकन में इसका फोटो चित्र लिया है। इस पर लैटिन भाषा में अंकित है। Veticana रोम की पोप नगरी का मूल नाम वाटिका (धर्म वाटिका) था। सन् 1963 में पोप ने स्वयं स्वीकार किया कि वह और उसके भूतपूर्व सभी पोप उस प्रतीक के सामने ध्यान-साधना करते आ रहे हैं।

अरब पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव

(इस शोध पत्र का वाचन प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग एवं पुरातत्त्व विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय तथा सरकारी संग्रहालय एग्मोर, मद्रास के संयुक्त तत्त्वावधान में अखिल भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विचारगोष्ठी में किया गया था, जो 12-14 फ़रवरी, 1982 को आयोजित की गई थी तथा इस पत्र की भूरि-भूरि प्रशंसा भी हुई थी। इस विचारगोष्ठी, जिसमें सम्पूर्ण देश से इतिहास और संस्कृति के 200 विद्वानों ने भाग लिया था, का उद्घाटन श्री सी. अरंगनयगम, शिक्षामंत्री तमिलनाडु सरकार ने किया था तथा इसकी अध्यक्षता मद्रास विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. ए. सन्तप्पा ने की थी।)

एनसाक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार स्वयं अरब इस्लाम के पूर्व क्या थे, इस विषय में अज्ञान में हैं। यह काल अज्ञान के अंधकार में डूबा हुआ है। एक देश, जो स्वयं अपने अतीत के विषय में, बीते कल के विषय में अज्ञान में है, नहीं जानता, वह स्वयं अस्वीकृत होता है। वह वर्तमान के विषय में न्याय नहीं कर सकता है न भविष्य को उचित दिशा दे सकता है। सातवीं शताब्दी के पश्चात् सभी प्रमाणों तथा ग्रंथों को नष्ट कर दिया गया, सभी मन्दिरों को तोड़ दिया गया, सभी विश्वविद्यालयों को जला दिया गया, यानी जो भी पूर्व जीवन से, अतीत से सम्बन्ध जोड़ती थी उनको नष्ट कर दिया गया।

अरेबिया शब्द ही ग्रीक भाषा में संस्कृत नाम है। अर्ब घोड़े को कहते हैं वैदिक भाषा में। जिस जगह घोड़े रहते हैं उस स्थान को अर्व या अर्ब स्थान कहते हैं। अरब अच्छे नस्ल के घोड़ों के लिए प्रसिद्ध था।

अरब पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव दिखाने के पूर्व यह बतलाना लाभदायक होगा कि मध्य एशिया में भारतीय संस्कृति का प्रभाव जैसा कि अब अरब, मध्य एशिया के एक बड़े हिस्से, में फैल चुका है। क्योंकि अनेक मध्य एशिया के देश, जो मूलतः अरबी नहीं हैं पर वे धर्मान्तरण के पश्चात् अपने आप को अरब कहने लगे हैं।

सुमेरिया राज्य की दो प्रजाति हिताइत और मितनी में सन्धि होती है। वैदिक

देवता यथा इन्द्र, वरुण, नास्त्यों को साक्षी रखकर ईसा से 1400 वर्ष पूर्व प्राचीन सुमेरिया के राजाओं के नाम है—Artanna, Surtanna and Dasaratta. असीरीया असुरों का राज्य था जिसके राजा असुर बनीपाल Asur Banipal असुर महिपाल Asur Mahipal आदि। सिन्धु घाटी सभ्यता से सुमेरिया का बहुत स्पष्ट सम्बन्ध था। Hindu Kingdoms in Ancient Sumeria by Swami Shankarnanda (Published by M/S K.L. Mukhopadhaya, Calcutta) एक चुनौती वाली पुस्तक है।

कम लोगों को ज्ञात है कि ईसा से दो शताब्दी पूर्व यूफ्रेटीज नदी के ऊपरी तट पर वानझील के पश्चिम में एक हिन्दू उपनिवेश था जिसमें हिन्दू मन्दिर बने हुए थे, जिसमें एक कृष्ण का मन्दिर भी था। चौथी शताब्दी में सेंट ग्रेगरी ने अपने अनुयायियों की सहायता से इस हिन्दू उपनिवेश को पराजित करके हिन्दू मन्दिरों को गिरवा दिया था। इसका उल्लेख आर.सी. मजूमदार ने India's Contribution to world Thought and Culture की भूमिका में किया है।

मिस्र देश का नाम ही संस्कृत भाषा का है। यह किसी सेमेटिक या यूरोपीय भाषा का शब्द नहीं है। मंडन मिश्र से लेकर वाचस्पति मिश्र तक भारत में श्रेष्ठ तत्त्ववेत्ताओं, ब्राह्मणों की उपाधि मिश्र रही है। वहाँ की सर्वप्रसिद्ध नदी (मिस्र की गंगा) का नाम नील नदी भी संस्कृत नाम है। गंगा की नीलधारा के समान नील नदी भी मिस्र की सर्वप्रसिद्ध, सर्वपूज्य नदी है। यह शब्द भी संस्कृत के सिवा किसी अन्य शब्द-भंडार से नहीं आया।

एक पिरामिड में रखी हुई मम्मी के बॉक्स पर गीता का श्लोक इजिपसियन भाषा में लिखा हुआ पाया गया है। टीक की लकड़ी, जिससे बॉक्स बना हुआ है, वह भारत से ही जाती थी। जो मलमल का वस्त्र, जिससे मम्मी को लपेटा गया था, वह भी भारतीय है। सूर्य पूजा, जो भारत से ईरान, मिस्र फिर यूरोप पहुँची, मित्र पूजा प्राचीन यूरोप में ईसा से पूर्व ही प्रवेश कर चुकी थी। मसाले, हीरे, चन्दन की लकड़ी आदि भारत से मिस्र जाते थे।

बाइबिल स्पष्ट रूप से वर्णन करती है कि राजा सोलोमन अपने महल के लिए भारत से हाथीदाँत, मोर, सागवान की लकड़ी, मोती, मसाले, मलमल आदि आयात करता था। यह तथ्य है कि बौद्ध संन्यासी एवं भारतीय संन्यासी ईसा के जन्म के पूर्व से ही इजरायल में मान्यता प्राप्त कर चुके थे। वहाँ के जनजीवन में प्रवेश कर चुके थे, उन्हें प्रभावित कर रहे थे। अशोक (जिसका पुत्र महेन्द्र और उसकी पुत्री संघमित्रा बौद्ध धर्म का प्रकाश श्रीलंका ले गये) ने बौद्ध संन्यासी या उपदेशक इजरायल एवं मध्य एशिया में भेजे। बाइबिल वर्णन करती है कि तीन प्रकार के भारतीय प्रचारक ईसा के पूर्व कार्यरत थे।

थेरापुत (बौद्ध साधु, स्थविर पुत्र) जो भगवान बुद्ध के आदर्शों का प्रचार करता था और अपने कंधे पर दवा का थैला लटका कर रखता था, शरीर को स्वस्थ करने के लिए। स्थविर का संस्कृत भाषा में अर्थ है वृद्ध व्यक्ति या वृद्ध भिक्षु। स्थविर शब्द पाली भाषा में थेर Thera और श्रीलंका में बौद्धधर्म के भिक्षु को Therawada नाम से जाना जाता है। सम्राट् अशोक ने युवकों का आह्वान किया भगवान बुद्ध के संदेश को सर्वत्र पहुँचाने के लिए, वे स्थविर पुत्र (युवा भिक्षु) कहलाये। स्थविर का रूप श्रीलंका में Thera और स्थविर पुत्र का रूप इजरायल में 'Putae' हो गया। An interesting fact of history is that because of the medical service of the Theraputte the Science of Medicine has been named Theraputics and Therapy.

B एसिन Essene (सनातन हिन्दू संन्यासी)

C साधूसिज Sadducees (जैन साधु)

रशियन यात्री निकल्सन नोटोविश ने अपने शोध ग्रंथ 'Lost years of Jesus Christ' में यह सिद्ध किया है कि ईसा का जन्म इजरायल के एक गरीब धर्मनिष्ठ कुटुम्ब में हुआ। बचपन से ही उसकी वृत्ति धार्मिक थी। वह आठ वर्ष से 28 वर्ष तक की अवस्था में भारत में रहा। वह आठ वर्ष की अवस्था में घर से निकला और किसी व्यापारिक कारवां के साथ सिन्ध में आया। उसने जगन्नाथपुरी, राज्यगृह, बनारस, मथुरा, कश्मीर, लद्दाख में विद्याध्ययन किया। फिर वह इराक के मार्ग से जूडिया गया और वहाँ प्रवचन करने लगा। Old testament दाँत के बदले दाँत, खून के बदले खून के स्थान पर उसने अहिंसा, शांति, क्षमा एवं प्यार का संदेश दिया। लोकमान्य तिलक ने अपनी गीतारहस्य पुस्तक में सिद्ध किया कि ईसा मसीह के उपदेश गीता से बहुत प्रभावित हैं।

यह तथ्य है कि जीसस Jesus जो ईसाई मत के संस्थापक का नाम है, क्राइस्ट (Christ) तो केवल उसकी उपाधि (Title) मात्र है। जीसस के पूर्व क्राइस्ट नाम से कोई नहीं जाना जाता था। जबकि जीसस तो एक प्रसिद्ध Popular नाम रहा यहूदियों के मध्य।

तब उन्हें क्राइस्ट नाम कहाँ से प्राप्त हुआ? यह कृष्ण से प्राप्त हुआ। कृष्ण का बांग्ला भाषा में उच्चारण क्रिस्टो हो जाता है। वे उच्चारण करते हैं, जपते है हरे कृष्टो हरे कृष्टो कृष्टो-कृष्टो हरे हरे। उनके अभी तक कृष्टो मुखर्जी, कृष्टोदास प्रचलित है। संस्कृत में न (N) त (T) में बदल जाता है बहुत बार।

टाटा नगर का एक प्रसिद्ध क्षेत्र (बिहार) भारत में Bishtupura कहलाता है। उसका मूल नाम Vishnupura है। विश्व प्रसिद्ध इतिहासकार विल डूरेन्ट कहता है भारत बुद्ध के माध्यम से ईसाई आदर्शों की जननी है। अरबिया भारत का निकटतम

एवं सर्वोत्तम शिष्य रहा है पश्चिम की ओर से। अरब ने भारत से गणित का विज्ञान एवं ज्योतिष शास्त्र सीखा। गिनती अभी भी अरब में हिंदसा (हिन्द से प्राप्त हुई) पुकारी जाती है। एक मजेदार तथ्य है। भारतीय गिनती को अरबी भाषा में हिन्दसा कहते हैं। हिन्दसा अर्थात् हिन्द से प्राप्त। अरबी लिपि दायें से बायें लिखी जाती है किन्तु अरबी में अंक बायें से दायें लिखे जाते हैं। यह भी इस बात का प्रमाण है कि अरबी अंकों की उत्पत्ति अरबी भाषा से नहीं हुई है। वह कहीं से प्राप्त हुई है। वह हिन्द से ही प्राप्त हुई है।

अध्यात्म एवं संस्कृति का दान ही सर्वोत्तम दान है जो एक देश अन्य देशों को दे सकता है। भारत ने सदैव अपनी संस्कृति सुगंधी सारे विश्व को निःस्वार्थ भाव, विश्व मंगल की भावना से, बिना किसी देश के राज्य की स्वाधीनता छीनकर, बिना अर्थ व इज्जत पर डाका डाले बांटी। भारतीय संस्कृति की अरब को देन यह गहरे शोध का विषय है।

इस्तम्बोल (टर्की) के प्रसिद्ध राजकीय पुस्तकालय 'मकतब ए सुलतानि, जिसे वर्तमान में 'मकतब-ए-जमहूरिया' कहते हैं, वह तुर्की का एक विशाल पुस्तकालय है। पुस्तकालय के अरबी भाग में एक दुर्लभ ग्रंथ 'सेरूअल ओकूल' प्राचीन अरबियों का काव्यसंग्रह है। यह संग्रह सन् 1742 में तुर्की के प्रसिद्ध राजा सुलतान सलीम के आदेश पर तैयार हुआ। यह हरीर (एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो ऐसे कामों के लिए ही बनाया जाता था) पर लिखा है और उसका प्रत्येक पृष्ठ सुनहरे बेल-बूटेंदार काम से सजा हुआ है।

इसका प्रथम आधुनिक संस्करण सन् 1864 ई. में बर्लिन से प्रकाशित हुआ था। और दूसरा सन् 1932 व 1963 में बेरूत (फिलिस्तीन) से प्रकाशित हुआ। 1963 में बगदाद से प्रकाशित हुआ। मैंने इस नये संस्करण को बगदाद में पाया, जब मैं बगदाद विश्वविद्यालय में Lecture Tour में गया था। इस अरबी काव्य का संग्रहकर्ता अबू आमिर अब्दुल असमई है, जो इस्लाम के प्रसिद्ध राजा खलीफा हारूरशीद का दरबारी कवि था। हारूरशीद अरबी काव्य का कालिदास के समान सम्मानित है। यह महान् ग्रंथ तीन विभागों में विभक्त है।

1. इस्लाम के पूर्व के कवि व उनकी कवितायें।
2. मुहम्मद साहब के प्रारम्भिक काल से लेकर बनी उम्मय्या कुल के अन्त तक के कवियों का वर्णन है।
3. तीसरे भाग में बनी अब्बास कुल के आरम्भ से प्रसिद्ध राजा खलीफा हारूरशीद के दरबारी कवियों अर्थात् लेखक ने अपने समय तक के कवियों का वर्णन कर दिया है।

इस पुस्तक में प्राचीन अरब की धार्मिक, सामाजिक परम्पराओं पर प्रकाश डाला गया है। इसमें मुख्य रूप से मक्का को सबसे बड़े मन्दिर एवं सबसे बड़े भगवान महादेव के रूप में वर्णित किया गया है। यहाँ शिवरात्रि के अवसर पर लगने वाले वार्षिक मेले को 'ओकाज' कहा जाता था। इस मेले में विशाल कवि-सम्मेलन हुआ करता था, जिसमें सर्वप्रथम कवि की कविता को सोने के पतरे पर अंकित कर मन्दिर के अन्दर लटका दिया जाता था। अन्य श्रेणी की कवितायें ऊँट की झिल्ली या भेड़-बकरी के चमड़े पर लिखकर मन्दिर के बाह्य भाग में टांग दी जाती थी। इस प्रकार अरबी साहित्य का अमूल्य साहित्य धन हजारों वर्षों से मन्दिर में एकत्रित होता चला आता था। पता नहीं यह प्रथा कब से प्रारम्भ हुई थी। परन्तु हजरत मुहम्मद साहब के जन्म से 23-24 सौ वर्ष पुरानी कवितायें उक्त मन्दिर में प्रस्तुत थीं।

किन्तु मक्का इस्लामी सेना के द्वारा जब नष्ट की जा रही थी, उस समय हजरत मुहम्मद का दरबारी कवि हस्सान-बिन-साबिक भी था। उसने कुछ रचनायें अपने पास सुरक्षित कर ली थी। इसकी तीसरी पीढ़ी के समय हारूरशीद जैसे साहित्यिक खलीफा का काल था। लाभ की आशा से ये पतरे लेकर वह कवि-वंशज मदीने से बगदाद जाकर लेखक अबू-आमिर-अब्दुल असमई से मिला। उसे प्रयत्नस्वरूप अच्छा पारितोषिक दिया गया। इसमें पाँच सोने के पत्र थे और 16 चमड़े के।

इन पत्रों से प्रेरित होकर खलीफा ने लेखक अबू-आमिर को एक ऐसा ग्रंथ लिखने की आज्ञा दी जिसमें अरब के तमाम कवियों के जीवन और काव्य कला का वर्णन हो। इस प्रकार जो संग्रह प्रस्तुत किया गया था उसमें से एक कविता पाठकों की जानकारी के लिए उद्धृत करते हैं।

हजरत मुहम्मद से एक सौ पैंसठ वर्ष पूर्व बिनतोई नामक कवि हो गया है। जो 'ओकाज' के कवि-सम्मेलन में लगातार तीन वर्ष सर्वप्रथम आता रहा। उसकी तीनों उक्त कवितायें सोने के पतरों पर अंकित होकर मन्दिर में लटकाई गयी थी। इससे यह स्पष्ट है कि वह बहुत प्रतिभासम्पन्न था। उसकी कविता का उदाहरण यह है—

राजा विक्रमादित्य की स्तुति

6 पंक्तियों में जो कवि कहता है उसका भाव यह है—वे लोग धन्य हैं जो राजा विक्रम के राज्यकाल में उत्पन्न हुए जो बड़ा दानी, धर्मात्मा और प्रजापालक था। परन्तु ऐसे समय हमारा अरब ईश्वर को भूलकर भोग-विलास में लिप्त था। छल-कपट को ही लोगों ने सबसे बड़ा गुण मान रखा था। हमारा देश (अरब)

अविद्या में, अन्धकार की चपेट में था। जैसे बकरी का बच्चा भेड़िये के पंजे में फंसकर छटपटाता है, छूट नहीं सकता ऐसे ही हमारी जाति मूर्खता के पंजे में फंसी हुई थी। संसार के व्यवहार को अविद्या के कारण हम भूल चुके थे। सारे देश में अमावस्या की रात्रि की तरह अंधकार फैला हुआ था। परन्तु उसने हम विदेशियों को भी अपनी दया दृष्टि से वंचित नहीं किया और पवित्र धर्म का संदेश देकर अपनी जाति के दो विद्वानों को यहाँ भेजा जो हमारे देश में सूर्य की तरह चमकते थे। जिन महापुरुषों की कृपा से हमने भुलाये हुए ईश्वर और उनके पवित्र ज्ञान को जाना और सत्पथगामी हुए, वे लोग राजा विक्रमादित्य की आज्ञा से हमारे देश में विद्या और धर्म के प्रचार के लिए आये थे। (Vikrama Smriti Granth; Published by Scindia Oriental Institute, Vikram University, Ujjain; Price : 100 Rs. P 157-58.)

वेदों की स्तुति

उसी प्राचीन अरबी ग्रंथावली सेरूअल ओकल के पृष्ठ 257 पर एक अन्य महत्त्वपूर्ण कविता है। इसका रचयिता लबी बिन-ए अख्तव बिन-ए तुरफा है। यह पैगम्बर मुहम्मद से 2300 वर्ष पूर्व यानी ईसा से 1800 वर्ष पूर्व है और वेदों की अनूठी प्रशंसा की है। यह तथ्य है कि वेद ही एकमात्र पुस्तकें थी जिनके प्रति 1800 ई. पूर्व भी अरब लोगों ने अपनी अनन्य निष्ठा व्यक्त की है। कविता का भाव इस प्रकार है—

1. हे हिन्द की पुण्य भूमिः! तू धन्य है क्योंकि ईश्वर ने अपने ज्ञान के लिए तुझको चुना।
2. वह ईश्वर का ज्ञान प्रकाश जो चार स्तम्भों के सदृश सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है। ये भारतवर्ष में ऋषियों द्वारा चार रूप में प्रकट हुए।
3. परमात्मा समस्त संसार के मनुष्यों को आज्ञा देता है कि वेद, जो मेरा ज्ञान है, के अनुसार आचरण करो।
4. वह ज्ञान के भण्डार साम और यजुर् हैं जो ईश्वर ने प्रदान किये। इसलिए हे मेरे भाइयो! इनको मानो क्योंकि ये हमें मोक्ष का मार्ग बतलाते हैं।
5. दो उनमें से रिक् अतर् (ऋग्वेद और अथर्ववेद) हैं जो हमको भ्रातृत्व की शिक्षा देते हैं, और जो इनकी शरण में आ गया वह कभी अन्धकार को प्राप्त नहीं होता।

शिव स्तुति

स्वयं मुहम्मद पैगम्बर के चाचा उमर बिन-ए-हश्शाम, जिनका उपनाम अबुल हिक्म (अर्थात् ज्ञान का पिता), जिसको द्वेष या पक्षपात के कारण बदलकर

मुसलमानों में 'अबूजिहल' (अर्थात् अज्ञान का पिता) कर दिया। जिन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षार्थ अपने प्राण भी गंवाये। उनकी सुप्रसिद्ध कविता सेरूअल-ओकल काव्य ग्रंथ के पृष्ठ 235 पर अंकित है। नयी दिल्ली स्थित लक्ष्मीनारायण मन्दिर की वाटिका में लाल पत्थर के स्तम्भ पर लिखी हुई कविता इस प्रकार है, जिसका भाव यह है—

1. वह मनुष्य जिसने सारा जीवन पाप व अधर्म में बिताया हो, काम, क्रोध में अपने यौवन को नष्ट किया हो;
2. यदि अन्त में उसको पश्चात्ताप है और भलाई की ओर लौटना चाहे तो क्या उसका कल्याण हो सकता है?
3. एक बार भी सच्चे हृदय से वह महादेव जी की पूजा करे तो धर्म-मार्ग में उच्च से उच्च पद को पा सकता है।
4. हे प्रभु! मेरा समस्त जीवन लेकर केवल एक दिन हिन्द का निवास दे दो क्योंकि वहाँ पहुंचकर मनुष्य जीवन-मुक्त हो जाता है।
5. वहाँ की यात्रा से सारे शुभकर्मों की प्राप्ति होती है और आदर्श गुरुजनों का सत्संग मिलता है।

ऊपर दी गयी दोनों अरबी कवितायें इस्लाम पूर्व समय के अरेबिया में सर्वोत्तम पुरस्कार-विजेता तथा मूल्यवान थीं और काबा देवालय के भीतर स्वर्णाक्षरों में उत्कीर्ण होकर टंगी हुई थी।

भगवान कृष्ण की स्तुति

अरब का एक और प्राचीन कवि जरहम-बिन-ताइ, जो हजरत मुहम्मद साहब से प्रायः सौ वर्ष पहले हुआ था, अपनी एक कविता में, जो कुस्तुनिया के सुल्तानिया पुस्तकालय में चमड़े पर लिखी हुई अब तक मौजूद है, में कहता है—

कृष्ण लीला का वर्णन

हे प्रभु! तुमने संसार के लिए बारम्बार अवतार धारण किया है, उस समय जबकि संसार पीड़ित था और पापियों ने पृथ्वी पर अधिकार जमा रखा था, हे प्रभु! जैसा तुम स्वयं अपने ग्रंथ में उपदेश करते हो कि जब-जब धर्म का हनन होता है और पाप की वृद्धि होती है तब-तब भक्तों का उद्धार करने और पापियों को दण्ड देने के निमित्त मैं जन्म लेता हूँ। हे प्रभु! धन्य है वह नगर जहाँ आपने जन्म लिया और धन्य है वह मैदान जो आपका क्रीडास्थल था और जहाँ गऊओं को चराते हुए अपने बाल सखाओं के साथ आनन्द मनाते थे। यह तुम्हारा श्याम वर्ण मुख और सुन्दर मूर्ति जो कोई देखता तो ऐसा जान पड़ता कि मानो स्वयं सुन्दरता

ने मनुष्य का रूप धारण किया है और जब तुम बांसुरी बजाने लगते और उसकी ध्वनि आकाश में गूंजने लगती तो स्त्रियों का घर में रहना और मर्दों का काम करना मुश्किल हो जाता था, गर्भ के बच्चे तक घूमने लगते। स्त्रियाँ अपने गोद तक के बच्चों को दूध पिलाना भूल जाती और अपने पतियों की सेवा छोड़कर पतंगे के समान तुम्हारे मुखचन्द्र पर निछावर होने को तैयार हो जाती। प्रभु! तुम पीताम्बर धारण किये हो, हाथ में बंशी हो, सिर पर मुकुट और कानों में कुण्डल हो, ऐसे रूप का मुझे दर्शन दो। प्रभु, तुमने स्वर्ग की अप्सरा का उद्धार किया और पहाड़ को उंगली पर उठाया, ऐसे ही मेरा भी उद्धार करो।

इस प्रकार की चौसठ कवितायें अब तक प्राप्त हुई हैं जिनमें ऐसी ही चामत्कारिक बातों का वर्णन किया गया है। इन कविताओं से पूर्णतया सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन अरब निवासी हिन्दू धर्म को मानने वाले और आर्य सभ्यता के अनुयायी थे।

वर्तमान में परिवर्तित रूप में शिव पूजा

पुस्तक सेरूअल ओकुल स्पष्ट रूप से वर्णन करती है कि काबा के केन्द्र में एक विशाल काला पत्थर स्थापित है जिसे महादेव कहा जाता था। उसकी पूजा खजूर की पत्तियों व जमजम के जल से की जाती है। इर्द-गिर्द चारों तरफ कुछ देवता थे। पुजारी कुरैशी थे। हजरत मुहम्मद स्वयं कुरैशी वंश के थे पर वे पढ़े-लिखे नहीं थे। ऊँटों को चराया करते थे। पुजारियों ने उनकी भेंट का हिस्सा नहीं दिया उससे मुहम्मद उन पर उत्तेजित हुए और उन्होंने मूर्तियों को तोड़ने की घोषणा की। मैक्समूलर का कहना है कि बुद्ध शब्द से अरबी का बुत शब्द बना है। मूर्ति के लिए बुत कहते हैं वह बुद्ध से ही बन गया। इर्द-गिर्द बाहर की परिक्रमा में 360 देवताओं का स्थान बना हुआ है। इसमें नवग्रह थे और गणेश, दुर्गा की, देवियों की मूर्तियाँ बनी हुई थी। बोधिसत्त्व की मूर्तियाँ थी, बुद्ध की मूर्तियाँ थी....

जब हजरत मुहम्मद ने मूर्तियाँ तोड़ने की घोषणा की तो वहाँ के पुजारियों ने उसका प्रतिरोध किया तो मुहम्मद मक्का छोड़कर मदीना में चले गये। जब उन्होंने आक्रमण के लिए पर्याप्त शक्ति संग्रह कर ली और मक्का पर आक्रमण किया और महादेव से प्रार्थना की—यदि उसने मक्का पर विजय प्राप्त की तो 360 देवों को तो तोड़ दूंगा पर आपको नहीं। आपका चुम्बन करूंगा, आपको प्रणाम करूंगा और खजूर की पत्तियों और जमजम के जल से आपकी पूजा करूंगा। जब वे विजयी हुए क्योंकि रात्रि को आक्रमण किया, तब उन्होंने उसका चुम्बन किया, प्रणाम किया व काले पत्थर की पूजा की। आठ बार नमस्कार किया वह नमाज बन गया। काला पत्थर संगेअस्वद कहा जाने लगा। अस्वद शब्द संस्कृत के अश्वेत शब्द से निकला है। ईदगाह शब्द संस्कृत के ईड़ा से बना है। संस्कृत का शब्द शिवरात्रि शबे

बारात में बदल गया। शिव रात्रि यानी शिव की बारात वाली रात्रि। शंकर के मस्तिष्क की शशि कला से ही नया चन्द्रमा अरब एवं मुस्लिम राष्ट्रों का ध्वजचिह्न बन गया।

उनका Lunar कैलेंडर भी शिव पूजा से प्रभावित है। वे दिन की गणना एक सूर्यास्त से दूसरे सूर्यास्त में करते हैं, जब चन्द्रमा उदित हो जाता है। इनका ईद उत्सव भी चन्द्रमा से प्रभावित है। मक्का शब्द भी मखः, जिसका अर्थ यज्ञ से है, से निकला है। Alla and Akka शब्द वैदिक शब्द हैं ईश्वर के लिए। हज यात्रा में सिर मुण्डन कर स्नान कर नये बिना सिले हुए सफेद वस्त्र यानी नीचे धोती बिना लांग की, ऊपर चद्दर धारण करना, उस अवस्था में हिंसा निषिद्ध है। (नये वस्त्र धारण करने के पश्चात् हिंसा करना महापाप समझा जाता है। जब तक यह वस्त्र शरीर पर रहता है वे किसी पशु-पक्षी को भी नहीं मारते। यह सिद्धान्त इस बात का सूचक है कि हजरत पर आर्य सभ्यता के प्रमुख सिद्धान्त अहिंसा का प्रभाव कुछ न कुछ अवश्य ही पड़ा था, क्योंकि सेमेटिक संस्कृति में हिंसा और अहिंसा का कोई विचार ही नहीं किया गया है वरन् ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए हिंसा को ही एक मुख्य कर्म समझा गया है। यदि हजरत मुहम्मद साहब पर आर्य सभ्यता का प्रभाव न पड़ा होता तो वे अहिंसा सिद्धान्त को अल्पकाल के लिए भी न अपनाते। फिर काबा मन्दिर की सात परिक्रमा करना ये सब स्पष्टतः वैदिक पद्धति है पूजन की।

विद्वानों का मत है कि 'काबा' शब्द काव्य से निकला है। यह असुरों के कविगुरु शुक्राचार्य का नाम व उपाधि है। दो प्रकार से शिवपूजन करने की विधि प्रचलित है—

1. सात्त्विक भाव से दिव्य गुणों व भावों को जीवन में पाने के लिए सोमवार को शिवपूजन करते हैं जैसा कि शंकराचार्य, मार्कण्डेय जी करते हैं।
2. आसुरी भाव से अपने अहं एवं दम्भ, धन-ऐश्वर्य की परिपूर्ति के लिए शिव पूजन करते हैं शुक्रवार को। जैसा कि रावण, त्रिपुरासुर, भस्मासुर आदि के जीवन में पाते हैं। असुर भाव से शिवपूजन के कारण असुर गुरु शुक्राचार्य के शुक्रवार को विशेष जुमा (समूह) की नमाज अदा करते हैं।

बगदाद में गुरु नानकदेव का स्मारक

बगदाद (इराक की राजधानी) में गुरु नानकदेव का 917 हिजरी का स्मारक लेखक ने देखा है जिस पर पुरानी तुर्की मिश्रित अरबी भाषा में एक शिलालेख इस प्रकार है—

कोरद मुराद एलदी

हजरत रबें मजीद
बाबा नानक फकीर औलिया
कि इमारत जदीद।
यलयदा मिला दायद
व बकल्दी कि तारीखन
याय दी सबाबे इजराईल
अज मरीदे सईद (सन् 917)

इराक के राजकुमार मुराद ने सन् 917 हिजरी में हजरत रब्रे मजीद (पवित्र महान् प्रभु) बाबा नानक फकीर औलिया (सर्वज्ञानी) की उस पुरानी इमारत को, जहाँ गुरु नानक ने राजकुमार बहलोल को उपदेश दिया था, स्वयं नया बनवा दिया ताकि इतिहास की याद बनी रहे तथा गुरु नानक के विशेष शिष्य को ईश्वरीय पुण्य लाभ हो सके। भारत के महान् पुरुष की, जो भगवान की तरह सम्मानित है, तब भारत के विषय में क्या कहना जो आध्यात्मिक महापुरुषों की खान है जिस तरह राम और कृष्ण, बुद्ध और महावीर, शंकराचार्य और नागार्जुन, अशोक और हर्ष, नानक और कबीर, विवेकानन्द, रामतीर्थ, महर्षि रमण, शिवानन्द, अरविन्द, टैगोर और आनन्द कुमार स्वामी।

स्वस्थ पोषण व प्रकाश प्रदान करें, इस महान् परम्परा द्वारा मनुष्य की रक्षा करें व मानवता को नेतृत्व देवें, सही दिशा में सही प्रकाश देकर।

भारतीय कौन ?

उठे जहाँ भी घोष शान्ति का भारत स्वर तेरा है,
धर्म दीप हो जिसके भी कर में वह नर तेरा है।

—दिनकर

× × ×

जिस प्रकार मिस्र, बेबीलोनिया या असीरिया को कोई समाप्त कर सकता है, भारत का इतिहास उस प्रकार समाप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह इतिहास अब भी निर्मित हो रहा है, वह सभ्यता अब भी रची जा रही है।

—विल ड्यूरेन्ट

अरब देश पर भारतीय प्रभाव

यह जो मध्यपूर्व में अरब देश है इसकी कहानी भी निराली है। वहाँ मुझे बगदाद विश्वविद्यालय में भाषण करने का अवसर मिला। उसमें तीन हजार वर्ष पूर्व आकाश से एक तारा गिरा। तारा प्रायः बहुत दूर से गिरता है। आकाश बहुत बड़ा है। भूमण्डल बहुत छोटा है। सूर्य के सामने धरती ऐसी है जैसे सारे कलकत्ता को फुटबाल बना लिया जाय और उसके सामने एक धूलि का कण हो। इतनी छोटी ऐसी हमारी धरती है, सूर्य के सामने। लाखों गुणा बड़ा सूर्य है। सूर्य से लाखों गुणा बड़े और तारे महासूर्य हैं, ढाई अरब तारे दिखने वाले और असंख्य अरबों न दिखने वाले। सबको मिलाकर विशाल ब्रह्माण्ड है। इस ब्रह्माण्ड से कोई चीज गिरे तो उसका अता-पता, उसका टुकड़ा धरती पर गिरे यह बहुत कम होता है। हजारों सालों में कभी होता है। इटली में लगभग 5-6 मील की दूरी में गिरे हुए आकाश से तारे के टुकड़े को उन्होंने सुरक्षित रखा हुआ है। झांसी के पास लगभग आधा मील लम्बा-चौड़ा टुकड़ा यहाँ भी सुरक्षित रखा हुआ है। ऐसा एक टुकड़ा गिरा अरब में।

लावा जो था अर्ध गोलाकार लिंग बन गया। काले रंग का था। उसको कहने लगे संगे अस्वद। संग का अर्थ है पत्थर। अस्वद का अर्थ है काला। उसको स्वयम् लिंग कहा जाने लगा। स्वयम् लिंग, स्वयं बनने वाला लिंग मानकर उसकी पूजा शुरू हुई।

पूजा कैसे की जाती है। वहाँ बेल पत्र मिलते नहीं इसलिए खजूर की पत्तियों और आबेजमजम वहाँ एक पानी का झरना है। रेगिस्तान में पानी बहुत कम मिलता है। जहाँ मिलता है तो वह बहुत साफ होता है। क्योंकि रेत पानी को बहुत साफ करती है। बहुत साफ पानी। उनका विश्वास है कि उस जल में कीड़े नहीं पड़ते जैसे गंगाजल में नहीं पड़ते। उस आबेजमजम के पानी से और खजूर की पत्तियों से अभिषेक, उसकी पूजा की जाती है।

पूजा को कहते हैं इड़ा। इड़ा शब्द जो है वैदिक संस्कृति का है। ओम अग्नि इड़े पुरोहितम् वेद का प्रथम मंत्र है। उसकी इड़ा करते थे। उसको महादेव बोलते थे और उसकी परिक्रमा करते थे।

और जो पुजारी थे वे कुरैशी। हजरत साहब खुद कुरैशी खानदान के थे। पर पढ़े-लिखे नहीं थे। इनके जीवनी लेखकों का कहना है कि वे अशिक्षित थे। मिर्गी के दौरे पड़ते थे। इसलिए पढ़े-लिखे नहीं थे। एक अनपढ़ ऊँट चराने वाले रहे हैं।

बीच में महादेव थे। इर्द-गिर्द चारों तरफ 360 देवता थे। उनके स्थान बने हुए थे। हमने स्थान को देखा। हमने बगदाद विश्वविद्यालय में पढ़ाया है। कुछ आंखों देखी बातें बता रहे हैं। इर्द-गिर्द बाहर की परिक्रमा में 360 देवताओं का स्थान बना हुआ है। इसमें नवग्रह थे, इसमें दुर्गा की, देवियों की मूर्तिया बनी हुई थी। बोधिसत्त्व की मूर्तिया थी, बुद्ध की मूर्तियाँ थी। मैक्समूलर का कहना है बुद्ध शब्द से अरबी का बुत शब्द बना है। मूर्ति के लिए बुत कहते हैं वह बुद्ध से ही बन गया।

शिव की मूर्ति एक पर्वताकार पत्थर का लिंग है। जो चित्र देखते हैं चित्र में चारों ओर एक Brown रंग कोलायन रंग का शार्टिंग का कपड़ा चढ़ा रहता है। प्रतिवर्ष एक-एक मुस्लिम देश उसके लिए शार्टिंग देता है। उसमें सुनहरी झालर की डेकोरेशन की जाती है। उसको चारों ओर ढका जाता है पर्दे की तरह, ताकि किसी काफिर की नजर न पड़ जाये। उन्हें भय है कि गैर-मुस्लिम की नजर पड़ जायेगी तो इस्लाम का खात्मा हो जायेगा। इसलिए उसे ढक कर रखते हैं। अतः ढकने वाला बाहर का कपड़ा आपको चोरस दिखाई देता है। आपको चित्र में उसके अन्दर का लिंग दिखाई नहीं देता। यह लगभग 50-52 फुट ऊँचा तो जरूर होगा।

भारत से मुझे दिव्य सुगंधी प्राप्त होती है।

—पैगम्बर मुहम्मद

× × ×

'समस्त संसार आलोक चाहता है। वह प्रतीक्षा में है। केवल भारत के पास है वह आलोक, जादू का, टोने का, या ओझा का नहीं, किन्तु सच्चे धर्म के भाव की महिमाओं की शिक्षा का सर्वोच्च अध्यात्मिक तत्त्व का है। इसीलिए तो भगवान् ने इस प्रजाति को आज तक समस्त सुख-दुःख में होकर जीवित रखा है। वह समय अब आ गया है।'

—स्वामी विवेकानन्द

विश्व इतिहास के चार पर्दे

प्रथम पर्दा

महात्मा ईसा के प्रति सबसे उत्तम श्रद्धांजलि उनके प्रति विवेक के पुष्पों की सुमनांजलि समर्पित करना ही है। मात्र अंधश्रद्धा पर आधारित कल्पना एवं रूढ़ियों के प्रचलित किस्से एवं रीति-रिवाज विवेक की कसौटी अथवा इतिहास के निकष पर झूठे सिद्ध हो जाते हैं। इसलिये झूठे फूलों से अपने इष्टदेवता की पूजा करना इष्टदेवता का मान न होकर अपमान ही है।

संसार के अनेक पश्चिमी देशों में मेरे अनेक ईसाई मित्र हैं। उनमें से अनेक पादरी, प्राध्यापक, विश्वविद्यालयों के कुलपति, पत्रकार एवं लेखक आदि हैं। उनमें से अनेकों के घरों में उनका आतिथ्य स्वीकार कर मैंने पश्चिम के विश्वविद्यालयों में व्याख्यान दिये हैं किन्तु मेरे विवेकपूर्ण विचारों को उन्होंने बड़ी सहृदयता के साथ ग्रहण किया है, चाहे इससे उनके चर्च द्वारा प्रसारित कल्पित विश्वास मेल न खाते हों। परंपरा के अनुसार वे मुझे विदेशों से क्रिसमस का अभिवादन भेजते रहते हैं और मैं भी उनके अभिवादन का प्रत्युत्तर अभिवादन से देता रहता हूँ। किन्तु विवेक की वाणी तथ्यों एवं शुद्ध विचारों को प्रकट करने के लिये सदा आग्रह करती रहती है। अतः अपने प्यारे ईसा को हम विवेक की पुष्पांजलि चढ़ाकर अपनी पूजा समर्पित करते हैं।

ईसा की ऐतिहासिकता

कुछ इतिहासकार एवं दार्शनिक यह विवाद खड़ा करते हैं कि क्या ईसा मसीह नामक कोई व्यक्ति इतिहास में हुआ या नहीं? बर्टन रसेल ईसा के ऐतिहासिक अस्तित्व में ही संदेह करते हैं। ईसा के जीवन के विषय में यहूदी साहित्य में कोई विशेष उल्लेख नहीं है। ईसा के शिष्य मार्क और मैथ्यू ने 60 ई. और 80 ई. के बीच सुसमाचार लिखे। शिष्य ल्यूक (Luke) और जोन ने 80 ई. और 100 ई. के बीच सुसमाचार लिखे। न्यू टेस्टामेण्ट के 26 अध्यायों में केवल यही चार ईसा के जीवन के विषय में है। जिन पर सारी ईसाईयत टिकी हुई है। यदि ये समाचार लेखक सच्चे हैं तो ईसा का लिखित जीवन सच्चा है अन्यथा नहीं।

विस्मय की बात यह है कि इन चारों में से कोई भी ईसा का समकालीन नहीं था। केवल उन्होंने जनश्रुति के आधार पर सुसमाचार लिखे।

फिर इनके लिखित जीवनवृत्त में बहुत बड़ी-बड़ी खाइयाँ भी हैं। ईसा के प्रथम वर्ष का वर्णन करने के बाद फिर वे 12वें वर्ष पर छलांग लगा जाते हैं। बीच के 11 वर्षों का कोई वर्णन नहीं। फिर एक बहुत बड़े कालखण्ड को छोड़कर ईसा के अंतिम दो वर्षों का वर्णन किया जाता है। इस प्रकार ईसा के 85 प्रतिशत जीवनवृत्त का बाइबिल कोई संकेत तक नहीं देती। पुनः इन जीवनी-लेखकों के वर्णनों में परस्पर मतभेद भी बहुत है। यह और भी अचंभे की बात है कि रोम के राजकीय अभिलेखों में ईसा को फांसी देने जैसी महत्त्वपूर्ण एवं रोमांचक घटना का कोई उल्लेख नहीं है। जबकि रोम के लोग प्रत्येक महत्त्वपूर्ण घटना को इतिहास के रूप में लिपिबद्ध करने वाले के रूप में प्रसिद्ध थे। जुड़िया के रोमन गवर्नर Pontius Pilatus ने रोम के सम्राट् Tibrius Caesar को इस विषय में कोई सूचना ही प्रेषित नहीं की। क्योंकि दो चोरों के साथ फांसी चढ़ने वाले बेचारे ईसा के विषय में सूचना देना आवश्यक ही नहीं समझा और रोमन सम्राट् ने भी इतनी दर्दनाक घटना के विषय में कुछ सुना ही नहीं। यदि गवर्नर व्यक्तिगत दूत द्वारा भी संदेश रोम भेजता तब भी स्थल मार्ग या जलमार्ग द्वारा महीने भर में संदेश रोम पहुँच ही जाता। किन्तु इतिहास को विस्मय है कि जिस रोम के शासन में ईसा को सूली पर चढ़ाया गया है उस रोम देश ने सबसे प्रथम सन् 313 ई. में ईसा और ईसाईयत के बारे में जानकारी प्राप्त की, जब रोम का राजा कांस्टेंटाइन (जो पहले सूर्य-पूजक था) ईसाई बना। इन सब तथ्यों से इतिहासकारों को संदेह पैदा होता है कि क्या ईसा वास्तव में ऐतिहासिक पुरुष थे अथवा जनश्रुति अथवा कल्पना के आधार पर माने हुए एक आदर्श नीति-द्रष्टा? मैं स्वयं इस मत का हूँ कि ईसा एक ऐतिहासिक पुरुष अवश्य थे किन्तु जीवनी लेखन में कल्पना, अंधविश्वास एवं विवेकहीन चमत्कार प्रदर्शन का विचित्र सम्मिश्रण हो गया है। इसी प्रकार इंग्लैण्ड के विश्वप्रसिद्ध इतिहासकार अरनाल्ड टॉयनबी (Arnold Toynbee) ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ—A Study of History के पृष्ठ 60 पर लिखा है—'इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि ईसा ईसवी संवत् के प्रथम वर्ष में पैदा हुआ था।' ईसा के प्रथम शती के प्रथम वर्ष में जन्म की यह मान्यता तो ईसवी संवत् की छठी शताब्दी तक प्रचलित भी नहीं हुई थी।

व्यक्तिनिष्ठ धर्म

ईसाईयत एक व्यक्तिनिष्ठ पंथ है। तत्त्वनिष्ठ नहीं है। यह विवेक से विचार करने का बिंदु है कि यदि ईसा की ऐतिहासिकता में ही संदेह पैदा हो जाये तो ईसाईयत का भवन स्वतः ही चरमरा कर गिर जायेगा। ईसाईयत के भवन की नींव ईसा की

जीवनी है, न कि उनके उपदेश। जिन नैतिक सिद्धांतों का ईसा ने उपदेश किया वे सब बौद्ध एवं सनातन हिन्दू धर्मग्रंथों तथा यहूदी धर्मग्रंथों में पहले से ही विद्यमान थे। अतः उन सिद्धांतों को मानकर और ईसा को इतिहासपुरुष न मानकर ईसाईयत एक पग भी नहीं चल सकती। न ईसा के पूर्वज ईसाई थे न स्वयं ईसा ही ईसाई थे। (वह तो यहूदी थे)। केवल उनके अनुयायी ही ईसाई कहलाये। H.G. Wells ने लिखा है—'सारे विश्व में आज तक केवल एक ही सच्चा ईसाई हुआ है जो क्रूस पर मर गया।' उसके मित्र ने टिप्पणी की—'वह भी ईसाई कहाँ था वो भी यहूदी ही था।' इसकी तुलना में यदि कोई तर्कपटु व्यक्ति राम और कृष्ण, मनु और मार्कण्डेय की ऐतिहासिकता के विषय में कितना ही संदेह पैदा करते रहे तब भी हिन्दू धर्म का बाल भी बांका नहीं होता, क्योंकि सच्चा धर्म सिद्धांतनिष्ठ होता है, व्यक्तिनिष्ठ नहीं। ईसा के मरने के सौ साल बाद उसकी जीवनी की कल्पित गाथा लिखने वालों और उस पर सैकड़ों वर्षों से रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के अंबार लगाने वाले धर्मध्वजी लोगों ने कभी यह नहीं सोचा कि ईसा के विश्वव्यापी सिद्धांतों को व्यक्तिनिष्ठ धर्म बनाकर वे स्वयं महात्मा ईसा के साथ ही कितना बड़ा अन्याय कर रहे हैं।

ईसवी कैलेंडर का गोरख-धंधा

ईसाई लोग मानते हैं कि ईसा का जन्म 4 B.C. में हुआ था। जब B.C. का अर्थ ही Before Chirst है तो क्राइस्ट के वास्तविक जन्म से चार वर्ष पहले ईसा का जन्म मानना कितना तर्कहीन प्रतीत होता है। ईसा से 56 वर्ष पहले रोम एवं सारे यूरोप में जूलियस सीजर का शासन था। वहाँ का कैलेंडर जूलियन कैलेंडर कहलाता था। जूलियस सीजर सूर्योपासक था। 313 ई. तक रोमन सम्राट् कान्स्टेंटाइन भी सूर्योपासक ही था। तब तक रोम में जूलियन कैलेंडर ही चलता था और 16 वीं सदी तक भी जूलियन कैलेंडर चलता रहा जिसमें प्रथम मास वसन्त सम्पात का चैत्रमास के समकक्ष मार्च मास ही था जो Mars (मंगलग्रह) के नाम पर था। तब दिसंबर (दस+अम्बर) दसवां मास, नवम्बर (नव+अम्बर), अक्टूबर (अष्ट+ अम्बर) आठवां मास, सेपटेम्बर (सप्त+अम्बर), छठे महीने का नाम हेक्सेम्बर था परंतु उसी मास में सम्राट् अगस्ट का जन्म होने के कारण उसे अगस्त प्रचारित किया गया। पाँचवें महीने का नाम पेंटेम्बर (पंच+अम्बर) उसमें जूलियस सीजर का जन्म होने के कारण जुलाई नाम से प्रचारित किया गया। 1581 ई. में रोम के पोप ग्रेगरी ने वर्ष को 13 मार्च से पीछे खींचकर 1 जनवरी से प्रारंभ करने का राजकीय आदेश निकलवाया जिसका लोगों ने बहुत विरोध किया। उन्होंने पोप का घर जला दिया। पोप को जनआक्रोश से बचने के लिये जंगल में भागना पड़ा। अंत में परेशान होकर उसने आत्महत्या कर ली। उस पोप ग्रेगरी के नाम पर

ग्रेगोनियन कैलेंडर नाम पड़ा। यही ईसाई कैलेंडर है। 16 वीं शताब्दी तक इंग्लैण्ड और अमरीका में दिसंबर को 10 वां मास ही गिना जाता था। सन् 1917 तक रूस और बलकान राज्यों में भी वर्ष का आरंभ मार्च से होकर दिसंबर दसवां मास ही था। बाद में सारे यूरोप की कालगणना में समानता लाने के लिये उन्होंने भी ईसाई संवत् मान लिया।

ईसा के जन्म की ऋतु का निर्णय—प्रश्न है कि क्या ईसा दिसंबर की कड़ाके की सर्दी में पैदा हुए थे। बाइबिल के अंतर्साक्ष्य से विदित होता है कि जब ईसा का जन्म हुआ तो गड़ेरिये अपने भेड़ों के समूह को लेकर रातभर खुले मैदानों में भेड़ों की निगरानी करते रहे (ल्यूक 2/8)। यह फलस्तीन में दिसंबर की कड़ाके की सर्दी में संभव ही प्रतीत नहीं होता। गड़ेरिये पहाड़ों से, अन्य शीत स्थलों से भेड़ों के समूह को 15 अक्टूबर को ले आया करते थे ताकि उन्हें आगामी भयंकर शीत से बचाया जा सके। बाइबिल के सोलोमन (2/11) तथा एजरा (10/9 तथा 13) के गीतों से प्रमाणित होता है कि उस देश में शीत ऋतु वर्षाप्रधान ऋतु थी जिसमें गड़ेरियों का भेड़ों सहित रातभर खुले मैदानों में रखवाली हेतु बैठे रहना संभव ही नहीं हो सकता था। वहाँ की प्रचलित प्राचीन प्रथा कि यहूदी लोग, जो अपनी भेड़ों को वसंतारम्भ के समय मैदानों एवं मरुभूमियों से बाहर ले जाया करते थे, वे वर्षा की प्रथम फुहार के साथ ही वापस घर ले आया करते थे। ऐसा बाइबिल पर एडम क्लार्क Commentary (Adam Clarke Commentary) V.S. पृष्ठ 386 पर वर्णन है। वर्षारंभ अक्टूबर और नवंबर के बीच 15 अक्टूबर से हो जाता था। प्रभु ईसा के जन्म के समय भेड़ें और गड़ेरिये रातभर मैदानों में रहे, यह मार्च से सितंबर के सुहावने समशीतोष्ण में ही हो सकता है। दिसम्बर के भयंकर शीत में कभी नहीं। इस प्रकार 25 दिसम्बर को क्रिसमस यानी ईसा की जयंती मानना इतिहास, भूगोल, प्रकृति और परंपरा सभी का तिरस्कार है।

क्रिसमस के विषय में पश्चिमी विद्वानों एवं विश्वकोशों का मत—Catholic encyclopedia स्पष्ट कहता है कि ईसा की वास्तविक जन्मतिथि ज्ञात नहीं है। न्यू टेस्टामेण्ट में 25 दिसंबर के जन्म का कोई संकेत नहीं है। संतपाल ने एक भविष्यवाणी की थी कि 25 दिसंबर को ईसा की जन्मतिथि मनाने का विचार कोरी कल्पना है, जो भविष्य में दुनिया को धोखे में डाल देगी।

Encyclopedia Britannica का कथन है कि क्रिसमस चर्च के सर्वप्रथम उत्सवों में नहीं था। इसका चलन न ईसा ने प्रारंभ किया, न ईसा के शिष्य-संतों ने। यह तो बाद में Paganism (गैर-ईसाई सूर्यपूजकों) से उधार ले लिया गया। Encyclopedia अमरीका का कथन है—ईसाई चर्च की प्रारंभिक शताब्दियों में क्रिसमस कभी नहीं मनायी गयी। क्योंकि ईसाई प्रथा महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के

मृत्युदिवस मनाने की थी, न कि उनके जन्म दिवस। पाँचवीं शताब्दी में पश्चिमी चर्च ने आदेश दिया कि प्राचीन रोम के नवसूर्य के जन्म एवं पूजा दिवस 25 दिसम्बर को ही ईसा के जन्मदिवस के रूप में मनाया जाय क्योंकि ईसा का वास्तविक जन्म दिवस ज्ञात नहीं है।

Schlaff Harzog Encyclopedia ने स्पष्ट लिखा है कि क्रिसमस उत्सव रोम में सूर्यपूजा के सबसे छोटे दिवस 24 दिसंबर के पश्चात् नये सूर्य के उदय की पूजा के पर्व 25 दिसंबर से ही लिया गया है।

Edwin Bevan ने अपनी पुस्तक Christianity in the Light of Mordern knowledge पृ. 103 पर लिखा है—इस बात में कोई संदेह नहीं है कि चर्च ने मित्रपूजा (सूर्य पूजा) के धर्म से ही 25 दिसंबर (सूर्य के जन्मोत्सव) के दिन को क्रिसमस का उत्सव नियत करने का विचार उधार लिया।

डॉ. राधाकृष्णन ने भी अपने ग्रंथ Recovery of Faith में इस उक्ति को उद्धृत किया है—प्रारम्भ में पश्चिम एवं मध्य-पूर्व के ईसाई प्रचारकों ने ईसा के जन्म सम्बन्धी इस मनगढ़न्त उत्सव का तीव्र विरोध किया। मेसोपोटामिया के ईसाइयों ने रोम के ईसाइयों पर आरोप लगाया कि वे ही मित्रपूजकों के मूर्तिपूजा एवं सूर्यपूजा का पाप कर रहे हैं।

ईसाईयत पर सूर्यपूजा का प्रभाव—यह इतिहास से प्रमाणित है कि ईसाईयत के प्रवेश (चौथी शती) से पहले सारे यूरोप में सूर्य पूजा चलती थी। रोम में उस युग का सबसे बड़ा सूर्य मंदिर था। जिसे आदित्यालय कहा जाता था। उसी आदित्यालय से दित्यालय, इतालय, इतालिया होते हुए पूरे इटली देश का नाम इतालिया रूढ़ हो गया।

यूरोप में प्रवेश से पूर्व बाइबिल से समर्थित शनिवार ही साप्ताहिक प्रार्थना का दिवस नियत था। सूर्यपूजकों को ठगने के लिये ईसाई पादरियों ने सूर्य के दिन रविवार को सूर्य मंदिरों में घुसकर ईसाईयत का प्रचार प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे सूर्य मंदिरों को ही रूपांतरित कर गिरजाघर बना दिया गया तथा रविवार ही साप्ताहिक प्रार्थना दिवस रूढ़ हो गया। सूर्यपूजकों का वर्ष का सबसे बड़ा महोत्सव 25 दिसम्बर का सूर्यपूजा महोत्सव था जो 18 सौ वर्ष पूर्व रोम में प्रचलित मकर संक्रांति पर्व ही था। सबसे छोटे दिन के पश्चात् मकर संक्रांति के नये सूर्य पर Birth of Sun God (सूर्य देवता का जन्म उत्सव) बड़े उत्साह से खान-पान एवं मोद-मंगल के साथ मनाया जाता था। रोमन लोगों को यह उत्सव अत्यंत प्रिय था। अतः पाँचवीं शती में इसी उत्सव को Birthday of the Son of God अर्थात् खुदा के पुत्र का जन्म दिवस कहकर प्रचारित किया जाने लगा।

अमरीका से प्रकाशित प्लेन ट्रूथ Plain Truth के अनुसार क्रिसमस ट्री

(Chrismas Tree) की प्रथा बेबीलोनिया से उधार ली गई है। हजरत नूह का बेटा हाम था। जिसके पोते ने Tower of Bubel प्राचीन बेबीलोनिया, प्राचीन निम्वे Ninebeh तथा बहुत से नगर स्थापित किये। वह भौतिक समृद्धि वाला राजा नास्तिक एवं दुराचारी था। उसने अपनी ही माता समीरा मिस Semira Mis से विवाह कर लिया। निमरोध की आकस्मिक मृत्यु के पश्चात् समीरा मिस ने प्रचारित किया कि निमरोध एक प्रेतात्मा बन गया है जिसके प्रभाव से सूखे हुए वृक्ष का ठूंठ रातोरात हरा हो गया। प्रतिवर्ष उनके जन्मदिन पर वह उस वृक्ष में प्रवेश करता है तथा बहुत से उपहार वृक्ष की टहनियों पर लटकाकर चला जाता है। संयोगवशात् निमरोध का जन्म भी 25 दिसंबर माना जाता था। कैथोलिक Tract Service मैंगगो (कर्नाटक) द्वारा प्रकाशित Truth about Chrismas के अनुसार पापी निमरोध के पुनर्जन्म का प्रतीक है Chrismas Tree। रोम के लोगों ने प्रचारित कर दिया है। एक बनावटी वृक्ष घर-घर में सजा दिया जाता है जिस पर मिठाइयाँ, टाफियाँ लटका दी जाती हैं। जिसे बच्चे ईसा का उपहार मानकर खाते हैं। बेबीलोनिया के मूर्तिपूजकों ने निमरोध को Sun of Baal सूर्य का पुत्र कहकर प्रचारित किया। वे समीरा मिस और निमरोध को माँ और पुत्र के रूप में उसकी मूर्तियाँ बनाकर वृक्ष के आगे रखकर पूजते थे। उसी परंपरा को ईसाई संसार में क्रिसमस वृक्ष के आगे मरियम और ईसा की मूर्ति पूजा के रूप में देखा जाता है। मिस्र देश में भी 25 दिसंबर को Isis (स्वर्ग की माता) के पुत्र सूर्य का जन्मोत्सव मनाया जाता था।

अमरीका के एक विद्वान् ने विगत 20 वर्षों से घोषणा कर रखी है कि बाइबिल साप्ताहिक पूजा-प्रार्थना शनिवार के स्थान पर रविवार को करने का आदेश देती है जो यह सिद्ध करेगा उसे 20000 डालर नगद, पुरस्कार दिया जायेगा। मैंने 10 हजार रुपये नगद पुरस्कार उस व्यक्ति को देने की घोषणा कर रखी है जो इतिहास से यह सिद्ध कर दे :

क. ईसा का जन्म 25 दिसंबर को हुआ था।

ख. ईसा के जन्म के पश्चात् प्रथम 2-3 शताब्दियों में कभी क्रिसमस महोत्सव मनाया गया।

ग. क्रिसमस का मूलस्रोत सूर्यपूजकों के प्राचीन मकर संक्रांति पर्व के अतिरिक्त कोई भी बाइबिल में वर्णित अन्य आधार है।

ईसा के चित्रों के मुखमण्डल के पीछे का ज्योतिमण्डल वास्तव में सूर्य का बिम्ब ही है। सप्ताह की शुरुआत रविवार से करना भी सूर्यपूजा का ही प्रभाव है। जिस प्रकार मकर संक्रांति पर तिल और गुड़, नयी फसल के अनाज के खील (लाई) आदि मित्रों को भेंट किये जाते हैं वैसी ही प्रथा रोम में थी जहाँ खजूर,

अंजीर, मेवे, भुने हुए अन्न, मधु आदि परस्पर भेंट किये जाते थे। आज तक क्रिसमस के अवसर पर मित्रों के मिलने का परस्पर अभिवादन-अभिनंदन करने और क्रिसमस उपहार बांटने की प्रथा चली आ रही है। रोम में बाल-रवि की छोटे से बालक के रूप में मूर्ति बनाकर भी पूजी जाती थी। ईसा की शिशु रूप मूर्तियाँ उसी की अनुकृति है। सूर्य संसार की महान ज्योति है। ईसा को दिव्य ज्योति, पवित्र ज्योति, विश्व ज्योति कहकर प्रचारित किया गया। महाज्योति सूर्य को दीपक और अगरबत्ती दिखाकर पूजा की जाती थी। इसी से सूर्य को दीपक दिखाना मुहावरा चला। रोमन कैथोलिक मंदिरों में ईसा की मोमबत्तियों एवं अगरबत्तियों से पूजा चल रही है।

ईसा के मानस पर भारतीय प्रभाव

यह निम्न बिंदुओं में दर्शाया जा सकता है—

1. ईसा के पूर्व मध्य-पूर्व देशों में भारतीय प्रचारक।
2. ईसा के देश में भारतीय आर्यों का शासन।
3. क्या ईसा स्वयं भारत में शिक्षा पाने आये?
4. क्या ईसा का स्वर्गवास भारत में ही हुआ?
5. ईसा के संदेश पर गीता की छाप।
6. ईसा के दर्शन पर बौद्ध धर्म की छाप।

ईसा से पूर्व मध्य-पूर्व देशों में भारतीय प्रचारक

पुरातत्त्व ने सिद्ध कर दिया है कि ईसा से दस शताब्दी पूर्व भी भारत का मध्य-पूर्व एवं यूरोप के साथ व्यापारिक एवं सांस्कृतिक संपर्क हो चुका था। सिन्धु के मुहाने से फारस की खाड़ी के बीच समुद्री जहाजों का आना-जाना चलता रहता था। भारत के पश्चिमी तट के लोग पूर्वी मध्यसागर क्षेत्र के लोगों को जानते थे। इन जलयानों में भारत से हाथीदांत, मोर, लंगूर, सागवान की लकड़ी, मोती, मलमल आदि राजा सोलोमन Solomon के महलों और मंदिरों की सजावट के लिये जाते ही थे। साथ में सांस्कृतिक दूत भी जाते थे जो वहाँ के दरबारों में भारतीय संस्कृति व तत्त्वज्ञान का आख्यान करते थे।

मिस्र के टेल अर्मना (या तल्ल-अल-अर्मन) Tell-el-Amarna के स्थान पर खुदाइयों में ऐसी महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई है जो उस क्षेत्र में आर्यशासकों के शासन को असंदिग्ध रूप से सिद्ध करती है। वहाँ सम्राट् नूतन खामुन के पिता अखनेतन का प्राचीन अभिलेख मिला है जिसमें पश्चिमी एशिया के आर्यशासकों को दशरथ, शत्रुघ्न, वसिष्ठ, स्वरदत्त, वीर्यसेन, इन्द्रोता, वीरदेव आदि कई शासकों के पत्र मिले हैं जो उन्होंने मिस्र के सम्राटों को लिखे थे। ये पत्र ईसा के

जन्म से 1500 वर्ष पहले के हैं। ये पत्र मिट्टी की पकाई हुई तख्तियों पर अंकित हैं, यह ब्रिटिश म्यूजियम, पैरिस म्यूजियम, बर्लिन और काहिरा के म्यूजियम में सुरक्षित हैं।

मध्य एशिया में एक प्रजाति थी जिसका नाम कस्साइत कस्सी जाति प्रसिद्ध था। इसने बेबीलोन को जीतकर उसे अपनी राजधानी बनाया। यह 16वीं सदी ईसा-पूर्व की घटना है। इस प्रजाति के देवता 'सूर्य' और 'मरुत्' आदि वैदिक देवता थे। इसके उत्तर-पश्चिम में दो अन्य प्रजातियाँ मित्तनी और खत्तनी—दोनों आपस में झगड़ा करती रहती थी। 1380 ई. पूर्व में मित्तनी जाति के राजा दशरथ के पुत्र मतिउत तथा खत्ती जाति के राजा सुबुलुलिम के बीच संधि हुई। यह संधि मिट्टी की तख्तियों पर उत्कीर्ण है। इन पट्टियों पर सन्धि के साक्षी के रूप में मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्यों—इन देवताओं का उल्लेख है। इन देवताओं के नामों को लिखा भी अपने विशेष ढंग से गया है। मित्र को मि-इत् अस्, वरुण को व-अर-ख उण-अस, इन्द्र को इन-द-र, नासत्यों को ना-स-अति-इय—इस प्रकार लिखा गया है। वैदिककाल में वैदिक पदों को इस प्रकार लिखने की प्रथा थी जो अब तक दक्षिण भारत में प्रचलित है। 1907 ई. में जर्मन विद्वान Hugo Binclar ह्यूगो बिंकलर मध्य एशिया में बोघजकोई (Boghazkoi) नामक स्थान पर खुदाई करवा रहे थे। जहाँ ये मिट्टी में पकी संधि-तख्तियाँ प्राप्त हुईं।

इस खोज ने आर्य जाति के प्राचीन इतिहास के विषय में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। तब तक यह माना जाता था कि प्राचीन काल में पश्चिमी एशिया में सेमेटिक जातियाँ ही शासन करती थी किन्तु इस सन्धिपत्र ने सिद्ध कर दिया कि आर्य लोग पश्चिमी एशिया तक पहुँचे थे। वहाँ उन्होंने अपने राज्य स्थापित किये थे और वैदिक देवता पूजे जाते थे।

एक और रोचक तथ्य प्रकट होता है कि जहाँ संसार के अन्य धर्मों के देवता परस्पर लड़ाते हैं, एक-दूसरे का रक्त पीने को उकसाते हैं वहीं भारत के देवता संधि करने वाले शांति के देवदूत समझे जाते थे। बड़े-बड़े सम्राट् उनकी शपथ ग्रहण करते थे। टेल अर्मना की तख्तियों में प्राचीन राजकुमारों के नाम बिरिदस्व, सुवरदत, यसदत, अर्तमन्य आदि नाम संस्कृत नामों के अपभ्रंश हैं। ये राजा ईरानी नहीं हो सकते, क्योंकि यदि ये ईरानी होते तो 'अस्व' शब्द 'अस्प' हो जाता परन्तु ऐसा नहीं हुआ।

मोहनजोदड़ो की सिंधु घाटी सभ्यता की खुदाई से यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि सिंधु तट की सभ्यता मेसोपोटामिया की सभ्यता से मेल खाती है। मित्तनी भाषा संस्कृत से समानता रखती है। उनके राजाओं और देवताओं के नाम भारतीय

हैं। एक खेल में दौड़ने के खेल का वर्णन है। बोघजकोई में मिट्टी की तख्तियों पर उत्कीर्ण एक पुस्तक भी मिली है। जिसका विषय है—रथ-चालन। यह पुस्तक मित्तनी प्रजाति के किक्कुली नामक व्यक्ति ने लिखी है जो अश्वविद्या एवं रथ संचालन का विशेषज्ञ था। इस पुस्तक में पहियों के घूमने के लिये 'आवर्त्तन' शब्द का प्रयोग किया गया है जो संस्कृत का 'आवर्त्तन' ही है। इसी प्रकार इस पट्टी पर एक चक्कर के लिए 'एक वर्तन्न', तीन चक्करों के लिये 'तेरवर्तन्न' पाँच चक्करों के लिये 'पंच-वर्तन्न', सात चक्करों के लिये 'सत्तवर्तन्न' शब्दों का प्रयोग किया गया है। इससे भी सिद्ध होता है कि मध्य-एशिया की इस मित्तनी प्रजाति की भाषा संस्कृत से मिलती-जुलती है।

एशिया माइनर में एक अन्य जाति थी—खत्ती। यह क्षत्री या खत्री का ही अपभ्रंश है। जर्मन विद्वान हान आपेन हेन ने खोजा है कि हितायत या खत्ती जाति की भाषा पर आर्यभाषा का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। खत्ती राज्य के राजाओं व अन्य व्यक्तियों के नाम 'स्वर्दत्त', 'सुबन्धु', सतुवरा, इंद्रन्रूत, वीरसेन, अर्तदम, सुमित, रस आदि किये गये हैं, जो स्वर्दत्त, सुबन्धु, सत्वर, इन्द्रोत, ऋतदमन तथा सुमित्र के रूपांतर हैं। इसमें संदेह नहीं कि खत्ती जाति के ये नाम 'आर्य' होने का संकेत करते हैं। पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार गान्धार के ऐलवंश की एक शाखा ने पश्चिम में जाकर अपने राज्य स्थापित किये थे। यदि तुर्की की इन प्राचीन खत्ती और मित्तनी जातियों का सम्बन्ध वैदिक युग के भारतीय आर्यों के साथ हो तो इसे असंभव नहीं कहा जा सकता। हितायत (खत्री) लोगों में मित्र, वरुण आदि वैदिक देवताओं का वर्णन है। सीरिया से एक हितायत राजा का एक सिक्का प्राप्त हुआ है। इसके एक ओर सिंहारूढ़ देवी, दूसरी ओर वृषभारूढ़ देवता का चित्र है। इसमें कोई संदेह नहीं ये भवानी और महादेव ही हैं। बोकासकोय में हितायत लोगों द्वारा पत्थर पर तराश कर बनाई हुई एक मूर्ति मिली है जिसमें एक त्रिशूलधारी देवता है, पास में एक देवी है उसके सामने सिंह खड़ा है। देवी और देवता दोनों के बीच एक बच्चा बैठा हुआ है। यह चित्र शिव, पार्वती और स्कंद (कार्त्तिकेय) का है। वहाँ भारत की चातुर्वर्ण्य व्यवस्था भी प्रचलित थी। इनके पांव में पहनने के जूतों का अग्रभाग भारत की प्राचीन जूतियों के समान आगे से उठा रहता था। इस प्रकार एशिया माइनर की हितायत जातियों में भी भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव अति प्राचीनकाल से प्रमाणित होता है। (वृहत्तर भारत—लेखक चन्द्रगुप्त विद्यालंकार; पृ. 310 में)

इन तथ्यों का वर्णन श्री शिशिरकुमार मिश्र ने अपनी पुस्तक Vision of India में, डॉ. कालीदास नाग ने Greater India में, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने अपने वृहत्तर भारत में, डॉ. सत्यव्रत सिद्धांतालंकार ने वैदिक संस्कृति का मूल संदेश में,

श्री यमुना अख्तर ने अपने शोधलेख ईसाई धर्म का जन्म वेदांत और बौद्धदर्शन से (राष्ट्रधर्म, दिसम्बर, 81 में), डॉ. आर. मजुमदार, डॉ. रघुवीर, डॉ. हरिदत्त वेदालंकार आदि ने भी किया है।

टेल अर्मना के पत्र सं. 271 और 290 में स्पष्ट उल्लेख है कि प्राचीनकाल में सीरिया की राजधानी दमिश्क पर ईसा से 1500 वर्ष पूर्व वीरदेव का शासन था और ईसा के जन्मस्थान बेथलहम पर स्वरदत्त नामक आर्य राजा का शासन था। वे वैदिक देवताओं इन्द्र, वरुण, मित्र, अश्विनीकुमारों की पूजा करते थे।

बाइबिल के अंतर्साक्ष्य से पता चलता है कि हजरत इब्राहीम ने अपनी पत्नी की कब्र के लिये खत्री (क्षत्री) अर्थात् हितायत से भूमि ली थी।

इजराइल के पूर्वी ओर सटा हुआ देश मेसोपोटामिया है (जहाँ बोघजकोई की खुदाई में भारतीय आर्य राजाओं के शासन के प्रमाण मिले हैं) तथा पश्चिम की ओर सटा हुआ मिस्र देश है, जहाँ टेलअर्मना में मिट्टी की पकी हुई तख्तियों पर लिखे वे पत्र मिले हैं जो मेसोपोटामिया के आर्यशासक वीरदेव, स्वरदत्त आदि मिस्र के सम्राटों को लिखते थे। इजराइल से उत्तर की ओर सीरिया देश है जहाँ आर्य राजा वीरदेव का शासन था। स्वयं इजराइल में ही स्वरदत्त का शासन था। इजराइल से दक्षिण-पूर्व की ओर जार्डन और अरेबिया आदि राज्य हैं। बाइबिल के युग में जार्डन इजराइली साम्राज्य का अंग था। कुछ समय तक रोम साम्राज्य का अंग रहा है। सन् 750 में अरबों ने इसे जीता उससे पूर्व यह सीरिया का भाग था, जिस पर मिस्र के खलीफाओं का शासन था। वहाँ की पीले रंग की मिट्टी वाली नदी के कारण इसे जार्डन (जर्द रंगवाला) कहा जाता था। अरबी में इसे सरकेजरदुन कहा गया। उसी से जार्डन नाम बन गया। सन् 1923 में स्वाधीन राज्य बना। बाइबिल काल से पूर्व जब यह सीरिया का अंग था तब वहाँ वीरदेव का शासन था।

इस प्रकार ईसा के देश इजराइल के चारों ओर सभी देशों में और स्वयं ईसा की जन्मभूमि में भी भारतीय प्रभाव स्पष्ट रूप से विद्यमान था। मिस्र- देश का नाम ही संस्कृत भाषा का है। यह किसी सेमेटिक या यूरोपीय भाषा का शब्द नहीं है। मंडन मिश्र से लेकर वाचस्पति मिश्र तक भारत में श्रेष्ठ तत्त्ववेत्ता ब्राह्मणों की उपाधि मिश्र रही है। वहाँ की सर्वप्रसिद्ध नदी (मिस्र की गंगा) का नाम नील भी संस्कृत नाम है। गंगा की नील धारा के समान नील नदी भी मिस्र की सर्वप्रसिद्ध-सर्वपूज्य नदी है। यह शब्द भी संस्कृत के सिवा किसी अन्य शब्द-भण्डार से नहीं आया। लैटिन भाषा नाईल (Nile), एनीलीन (Aniline) आदि शब्द भी संस्कृत के नील शब्द से ही निकले हैं। भविष्य पुराण में मुनि कश्यप और कण्व मुनि का मिस्र देश में जाना प्रमाणित होता है।

वेदमूर्ति श्रीपाद् दमोदर सातवलेकरजी ने लिखा है मिस्र देश के पिरामिड में एक लकड़ी की मूर्ति मिली है। इस मूर्ति पर गीता के 'जीवभूत सनातनः, शरीरमवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामति'—इस श्लोक का शब्दशः अनुवाद मिला है। इस मूर्ति के साथ जो वस्तुएं उस कब्र में मिली वे भारतीय वस्तुएं थीं। (देखें, अमरीकन नेशनल जीओग्राफिकल मेगजीन, अक्टूबर, 1941 का अंक।)

जीव दूसरा जन्म लेता है, यह पुनर्जन्मवाद मिस्रवासियों के तत्त्वज्ञान में नहीं था, इसलिए मुर्दे को सुखाकर रख देते थे। ऐसे देश की कब्र में भारतीय वस्तुओं के साथ भारतीय विचार, गीता का विचार मिलना एक आश्चर्यजनक बात है। यह अनुवाद गीता के श्लोक का ही है क्योंकि ऐसा वचन दूसरी जगह में नहीं है। यह कब्र विक्रमादित्य से पूर्व के तीन सहस्र वर्षों के समय की है (गीता का राजकीय तत्त्वालोचन पृ. 7)।

मिस्र देश में सूर्य पूजा प्रचलित थी तथा अनेक मिस्री और भारतीय देवताओं के नाम मिलते-जुलते हैं। मिस्र देश की जमीन लगभग 10 हजार वर्ष पुरानी है। वहाँ की सभ्यता जो लिखित प्रमाणों से सिद्ध होती है 7429 वर्ष पुरानी है। भारतीय वैदिक सभ्यता इससे बहुत अधिक पुरानी है।

मिस्र देश के पिरामिडों में वहाँ के राजाओं के शव मसाले लगाकर रखे जाते थे, जिनके साथ बहुत सा सोना-चांदी, रत्नभण्डार, दास-दासियाँ, घोड़े आदि भी पिरामिड में गाड़ दिये जाते थे। सोने की लूट के लोभ से भी मिस्र देश पर आक्रमण हुए तथा पिरामिड उजाड़े गये। उससे बहुत-सी भारतीय प्रभाव की बातें पुनः प्रकाश में आयी। शव को अनेक मसाले लगाये जाते थे। उन शवों में नील-रंग भी लगा हुआ है। नील भारत से ही जाता था, जिसे इन्डिगो अर्थात् भारत से जाने वाला पदार्थ कहा जाता था। नील नदी के नाम के समान उस कपड़ों को लगाने वाले नील को भी हिन्द का नील कहा जाता था। इसका अनुवाद कर यूरोप की भाषाओं में Indico (इंडिको) शब्द बना लिया। भारत के अतिरिक्त संसार के किसी भी अन्य देश में नील की खेती नहीं होती थी तथा आज तक कहीं अन्यत्र नील का पौधा नहीं पाया जाता। शवों को गाड़ने के लिये जो लकड़ी के बक्से बनाये जाते थे वह सागवान और इमली की लकड़ी के होते थे। सागवान भारत से निर्यात होता था। इमली की लकड़ी का नाम मिस्र एवं अरब की भाषाओं में तमरे-हिन्द है। जिसका शाब्दिक अर्थ है हिन्द की लकड़ी। उससे यूरोप की भाषाओं में टेमेरिन नाम रूढ़ हो गया। जिस महीन मलमल में शव लपेटे जाते थे वह भी भारत से निर्यात होती थी। सिंधु नदी के मुहाने से विदेशों में निर्यात होने के कारण उसे सिंधु कहा जाता था। उसी से सिन्दोन, सॉटोन, कॉटन शब्द बने। नील नदी के स्रोत की खोज एक कठिन कार्य था। इस खोज में लेफ्टिनेंट कर्नल स्पेक (Speke) को सबसे अधिक सहायता

कर्नल विल्फोर्ड (Wil Ford) द्वारा लिखे हुए हिन्दू पुराणों के ग्रंथ से मिली। पुराणों में नील नदी के स्रोत का जो वर्णन था उसके आधार पर एक मानचित्र बनाकर खोज की गई, वो सफल हुई। कर्नल स्पेक ने अपने ग्रंथ Discovery of Sources of Nile में लिखा है—नील नदी के मूलस्रोत के विषय में पुराणों का वर्णन बहुत सही था। नेशनल म्यूजियम काहिरा में एक ब्राह्मीलिपि में लिखित प्राचीन उत्कीर्ण लेख मिला है जिसे हमारे मित्र डॉ. डब्ल्यू. एस. वाकणकर ने खोजा तथा प्रकाश में लाये हैं। इससे 2000 वर्ष पूर्व भारत और मिस्र के व्यापारिक सम्बन्धों पर प्रकाश पड़ता है। इसकी भाषा पाली है। जिस पर स्थानीय भाषा का भी प्रभाव है। इसकी लिपि ब्राह्मी है जो देवनागरी लिपि की आदि-जननी कही जा सकती है।

मिस्र देश की भाषा पर भारतीय प्रभाव

हेमिटिक भाषाओं में से इस समय केवल मिस्र की ही भाषा सुरक्षित पाई जाती है। यहाँ थोड़े से उसके भी नमूने दिखलाना चाहते हैं, जिससे स्पष्ट हो जाएगा कि वह भी मूल भाषा नहीं प्रत्युत अपभ्रंश ही है।

संस्कृत	मिस्र की भाषा	अर्थ
आदि	आत	आरम्भ
अक	अक	मोड़ना
अक्ष	अख	देखना
अन्त	अन्तू	सीमा
अपूप	पूपू	रोटी
आप	आप	पानी
अर्म	रेम	रोना
आत्मा	आत्मु	सातवें सृष्टि का
दिव	तेप	आकाश
नर	त्रा	मनुष्य
नाश	नाशेष	नाशेष
परि	परि	चारों ओर
पूर	पूर	बाहर निकालना
पुष्प	पुष	फूल
रसना	रस	जिह्वा
सेवा	सेव	पूजा

संस्कृत	मिस्र की भाषा	अर्थ
श्वेत	हृत	सफेद
उषा	उषा	प्रातःकाल
वास	आस	घर
क	क	आत्मा
चन्दन	सन्दल	Sandal
कपि मर्कट	(काफू?)	बन्दर Monkey
हर	हर	शिव
सूर	सुर	सूर्य
मातृ	मत	माता
दिनेश	दायनेशिमस	सूर्य
ओम्	आमन्	ईश्वर का मंगल सूचक नाम
विष्णु	वेस्	पालनकर्ता
ईश	इसिन	ईश्वर
शक्ति	सकित	शक्ति
नील	नील (नदी)	कुरुवंशी राजा नील के
कृष्ण नील		नाम पर Indigo
	तमेर हिन्द	इमली
	सिन्धु	भारत की मलमल
शाकवन	सागवान	सागवान की लकड़ी आबनूस की लकड़ी
म्यूर		मोर
अरिशा (तमिल)		चावल Rice

(क) **यूनान पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव**—जिस प्रकार मिस्र मध्य-पूर्व का प्राचीनतम देश माना जाता है, यूनान यूरोप का प्राचीनतम देश एवं सारे पश्चिम का सांस्कृतिक-गुरु माना जाता है।

(ख) यूनान देश का भारतीय वाङ्मय में उल्लेख।

(ग) पाइथोगोरस के मानस पर भारतीय प्रभाव।

(घ) आत्मा की अमरता का सिद्धांत। सुकरात के मानस पर भारतीय प्रभाव। प्लेटो के दर्शन पर भारतीय प्रभाव। अरस्तू द्वारा सिकन्दर को भारत से

भगवद्‌गीता और संत लाने का आग्रह। यूनान के मानस पर भारत का आकर्षण। सिकंदर के भारत पर आक्रमण के समय के अनुभव। यूनानी यात्रियों एवं इतिहासकारों का भारत के विषय में वर्णन। सिकंदर के भारत पर आक्रमण के समय अन्य यूरोपीय देशों की दशा। न्यू प्लेटोनियन दर्शनधारा पर भारतीय प्रभाव। Philo का दर्शन एवं वेदान्त।

प्राचीन अर्मेनिया के कृष्ण मंदिर Hercules के चरित्र पर श्रीकृष्ण और बलराम की कथा का प्रभाव। सभ्यता, संस्कृति और विज्ञान के क्षेत्र में भारत एवं यूनान का आदान-प्रदान। ईसा से पूर्व इजराइल एवं मध्य-पूर्व में तीन प्रकार के प्रचारक—एसिन (सनातन धर्मी साधु, साधूसिज Sadducees (जैन साधु), थेरापुत (बौद्ध साधु) स्थविरपुत्र (यह पाली के थेरपुत्र का अपभ्रंश है।)

ईसा के मानस पर गीता का प्रभाव

मध्य-पूर्व में गीता के अवतार सिद्धांत का प्रभाव—महात्मा ईसा का नाम जीसस, जो धीरे-धीरे यीशू, ईसा आदि रूढ़ हो गया। क्राइस्ट उनका नाम न होकर (Title) उपनाम या उपाधि मात्र था। कृष्ण से कृष्टो शब्द बना। कृष्ण और ईसा के चरित्र वर्णन में समानता। ईसाई पादरियों द्वारा गीता को बाइबिल के Sermon of Mount के बाद का, उससे प्रभावित बतलाना। गीता और बाइबिल में समानता। लोकमान्य तिलक द्वारा पादरी लारेन्सर को उत्तर। ईसा के मानस पर बौद्धमत का प्रभाव। अशोक द्वारा मध्य-पूर्व में बौद्ध भिक्षुओं को भेजना और बौद्ध और ईसा के चरित्र में समानता।

यूनान पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव

मिस्र जिस प्रकार मध्य-पूर्व का प्राचीनतम देश माना जाता है, यूनान यूरोप का प्राचीनतम देश एवं सारे पश्चिम का सांस्कृतिक-गुरु माना जाता है। जिस प्रकार भारत एशिया का हृदय है, यूनान यूरोप का हृदय है। भारत से अपरिचित यूरोपवासी यूनान को ही विश्व संस्कृति का प्रथम पालना मानते हैं। इतिहास की निष्पक्ष खोज करने पर ज्ञात होता है कि भारत ही विश्व संस्कृति का प्रथम पालना रहा है तथा यूरोप का गुरु यूनान अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों में भारत से प्रभावित और भारत का शिष्य रहा है। यूनान की सभ्यता-संस्कृति का स्वतंत्र विकास एवं भारत से भिन्नता भी महत्त्वपूर्ण है।

यूनान देश का भारतीय वाङ्मय में उल्लेख

यूनान का मूल नाम यवन देश है। यूनानी लोग स्वयं अपने देश को Ionia (यवनिया) कहते हैं। महाभारत काल में कालयवन नाम का पश्चिमी आक्रान्ता

कंस की मृत्यु के बाद और जरासंध के अनेक बार हारने के बाद जरासंध की सहायता करने के लिये बड़ी सेना लेकर भगवान श्रीकृष्ण पर आक्रमण करने के लिये आया। उसके सैन्य-बल का इतना आतंक था कि भगवान श्रीकृष्ण को भी उससे प्रत्यक्ष युद्ध न करके रण छोड़कर भागना पड़ा तथा भगवान ने अपनी युक्ति से एक गुफा में सोये हुए राजा मुचकुन्द पर अपना पीताम्बर डाल दिया और स्वयं छिप गये। कालयवन द्वारा मुचकुन्द को पांव की ठोकर मार कर जगाते ही उसके नेत्रों की अग्नि से कालयवन भस्म हो गया। भविष्यत् में यवनों के भावी आक्रमणों से भारत को बचाने के लिये भगवान श्रीकृष्ण ने पश्चिमी समुद्रीतट पर सागर के मध्य द्वीप में द्वारिका नगरी बसायी। महाभारत के युद्ध में भी कई यवन सैनिक एवं राजा भाग लेने के लिये आये। ऐतिहासिक काल में सिकन्दर का भारत की ओर अभियान बड़ी प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण घटना मानी जाती है। किन्तु उससे बहुत पहले से भारत एवं यवन देश के सम्बन्ध बन चुके थे।

भारत एवं बावेरू (यूनान) का व्यापारिक सम्बन्ध

बावेरू (यूनान)—बावेरू जातक नामक पाली पुस्तक में (500 ई. पूर्व) भारतीय व्यापारियों द्वारा बावेरू के बाजारों में मोर ले जाने का उल्लेख है। बावेरू की भाषा में मलमल का नाम सिंधु है। चावल, मोर, चंदन जैसी विशिष्ट वस्तुओं का ज्ञान यूनानियों को भारत के तमिल नामों से था। क्योंकि भारत और बावेरू के बीच व्यापार (480 ई. पूर्व) बंद हो चुका था। इसलिये यह मानना पड़ेगा कि ये वस्तुएं बहुत पहले भारत से बावेरू पहुँच चुकी थी। मिस्र के उत्तर में यूनान देश है जिसका एक राज्य बबिरिया कहलाता था। इसी का भारतीय नाम बावेरू था।

प्राचीन तमिल कवि यवन जलपोतों की चर्चा करते हैं। जो तमिल देश के बंदरगाहों में स्वर्ण और मदिरा लेकर आते थे तथा भारत के गरम मसाले खरीद कर बदले में स्वर्ण और मदिरा भारतीय व्यापारियों को मूल्य के रूप में देते थे।

छठी-सातवीं शती पूर्व के सम्बन्ध

मैक्समूलर, Garbe और Winternitz स्वीकार करते हैं कि यूनान में 600 ई. पूर्व से ही भारतीय विद्वान् ब्राह्मण बसे हुए थे। पाणिनि (ई. पूर्व छठी या सातवीं शताब्दी) की पुस्तक में यवनानी लिपि का उल्लेख है, जिससे यह अनुमान होता है कि इससे पूर्व भारत और यूनान का सम्बन्ध हो चुका था।

होमर के मानस पर भारतीय महाकाव्यों का प्रभाव

यूनान के सबसे महान् महाकाव्य लेखक होमर अंधे, प्रज्ञाचक्षु कवि थे। उन्होंने दो महाकाव्य लिखे—इलियड और ओडिसी। तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि इलियड की कथा रामायण से ही उधार ली गयी है। रामायण

लंका विजय का महाकाव्य है। राम+अयन का एक अर्थ है राम का सैनिक अभियान। दूसरा अर्थ राम का धाम।

रामायण	इलियड
1. रामायण, लंका विजय का महाकाव्य है। राम+अयण का एक अर्थ है राम का सैनिक अभियान। दूसरा अर्थ है राम का धाम। लंका—तिब्बती एवं अनेक वनवासी भाषाओं में लंका का अर्थ ही द्वीप है।	1. यूनानी महाकाव्य इलियड का नाम Ilium इलियम से बना है। जिसका अर्थ है Troy (Troy द्वीप की विजय)। इलियड में एशिया माइनर के Troy द्वीप पर यूनानियों की विजय का वर्णन है।
2. राम व लक्ष्मण में परस्पर अतीव प्रेम है।	2. Sparta के दो राजपुत्रों Manalus और Agamemnon में परस्पर प्रेम है।
3. दशरथ की आज्ञा से वनवास।	3. पिता Argal ने राज्य से निकाल दिया।
4. राम ने सीता को स्वयंवर में जीता। सीता विश्व की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी है। जिसके रूप का वर्णन करने में तुलसीदासजी लिखते हैं—गिरा अनयन नयन बिनु बानी। (1-228/2 मानस) इसे प्राप्त करने के लिये लंकाद्वीप का रावण ललचाता रहता है।	4. Manalus ने हेलेन को स्वयंवर में जीता, जिसके रूप-सौंदर्य का वर्णन करने वाला महाकवि स्वयं अनैन है। इसे प्राप्त करने के लिये Troy द्वीप का राजकुमार पेरिस Paris सदा ललचाता रहता है।
5. लंका समुद्र के बीच स्वर्णिम द्वीप है।	5. Troy समुद्र पर ऊँचे महल वाला द्वीप है।
6. लंका में विश्रवा की राक्षस-पत्नी से उत्पन्न बलशाली पुत्र रावण का राज्य था।	6. Troy में राजा Priam का पुत्र पेरिस बड़ा घमण्डी था।
7. राम की अनुपस्थिति में रावण सीता को चुरा ले गया।	7. Manalus की अनुपस्थिति में Troy का राजकुमार पेरिस हेलेन को चुरा ले जाता है।
8. राम वनवासियों की विशाल सेना लेकर लंका को घेर लेते हैं।	8. Manalus ग्रीक राजकुमारों की 1200 जहाजों का बेड़ा लेकर Troy को घेर लेता है।

9. रावण का भाई विभीषण रावण के पापों से सहमत नहीं था।	9. Troy का बुद्धिमान Antenar एण्टेनर पेरिस के कुकृत्यों से सहमत नहीं।
10. विभीषण रावण को उपदेश देता है कि सीता को लौटा दे।	10. एण्टेनर पेरिस को उपदेश देता है कि हेलेन को लौटा दे।
11. विभीषण रावण को छोड़कर राम से जा मिलता है।	11. एण्टेनर पेरिस को छोड़कर Manalus के साथ जा मिलता है।
12. विभीषण राम की सेना को बचाता है तथा रावण की मृत्यु की युक्ति बतलाता है।	12. एण्टेनर न होता तो Manalus मारा जाता।
13. युद्ध में रथ तथा घुड़सवार, दैवी अस्त्रों का प्रयोग।	
14. मेघनाथ के बाण लौट आते थे।	14. Troy के सेनापति के बाण लौट आते थे।
15. हनुमानजी की गर्जना से आतंक छा जाता था।	15. ग्रीक योद्धा Achilles की गर्जना से आतंक छा जाता था।
16. हनुमान ने लंका तोड़ डाली।	16. Troy के लौहद्वार को तोड़ा।
17. हनुमान ने बहुत विशाल और बहुत सूक्ष्म रूप बनाकर सुरसा को पराजित कर, लंकिणी एवं अक्षयकुमार को मारकर युक्ति से लंका की दुर्गप्राचीर के भीतर प्रवेश किया।	17-18. Colysseus ने एक विशाल लकड़ी का घोड़ा बनाने की युक्ति बताई जिसके भीतर बैठे हुए ग्रीक योद्धा घोड़े के साथ ही Troy में प्रविष्ट हो जाएं।
18. भारी पत्थरों एवं वृक्षों से भी युद्ध हुआ। तलवार, भाला एवं धनुषबाण का भी प्रयोग हुआ।	
19. कुंभकर्ण जब युद्ध भूमि में गिरा तो बड़ी संख्या में सेना नीचे दबकर मर गई।	19. Troy का वीर मार्स Mars जब मरकर गिरा तो सात एकड़ जमीन घिर गई।
20. देवता आकाश में युद्ध देखने के लिये प्रकट हुए।	20. देवता आकाश में दर्शक।

21. हनुमान के अंग वज्र के थे।

21. Anchilles के अंग वज्र के थे।

22. रावण मरता नहीं था। उसके उदर में अमृत कुंभ था। पेट में बाण लगने से मरा।

22. बाण शरीर पर लगकर टूट जाते थे।

23. महाभारत कथा में दुर्योधन की माता गांधारी ने दुर्योधन के नग्न शरीर को देखने मात्र से उसे वज्र के समान अंग वाला बना दिया था। उसके शरीर पर गदा पड़ने पर टूट जाती थी किन्तु उसका कुछ भी नहीं बिगड़ता था। केवल गुप्त-अंग को लंगोट से ढक लेने के कारण ही अंग दुर्बल रह गया था। श्रीकृष्ण के संकेत पर भीम ने वहीं गदा मारी तब दुर्योधन की मृत्यु हुई।

23. Anchilles की एड़ी मर्मस्थान था। वहीं बाण लगने से Anchilles मरा। Anchilles के जन्म के समय उसकी माता ने उसे एक अमृत सरोवर में डुबोया जिससे सब अंग वज्र के बन जायें, केवल उसकी एड़ी से जहाँ से उसकी माता ने पकड़ कर डुबोया, कमजोर रह गयी।

24. हनुमान ने अपने को स्वेच्छा से बंधवा लिया ताकि उसे रावण की राजसभा में पहुँचने का अनायास ही अवसर मिल जाय। लंकावासी कुतूहलवश हनुमान को मनोविनोद के लिये बांधकर रावण के दरबार में ले गये।

25. हनुमान की पूंछ को आग लगाने से लंका का नाश हो गया।

24-25. यूनानियों के लकड़ी के घोड़ों को खेल-खेल में भीतर ले जाने से Troy का पतन हो गया।

26. राम सीता सहित लौटकर अपनी राजधानी अयोध्या में पधारे। अयोध्या का अर्थ है युद्ध में न जीतने योग्य।

26. Manalus हेलेन सहित लौटकर अपनी राजधानी स्पार्टा में पधारे। स्पार्टा में जन्म के साथ ही बच्चों को एक पहाड़ी से लुढ़का दिया जाता था ताकि कमजोर बच्चे मर जायें।

जिस प्रकार इलियड पर रामायण की छाप है उसी प्रकार ओडेसी नामक महाकाव्य पर महाभारत की कुछ छाप परिलक्षित होती है।

1. **यूनान में भारतीय धनुर्धरों की विजय**—ईसा से 490 वर्ष पूर्व ईरान के सम्राट् धारयुवस ने यूनान पर आक्रमण किया। मेराथन के युद्ध में ईरानी सेना परास्त हो गई। 485 ई. पूर्व में सम्राट् धारयुवस का देहान्त हो गया।
2. सन् 480 ई. पूर्व में धारयुवस के पुत्र ईरानी सम्राट् खुषयार्श (जेरक्सेज Xerzes) ने एक विशाल सेना लेकर यूनान पर चढ़ाई की। उसकी सेना में इस बार भारतीय तीरंदाजों का एक शक्तिशाली दल था जिनके तीरों का फल इस्पात का बना हुआ था।
3. सम्राट् खुषयार्श की सेना के इन वीर भारतीय धनुर्धरों ने मिस्र, अरब सीरिया, फलस्तीन, मेसोपोटामिया, तुर्की, आर्मेनिया, अफगानिस्तान आदि में इस्पात वाले तीक्ष्ण तीरों के फलस्वरूप विजय प्राप्त की थी।
4. यूनान में गर्म पानी के स्रोतों के लिये प्रसिद्ध थर्मोपोलो की कठिन घाटी में विश्व इतिहास का एक चिरस्मरणीय युद्ध हुआ जिसमें भारतीय धनुर्धरों के फौलादी तीरों के सम्मुख यूनानी वीर पराजित हो गये।
5. तब तक पश्चिम के किसी देश को इस्पात का ज्ञान ही न था। संस्कृत के अयस शब्द से ही आयरन (Iron) शब्द बना है।
6. तीसरी शती ई. पूर्व में पंजाब की झेलम नदी के तट पर जब सिकंदर की यहाँ के राजा पुरु (पोरस) से संधि हुई तो पोरस ने उसे 10 सेर इस्पात भेंट किया। उस धातु को देखकर सिकंदर चकित हो गया।

यूनानी दर्शन पर भारतीय प्रभाव

गार्वे का मत है कि यूनानी दर्शन के जनक थे थेलिज। Thales (600 ई. पूर्व) का यह मत है कि सब कुछ जल से पैदा होता है। अनेजिमेण्डर का मत है कि सब कुछ वायुमण्डल से उत्पन्न होता है। उसके शिष्य ऐनेग्जिमिनस का मत है कि सब कुछ वायु से उत्पन्न होता है। ये सब लगभग वैदिक सिद्धांत हैं जो यूनानियों ने भारत के संपर्क से सीखे। पाँचों तत्त्वों की अलग-अलग महत्ता भारतीय दर्शन में है।

जल को संस्कृत में नार कहते हैं। जल में निवास करने वाला नारायण है। नारायण की नाभि से कमल, कमल से ब्रह्मा, ब्रह्मा से सृष्टि और अंत में महाप्रलय में सब कुछ पुनः जल में लय हो जाता है। यह भारतीय कल्पना है जिसका कथन थेलिज के दर्शन में मिलता है।

हेरक्लाइटस (500 ई. पूर्व) का मत है कि सब कुछ अग्नि से ही पैदा होता है तथा वापस लौटकर उसी में लय होना चाहता है। वास्तव में छान्दोग्य उपनिषद् के वर्णन की ही छाया है। गार्वे के मत में यह सांख्य के मत से भी मिलता है।

ऋग्वेद का प्रथम मंत्र '**अग्निम् इळे पुरोहितम्**'—अग्नि की स्तुति से प्रारम्भ होता है। वेद में अग्नि ज्योतिस्वरूप है। परमेश्वर का प्रतीक है। अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा—

हेरक्लाइटस भगवान् बुद्ध का समकालीन है। दोनों ही परिवर्तन को महत्त्व देते हैं। Empedoc's 450 ई. पूर्व का मत पदार्थ की अनश्वरता सांख्य के सत्कार्यवाद या सृष्टि के अनादि होने का पुनर्कथन है। उसमें आत्मा के पुनर्जन्म का संकेत मिलता है। वह प्रकृति के तीनों गुणों को मानता है—Lightness सत्त्वगुण, Activity रजोगुण, Heaviness तमोगुण।

Zenopanes (505 ई. पूर्व) ने यह मत स्थापित किया कि ईश्वर और विश्व एक, अभिन्न, शाश्वत और अनादि हैं। यह भारतीय वेदान्त का सिद्धांत ही है।

हरिरेव जगत्, जगद्देव हरि

Erdmann (आर्डमेन) का कथन है कि दर्शन की (Eleatic) धारा का यह सिद्धांत कि जगत् की सारी विभिन्नता एक तत्त्व में ही लय हो जाती है भारतीय सर्वात्मवाद की ही गूंज है। कोई स्वतंत्र यूनानी सिद्धांत नहीं।

पाइथोगोरस (550 ई. पूर्व) भारतीय दर्शनधारा से इतना अधिक प्रभावित है कि उसे भारतीय परंपरा में पृथ्वी गुरु कहा जाता है। कुछ लोगों का अनुमान है कि वह भारत की यात्रा पर आया। किन्तु यह निश्चित है कि वह ईरान तक आया था। जहाँ उस काल में आर्य राजा कुरू (Cyres) साइरस का शासन था और अनेक आर्य ब्राह्मण यहाँ प्रचाररत थे। यह भूलना नहीं चाहिये कि उस समय तक न ईसा का जन्म हुआ था न मुहम्मद का। इसलिये उस काल के पारसी जाति के आर्य होने के साथ-साथ धर्म से भी आर्य थे। ईरान का प्राचीन नाम आर्यान देश था। आर्यावर्त्त और आर्यान की परंपरा एवं पूजा-पद्धति, विश्वास, परंपरा, भाषा एवं जीवन-पद्धति सभी समान थी। अतः पारसी विद्वानों के संपर्क में आने का अर्थ भारतीय आर्य विद्वानों के संपर्क में आना ही था।

पाइथोगोरस की आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म का सिद्धांत निश्चित रूप से भारत की ही देन है। संस्कृत का आत्मा शब्द पाली में अत्ता हो गया है। भगवान बुद्ध की वाणी है—

अत्ताहि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परोसिया।
अत्तना हि सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं।।

अर्थात् आत्मा ही आत्मा का नाथ है, आत्मा के सिवा अन्य नाथ कैसे हो सकता है? अपने आपको अच्छी प्रकार वश में कर लेने पर मनुष्य दुर्लभ नाथ को प्राप्त

करता है। यह अत्ता शब्द ही यूनानी भाषा में अतो हो गया है। इससे ग्रीक और लैटिन भाषा में Auto शब्द बना है। इसका अर्थ भी Self आत्मा ही है। जैसे Automatic स्वचालित, Autonomous आत्मनामी, Automobile अपने आप चलने वाली गाड़ी। आत्मा के लिये दूसरा शब्द है—स्व। इससे ग्रीक एवं लैटिन भाषा में शब्द बना है Suicide (स्वसूद यानी स्वयं को मारना)।

संस्कृत में मधुसूदन का अर्थ मधुदैत्य को मारने वाला, अरिसूदन का अर्थ शत्रुओं को मारने वाला। ग्रीक एवं लैटिन में Couseui का अर्थ है अपना कारण आप अर्थात् Auto स्वयंभू। इस प्रकार भारत ने यूनान एवं रोम को केवल आत्मा सम्बन्धी विचार ही नहीं दिये बल्कि आत्मा के लिये शब्द भी दिये जो उनके अपने शब्द-भण्डार में नहीं थे।

पाइथोगोरस ने ज्यामिति में 47 का प्रमेय दिया है जिसे आजकल दी थ्यूरोम आफ पाइथोगोरस कहा जाता है वह भी बोधायन ऋषि के सुल्व सूत्र से ही लिया गया है। इस प्रमेय का कथन है—एक समकोण त्रिभुज में कर्ण का वर्ग बाकी दोनों भुजाओं के वर्ग के बराबर होता है।

विलियम जोन्स ने यह संकेत दिया कि पाइथोगोरस के सिद्धांत और सांख्य की मान्यता में बड़ी समानता है जिस प्रकार सांख्य में संख्या गिनायी गयी है उसी प्रकार पाइथोगोरस में भी संख्या को महत्त्व दिया है।

कॉलब्रुक (Colebrooke) का कथन है कि पाइथोगोरस का जो भी इतिहास हमें उपलब्ध होता है उससे मुझे यह मानने में तनिक भी संकोच नहीं कि यह यूनानी विचारक भारतीय गुरुओं का ऋणी था। श्रेडर (Schrader) निर्णायक घोषणा करता है कि पाइथोगोरस के विचारों की जन्मभूमि भारत ही है।

सुकरात के मानस पर भारतीय प्रभाव

युजेबीस (Eusebius) नामक विद्वान् ने अरस्तू द्वारा प्लेटो दर्शन पर लिखित ग्रंथ का उद्धरण दिया है जिसमें यह वर्णन है कि एक भारतीय दार्शनिक एथेंस नगर में आया और सुकरात से दार्शनिक शास्त्रार्थ किया। जब सुकरात ने यह कहा कि दर्शन मानव जीवन के विषय में जिज्ञासा करता है। इस पर भारतीय दार्शनिक मुस्कराया और उत्तर दिया—कोई भी मानव जीवन और उसकी समस्याओं के विषय में तब तक नहीं जान सकता जब तक दैवीय-तत्त्वों के बारे में न जान ले। इससे भारतीय दर्शन का दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। अलौकिक को जानने के पश्चात् ही लौकिक के रहस्य खुलते हैं। सुकरात इस भारतीय विचारक से बड़ा प्रभावित हुआ। सुकरात भारत के ऋषियों के समान निष्काम एवं निर्लोभ वृत्ति से जी कर यूनान के युवकों को विवेक से ज्ञान प्राप्त करने की शिक्षा देता था। उसका कथन था Know

Thyself, Knowledge is Power. (अपने-आपको जानो, ज्ञान ही शक्ति है।) यह उपनिषदों के आत्मानँ विद्धि का ही अनुवाद है। अपनी विवेकपूर्ण दार्शनिक मान्यताओं के लिये बलिदान होने वाला सत्यवीर सुकरात संसार के सभी विवेकशील लोगों के लिये एक महान् आदर्श बन गया।

प्लेटो

सुकरात का योग्यतम शिष्य प्लेटो था। सुकरात के लिखित विचार प्रायः नहीं मिलते। उसके विचारों को लिखित रूप में प्लेटो ने ही अमर बना दिया। वास्तव में प्लेटो का दर्शन मूलतः सुकरात का ही दर्शन है। जिस प्रकार विवेकानंद का दर्शन उनके गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंस का ही दर्शन है।

प्लेटो (427 ई. पूर्व से 347 ई. पूर्व) पाइथोगोरियन विचारधारा का प्रशंसक था। यह माना जाता है कि वह एशिया के देशों की सांस्कृतिक यात्रा पर आया था। वह ईरान तथा संभवतः भारत की यात्रा पर आया था। उसका यह मत कि आत्मा जड़ प्रकृति के बंधन में पड़कर अपने आपको भूल जाता है और इससे मुक्ति ही आनंद प्राप्ति का एकमात्र उपाय है—सांख्यदर्शन के विचार से मिलता-जुलता है। हॉपकिन्स (Hopkins) नामक लेखक का कथन है कि प्लेटो सांख्य विचारधारा से परिपूर्ण है जो उसने पाइथोगोरस के माध्यम से प्राप्त कर उस पर अपना तार्किक चिंतन किया होगा।

कठोपनिषद् में कहा है—

आत्ममानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रगहमेव च।। (1/3/3)
इंद्रियाणि हयानाहुः विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेंन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर् मनीषिणः।। (1/3/4)

आत्मा को तुम रथी जानो। शरीर को रथ, बुद्धि को सारथि जानो और मन को लगाम। मनीषी (यानी ज्ञानी) इंद्रियों को घोड़े बतलाते हैं (और) विषयों को चरागाह। आत्मा के इंद्रिय और मन से युक्त होने पर उसे भोक्ता कहते हैं।

प्लेटो ने भी रथ और घोड़े की यही उपमा शरीर-इन्द्रिय और आत्मा के वर्णन में प्रयोग की है। यह निश्चय ही भारतीय दर्शन का ही प्रभाव है। अर्विक (Urwick) का विश्वास था कि प्लेटो ने Republic में जो कुछ कहा वह मात्र भारतीय विचारों का पुनर्कथन है।

प्लेटो ने आदर्श समाज को रक्षक, सैनिक और कामगार में विभाजित कर भारतीय वर्ण-व्यवस्था को ही दूसरे शब्दों में प्रस्तुत किया है। Republic के सातवें अध्याय में प्लेटो दृश्यमान जगत् की असत्यता और सत्य की अदृश्यता को

समझाने के लिये एक गुफा की उपमा देता है जिसमें प्रकाश पीछे की ओर से आ रहा है और हमारा मुख दीवार की ओर है, जिस पर हमारी अपनी ही छाया पड़ रही है तथा जिसे हम सच समझकर उसकी ओर लपकते हैं किन्तु वह सारा दृश्य मिथ्या ही निकलता है। इस प्रकार माया को छाया और सत्य को प्रकाश के रूप में प्रस्तुत करना वैदांतिक विचार है। व्यक्त जगत् अव्यक्त सत्य की ही छाया है। जगत् की सब वस्तुएं प्रारंभ में अव्यक्त रहती हैं, मध्यकाल में व्यक्त होती हैं और अंत में पुनः अव्यक्त में ही लय हो जाती हैं—यह गीता का कथन है। व्यक्त वस्तुओं की पहचान के लिये कोई नाम और रूप कल्पित किया जाता है। वह नाम-रूप इन्द्रियगोचर होने के कारण सत् प्रतीत होता है। किन्तु सत् का कभी नाश या लोप नहीं होना चाहिये। असत् सदा टिकता नहीं और सत् कभी मिटता नहीं।

नासतो विधते भावो—गीता की इसी कसौटी के आधार पर नाम-रूपात्मक जगत् दिखाई देते हुए भी, इन्द्रियगोचर होते हुए भी अन्ततोगत्वा सत् नहीं प्रमाणित होता। जो दिखाई देते हुए भी वास्तव में न हो उसे ही गीता ने माया तथा शंकराचार्य ने प्रतिभासित कहा है। जगत् भास रहा है किन्तु है नहीं। स्वप्न का संसार भासते हुए भी वास्तविक नहीं। मरुभूमि का जल और रज्जु में सर्प, जल में बिन्दु लहर, तरंग, वाष्प, नदी, तालाब, सिंधु भासते हुए भी सत् नहीं। क्योंकि उनकी सत्ता त्रिकालाबाधित नहीं है। सत् भासने का कारण भी यही है कि वे भासते समय हमारी सत्ता से कुछ अंश लेकर, नाम-रूप का आवरण ओढ़कर भासने लगते हैं। यदि रस्सी और अंधेरा न हो तो सर्प की भ्रान्ति कैसे हो? सारी जादूगरी जादूगर पर टिकी हुई है। सारे जल के विकार जल पर ही टिके हुए हैं। किन्तु नाम-रूप के आवरण से वे जल तत्त्व को ढककर जल की क्षणिक प्रतिभासिक सत्ता से ही सत् जैसे दिखाई देते हैं। कबीर ने भी माया की छाया के साथ उपमा दी है।

माया छाया एक सी विरला जाने कोय।
भक्ता के पीछे फिरे सम्मुख भागे सोय।

प्लेटो ने भारतीय दर्शन के इस तत्त्व को ऐसे ही सुंदर उपमा से समझाया। गुफा के द्वार पर सूर्य का प्रकाश या यज्ञ-अग्नि का प्रकाश है। हमारे हाथ संसार की भोग-विलास की हथकड़ी से बंधे हुए हैं। पीछे के प्रकाश से हमें अपनी ही छाया सामने दीवार पर पड़ती दिखाई देती है। पीछे मुड़कर देखने में असमर्थ हम छाया को ही सत् मानकर उसकी ओर लपकते हैं पर हाथ कुछ नहीं लगता। प्लेटो ने इस यूनानी कथा को भी प्रतीकात्मक रूप से स्वीकार किया है कि ज्यूज (Zeus) नामक देवता द्वारा Phanes को निगल जाने के पश्चात् एक संसार-रूपी विशाल अण्डा हुआ जिसमें सारी सृष्टि प्रकट हुई। यह मनुस्मृति में वर्णित हिरण्यगर्भ रूपी एक सुनहले अण्डे (ब्रह्माण्ड) का ही वर्णन है जिसमें से ब्रह्मा और सारी सृष्टि उत्पन्न हुई।

रोलिनसन (Rawlinson) नामक इतिहासकार का कथन है कि ये समानताएं इतनी अधिक निकट और मिलती-जुलती हैं कि उन्हें एक आकस्मिक घटना कहकर टाला नहीं जा सकता। प्लेटो की भाषा और उपनिषदों में कभी-कभी विस्मयकारी समानता दिखाई देती है। गार्वे का यह कथन बहुत सच है कि यूनानी विचार जगत् ईरान के माध्यम से भारतीय विचारधारा से प्रभावित हुआ और सांख्य और वेदांत के दर्शन भारत से ही यूनान में पहुँचे।

प्लेटो ने काव्यात्मक प्रतिभा के साथ अपने विचारों को बड़े रोचक वार्तालाप में प्रकट किया। लानाकुपर (Lana Cooper) के मत में वार्तालाप शैली नाटक के बाद यूनानी प्रतिभा द्वारा आविष्कृत सबसे श्रेष्ठ साहित्यिक शैली है। वास्तव में प्लेटो से बहुत पहले काव्यात्मक वार्तालाप शैली में आध्यात्मिक रहस्यों को प्रकट करने की परंपरा भारत में प्रतिष्ठित हुई थी। स्वयं वेद ही काव्यमय आध्यात्मिक-ग्रंथ हैं। उपनिषद् एवं गीता में काव्यात्मक वार्तालाप में आध्यात्मिक तत्त्वों का निदर्शन है। गीता में काव्य-संगीत, कथोपकथन के साथ-साथ नाटकीय तत्त्व भी हैं। इसलिये प्लेटो अपनी आध्यात्मिक कविताओं व काव्यात्मक कथोपकथन शैली के लिये भारत के ही ऋणी हैं।

उपनिषद् में नारद एवं सनतकुमार का रोचक संवाद है जिसमें देवर्षि नारद पाँच वर्ष के ब्रह्मज्ञानी बालक सनतकुमार से प्रार्थना करते हैं कि उन्होंने सब विद्याएं प्राप्त कर ली हैं फिर भी उन्हें शांति नहीं मिली। नारदजी अपनी सारी विद्याएं गिनाते हैं। इस पर सनतकुमार पूछते हैं नारदजी से कि आपने सब कुछ जान लिया तो जानने वाले को भी जाना कि नहीं? इस प्रकार नारदजी को अपनी भूल का भान होता है। सनतकुमारजी बताते हैं दृश्य का सारा ज्ञान अपरा-विद्या (छोटी विद्या) है। इससे ऊपर पराविद्या है जिसमें द्रष्टा का ज्ञान, ज्ञाता का ज्ञान, प्राप्त होता है। हूबहू ऐसा ही सम्वाद प्लेटो तथा उनके शिष्य अरस्तू के बीच हुआ। अरस्तू ने सब विज्ञानों का अध्ययन करने के पश्चात् फिजिक्स पर अध्ययन करके पूछा कि मैंने पदार्थ और ऊर्जा का पूरा अध्ययन कर लिया है। फिर भी मुझे लगता है कि बहुत कुछ छूट गया है। तब प्लेटो मुस्कराकर कहता है कि फिजिक्स के अध्ययन से ऊपर एक अन्य विद्या है जिसका नाम Metaphysics है। Physics से लौकिक शक्ति प्राप्त होती है और Metaphysics से आध्यात्मिक शांति। यह स्पष्ट ही अपराविद्या-पराविद्या का भेद, दृश्य और द्रष्टा का भेद, जगत् और जगदीश्वर का भेद है।

प्लेटो ने अपने दर्शन को स्थापित करने के लिये दृश्य जगत् की वस्तुओं और अदृश्य विचारों का भेद दिखाया है। जो नाम-रूपात्मक वस्तुएं हम इन्द्रियों द्वारा अनुभव (Perceive) करते हैं उन्हें Percept (इन्द्रियगोचर) विषय कहा जाता है। जैसे राम, श्याम, मोहन, सोहन आदि सभी व्यक्तिविशेष हैं जो किसी विशेष देश में विशेष काल में हुए और फिर कालांतर में विलुप्त भी हो गये। अनेक व्यक्तियों

के देहान्त की घटना देखकर हमने एक विचार बनाया—मरणधर्मा। अनेक अलग-अलग मनुष्यों के इन्द्रियजन्य अनुभवों को लेकर हमने एक सामान्य मनुष्य का विचार बना लिया है। इस सामान्य विचार को Concept कहा गया। राम, श्याम, मोहन, सोहन सभी Percept हैं क्योंकि इन्द्रियों से Perceive किये जा सकते हैं। किन्तु सामान्य मानव एक Concept है उसे केवल Conceive ही किया जा सकता है Perceive नहीं। वस्तु जड़ जगत् में होती है, विचार जड़ जगत् में नहीं केवल बुद्धि में रहता है।

Man और Mortal दोनों को जोड़कर एक तर्कशास्त्र का कथन बनाया गया Man is Mortal अर्थात् मनुष्य मर्त्य है। वास्तव में जिस सामान्य मनुष्य के विषय में कथन किया गया है वह किसी देश अथवा काल में जन्मा ही नहीं, मरेगा भी नहीं। हर व्यक्तिगत मनुष्य जन्मता और मरता है। वह दृश्य है और परिवर्तनशील है। किन्तु मनुष्य के सामान्य रूप के विषय में विचार न जन्मता है और न मरता है। वह सदा एक रहने वाला विचार है। विशेष वस्तुएं बदल जाने वाली एवं विकारी हैं किन्तु सामान्य विचार न बदलने वाला है और न विकारी है। व्यक्तिगत वस्तु विनाशी है सामान्य विचार अविनाशी है। प्लेटो ने कहा कि विश्व की चरम परम सत्ता भी वस्तु नहीं एक विचार है, एक आइडिया है। इसलिये विचारों की सत्यता को प्रमाणित करने वाले प्लेटो के दर्शन को Idealism कहा गया है। भारत में इसी को अध्यात्मवाद या प्रत्ययवाद भी कहा जाता है। विशेष टेबल सबने देखा है पर सामान्य टेबल एक विचारमात्र है, वस्तु बहिर्जगत् में है जो परिवर्तनशील एवं विनाशी है। विचार अन्तर्जगत् में है जो अपरिवर्तनशील एवं अविनाशी है। प्लेटो भारत के अध्यात्मवाद को ही अपनी तार्किक शैली में प्रस्तुत कर रहा है। इस तर्क में तनिक विस्मय की बात है कि Idealism शब्द Ideal से न बनकर Idea विचार से बना है। इसका अर्थ तत्त्व विचार या तत्त्व चिंतन से हो सकता है। विचार या चिंतन चेतना द्वारा ही संभव है। चेतन तत्त्व आत्मा ही है जो सारे दृश्यजगत् का द्रष्टा है।

अरस्तू

प्लेटो का शिष्य अरस्तू एक महान् मेधावी एवं ज्ञान की सब विधाओं में प्रवेश रखने वाला सर्वस्पर्शी, प्रतिभासंपन्न महापुरुष था। उसकी Politics ने आधुनिक राजनीति दर्शन की नींव रखी। उसकी Politics में दुखांत नाटकों की एकता के प्रथम बीज मिलते हैं। उसका On the Soul विषय का निबंध आधुनिक मनोविज्ञान की नींव बन गया। वह प्रथम मार्गदर्शक जीव-वैज्ञानिक भी था। वह विचारों के सम्बन्ध और साहचर्य के सिद्धांत का भी द्रष्टा था। वह अनेक विज्ञानों का प्रथम वैज्ञानिक तथा अनेक विचारों का प्रथम विचारक माना जाता है। प्लेटो स्वयं उसे अपने विद्यालय की प्रतिभा Intellect of School मानता था और विचार जगत् उसे Father of all Sciences मानता है।

मेकेदोनिया के राजा फिलिप ने अपने होनहार पुत्र सिकन्दर को अरस्तू के पास शिक्षा के लिये समर्पित किया। उसने अरस्तू के जन्म के नगर Stargirite का पुनर्निर्माण करा दिया। सिकंदर कहता था—'मेरे पिता ने मुझे जन्म दिया पर गुरु अरस्तू ने मुझे जीवन को योग्यतापूर्वक जीना सिखाया। मेरे पिता मुझे स्वर्ग से धरती पर लाये, गुरु ने पुनः स्वर्ग प्राप्ति का रास्ता बताया।' इस गुरु-भक्ति में भारतीय परंपरा की ही छाप है। सिकंदर ने अपने गुरु को गुरुदक्षिणा में धन-संपत्ति के अतिरिक्त अत्यंत अमूल्य ग्रंथों की पाण्डुलिपियाँ भी भेंट कीं जो उसे अपने शासन एवं दिग्विजय के काल में प्राप्त हुईं। सिकंदर ने अपने गुरु की जीव-वैज्ञानिक खोजों के काल में एक हजार व्यक्ति सहयोग के लिये दिये जो पशु-पक्षियों और जलचरों की आदतों का अध्ययन कर अरस्तू के वैज्ञानिक विषय-लेखन में सहयोग करते थे।

अरस्तू का पिता डॉक्टर था। गुरु दार्शनिक था और शिष्य राजा। अरस्तू में दार्शनिक और वैज्ञानिक दोनों का समन्वय था। किन्तु राजा का गुरु होने का अहंकार नहीं था। भौतिक विज्ञान से तत्त्वज्ञान Metaphysics की ओर बढ़ने की प्रेरणा भी उसको प्लेटो के उपदेश से प्राप्त हुई। अपने ग्रंथ Orgnan में उसने तर्कशास्त्र के नियम दिये। अपने Rhetroic में उसने शास्त्रार्थ एवं वाद-प्रतिवाद पर बहुत सुंदर रीति से लिखा। अपने Physic, Metaphysic Topics नामक ग्रंथों में उसने विचारों को बड़ी सूक्ष्मता से प्रदर्शित किया। अपने Ethics और Politics नामक ग्रंथों द्वारा पश्चिमी जगत् के मानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। Dryden का कथन है कि उसने अपनी विद्या को विश्वव्यापी ज्योति बना दिया। Thomson (थामसन) का कथन है कि विगत दो हजार वर्षों में सब देशों के सब लोग अरस्तू की शरण में उससे शिक्षा पाने के लिये आये।

अरस्तू स्वयं पश्चिम का महानतम विचारक एवं वैज्ञानिक होते हुए भी भारतीय ज्ञान के लिये ललक रखता था। मेकरिनल नामक प्रसिद्ध लेखक ने सिकंदर के आक्रमणों पर एक पुस्तक लिखी। मेगस्थनीज नामक इतिहासकार ने अपने ग्रंथ Indica में उसका उद्धरण देते हुए लिखा है कि सिकंदर जब भारत पर आक्रमण के लिये निकला तब उसके गुरु अरस्तू ने उसे आदेश दिया कि वह भारत से लौटते समय उसके लिये दो उपहार लेकर आवे—एक गीता और दूसरा भारत का श्रेष्ठ संत। सिकन्दर जब भारत से लौटने लगा तब उसने ओनियोक्रोटस नामक अपने प्रतिनिधि को एक भारतीय संत को ढूंढ़कर साथ ले चलने के लिये भेजा। एक संत तो साथ चल पड़ा परन्तु दूसरे ने जिसका नाम डेंडीमीज था, लिखा है—साथ चलने के लिये प्रस्तुत नहीं हुआ। डेंडीमीज का भारतीय नाम दण्डी स्वामी हो सकता है। सिकंदर के दूत ने कहा—'जूपीटर का पुत्र आपको धन से मालामाल कर देगा। भारतीय संत ने हंसकर उत्तर दिया—'हमारे रहने के लिये शस्य श्यामला भारत, पहनने के लिये

वल्कल वस्त्र, पीने के लिये गंगाजल, खाने के लिये पावभर आटा बहुत है। हम आत्मधन के धनी हैं। वह आध्यात्मिक दृष्टि से दरिद्र सिकंदर हमें क्या दे सकता है!सिकंदर की मृत्यु के पश्चात् यूनानी लोगों का अरस्तू के प्रति भी मनोभाव बदल गया। वह यूनानियों की मानसिक चंचलता तथा सुकरात के प्रति किये गए अन्याय को जानता था। इसलिये वह राजधानी एथेंस को छोड़कर एक द्वीप के गांव में जा बसा। जहाँ उसका 312 ई. पूर्व में उस आत्मनिर्वासन-काल में ही देहान्त हो गया।

यूनान के मानस पर भारत का आकर्षण

यूनानी लोग मूलतः आर्यों की ही एक शाखा थे जो वहाँ जा बसी थी। सिकंदर जिस इष्टदेवता जूपीटर का पुत्र माना जाता था उसका जूपीटर नाम संस्कृत के द्ययुःपितर से बना है। द्ययुः का अर्थ है आकाश अथवा आकाश के समान अखण्ड निर्लिप्त व्याप्त ब्रह्म। पितर का अर्थ है पिता। वह परमेश्वर ही सृष्टि का पिता है। यह वैदिक मान्यता भी यूनानी लोगों ने भारत के आर्यों से ग्रहण की। वेद में पृथ्वी को माता और द्ययुः को पितर ही कहा गया है। यूनानी लोग भी भारतमाता के समान अपने देश का नाम मातृवाचक (स्त्रीलिंग वाचक) रखते थे। अयोनिया, ग्रेरेसिया, बोहीनिया, मेक्डोनिया, स्पार्टा आदि यूनानी इतिहासकारों ने यूरोप एवं अन्य देशों के इतिहास व भूगोल लिखे तो अधिकांश का नाम स्त्रीलिंग वाचक बना दिया। जैसे ब्रिटेनिया, यूगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया, फ्रांसिसया, पार्टगिजिया, पुरसिया, ईटालिया, जार्जिना, रोमानिया, रसिया, रोबिन परसिया, इंडिया, इन्दोनिजिया, मंगोलिया, कोरिया, साईबेरिया, मध्य-पूर्व, मेसोपोटामिया, बेबीलोनिया, आदि। रोमन लोगों ने भी परमात्मा का नाम जूपीटर माना। ग्रीक और रोमन दोनों बृहस्पति ग्रह (देवगुरु) को भी जूपीटर कहते हैं।

यूनानी लोगों का परमात्मा Zius कहलाता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति 'द्ययुः' शब्द से हुई है। द्ययुः शब्द का अर्थ आकाश या ब्रह्म पहले ही स्पष्ट हो चुका है। ब्रह्म की आकाश से उपमा देने के लिये भारतीय वाङ्मय में बार-बार खम् ब्रह्म यह प्रयोग आया है। यूनानी धर्म परंपरा में Zius को आकाश का तेजस्वी देवता माना गया है जो भारत में देवराज इन्द्र के समान वज्रनाद करता है।

यूनानियों की देवी एथीन तथा रोमन देवी मिनरबा (Minerba) दोनों ज्ञान की देवी सरस्वती के ही रूपान्तर हैं। यूनानियों का युद्ध देवता Ares है। यह शब्द संस्कृत 'अरी' से बना हुआ प्रतीत होता है। रोम ने Mars (मंगल) को युद्ध का देवता माना। आकाश में मंगलग्रह लाल रंग का होने से उसे संस्कृत में अंगारक कहते हैं। क्रोध में मनुष्य की आंखें अंगार के समान लाल हो जाती हैं। मंगलग्रह भारत की परंपरा में भी अनिष्ट, अशांति और विग्रह का प्रतीक माना जाता है। जिस

व्यक्ति की कुण्डली में चौथे, आठवें या बारहवें स्थान में मंगल हो उसे ज्योतिषी मंगली कहते हैं। मंगली वर का विवाह मंगली कन्या से ही होना चाहिये अन्यथा दोनों बहुत कलह करते रहते हैं तथा एक-दूसरे के प्राणों के लिये भारी हो जाते हैं। मंगल शब्द तो पार्वती, पतिव्रता स्त्री, सफ़ेद दूब, नीली दूब एवं हलदी के लिये प्रयोग होता है। किन्तु मंगलमुखी का अर्थ वेश्या है।

सबसे विस्मय की बात यह है कि संस्कृत का मंगल शब्द बिल्कुल भिन्न अर्थ में प्रयोग होता है। इसका शाब्दिक अर्थ है—शुभ, कल्याण, सौभाग्य, विष्णु आदि। इसकी व्युत्पत्ति है—मंगल (म) अर्थात् पाप को गलाने वाला। यूनानी देवता अपोलो सौंदर्य, संगीत, कला, नगर निर्माण तथा भविष्यवाणी का देवता माना जाता था। बाद में मित्र के प्रभाव से इसे मित्र (सूर्य) के अर्थ में भी स्वीकार कर लिया गया है। रोमन लोगों ने ईसा से 300 वर्ष पूर्व इसे अपनी देव-पंक्ति में प्रमुख स्थान प्रदान किया।

ग्रीक योद्धा हरिक्लिस की गाथा में भी श्रीकृष्ण एवं बलराम के चरित्र की छाया है। Alcmene के भाइयों को अत्याचारी राजा Taphians (टेफियन) ने मरवा डाला था। Alcmene अपने पति Amphitrion के साथ गृहस्थ आश्रम संपन्न करने के लिये तब तक प्रस्तुत नहीं होती जब तक वह उसके भाइयों की हत्या का बदला न चुका ले। कहा जाता है कि Zeus नामक देवता के वरदान से उसे बड़ा शक्तिशाली पुत्र उत्पन्न हुआ।

उसे हेरा HERA का गौरव कहा गया। Heracles उसी शब्द का लातीनी उच्चारण Hercules है। Hercules जब बच्चा ही था तब उसने पालने में ही दो सर्पों को हाथ से पकड़कर मार डाला था। जिस प्रकार श्रीकृष्ण के पूर्व सात भाई-बहिनों को कंस ने मार डाला था और कंस का नाश करने के लिये कृष्ण प्रकट हुए। उसी प्रकार Hercules का जन्म का हेतु भी आततायी-जनों का नाश करना था। जैसे श्रीकृष्ण ने नाग-नथन किया। Hercules को सर्पों का गला घोंटते हुए दर्शाया गया है। जिस प्रकार कृष्ण कुश्ती, धनुर्विद्या और वंशीवादन सभी में रुचि रखते थे, Hercules भी कुश्ती, रथचालन, धनुर्विद्या और वीणावादन में प्रवीण था। जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने गोरक्षा की, Hercules ने गऊओं की रक्षा के लिये 8 साल की उम्र में सिथरन पर्वत के शेर को मारा। श्रीकृष्ण और बलराम ने मथुरा में बड़े-बड़े, दिग्गज हाथियों को उठाकर आकाश में फेंक दिया। उसी प्रकार Hercules ने एक विशाल जंगली सूअर को, एक भयानक सांड को उठाकर आकाश में घुमाते हुए फेंक दिया। जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने भयानक कालिया नाग-नथन किया उसी प्रकार Hercules ने एक विशाल हाइड्रा (अनन्तमुखी सर्प के आकार वाले) दैत्य को मारा। उसने अनेक आततायी योद्धाओं को भी मारा तथा अपने युग का सबसे बलवान व्यक्ति माना गया। भगवान श्रीकृष्ण कंस के काल में दुष्टसंहारक, शूर-

शिरोमणि माने जाते हैं। विलियम जोन्स का मत है कि Hercules शब्द हरि कुलस्य अर्थात् हरि के कुलवाला से ही बना होगा। चाहे Hercules में श्रीकृष्ण का चरित्र और ज्ञान दृष्टिगोचर नहीं होता किन्तु उसकी शूरवीरता और आचरण में श्रीकृष्ण और बलराम के चरित्रों की ही नकल है।

द्वितीय पर्दा

अरब देश में भारतीय प्रभाव एक स्वतंत्र शोध का विषय है। जब हजरत मुहम्मद के इस्लाम की स्थापना से पूर्व वहाँ सुस्पष्ट भारतीय प्रभाव सिद्ध होता है तो ईसा के काल में तथा उससे पूर्व भारतीय प्रभाव में क्या संदेह हो सकता है? अरब में इस्लाम के उदय से पूर्व अनेक भारतीय (विशेषकर ब्राह्मण) बड़ी संख्या में रहते थे जो मक्केश्वर महादेव की पूजा करते थे। स्वयं हजरत मुहम्मद के चाचा अबुल हिकम की भारत एवं शिव की स्तुति में लिखी कवितायें प्राप्त हुई हैं। वहाँ की प्राचीन कविताओं में विक्रमादित्य और भारत की स्तुतियाँ भी मिलती हैं।

अरब में आज से लगभग 3000 वर्ष पूर्व आकाश से गिरने वाले तारे के गर्म लावे से एक अर्ध-गोलाकार शिवलिंग बन गया था। उसकी पूजा खजूर की पत्तियों एवं आबे-जमजम के पानी से होती थी। पुजारी कुरैशी कहलाते थे। हजरत मुहम्मद साहब कुरैशी थे। किन्तु अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे। केन्द्रीय पिंड के चारों ओर 360 देवता थे। हजरत साहब ने मंदिर के पंडों से विरोध होने पर सब मूर्तियाँ तोड़ दीं। किन्तु बड़े संगे-अस्वद (काला अश्वेत पत्थर) की मूर्ति को नहीं तोड़ा। उसे चूमा। खजूर की पत्तियों एवं आबे-जमजम के पानी से इसकी पूजा (ईडा) की।

नमाष्ट से नमाज शब्द बना। ईडा-गृह से ईदगाह बना। शिवरात्रि से शबे-बारात बना।

मखा (यज्ञ)	मक्का
काव्य : शुक्राचार्य असुरों का गुरु	काबा
अश्वेत (काला)	संगे-अस्वद (काला पत्थर)
नमाष्ट	1 नमाज
शिवरात्रि (शिव की बरात वाली रात्रि)	शबे-बारात (शबे-रात्रि)
गंगाजल	आबे-जमजम (मक्का का वह पानी का स्रोत जिसके जल में कीड़े नहीं पड़ते)
विल्व पत्र	खजूर की पत्तियों से पूजना
तीर्थयात्रा में पवित्र नये वस्त्र	हज्ज में नये सफेद वस्त्र बिना सिले हुए
धोती पहनना	धोती (बिना लांग) एवं चादर

तीर्थ में सिर मुण्डन	हज्ज में सिर मुण्डन
तीर्थ मंदिर की परिक्रमा	काबा के मंदिर की परिक्रमा
उपवास	रोजा
शंकर के मस्तक पर शशिकला	नया चन्द्रमा अरब एवं मुस्लिम देशों का ध्वज चिह्न
दो प्रकार के शिव पूजन	असुर भाव से शिव पूजन के कारण
(1) सात्त्विक भाव—शंकराचार्य, मार्कण्डेय—सोमवार पवित्र	असुरगुरु शुक्राचार्य के शुक्रवार को विशेष जुमा
(2) आसुरी भाव—रावण, त्रिपुरासुर, भस्मासुर—शुक्रवार	(समूह) की नमाज

अरब में बसे हुए एक ब्राह्मण परिवार में ही एक महान् ज्योतिषी हुआ जिसका नाम यवनाचार्य प्रसिद्ध है और जिसका भारतीय ज्योतिष-ग्रंथों में उल्लेख है।

अरबी भाषा में संस्कृत के शब्द

संस्कृत	**अरबी**	**अंग्रेजी**	**अर्थ**
	अम्बर		
	मुश्क	Musk	कस्तूरी
सुंठी	जेंजाबील	Ginger	सोंठ
कर्पूर	काफूर	Camphor	कपूर
कपिल	फ़िल क्फिल	Kapil	कपिलवस्तु
चन्दन	सन्दल	सन्दल	(चन्दन) निवासी बुद्ध
तांबूल	तंबूल	Betel	पान
कर्णफूल	करनफूल	Clove	लवंग
नीलोत्पल	नीलोफर	Nlofar	नीलोफर
बेल	बेल	Bel	बेल
जयफल	जैफल	Jaiphal	जायफल
ईडागृह	ईदगाह	Idgah	पूजा का घर
त्रिफला	इतरीफल	Triphala	त्रिफल
कर्पास	क़ैफ़ास	Cottion	नारियल
अम्बुज	अम्बः, आम	Mango	आम
पिप्पली	फ़ुलफ़ुल	Pepper	पीपर (काली मिर्च)

तृतीय पर्दा

हमारे आचार्य अपना सब धन गरीबों को लुटाकर, भगवा वेश पहनकर एवं कमण्डल धारण करके हिमालय की बर्फानी चोटी पार करके तिब्बत चले गये। समुद्र की उत्ताल तरंगों पर कुछ लकड़ी के गट्ठे बांधकर तैरते हुए, कभी समुद्री जल-दस्युओं द्वारा मारे जाते हुए, असंख्य जोखिम सहते हुए पीढ़ी-दर-पीढ़ी, कभी गुरु गया तो कभी चेला गया, फिर उसका चेला चला। चले गये दूर-दूर और एक दिन इंडोनेशिया के साढ़े तीन हजार द्वीप हिन्दू संस्कृति के प्रकाश से जगमगाने लगे। इंडोनेशिया समुद्री मार्ग से चले गये। अमरीका तक चले गये।

History of मेक्सिको में, जो मेक्सिको की Government ने छापी है, उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। मेक्सिकन सरकार स्वीकार कर रही है। पुस्तक के पृष्ठ तीन पर यह स्पष्ट लिखा हुआ है कि उस धरती पर जिसे आज अमरीका कहा जाता है उस पर यदि किसी ने सबसे पहले चरण रखा तो वे वो लोग थे जो भारत से महान शक्तिशाली धारा के रूप में निकले दक्षिण-पूर्व एशिया की तरफ प्रचार करने के लिये। दक्षिण पूर्व एशिया के साढ़े तीन हजार द्वीपों में, इंडोनेशिया में प्रचार करने के बाद वे लोग वहाँ से समुद्री मार्ग से ही सीधे प्रशान्त महासागर से अमरीका यानी मेक्सिको, पीरू, बलुनिया, अर्जेण्टीना जा पहुँचे।

मैं आपको सत्य बताता हूँ। 60-65 प्रतिशत अमेरिकन भी नहीं जानते, इससे ज्यादा भी नहीं जानते होंगे कि अमरीका का नाम अमरीका क्यों पड़ा? अमरीका नाम कैसे पड़ गया? यदि कोलम्बस ने अमरीका को खोजा तो उसका नाम कोलम्बिया होना चाहिये था। कोलम्बिया नामक एक देश है। कोलम्बस के नाम को कहीं-कहीं याद रखा जाता है। कोलम्बस के नाम पर कई जगह विश्वविद्यालय बनाये हैं। लेकिन देश का नाम कोलम्बस के नाम पर नहीं हुआ। यह...यह अमरीका नाम कहाँ से आया? कोलम्बस के बाद स्पेन के लोगों में से एक दूसरा बड़ा ही क्रूर अत्याचारी आक्रान्ता, जिसने बहुत अत्याचार वहाँ जाकर किये। कोलम्बस ने भी कम अत्याचार नहीं किये। कोलम्बस के साथियों ने भी बहुत अत्याचार किये। उसके साथ अत्याचार की जिसने अति कर दी उसका नाम था अमेरिगो। उस अत्याचारी अमेरिगो के नाम पर आज देश का नाम अमरीका हो गया। बहुत से अमेरिकन जानते ही नहीं हैं।

उस अमरीका में, जिसमें सबसे पहले भारतीयों ने चरण रखा उस अमरीका में, जब विश्वविजेता स्वामी विवेकानंद पहुँचे तो उन्होंने आधुनिक भारत की पुनः जगत्गुरु की मुद्रा स्थापित कर दी। Lady मेकलोड कहती है—ईश्वर ने अपने दिव्य देवदूत संसार के सब देशों में भेजे पर कोई ऐसा अभागा देश था जहाँ ईश्वर के किसी देवदूत ने जन्म नहीं लिया तो वह अभागा देश अमरीका था। यदि अमरीका की

धरती पर कभी साक्षात् ईश्वर ने चरण रखे हैं तो स्वामी विवेकानंद के रूप में। अमरीका की भावी संततियाँ यह याद करके, सुनकर पुलकित हो जाया करेंगी कि उस ऋषितुल्य लोकनायक की चरणधूलि के स्पर्श मात्र से सारा अमरीका देश पुण्य-पावन हो गया। अमरीका को प्रथम खोजने वाले भारतीय। अमरीका को पुनः पावन बनाने वाला, अमरीका में पुनः वेदांत की ध्वजा को और भारतीय संस्कृति की विजय-वैजयंती को फहराने वाला भारतीय। इसलिये अमरीका को भारत ने खोजा और भारत ने जीता।

यह बहुत ही रोमांचक अध्याय है। सन् 1925-26 में दिल्ली में हिन्दुस्तान टाइम्स। मेरे शरीर का जन्म सन् 1925 का है, तब की बात है। तो दिल्ली में हिन्दुस्तान टाइम्स के जो Chief Editor थे वे एक बड़े महापुरुष थे जिसे आप मदनमोहन मालवीय के रूप में जानते हैं। उनके पास एक पत्रकार काम करता था उसका नाम चमनलाल था। वह स्वामी श्रद्धानंदजी का संन्यास-पूर्व का जामाता था। उसने मालवीयजी से कहा—पत्रकारिता के क्षेत्र में कुछ नयी खोज के लिये और कुछ नया मार्ग खोजने के लिए, कुछ नयी उद्भावनाओं के लिए, कुछ नया प्रकाश लाने के लिये, कुछ रोमांचकारी कार्य करने के लिये मेरा मार्गदर्शन करें। उन्होंने कहा—अच्छा बेटा! तुम ऐसा करो, अमरीका चले जाओ। वहाँ जाकर खोजो अमरीका की प्राचीन सभ्यता-संस्कृति क्या थी?

तो वह अमरीका पहुँचा। अमरीका में 15 अगस्त, 1927 में (भारत के स्वाधीन होने के बीस वर्ष पहले) उसने एक पुस्तक लिखी—The end of an Empire 'एक साम्राज्य का अंत।' उस पुस्तक के प्रारंभ में ही प्रथम पंक्ति में लिख दिया—British regime in India is going to come to an end. भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का अंत आने वाला है। इन पंक्तियों पर उसे बंदी बना लिया गया और बंदी बनाकर देश-निकाला दे दिया।

तो वह वहाँ से मेक्सिको चला गया। मेक्सिको गया तो वहाँ के लोगों के चेहरे देखकर दंग रह गया। अमरीका के गोरे-चिट्टे चेहरे से उनका चेहरा भिन्न था। उनका चेहरा कुछ गंधवी रंग का था। भारत से मिलता-जुलता था। मुखाकृतियाँ भी भारत से मिलती-जुलती थी। उसको बड़ा अचंभा हुआ। अरे! यह क्या हुआ? यह कौन-सा देश है? अब चित्र देखिये—मेक्सिको की एक स्त्री है जो तंदूर पर रोटी लगवाने जा रही है और मस्तक के ऊपर कपड़ा जो है वह बिल्कुल ऐसे पहन रखा है जैसा भारतीय स्त्रियाँ पहनती हैं। उसे बहुत अचंभा हुआ। उसने देखा कि लोगों के चेहरे भारतीयों से मिलते-जुलते हैं, बालक-बालिकाओं के चेहरे, सबके चेहरे देखकर हैरान हो गया। उसने पूछा—आप लोग कौन हैं? उन्होंने कहा 'मय' हैं। 'मय' क्या होता है? 'मय' को अंग्रेजी में लिखा जाता है तब होता है माया। जैसे

ठरा को पढ़ते हैं रामा। कृष्ण को कृष्णा पढ़ते हैं। अंग्रेजी में छोटी 'अ' और बड़ी 'आ' की तमीज कम है। इसलिये ह्रस्व और दीर्घ आकार का विशेष अंतर करते नहीं। पढ़ा ऐसे ही जाता है। लोगों ने माया बोलना शुरू कर दिया।

उसे बड़ा अचंभा हुआ, माया क्या होता है? वह कई घरों में ले जाया गया। देखा कि अमरीका की स्त्रियाँ जो हैं वो तो ब्लाउज और स्कर्ट—ये चीजें पहनती हैं। उसको बड़ा अचंभा हुआ। वहाँ जाकर देखा तो साड़ी पहने हुए है। स्त्रियाँ साड़ी पहने हुए हैं और सिर साड़ी से ढका हुआ है। वह बड़े अचंभे में पड़ा, यह क्या चीज है! चेहरे भी भारतीय। वेशभूषा भी भारतीय। देखा कि उसको एक घर में भोजन करने ले जाया गया। उसको अचंभा हुआ कि सारे अमरीका में लोग टेबल-कुर्सी पर खाते हैं। वहाँ पर देखा, घर में चौका बना हुआ है। चौके में जूता कोई नहीं ले जाता है। वहाँ पर बिछा दिया गया आसन। कपड़ा बिछा दिया गया। उसने देखा अमरीका में प्लेटों से भोजन करते हैं यहाँ थाली में भोजन आ गया है। उसे महा अचंभा हुआ। बाकी लोग तो Bakery का ब्रेड खाते हैं। यहाँ तो तंदूर की रोटी आ गई। उसने देखा कि रोटी को पुकारने का नाम 'तोतला' और 'रोटली'। उसने देखा कि गुजराती का शब्द रोटली, तोतला यह कहाँ के शब्द आ गये? उसने कहा कि तुम्हारी भाषा क्या है? उन्होंने कहा—'मय।' कौन देश के लोग—'मेक्सिको।' भाषा 'मय', जाति 'मय', देश मेक्सिको। उसने कहा तुम्हारा धर्म क्या है? उन्होंने कहा—आजकल क्रिश्चियन। पहले का धर्म उन्होंने कहा हमारे म्यूजियम में देखो। हमारे मंदिरों में देखो। म्यूजियमों में, मंदिरों में उसने खोज शुरू की। खाने में दही-बड़े हैं, सब भारतीय चीजें हैं। उनके खेल भारतीय हैं। अनेक शब्द, कम से कम 50 प्रतिशत भारतीय मूल के उनकी भाषा में भरे पड़े हैं। उसे महान् अचंभा हुआ, इतने अधिक शब्द कहाँ से आ गये! मंदिरों में जाकर देखा तो देखा कि शिव की मूर्तियाँ! ऊपर हमारी प्रदर्शनी में देखें शिव और गणेश, पीरू, दक्षिण अमरीका। शिव हैं जटाजूट। गले में सर्पों की माला है, भुजा में माला है सर्प की। नीचे गणेश हैं। सूंड ऊपर उठाये हुए हैं, हनुमान्जी की मूर्ति का खण्ड मिला। योगी की मूर्तियाँ मिली हैं। एक शिव की मूर्ति में मस्तक से गंगा। गले में रुद्राक्ष माला, नीचे कोपीन धारण किये हुए। दुर्गा की मूर्ति मिली। भारत से थोड़ा कला का अंतर है। वहाँ के कलाकार की कलम जैसी चली होगी वैसा बनाया होगा। लेकिन शेर के ऊपर वैसी की वैसी खड्ग लिये हुए मूर्ति, शेषशायी विष्णु की मूर्ति, योगी की मूर्तियाँ। मंदिर में लोगों का आह्वान करने के लिये शंख बजाती हुई व्यक्ति की मूर्ति। बिल्कुल आप समझेंगे अजंता की मूर्ति। ऐसी सुंदर मूर्तियाँ उसको मिली। सूर्य का मंदिर मिला। सब चीजें मिली।

उसने एक पुस्तक लिखी, 'हिन्दू अमरीका।' मालवीयजी ने बहुत आशीर्वाद

दिया। डॉ. राधाकृष्णन ने भी उस पर बहुत अच्छी सम्मति लिखी। सरोजिनी नायडू ने भी लिखा कि भारत के जगद्गुरुत्व का एक नया अध्याय खुला। पंडित नेहरू ने लिखा कि दुनिया को चुनौती देने वाले इतिहास का एक नया अध्याय है। उस पर उसने एक रंगीन फिल्म बनाई।

अब मैं जब युवा हुआ। उनके संपर्क में आया तो मुझे प्रेरणा मिली उनसे। तो मैंने भी अमरीका में जाकर, मेक्सिको में जाकर, बुलगारिया में जाकर, पीरू, क्यूबा, अर्जेण्टीना, ब्राजील में जाकर इन विषयों की खोज की। मैंने भी अनेक मूर्तियाँ, चित्र आदि संगृहीत किये और मुझे लगा कि सचमुच ऐसा विषय है जिस पर कुछ लोगों को पूरा जीवन लगाकर के इस विषय को प्रकाश में लाना पड़ेगा।

'पीएन्ट एक्सर' नामक एक विद्वान् है। उसने कहा कि हमारे सभी यूरोपवासियों के स्वाभिमान को चाहे कितनी भी चोट लगे, यह मानना पड़ेगा कि यूरोपवासियों से बहुत पहले भारतवंशी लोगों ने और एशिया के लोगों ने अमरीका को खोजा। फिर कहा—मय जाति के जो चेहरे और शरीर की बनावट है, वह भारतीय के समान है। प्रशांत महासागर के पूर्व और पश्चिम के तटों को जोड़ने वाला भारत एशिया के देशों से लेकर अमरीका तक सांस्कृतिक सेतु है जिसने दोनों को जोड़ दिया है। उनके मंदिर भारत के मंदिरों जैसे हैं। अनेक मंदिर पिरामिड शैली के हैं। यदि मैं आपको एक मंदिर इण्डोनेशिया का दिखाऊं और एक मंदिर मेक्सिको का दिखाऊं तो आप निश्चय ही भूल जायेंगे कि कौन कहाँ का है? वे इतने समान हैं। यदि कुछ जो आर्किटेक्चरल डिजाइन है भारत के और मेक्सिको के, दिखाऊं तो आप निश्चय ही पहचान नहीं सकेंगे कि कौन-सा भारत का है, कौन-सा मेक्सिको का है।

अभी भी वहाँ के चर्चों में, जिनको चर्च बना लिया गया, उन चर्चों में आप चले जायें तो उनका आर्किटेक्चर, उनकी भवन निर्माण कला बिल्कुल भारतीय नजर आएगी। उन चर्चों में किसी में आपको घण्टियाँ लटकती नजर आयेंगी, स्वस्तिक के चिह्न नजर आयेंगे, किसी में कमल के फूल नजर आयेंगे। दुनिया भर के किन्हीं चर्चों में नहीं होते हैं वे उनके चर्चों में क्यों? वह निश्चय ही भारत ने उसको खोजा, भारत ने उसको सुसंस्कृत किया। भारत ने उनको सूर्यपूजा, शिवपूजा, गणेश पूजा, दुर्गा की पूजा दी। भारत ने उनको अपनी संस्कृति दी और भारत की अनेक चीजें अभी भी इतने वर्षों के पश्चात् भी वर्तमान हैं। लगभग तीन सौ साल पहले स्पेन के लोगों ने वहाँ जाकर अत्याचार किया और मार-काट कर उन लोगों को खत्म करके उन लोगों को धर्मान्तरित कर ईसाई बनाया।

वहाँ तीन किस्म की जाति के लोग हैं। एक है मय। मय जाति है। मय दानव की जाति। 'मय' कौन है? मन्दोदरी का पिता मय दानव। वे कहते हैं पाताल में

राज्य था। यदि आप भूमण्डल का गोला लेवें और भूमण्डल के गोले में भारत से सीधा एक सलाई को पार करें तो सीधी जाकर दूसरी ओर निकलेगी मेक्सिको में। तो भारत से सीधा और 12 घण्टे का अंतर होने के कारण, दूसरी ओर होने के कारण से भारत की दृष्टि से पाताल है। इसलिये पाताल देश में उसका राज्य था। और जो पुराण में काव्यात्मक शैली में चीजें कही गई हैं, उनको इतिहास और भूगोल की चौखट में कसने पर अनेक तथ्य प्रकट होते हैं। इसलिये वह मय जाति है जिसको 'माया' कहा जाता है।

दूसरी जाति है इंका। इंका जाति के राजा त्रिशूल धारण करते थे। और त्रिशूल के साथ शंख है। ये इंका जाति के लोग हैं। इंका जाति के लोग अपने-आपको सूर्यवंशी कहते हैं, इक्ष्वाकु वंशी कहते हैं। सूर्य की अनेक गाथाएं और रामायण की अनेक परंपराएं अभी भी उनमें जीवित हैं।

तीसरे लोग Aztec हैं वे लोग आस्तिक हैं। आस्तिक से (Aztec) शब्द बना है। उनके यहाँ आज तक Red Indians में और पुराने इंका लोगों और मय में, एक उत्सव होता है जिसको वे राम-सीता Festival कहते हैं। राम-सीता का उत्सव खेलते हैं। रामलीला खेलते है।

सूरीनाम में तो जो भारतीय लोग गये हैं उन्होंने रामलीला शुरू की है। सूरीनाम भी दक्षिणी अमरीका में है। लेकिन इसमें पीरू में, बुलगेरिया में, अर्जेण्टीना में, ग्वेटमाला में। ग्वेटमाला को शोधकर्ता कहते हैं गौतमालय। गौतम का आलय। अर्जेण्टीना के लोग कहते हैं अर्जुन तनय। अर्जुन का पुत्र। विभिन्न नाम लोग खोजते हैं। बड़ा भारी शोध का विषय है। बहुत बड़ा शोध का क्षेत्र खुला हुआ है। बहुत ज्यादा शोध की आवश्यकता है।

वहाँ पर स्पेन के लोगों ने बड़े अत्याचार किये। इंका राजा को कहा कि यदि तुम अपनी भलाई चाहते हो तो ईसाई धर्म ग्रहण कर लो। सूर्य पूजा, राम-सीता Festival छोड़ दो। ईसाई बन जाओ। उसने कहा—यह मेरा परंपरागत विश्वास है, इसे मैं कभी नहीं छोड़ सकता। तब उन्होंने कहा कि यदि तुम नहीं मानोगे तो हम तुम्हें फाँसी पर चढ़ा देंगे। और कत्लेआम शुरू हुआ। उसका हृदय द्रवित हो गया। उसने कहा—प्रजा का कत्लेआम मत करो। प्रजा की रक्षा के लिये मैं ईसाई बनने को तैयार हूँ। उसको एक हाथ में क्रॉस पकड़ाया गया और एक हाथ में बाइबिल पकड़ायी गयी। मैं ईसा मसीह को अपना व्यक्तिगत मुक्तिदाता मानता हूँ। मैं उसकी शरण में जाता हूँ इसकी घोषणा की। एक फूस के ढेर, पुआल के ढेर पर खड़ा करके प्रतिज्ञा करायी गई, हाथ-पैर उसके बंधे हुए थे, प्रतिज्ञा करवाकर पुआल को आग लगा दी गई। जलने से कहा, अरे! यह क्या करते हो? पापी, द्रोही लोगो, तुम लोगों ने कहा ईसाई बनने पर नहीं मारोगे। तुम मुझे जला रहे हो!

उन्होंने कहा— हाँ, हमने कहा ईसाई नहीं बनोगे तो फांसी चढ़ायेंगे, अब तुम ईसाई बन गये हो, हम तुम्हें फांसी नहीं चढ़ा रहे हैं हम केवल तुम्हें जीवित जला रहे हैं। इतने अत्याचार, घोर अत्याचार हुए। उनके अत्याचारों की कहानी आप पढ़ें तो आपका हृदय विदीर्ण हो जाय।

चतुर्थ पर्दा

एशिया में इंडोनेशिया से ऊपर एक द्वीपसमूह है जिसे आज आप फिलिपाइन के नाम से जानते हैं। जहाँ आज से 345 साल पहले भारतीय संस्कृति जगमगा रही थी साढ़े सात हजार द्वीपों में। 345 वर्ष से पूर्व इसका नाम महाकलिङ्ग था। उसके पश्चात् फिलिप से इस द्वीपसमूह का नाम फिलिपाइन हो गया। यूरोप के फिलीप से फिलिपाइन नाम हो गया। एशिया में कोई फिलीप नहीं हुआ।

जब अशोक ने कलिङ्ग पर आक्रमण किया तो कलिङ्ग में बहुत अत्याचार हुआ, बहुत रक्तपात हुआ। उस हाहाकार-चीत्कार को देखकर उसका हृदय परिवर्तन हो गया। उसने कहा, मैंने बड़ा अपराध किया। आपके स्वजनों को, बांधवों को मारा है। इसलिये में प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ। मैंने तलवार तोड़ दी है। उसने कहा—मैं कैसे प्रायश्चित्त करूं? जनता ने कहा, हमारे मरे हुए स्वजन तो लौटकर के नहीं आयेंगे। राजा का हृदय परिवर्तन हो जाना ही सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है। अब हम क्या कह सकते हैं? हम लोग हैं उत्कल निवासी। जिसकी कला बड़ी उत्कृष्ट है वही उत्कल। हम कला में बड़े उत्कृष्ट हैं। हम हैं कलाकार। हमने भुवनेश्वर जैसे मंदिर बनाये, हमने कोणार्क जैसे मंदिर बनाये। हमने अलौकिक मूर्तियाँ उकेर दी। पत्थरों को मोम की तरह बना दिया है। आप यदि सहयोग करें तो देश-विदेश में जाकर भारतीय संस्कृति के चित्र अंकित कर देवें। अशोक ने उनको सहायता दी। उनको जहाज दिए, बेड़े दिये। तो सबसे पहले उनका जहाज वहाँ से चलकर, कलिङ्ग से चलकर दक्षिण-पूर्व एशिया में जावा द्वीप में पहुँचा। राष्ट्रपति सुकर्ण ने पंडित नेहरू को एक पत्र लिखा सन् 1947 में। पंडितजी, आप हिन्दू हैं। पर हम भी हिन्दू हैं। मेरे देश इंडोनेशिया के पहले इंडो शब्द लगा है, उस इंडो का अर्थ ही हिन्दू होता है।

ग्रीक लोग जब भारत में आये, उन लोगों ने ईरान से पूछा—अब अगला देश कौनसा है। उन्होंने कहा Land of Hindus हिन्दुओं का देश है। तो ईरानी लोग सिंधु को हिन्दू बोले। 'स' को 'ह' बोलते हैं। पर ग्रीक लोग जो थे 'ह' का ही उच्चारण नहीं कर सकते थे। इसलिये सिंधु को इण्डु कहते थे, सिन्धुज को इण्डुज कहते थे। उसी के प्रभाव से अंग्रेजी में अनेक शब्द हैं जहाँ 'ह' की ध्वनि लुप्त हो जाती है। लिखे Hour (हॉवर) पढ़े 'ऑवर', लिखे Honest (होनेस्ट) पढ़े

ऑनिस्ट। Honory को पढ़े ओनरी। 'ह' की ध्वनि कहाँ गई? सिकंदर के देशवासियों के पेट में! इसलिये Hindus को बोले इण्डुज।

हर देश के नाम को स्त्रीलिङ्ग वाचक बनाते थे। हम कहें ग्रीस, वे कहें ग्रेसिया। हम कहें 'यवन', वे कहें 'आवोनिया'। वे सारे यूरोप के गुरु हुए। इसलिए हर देश का नाम स्त्रीलिङ्ग वाचक बनाया। ब्रिटेन-ब्रिटेनिया, स्लोवाक को स्लोवाकिया, फ्रांस को फ्रांसेसिया, चेकोस्लोवाकिया, युगोस्लाविया, स्पेन का स्पेनिया, पुर्तगाल का पुर्तगालिया। स्कन्दम-स्कन्द शंकर भगवान का पुत्र, स्केनेविया या स्केनेदनिया, लिथुन-लिथुनिया, जार्ज-जार्जिया, अरवान-अरवानिया, रूस-रसिया, इटली-इटालिया, जर्मन-जर्मेणिया, अरब-अरबेनिया। हर देश का नाम स्त्रीलिङ्ग वाचक बना। अर्रमन-आरमेनिया और पार्श्व देश—पड़ोस का देश। पार्श्व देश माने परसिया। आगे देखा Land of Indus इण्डुज लैंड है। तो इण्डुज देश का नाम रख दिया। India नाम 2300 वर्ष पुराना है। 2300 वर्ष पहले मेगस्थनीज आया और पाटलीपुत्र गया। वहाँ पर जाकर चाणक्य से मिला, चन्द्रगुप्त को मिला, चाणक्य का दर्शन करने गया। बड़ा रोमांचकारी वर्णन है। उसने सारे देश की यात्रा की और एक मोटा ग्रंथ भारत पर लिखा है इंडिका Indica। इंडिका माने India के बारे में। उसने उसके चप्पे-चप्पे पर इंडुज नाम दिया है। देशवासियों को Indus इंडुज कहा है, देश को India कहा है। Indian नाम 2300 वर्ष पुराना, इतने से ही सिद्ध हो गया तो इंडिया नाम अंग्रेजों का दिया हुआ, 300 वर्ष पुराना नहीं।

तो ईसा के जन्म से 300 साल पहले India नाम था और India नाम आया Indus से, Indus नाम आया Hindus से, और हिन्दू नाम आया सिंधु से और सिंधु नाम आया सप्त-सिंधु से, सप्त-सिंधु नाम आया वेद से। और वेद आया भगवान से। इसलिये हमारे नाम का कोई विदेशी मूल खोजे तो उसका अपना खोपड़ा विदेशी होगा। स्वदेशी खोपड़ा तो विदेशी मूल नहीं खोजेगा।

इसलिये सुकर्ण ने पंडित नेहरू को पत्र लिखा कि हमारे नाम के आगे इंडो शब्द लगा है उसका मतलब ही हिन्दू है। तो ग्रीक लोगों ने साढ़े तीन हजार द्वीप देखे दक्षिण-पूर्व एशिया में जिनमें हिन्दू संस्कृति है। नाम दिया इंडो। इंडो माने Hindu और 'निजज'। निजज कहते हैं द्वीप को। और स्त्रीलिङ्ग वाचक निजिया इसलिये इंडोनिजिया। इंडोनिजिया माने हिन्दू द्वीपसमूह। थोड़ा ऊपर गये तो देखा राजर्षि कम्बुज का देश है। अगस्त्यः कम्बु कौण्डियः राजेन्द्रश्चौलभूषणः। सर्वे दिग्जियिनाः ख्याताः शैलेन्द्रो बप्पा रावलः। तो कम्बुज में गये तो कम्बुज कह दिये कम्बोडिया। मंगोल गये तो कह दिया मंगोलिया। कुरव गये तो कर दिया कोरिया। मंजुश्री में गये तो कर दिया मंसुरिया।

एशिया में सबसे ऊपर का जो देश है जहाँ बर्फ से धरती ढकी रहती है। जहाँ लोग 12 महीने बर्फ रहने के कारण पक्के मकान बनाकर नहीं रह सकते, वे शिविर लगाकर रहते हैं। Camp life शिविर से हुआ। शिविर से हुआ साइबेरिया। तो दुनिया के सौ के करीब देशों के पीछे जो IA लगा है ग्रीक लोगों की शरारत है भाई! IA को हटाकर देखो तो सब भारतीय नाम झलकेंगे। भारत का जगद्गुरु रूप प्रतीत होगा। इंडोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्ण ने लिखा—मेरा देश भी हिन्दू देश है। हमारे ईमान को तलवार की नोक पर ठगकर मुसलमान बना लिया होगा परन्तु हम संस्कृति से अभी भी हिन्दू हैं। पंडितजी, आपके दिल्ली में आते ही दिल्ली के मुख्य स्टेशन पर उतरने पर सामने भारत का कोई चित्र दिखाई नहीं देता। सामने लूले-लंगड़े, भिखमंगे, होटलों के एजेण्ट, वेश्यालयों के एजेण्ट दिखाई देते हैं। भारत कहाँ है?

मेरे देश इण्डोनेशिया में आओ, जकार्ता के मुख्य रेलवे स्टेशन से उतरने पर एक सर्कुलर पार्क है। चारों ओर फव्वारे चल रहे हैं। बीच में सोने की पीठिका पर गणपति की मूर्ति है। जाने वाले को अभयदान, आने वाले को आशीर्वाद देती है। उन्होंने कहा, पंडितजी! आप हिन्दू हैं और ब्राह्मण हैं। पता नहीं आपके ब्राह्मण पिता ने मूल महाभारत का संस्कृत में पाठ किया या नहीं पर मेरे मुसलमान पिता प्रतिदिन प्रातःकाल मूल महाभारत का संस्कृत में पाठ करते थे और महाभारत के समूचे पारायण के बाद उन्होंने निश्चय किया कि सब चरित्रों में उत्तम चरित्र किसका है? उनको लगा कि कर्ण का चरित्र उत्तम है। ऐसा दाता, ऐसा वीर, ऐसा धनुर्धर, ऐसा बात का धनी। अपना वचन दिया तो वचन के लिये सबकुछ निछावर कर देने वाला। यदि उसके रथ का चक्का धरती में धंस नहीं जाता तो अर्जुन भी उसको परास्त नहीं कर सकता था। उन्होंने सोचा, मेरे घर में जब शहनाइयाँ बजेंगी, मेरे घर में जब पुत्ररत्न आयेगा तो उसका नाम रखूंगा कर्ण। सोचा, कर्ण में सब गुण थे पर एक बहुत बड़ा दुर्गुण था। उसने दुष्टों, पापियों—कौरवों का साथ दिया। यही उसमें दुर्गुण था। मेरे बेटे का नाम होगा सुकर्ण। इसलिये सुकर्ण कहता है मेरे नाम पर भारतीय संस्कृति की अमिट छाप है जो सात समुद्र से धुलने पर भी धुल नहीं सकती।

प्रिय पंडितजी! आपके देश के लोग, कलिङ्ग के लोग आये थे। यहाँ पर उन्होंने उतरते ही जौ की खेतियाँ देखी थी। जौ की खेती देखी तो उन्होंने इस देश का नाम यवद्वीप रख दिया। यव माने जौ। यव से जव, जव से जावा हो गया। उन्होंने कहा, जिस जगह उनका जहाज सबसे पहले उतरा उसको नाम दिया पूर्व-कलिङ्ग। कलिङ्ग से आये थे। पूर्व में एक और कलिङ्ग बनाया। यार्क लोग अमरीका में जाकर बसे तो न्यूयार्क बनाया। तो कलिङ्ग के लोग पूर्व में जाकर बसे तो उसको नाम दिया पूर्व-कलिङ्ग। पंडितजी, अभी भी उसका नाम है पोर्वोलिङ्गो।

पूर्व-कलिङ्ग का नाम है पोर्वोलिङ्गो।

उन्होंने कहा, पंडितजी! भारत देश में विभाजन हुआ है। विभाजन के समय देश में बहुत बड़ी अशांति है। बड़ा अन्न संकट है तो जहाँ भारतवंशियों ने सबसे पहले जौ की खेती देखी थी और द्वीप का नाम यवद्वीप दिया था वहाँ से भारत के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिये, भारत की अन्न समस्या हल करने के लिये मैं एक चावल का जहाज उपहार के रूप में भेज रहा हूँ। उन्होंने चावल का जहाज भेजा।

वे पोर्वोलिङ्गो के स्थान से सीधे उत्तर की ओर बढ़े। बिल्कुल सीधे। तो कुछ लोग वहाँ बसे और कुछ लोग सीधे उत्तर की ओर चले गये। उत्तर की ओर जो लोग गये आज से 2320 वर्ष पूर्व, पहले। अशोक के समय की बात है वे लोग बिल्कुल उत्तर की ओर गये। उन्होंने देखा साढ़े तीन हजार द्वीप हैं जिनमें सभ्यता-संस्कृति नहीं है। जंगली लोग रहते हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति की शिक्षा दी, बड़े-बड़े मंदिर बनाये, बड़े-बड़े बौद्ध विहार बनाये, भारतीय संस्कृति का प्रचार किया। उसको नाम दिया महाकलिङ्ग (कलिङ्ग द्वीपसमूह)। कलिङ्ग द्वीपसमूह साढ़े सात हजार द्वीपों का समूह है।

पर दुर्भाग्य से अमरीका में उन्होंने धर्मांतरण करने के बाद अमरीका में रक्तपात करने के बाद, अमरीका में तोड़-फोड़ करने के बाद मय देश को, मय जाति को, इंका जाति, Azect जाति को नष्टप्रायः करने के बाद और वहाँ सीधे समुद्र मार्ग से पहुँचे गये महाकलिङ्ग। महाकलिङ्ग में आकर वहाँ मंदिरों को तोड़कर गिरजाघर बनाया। वहाँ की जनता को मार-काट डाला। बहुतों को धर्मान्तरित करके ईसाई बनाया। स्पेन के राजा फिलिप के नाम पर उसको नाम फिलिपाइन दे दिया। इस प्रकार विश्व इतिहास के चार पर्दे स्पष्ट है—

ईसा के मानस पर भारतीय प्रभाव—ईसा के पूर्व सारे यूरोप में सूर्य पूजा का प्रचलन, मध्यपूर्व के देशों में भारतीय प्रभाव होना, मध्य पूर्व के प्राचीनतम देश मिस्त्र पर भारतीय प्रभाव और यूनान यूरोप का प्राचीनतम देश है जिसे यूरोप अपने विचारों की जननी मानता है वह स्वयं भारत से प्रभावित एवं प्रेरित था। मुहम्मद पूर्व अरब में भारतीय प्रभाव, अरब के आस-पास के देशों में भारतीय प्रभाव, कोलम्बस से पूर्व अमरीका में और फिलिप से पूर्व फिलिपाइन में भारतीय प्रभाव—इन पर्दों के हटते ही सारे विश्व में भारतीय संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट रूप से झलकने लगता है।

आप मेरी आँखों पर काली पट्टी बांधकर विश्व के गोलाकार मानचित्र पर मेरी अंगुली जहाँ कहीं, जिस किसी देश पर टिक जाये, उस देश ने भारत से, भारत की संस्कृति से क्या अवदान प्राप्त किया है, मैं यदि प्रमाणित नहीं कर सकूं तो तत्काल मेरा शिरोच्छेद कर दिया जाए।

मेरी अमरीका यात्रा-I

परम प्रभु परमेश्वर की अनन्त वात्सल्यमयी दया से मैं सात समुद्र पार कर अमरीका महादेश में पहुँच गया हूँ। महामना मालवीयजी के पावन आदर्श से प्रेरित हो मैं अपने प्रिय स्वदेश से भारत की धूलि एवं गंगाजल साथ ले आया हूँ। प्रतिदिन प्रातः स्नानोपरान्त गीता के पावन अमृतकुण्ड में अवगाहन करने के पश्चात् सूर्यनारायण को जलांजलि अर्पित कर गंगाजल के सुधाबिंदु से आचमन कर गीता माता, गंगा माता एवं भारतमाता के प्रति भावांजलि समर्पित करता हूँ।

अमरीका तक की मेरी यात्रा अत्यन्त स्फूर्तिदायक तथा उत्साहवर्धक रही है। हमारा हवाई जहाज ईरान के बाद बेरूत, दमिश्क, बगदाद, साइप्रस और यूनान को पार करता हुआ इटली जा पहुँचा। रोम और वीनस नगरों का ऐतिहासिक महत्त्व सजीव हो उठा। रोम तथा वीनस प्राचीन रोमन तथा यूनानी संस्कृतियों के महान् केन्द्र रहे हैं। पाश्चात्य लोगों का विचार है कि सभ्यता यूनान के एथेन्स नगर से प्रारम्भ हुई जो सुकरात, प्लेटो तथा अरस्तू की स्मृतियों से प्रसिद्ध है तथा यूरोप के भिन्न-भिन्न नगरों को सभ्यता का दान देने के बाद वह लहर अमरीका में पहुँची। उसे अंतिम दान दे कर फिर वह सभ्यता की धारा सदा के लिए विलुप्त हो गई। इस प्रकार पश्चिमी लोगों को भ्रान्ति है कि सभ्यता का क्षेत्र एथेन्स से हालीवुड तक ही है तथा अन्य किसी प्रदेश को सभ्यता का अंश भी प्राप्त नहीं हुआ। वास्तव में यूनान के ऐथन्स नगर का नाम यूनान के जिस राष्ट्रीय महाकवि होमर के साथ अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है वह यूनान के राष्ट्रीय महाकाव्यों का गायक स्वयं भारतीय महाकाव्यों से प्रभावित था। भारत के महाकवि सूरदास के समान दोनों नेत्रों से विहीन प्रज्ञाचक्षु होमर एथेन्स नगर की सीढ़ियों पर बैठा हुआ अपने हृदय के गुम्फित भावों को काव्य कलिकाओं में प्रकट करता जाता था। उसके इलियड नामक महाकाव्य पर रामायण महाकाव्य का सुस्पष्ट प्रभाव नजर आता है। रामायण के कथानक के समान इलियड में भी रानी के आग्रह पर राजा पुत्र को वनवास देता है। उसके साथ छोटा भाई और पत्नी भी चल पड़ते हैं। वन में एक राक्षस उनकी पत्नी उठा लेता है। नायक वनवासी लोगों से मित्रता कर उनकी सेना सजाकर युद्ध की तैयारी करता है। राक्षस का राज्य एक द्वीप में है। नायक दो बार

दूत भेजता है। अन्त में युद्ध होता है। राक्षस का एक बंधु नायक का भक्त होता है। राक्षस का कुल समेत नाश होता है। इस प्रकार यूनान का महाकाव्य 'इलियड' रामायण का ही अनुवाद है। सुकरात का भारत के एक मनीषी से वार्तालाप यूनानी इतिहासकारों द्वारा भी प्रमाणित तथ्य है। अरस्तू का सिकन्दर से भारत से भगवद्गीता लाने के लिए आग्रह, सिकन्दर का भारत के दार्शनिकों से वार्तालाप, प्लेटो की विचारधारा पर भारतीयता की छाप, सभी विश्व विश्रुत तथ्य हैं। यूनानी जब भारत में आए तो कपास देखकर विस्मित हुए। कहा—भारतीय क्या विचित्र लोग हैं, ये पौधों पर रुई उगाते हैं। तब तक उन्होंने न गन्ना देखा था, न खाण्ड चखी थी। गन्ने का रस निकलता देखकर बोले— 'भारतवासी भी अजीब लोग हैं, ये लकड़ियों को निचोड़ कर शहद निकालते हैं।' दुनिया जीतने की इच्छा वाले यूनानियों ने न कपास का कपड़ा पहना था, न खाण्ड चखी थी तथा संभवतः इस्पात (Steel) भी नहीं देखा था। पोरस से सन्धि के समय सिकन्दर को 20 पौण्ड (10 सेर) फौलाद का उपहार दिया तो सिकन्दर विस्मित हो गया। आज यूनान भी अपनी प्राचीन परम्पराओं से विस्थापित होकर केवल कंकालमात्र शेष बचा है जिसके भीतर आज ईसाई धर्म का भूत घुसा हुआ है। यही हाल रोम का है। वायुयान रोम के ऊपर पहुँचा तो रोम के प्राचीन गौरव का स्मरण कर काल की क्रूरता पर अश्रुपात हुआ। रोम के प्राचीन देवी-देवता आज कौन पहचानता है? यूनान के देवताओं के समान वे भी आज संग्रहालयों में बन्दी पड़े हैं। शताब्दियों से उन्हें जनगण की श्रद्धा का अर्घ्य प्राप्त नहीं हुआ। स्वयं रोम में प्राचीनकाल के एक सूर्य मन्दिर के अवशेष हैं। उस 'आदित्यालय' का नाम बिगड़कर ऐतालय, इतालय हो गया। जैसे आदित्यवार का नाम ऐतवार, इतवार हो गया। जैसे हिमालय का नाम बिगड़ कर हिमालिया बोला जाने लगा वैसे ही इतालय का नाम इतालिया (Italia) पड़ गया तथा वही आज तक पूरे देश इटली का नाम है।

इटली का एक अन्य प्रसिद्ध नगर वीनस वायुयान से ही देखा। यूरोप के इस सुन्दर नगर का नाम वीनस (Venus) नामक देवता के नाम पर पड़ा जो शुक्र ग्रह का ही नाम है। शुक्र का वीनस नाम स्वयं वेद से ही निकला है—अयं वेनश्च शुक्रः। इसके पश्चात् वायुयान फ्रांस देश पर उड़ने लगा। सहसा सिलवन लेवी तथा रोम्यां रोलां जैसे भारत भक्तों की स्मृतियाँ स्मृतिपटल पर उभरने लगीं। रोम्यां रोलां ने विश्वविजेता स्वामी विवेकानंद एवं पुण्यश्लोक श्री रामकृष्ण परमहंस की जीवनियाँ मानो लेखनी को हृदयरस में भिगो-भिगो कर लिखी हैं। शब्द-शब्द पर प्रेमाश्रुपुलक हो जाता है। रोम्यां रोलां स्वामी विवेकानंद के विषय में लिखते हैं— उनके शब्द एक महान् संगीत हैं, बीथोवन। (यूरोप के महान् संगीतकार) के पदों के समान, हैंडल के सहगीतों की लय वाले। मैं, अपने समय से 30 वर्ष पूर्व कहे हुए

इन शब्दों को, बिना अपने भीतर एक बिजली की कौंध का अनुभव किए स्पर्श भी नहीं कर सकता हूँ तथा उस समय कैसा आनन्द बरसा होगा जब वे ज्वलन्त शब्द साक्षात् उस महापुरुष (विवेकानन्द) के मुख से निसृत हुए होंगे। इसी पेरिस नगर में सन् 1939 में एक चमत्कार हुआ। अचानक द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ने का समाचार सुनते ही फ्रांस के प्रधानमंत्री के हृदय पर ऐसा आघात लगा कि वे प्रायः संज्ञाशून्य हो गये। जब बड़े-बड़े डाक्टर भी हार गये तो प्रधानमंत्री ने संकेत से बताया कि मेज पर पड़ी टैगोर की गीतांजलि की प्रति उठाई जाय तथा पेरिस की किसी सुन्दर गायिका से गान करवाया जाय। जब सचमुच गीतांजलि के रहस्यवादी गीतों का गान करवाया गया तो प्रधानमंत्री के प्राणों में प्राण आए।

इंग्लिश चैनल को पार कर वायुयान लन्दन की ओर चला। आज से 55 वर्ष पूर्व का दृश्य नेत्रों के सम्मुख तैरता हुआ आ गया जब सन् 1907 में 1857 के स्वातंत्र्य संग्राम का इतिहास लिखने पर स्वातंत्र्य वीर सावरकर को बन्दी बनाकर इंग्लैण्ड से भारत लाया जा रहा था, उस इतिहास दुर्लभ महापुरुष ने जहाज की शौच नालिका से समुद्र में छलांग लगा दी थी तथा सारा इंग्लिश चैनल अपनी भुजाओं के बल पर तैर कर फ्रांस देश में पहुँच गया था। मेरी हार्दिक मनोकामना है कि इंग्लिश चैनल के दर्शन पर उमड़े हुए मेरे अश्रुमुक्ता उस जीवित शहीद, स्वातंत्र्य वीर सावरकर के चरणों में पहुँचें।

इंग्लैण्ड में राजधानी लन्दन का दृश्य देखा। दोपहर का भोजन वहीं किया। प्राचीनकाल के इंग्लैण्ड में शेष यूरोप के समान ही सूर्यपूजा चलती थी। पुराने लन्दन नगर में भी मिट्रोडोटस का (मित्र-उदय-स्) का मन्दिर है। सारे यूरोप के समान इंग्लैण्ड के जिप्सी भी मूलतः भारत से आए हुए हैं। उनकी रोमनी भाषा में संस्कृत व हिन्दी के अनेक शब्द हैं। वे भारत के डोम, भाट तथा लोकगीत गायकों के समान अपने इकतारे पर लोकगीत गाते रहते हैं। स्वर्गीय डॉ. रघुवीर ने एक बार बताया था कि आयरलैण्ड के जिप्सी लोग हिमपात वाले दिन को हॉंव दिवस (हिम दिवस का रूपान्तर) बोलते हैं। इसी इंग्लैण्ड में महान् जर्मन विद्वान मैक्समूलर भारत का यश गाते नहीं अघाता था—'If I were to look over the whole world to find out the country most richly endowed with all the wealth, power and beauty that nature can bestow—in some parts a very paradise on earth—I should point to India. If I were asked under what sky the human mind has most fully developed some of its choicest gifts, has most deeply pondered on the greatest problems of life, and has found sometimes solutions of some of them which will deserve the attention even of those who have studied Plato and Kant—I should point to India. And if I were to ask from myself what literature we, here in Europe, we who have been nurtured almost exclusively on the thoughts of Greeks and Romans, and of one Cemitic race, the Jeuish, may draw that corrective which is almost wanted in

order to make our inner life more perfect, more comprehensive, more universal, in fact more truly human, a life, not for this life only, but a transfigured and eternal life—again I should point to India.'

इसी इंग्लैण्ड के चैलसी गांव का सन्तकवि कार्लायल गीता का महान् भक्त हुआ। जब अमरीका के सन्त इमर्सन की कार्लायल से भेंट हुई तो दोनों ने एक-दूसरे को भगवद्गीता ही भेंट की। इस घटना को पढ़ते ही डॉ. राधाकृष्णन् ने पाश्चात्य दर्शन की पुस्तकों को उठाकर ताक पर धर दिया तथा भगवद्गीता का गम्भीर अध्ययन प्रारम्भ किया। उसी भगवद्गीता माता की कृपा से आज संसार को हिन्दुत्व का इतना बड़ा व्याख्याता, महामनीषी प्राप्त हुआ है।

अन्ध महासागर की अनन्त गहराइयाँ नीचे अंगड़ाइयाँ ले रही थीं। ऊपर वायुयान 36000 फुट की ऊँचाई पर नभ के नीले आंगन में तैरता जा रहा था। लन्दन से 2360 मील की नभयात्रा करके हम बोस्टन नगर पहुँचे। यह वह इतिहास प्रसिद्ध नगर है जहाँ ब्रिटिश साम्राज्य की दासता से मुक्ति पाने के लिए 16 दिसम्बर, 1773 को स्वातंत्र्य क्रान्ति की चिनगारी फूटी। अंगरेजों के शासन से तंग आए हुए कुछ अमरीकी लोगों ने रेड इण्डियन लोगों का वेश बनाकर बोस्टन के बन्दरगाह पर खड़े अंगरेजी चाय के 3 जहाजों का सारा सामान समुद्र में फेंक दिया तथा कहा कि आज समुद्र की मछलियाँ 'टी पार्टी' करें। इसे 'बोस्टन टी पार्टी' कहा गया। इसके 120 वर्ष पश्चात् सन् 1893 में इसी नगर की गलियों में भारत का 29 वर्ष का नवयुवक भूखा-प्यासा, मित्रहीन, धनहीन, आश्रय विहीन घूम रहा था। रात्रि की कड़ाके की सर्दी में उस एक वस्त्रधारी युवक ने रेल्वे स्टेशन के सामने एक लकड़ी के खोखे में (टूटे हुए पार्सल बक्से में) विश्राम किया। प्रातःकाल हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के ग्रीक विभाग के अध्यक्ष प्रो. डॉक्टर राईट ने उसे देखा तो घर ले गया। थोड़ी देर की बातचीत के पश्चात् उसने उस युवक को शिकागो के सर्वधर्म सम्मेलन के मंत्री के पास भेजा तथा लिखा—'Here is a holy man from India who is much more wiser than all the wisest professors of America put together.' यह वह तरुण संन्यासी था जिसको विश्व ने विश्वविश्रुत स्वामी विवेकानंद के रूप में पूजा। बोस्टन से हम पट्टन के लिए चले। मार्ग में (Concord) कानकार्ड नगर आया जो इमर्सन का नगर था। इमर्सन की गीता भक्ति एवं वेदान्त प्रेम के विषय में मैं ऊपर संकेत दे चुका हूँ। तत्पश्चात् हम वालडन पोण्ड (Waldon pond) ग्राम के पास पहुँचे, जहाँ इमर्सन का गीता प्रेमी मित्र एवं प्रेरक थोरो जंगल में आश्रम बना कर रहता था। उसकी भारत भक्ति भी अनूठी थी। (शेष अगले अंक में)

मेरी अमरीका यात्रा-II

आशा है नभ के वक्ष में 31 हजार फुट की ऊँचाई से वायुयान में लिखा हुआ मेरा यह तुच्छ पत्र निखिल ब्रह्माण्ड में प्रभु कृपा का साक्षी होगा। ऊपर अनन्त आकाश का मेघमण्डित चंदोवा है, नीचे धरती की गोदी में लहराता हुआ भूमध्य सागर। बीच में हम वायु की लहरों में तैर रहे हैं। प्रभु की अनन्त कृपा से आनंद मंगल से यात्रा चल रही है।

हम प्रातःकाल 5.30 बजे (ईरान के समयानुसार) ईरान की राजधानी तेहरान पहुँच गये थे। उस समय हमारी घड़ियों में 7 बज रहे थे किन्तु ईरान भारत से पश्चिम में होने के कारण वहाँ उस समय सूर्यनारायण का प्रकाश पहुँचा ही था। अतः वहाँ का स्थानीय समय केवल 5.30 बजे था। अतः हमें अपनी घड़ियाँ 1.30 घण्टा पीछे करनी पड़ी। तेहरान में 1 घण्टा भर विश्राम हवाई अड्डे पर ही हुआ। वहाँ कुछ ईरानी कारीगरी के सुन्दर नमूने, चाँदी के बर्तन, कलापूर्ण वस्तुएँ, ईरानी कालीन इत्यादि बड़े आकर्षक थे किन्तु धनाभाव से केवल देखने का आनन्द प्राप्त किया। ईरान का छिलकेवाला नमकीन पिस्ता, बहुत अच्छा, मोटे दाने का मिलता था किन्तु सरकार की ओर से करंसी की कठिनाइयाँ होने के कारण उन वस्तुओं का दर्शन करके ही लाभ उठाया। फिर वहाँ घंटाभर विश्राम करने के पश्चात् पुनः वायुयान चला। मार्ग में दमिश्क तथा बगदाद के प्राचीन नगरों को वायुयान से ही प्रणाम किया। हम 31 हजार फुट की ऊँचाई पर उड़ रहे हैं, हिमालय पर्वत की सबसे ऊँची चोटी से भी 2000 फुट ऊँचे। नीचे मनुष्य के बसाए हुए नगर बच्चों के खिलौने तथा घरौंदों जैसे दिखाई देते हैं। प्राचीनकाल में दमिश्क नगर भारत के व्यापार को पश्चिम से जोड़ने वाला संसार का महानतम व्यापार-केन्द्र था।

बगदाद के अरबों ने भारत से बहुत कुछ सीखा है। स्वर्गीय डा. रघुवीर के एक लेखानुसार बगदाद का प्राचीन नाम भगदत्त था। भारत के सांस्कृतिक प्रभाव का साक्षी प्राचीन मेसोपोटामिया का देश आज इराक के नाम से प्रसिद्ध है। इसी की राजधानी बगदाद प्रसिद्ध है। इसी बगदाद के खलीफा ने दुनिया के अनेक देशों पर

हमले किये थे तथा हजरत मुहम्मद के देहान्त के पश्चात् लगभग दो सदियों में एशिया एवं यूरोप के अनेक देशों पर आधिपत्य कर लिया था। अरबों के भारत पर आक्रमण की कहानी भी सहज याद आ जाती है। अरब के खलीफा के सेनापति मुहम्मद बिन कासिम ने भारत के सिंध प्रदेश पर आक्रमण किया था। वह अरबों का भारत पर प्रथम आक्रमण था। सिंध के राजा दाहर ने वीरता से मुकाबला किया था किन्तु अपने ही कुछ देशवासियों के द्रोह के कारण युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। मुहम्मद बिन कासिम ने राजा दाहर की दो जवान लड़कियों को बंदी बनाकर बगदाद के खलीफा को भेंट करने के लिए भेजा। भारत की उन वीर बालाओं ने स्वाभिमान की रक्षा के लिए एक युक्ति निकाली। उन्होंने बगदाद पहुँचने पर खलीफा को झूठ-मूठ बताया कि मुहम्मद बिन कासिम ने पहले ही उनका सतीत्व भंग कर दिया है। इस पर खलीफा को इतना क्रोध आया कि उसने आदेश दिया— मुहम्मद बिन कासिम को एक बैल की खाल के अन्दर सीकर बगदाद भेजा जाय। इस प्रकार राजा दाहर की उन दो बेटियों ने नितान्त असहाय होते हुए भी अपने सम्मान एवं मातृभूमि के स्वाभिमान की ओर कुदृष्टि डालने वाले, भारत पर प्रथम अरब आक्रान्ता मुहम्मद बिन कासिम को दण्डित किया। बाद में भेद खुल जाने पर खलीफा ने उन बच्चियों को एक रथ के पीछे बंधवाकर सारे बगदाद शहर में घसीटने का आदेश दिया जिससे दूर विदेश में स्वदेश की स्वाभिमानिनी बालाओं का प्राणान्त हुआ। उन महान् स्मृतियों को जगाने वाले बगदाद नगर का नभ दर्शन भी बड़ा प्रेरक रहा।

भूमध्य सागर के तट पर यह मनोरम घाटी में बसा हुआ बेरूत नगर है। इसका हवाई अड्डा तेहरान से भी अधिक सुन्दर है। मध्य एशिया के लेबनान देश की यह राजधानी है। यहाँ हवाई अड्डे पर कलाकारी की अत्यन्त सुन्दर वस्तुएं मिलती हैं। यहाँ के लोग भी सज्जन हैं। आचार-व्यवहार एवं वेशभूषा पर यूरोप का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

यूरोप का प्रभाव ईरान पर भी है। बेचारा ईरान अपना स्वत्व खोता जा रहा है। प्राचीनकाल में यह आर्यान-देश (आर्यों का देश) ही था। पड़ोस में होने के कारण इसे पार्श्वदेश भी कहा गया जिससे पारस देश बना। संस्कृत साहित्य में इसे पारसीदेश कहा गया। यहाँ के ही पारसी लोग थे जो अग्निपूजक थे। इस्लाम की तबलीग की तलवार के आगे यह देश टिक न सका। कुछ पारसी लोग अपने धर्म की रक्षा के लिए अपने अग्निदेवता को छाती से लगाये भारत में भाग आए थे। तभी से वे पारसी लोग बम्बई के निकटस्थ क्षेत्रों में बसे हुए अपने धर्म का पालन करते आ रहे हैं। जहाँ भारत ने पारसी लोगों को शरण दी वहाँ वे पारसी लोग स्वयं अपने देश में भी अपने धर्म की रक्षा न कर सके तथा तलवार की नोक पर सभी को

मुसलमान बना दिया गया। दुर्भाग्य से पारसियों के देश में आज भी जरदुस्त्र के अनुयायियों (पारसियों) के लिए कोई आदर का स्थान नहीं है। ईरान की प्राचीन भाषा 'जेंद' वेद के 'छन्द' से मिलती है, उनके प्राचीन ग्रन्थ अवेस्ता में लगभग वेद की ऋचाएं ही गूंज रही हैं। किन्तु जब जाति का आनेवाला कल बीते हुए कल को पहचान नहीं पाता तो जाति का अपना वैशिष्ट्य नष्ट हो जाता है। आज ईरान के चेहरे पर ईरान का रंगरूप दिखाई नहीं देता। कई सदियों तक ईरान को विश्व के रंगमच पर अरब के इस्लाम का चेहरा पहनाकर नचाया गया, आज वह शीघ्रता से यूरोप का चेहरा लगाने के लिए बेचैन है। महिलाओं के बाल प्रायः कटे हुए हैं तथा पहनावा यूरोप की नकल का है।

फिर भी जरदुस्त्र के देश, शेराज के शेखसादी के देश, गुलिस्तां वोस्तां के देश, उमर खैयाम तथा अन्य विद्वानों के देश को देखकर अनेक प्रेरणाएं जागीं। ईरान के बाद बेरूत होकर हम साइप्रस द्वीप के ऊपर उड़ने लगे। भूमध्य सागर के तट पर यह अत्यन्त मनोरम साइप्रस द्वीप है। 35000 फुट की ऊँचाई से भी यह अत्यन्त मनोरम लगता है। समुद्र को छूता हुआ साइप्रस का भूमितट समुद्र के इस पश्चिमोत्तर किनारे को गोलाकार कटोरे का सा आकार दे रहा है। आकाश की इस महान् ऊँचाई से नीचे समुद्र से उठने वाले श्वेत बादलों का स्वतन्त्र लीलालोक दिखाई देता है। स्वच्छ रुई के अनन्त ढेरों के समान बादल सारे अन्तरिक्ष में फैले हुए हैं तथा कोई अज्ञात धुनिया धुन-धुन कर उनके हलके शुभ्र तैरते हुए खण्डों को वायु की लहरों पर फेंकता जा रहा है। हमारा वायुयान मेघदूतों के मायालोक से बहुत ऊपर उच्चतम ऊंचाई पर उड़ रहा है। साइप्रस बहुत काल तक यूनानी प्रभाव में रहा। इसके तनिक पश्चिम में यूनान इतिहास-प्रसिद्ध देश है। इसकी सुकरात, प्लेटो और अफलातूं की त्रिमूर्ति को प्रणाम। उसी यूनान का सिकन्दर साइप्रस से ईरान तक सभी देश जीतकर भारत आया था किन्तु पंजाबी सूरमाओं के सम्मुख वह विश्वविजेता भी दम तोड़ बैठा था। यूनान से होकर हमारा वायुयान अब इटली की ओर बढ़ रहा है। अतः 36000 फुट की ऊँचाई से इसी द्युलोक से ही उस प्राचीन संस्कृति के केन्द्र ज़ियस के रूप में वैदिक घोष को पूजने वाले उस यूनान देश को प्रणाम!!

भारतीय ज्ञान का प्रशंसक : थोरो

आज भारत के लिए संयुक्त राष्ट्र अमरीका की मित्रता बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आज कम्यूनिस्ट चीन ने भारत की पीठ में विश्वासघाती छुरा घोंपा है। लेकिन यह सौहार्दपूर्ण घनिष्ठ सम्बन्ध केवल राजनयिक संकेत मात्र नहीं है। इस बंधन को दो महान् राष्ट्रों के बेहतरीन और मजबूत सांस्कृतिक मूल्यांकन की कड़ियों ने पाला है।

जिस तरह विवेकानन्द, रामतीर्थ, टैगोर और राधाकृष्णन का अमरीका में भारत के सांस्कृतिक दूत के रूप में स्वागत हुआ है, भारतीय भी अमरीका के थोरो ह्विटनी और होम्स जैसे प्रथम श्रेणी के यशस्वी व्यक्तियों के प्रति समान रूप से अत्यधिक सम्मान देते हैं, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन भारतीय संस्कृति के अध्ययन और शोध में समर्पित कर दिया।

हेनरी डेविड थोरो (सन् 1817-1862), जिन्होंने न्यू हैम्पशायर राज्य के छोटे से शहर कानकार्ड का नाम अपने जन्म से पवित्र कर दिया है, वैसे ही उन्होंने अपने विशिष्ट आत्मिक अनुसंधान और उदार विचारों से सम्पूर्ण मानवता को पवित्र किया है। थोरो एक महान् अंतर्ज्ञान सम्पन्न आदर्शवादी थे जिन्होंने भारतीय अध्यात्म का भरपूर पान किया था।

वेद

वेद मानवता के प्राचीनतम ग्रंथों में से हैं। मैक्समूलर ने ऋग्वेद को मानव के पुस्तकालय में सबसे पुरानी पुस्तक की संज्ञा दी थी। वेदों के प्रति थोरो का लगाव उनके प्रसिद्ध आत्मकथा लेखक हैनरी केनबाई की निम्न पंक्तियों से स्पष्ट होता है, 'थोरो के साहित्यिक गुरु इमर्सन सत्रहवीं शताब्दी के अंगरेजी धार्मिक गद्य और पद्य लेखक, ग्रीक नाटककार होमर तथा संस्कृत के पवित्र लेखन विशेष रूप में वेद, मनु और भगवद्गीता आदि थे।'

भारतीय परम्परा में मनु को पृथ्वी का प्रथम पुरुष माना जाता है। उन्हें भारतीय जनश्रुति का आदम कहा जा सकता है। भाषाविद् अंगरेजी के 'मैन' शब्द को संस्कृत के मनु, मानव और मनुज शब्दों से लिया हुआ मानते हैं। मनुस्मृति (मनु

की विधि) भारत की सर्वप्रथम विधिक-संहिता मानी जाती है। थोरो प्राचीन भारत की उस अद्‌भुत नैतिक संहिता के उत्साही प्रशंसक बन गये थे। एच.एस. केनबाई लिखते हैं—यह संभवतः सत्य था जब हैनरी थोरो ने सन् 1841 के ग्रीष्म काल में इमर्सन के पुस्तकालय में मनुविधियों को पढ़ना प्रारम्भ किया और बाद में हिन्दू साहित्य के अध्ययन की तरफ बढ़ते गये। जिससे लगता है कि जिसे उन्होंने अपने कालेज के दिनों में प्रारम्भ किया था। डा. जान टी. रीड, जो भारत में अमेरिकी दूतावास में सांस्कृतिक दूत (Cultural Attache) थे, लिखते हैं, 'ऐसा लगता है थोरो जब कालेज में थे उन्होंने हिन्दू साहित्य का अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया था। स्नातक होने के बाद वो इमर्सन के घर चले गये जहाँ उन्होंने 1841 में मनु की विधियों को पढ़ा।' थोरो द्वारा मनुस्मृति के अध्ययन की प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में केनबाई लिखते हैं, अब उन्होंने यह खोज निकाला था कि एक महान् गुरु, महान् साहित्य और महान् सभ्यता ने बाहरी दिखावट के नीचे सत्य देख लिया था। उन्होंने अंतर्तम को शुद्ध कर लिया था, ताकि उसमें प्रकृति के मध्य में वे ईश्वर की उपस्थिति महसूस कर सकें। उन्होंने सामान्य जीवन के महत्त्व को समझ लिया था, यद्यपि कभी-कभी आसमान में उनके सिर के ऊपर छींटे भी होते थे। बाहरी संभावनाओं की सीपी का भेदन कर चुके थे और उसके पीछे वास्तविकता को महसूस करते थे। उनके कवि और उपदेशक एक लंबी स्थापित परम्परा के अधिकारी के रूप में बोलते थे। उनमें से ज्ञानसम्पन्न व्यक्तियों द्वारा प्रसन्नता और सफलता की कुंजी सत्य की लालसा में माना जाता था....यह सिद्धान्त अथवा प्रगति होने की बजाय जीवन का सामान्य रास्ता था अथवा खोज थी।'

उपनिषद्

उपनिषद् प्राचीन भारत के दार्शनिक ग्रंथ हैं जिनमें वैदिक युग की समृद्धतम बुद्धिमत्ता समाहित है। शोपनहावर ने इन पुस्तकों की आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता के बारे में लिखा है, 'उपनिषद् मेरे जीवन की दिलासा रहे हैं, वे मेरी मृत्यु की दिलासा भी होंगे, शोपनहावर की तरह थोरो भी उपनिषदों के महान् प्रशंसक थे। एच.एस. केनबाई लिखते हैं, 'थोरो के ऊपर इस अध्ययन का प्रथम प्रभाव बढ़ती हुई उत्तेजना थी।' थोरो ने स्वयं लिखा है कि हिन्दुओं की किताब का प्रत्येक वाक्य पढ़ने के बाद मैं अपने-आपको सामान्य स्तर से उन्नयन का एहसास करता हूँ....प्रत्येक पृष्ठ सत्य की ओर संकेत करता है लेकिन शांत है....उन भव्य वाक्यों ने मेरे ऊपर ऐसा प्रभाव डाला कि किसी भी व्यक्ति के बोलने से पहले मैं उठ गया। थोरो आगे लिखते हैं कि किसी भी महान् विद्वान द्वारा लिखित महान् पुस्तक हमारी कल्पना के समक्ष आसमान को भेदती हुई नजर आती है। इसका प्रभाव....जैसे कभी-2 आकाश में एक नया प्रभात अपनी किरणों को जमीन पर बिखेर रहा हो, हवा के

किसी अदृश्य छिद्र पर टूटता हुआ....सभी कुछ सुनिश्चित लगता है। यहाँ पर वर्णित सामान्यतम जीवन का परिदृश्य हमें स्वतंत्रता की उत्तुंगता का एहसास कराता है.... आवश्यकताएं आसानी से और मर्यादापूर्ण तरीके से शांत होती हैं और यह अधिक शुद्ध और सात्त्विक प्रसन्नता जैसा महसूस होता है। अपने आप में परिपूर्ण। थोरो उपनिषद् के एक श्लोक के अत्यधिक शौकीन थे जो कहता है, 'सत्य सोने की चमक के आवरण में छिपा रहता है। मानव इस बाहरी चकाचौंध को देखता है और सत्य के प्रति अंधा बना रहता है। हे ईश्वर! इस सोने के आवरण को हटा ले और मुझे अपने समक्ष होने दे। हे सत्य के भी सत्य! मेरी सत्य के प्रति इच्छा बहुत उत्कट है।'

थोरो भारतीय संतों की तरह संग्रहण की प्रकृति के विरुद्ध थे और वाल्डन तालाब के किनारे एक झोंपड़ी में रहा करते थे। केनबाई ने थोरो की आवश्यकता रहित जीवन के प्रभाव की कथा उपनिषद् के कुछ श्लोकों में खोजी है जहाँ यम (मृत्यु के दूत) एक बालक नचिकेता को उपदेश दे रहे हैं। धन की इच्छा से पागल सामान्य व्यक्ति भविष्य के बारे में क्या जान सकता है? वह चिल्लाता है यही दुनिया है क्योंकि वह सोचता है कि इसके अतिरिक्त और कोई दुनिया नहीं है। मैं उसे बार-बार मारता हूँ। बिल्कुल आध्यात्मिक स्वर में थोरो कहते हैं—ईश्वर ने ये वर्ष मुझे बिना किसी भार के दिये हैं। समाज का इसके ऊपर कोई भार नहीं है।

भारतीय सर्वेश्वरवाद

भारतीय सर्वेश्वरवाद को वेदांत दर्शन में प्रतिपादित किया गया है जो प्रत्येक वस्तु में ईश्वर तथा ईश्वर में प्रत्येक वस्तु देखता है। इसका थोरो के आध्यात्मिक मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव था। केनबाई का मानना है कि थोरो हिन्दुओं के उस सरल सर्वेश्वरवाद से बहुत आकर्षित थे, जो मानव और प्रकृति के बीच भेद को इस सीमा तक समाप्त कर देता है कि कल्पना किसी भी तरफ आसानी से निवास कर सकती है। थोरो की अपनी सहज बुद्धि का निष्कर्ष यह था कि एक आध्यात्मिक शक्ति मानव और पर्यावरण में इस प्रकार समान रूप से निःसृत होती है कि विश्व एकात्मकता का अनुभव होता है और थोरो ने पाया कि हिन्दुओं में यह धर्मतत्त्व का मूल माना जाता है। केनबाई का मानना था कि थोरो हिन्दू धार्मिक साहित्य में डूबता चला गया।

भगवद्गीता

भगवद्गीता, जिसका अर्थ होता है ईश्वर का गीत, भारत का शाश्वत आध्यात्मिक संगीत है। ईसाइयों के 'सरमन आन द माउन्ट' की तरह ही 'कुरुक्षेत्र के युद्ध क्षेत्र में उपदेश' है जिसका अवतरण ईसा मसीह के जन्म से तीन हजार वर्ष पूर्व

हुआ। थोरो और इमर्सन इस स्वर्गिक गीत के महान् प्रशंसक थे। केनबाई का मानना था कि यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि थोरो का निर्माण दो पुस्तकों ने किया, और वे दो पुस्तकें थी—भगवद्गीता तथा प्रकृति। केनबाई आगे लिखते हैं कि 'प्रकृति तथा भविष्य की आशा' (पुस्तक के दो भाग) हेनरी थोरो के न्यूटेस्टामेंट थे। इनके ऊपर थोरो ने अपने दर्शन का प्रतिपादन किया। इनसे और हिन्दू धर्मग्रंथों से उन्होंने अपने जीवन का निर्देशन किया। डा. रिड का यह विचार है कि 'सम्भवतः जिस तरह वह अपने नवीन प्रयोग के लिए वाल्डन पोण्ड की ओर गया, वह गीता को पढ़ता गया। थोरो के आध्यात्मिक मित्र इमर्सन जून, 1845 में अत्यधिक उत्साह के साथ अपने संवाददाताओं को गीता के अध्ययन की सलाह देते आ रहे थे और अपने पत्र में उन्होंने 'कर्म और अकर्म' पर एक पैराग्राफ उद्धृत किया। थोरो का भगवद्गीता के ज्ञान से परिचय चार्ल्स विल्किन्स द्वारा भगवद्गीता के अनुवाद से हुआ जिसका प्रथम अंगरेजी संस्करण सन् 1785 में प्रकाशित हुआ था। इसका शानदार आमुख भारत के गवर्नर जनरल वारेन हैस्टिंग्स ने लिखा था। केनबाई का विचार है कि थोरो के लिए कर्म और अकर्म की समस्या लोकोत्तर न होकर वास्तविक समस्या थी और इसके समाधान ने उनके बाद के जीवन की दिशा निर्धारित की। मुझे विश्वास है कि भगवद्गीता में थोरो को एक महान् नैतिक और धार्मिक नीतिकथा मिली थी।

वे आगे लिखते हैं कि मनु, कन्फ्यूसियस, वेद और उपनिषद्—इन सभी से उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया और संभवतः समान निष्कर्ष निकाले। लेकिन भगवद्गीता उनके लिए बहुत स्पष्ट थी और इमर्सन की 'प्रकृति' की तरह यह उनकी चेतना में गहरी उतरती चली गई और इसने उन्हें नया जन्म दिया। वारेन हैस्टिंग्स के उद्धरण पर थोरो की टिप्पणी थी कि जीवन की वास्तविकताओं का आखिर क्या अर्थ होता है? तुरंत किये जाने वाले कार्य बहुत तुच्छ होते हैं। इस टिड्डी के गान को सुनने के लिए छोड़ सकता हूँ। मेरे अनुभवों में सर्वाधिक गौरवशाली तथ्य वह नहीं है जो मैं कर चुका हूं अथवा आशा करता हूँ कि करूंगा बल्कि कोई क्षणिक विचार, कल्पना अथवा स्वप्न जो मेरे मन में आया था। एक सच्चे अन्तर्ज्ञान के लिए मैं दुनिया की सारी दौलत अथवा सभी नायकों के महान् कृत्यों को न्योछावर कर सकता हूँ लेकिन मैं ईश्वर से विचार विनिमय कैसे कर सकता हूँ जो इस दुनिया में पागलपन से बचने के लिए पेन्सिल घिसने वाला व्यक्ति है।

थोरो द्वारा भगवद्गीता से लिया गया प्रधान विचार यह था कि 'बुद्धिमान व्यक्ति वही खोजता है जो उसकी आत्मा के अनुकूल होता है। वाल्डन ने एक ऐसा समाधान सुझाया जो इस महान् ग्रंथ के एकदम अनुकूल था और थोरो को इसका पूरा भान था। केनबाई कहते हैं, भारतीय आश्रम के समान वनों में निवास

उसकी प्रकृति के अनुकूल था और आध्यात्मिक प्रकाश के लिए एकान्त आवश्यक था। डा. रीड का कहना है—थोरो की महानतम पुस्तक भारतीय साहित्य के उद्धरणों से भरी पड़ी थी। किसी को भी यह शक हो सकता है कि अपने उस एकान्त कमरे में थोरो के हाथों में भगवद्गीता और अन्य हिन्दू धर्मग्रंथ थे क्योंकि वे उनका बार-बार उद्धरण देते हैं। थोरो कालिदास रचित शकुंतला के भी शौकीन थे और अपनी पुस्तक वाल्डेन में उन्होंने कई हिन्दू कथानकों के उद्धरण दिये हैं। लेकिन गीता के प्रति उनका लगाव विशिष्ट था। थोरो के विचार में पूर्व के सभी विचारों से गीता अधिक प्रशंसनीय थी।

थोरो तथा गाँधी

अपने निबंध 'सिविल डिसओबिडिएन्स' के माध्यम से थोरो ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम के महानतम व्यक्तित्व महात्मा गाँधी को बहुत प्रभावित किया था। गाँधी जी ने इस निबन्ध को तब पढ़ा था जब वे दक्षिण अफ्रीका की जेल में थे। महात्मा गाँधी उस समय 'भारतीय विचार' नाम से प्रकाशित एक पत्र का सम्पादन किया करते थे, जिसके लिए उन्होंने इस निबंध के कुछ हिस्सों का अनुवाद किया था। इस निबन्ध ने महात्मा गाँधी को असहयोग आंदोलन के रूप में अन्याय से लड़ने के लिए एक ऐसा अहिंसक हथियार उपलब्ध कराया था, जिसका उपयोग उन्होंने भारत में ब्रिटिश शासन से लड़ने के लिए प्रभावी रूप से किया। इस तरह थोरो ने न केवल भारत की बौद्धिक परम्परा की प्रशंसा की बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए युद्ध को भी प्रभावित किया।

संक्षेप में हम केनबाई के उस कथन से सहमत हो सकते हैं कि थोरो अपने पूर्व के गहन आध्यात्मिक ओज को हमेशा साथ रखते थे, जिससे उनके जीवन के प्रति उत्साह में वृद्धि हुई। यही वह आध्यात्मिक ओज है, जिससे देशों के बीच मित्रता के सम्बन्धों में प्रगाढ़ता आती है और इसी सांस्कृतिक समझ के कारण भारत अमरीका को अपना विश्वसनीय मित्र और प्रजातंत्र का रक्षक मानता है।

वेद हमारे जीवन को समुन्नत करते हैं। यूरोप के सभी दर्शन और विज्ञान वेद की तुलना में नगण्य हैं। विश्व के सभी लोगों को वेद की ओर उन्मुख होना चाहिये।

—प्रो. इमर्सन

हेनरी डेविड थोरो_'भारतीय ज्ञान से परिपूर्ण एक अमरीकी मस्तिष्क'

भारत अनादिकाल से, यहाँ तक कि कोलम्बस और अमेरिगो, जिन्होंने कोलम्बिया और अमरीका का वर्तमान नाम दिया, अमरीका के बारे में जानकारी की रुचि रखता था। पूर्ण सम्भावना है कि भारतवासियों ने इस विशाल देश (अमरीका) का नाम 'पाताल लोक' रखा था, क्योंकि भारतवर्ष के सापेक्ष्य यह देश भूमण्डल की विपरीत दिशा में अवस्थित है। मेक्सिको को, जो मय (दानव) की संतानों का 'मय देश' या 'मय दानव का देश' था, वास्तव में सही कहा गया। भिक्षु चमनलाल ने अपनी अद्‌भुत पुस्तक 'हिन्दू अमरीका' में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि प्राचीन सभ्यता, (चाहे वह ऐजटेक, मय या इन्कस हो) जो दोनों अमेरिकी देशों में विद्यमान है, उनकी उत्पत्ति का स्रोत भारत की हिन्दू सभ्यता ही है। यहाँ तक कि मेक्सिको के राजकीय इतिहास में भी मेक्सिको की सरकार ने स्वीकार किया है कि वर्तमान समय में अमरीका नाम से जाने जाने वाले देश में पूर्व में स्थित भारत की वेगपूर्ण धारा में बह गये लोगों का ही पदार्पण हुआ था।

वर्तमान समय में भी भारत और अमरीका, जो विश्व के (नये और प्राचीन) दोनों ओर अवस्थित हैं, जनतन्त्र के स्तम्भ माने जाते हैं। भारत और संयुक्त राज्य अमरीका के उद्देश्यपूर्ण सम्बन्धों का यह बन्धन मात्र राजनीतिक और कूटनीतिक सम्बन्धों तक ही सीमित नहीं है बल्कि इन दोनों महान् राष्ट्रों के सांस्कृतिक सूझ-बूझ के सूक्ष्म परन्तु शक्तिशाली तन्तुओं से पूर्णतः आबद्ध है।

रोमां रोलां ने अपनी पुस्तक 'नये भारत के संत' (Prophets of New India) में लिखा है, 'यह जानना एक अत्यन्त रोचक एवं गंभीर चिंतन का विषय होगा कि उन्नीसवीं शताब्दी में किस प्रकार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अमेरिकी आत्मा को हिन्दू विचारों ने दृढ़ रूप से प्रभावित किया है।'—'क्योंकि इन विचारों ने अमरीका के आधुनिक चारित्रिक एवं धार्मिक मानसिकता को आश्चर्यजनक रूप से प्रभावित किया है। मैं नहीं जानता कि कोई भी इतिहासकार इस के गहन चिन्तन पर अपना गंभीर समय दे सकेगा। तथापि मैं यह मानता हूँ कि सभ्यता के इतिहास

से सन्नद्ध यह एक मनोवैज्ञानिक समस्या है।' रोमां रोलां ने इन शब्दों में अपना मन्तव्य प्रकट किया है।

हेनरी डेविड थोरो (सन् 1817-1862) ने अमरीका के न्यू हैम्पशायर राज्य के एक छोटे से कस्बे 'कानकार्ड' में जन्म लेकर वहाँ की भूमि को पवित्र कर दिया। उन्होंने 'वाल्डन' नामक सरोवर के तटों को अपनी अध्यात्म साधना से, मानव मूल्यों और औदार्यपूर्ण विचारों से पूर्णतः पवित्रता प्रदान कर दी। थोरो एक महान् आदर्शवादी विचारक थे, जिन्होंने भारतीय ज्ञानसागर में गहरा अवगाहन किया था। आयरलैंड के कवि जे. डब्ल्यू. रसेल ने कहा है, 'आधुनिक चिन्तकों में गेटे, वर्ड्सवर्थ, इमर्सन और थोरो ने भारतीय ज्ञान के कुछ ही भाग के विषय में कहा है परन्तु उन्होंने जो कुछ भी कहा और लिखा है उसे प्राची (East) के पवित्र ग्रन्थों में ही पूर्ण रूप से प्राप्त कर सकते हैं। श्रीमद्‍भगवदगीता और उपनिषद् में हम ईश्वरत्व के पूर्णता भरे ज्ञान का दिग्दर्शन कर सकेंगे। इनका अध्ययन और मनन करने वाले सहस्रों मनीषियों ने अपना पूरा जीवन खपा दिया होगा जिसके फलस्वरूप आत्मा की सत्यता का ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

'सादा जीवन उच्च विचार'—भारतीय प्राचीन चिन्तकों एवं महात्मा गाँधी की तरह थोरो भी सादगीपूर्ण जीवन के लिए उत्तम एवं उच्च विचारों को ही महत्त्वपूर्ण मानते हैं। थोरो आडम्बरपूर्ण सभ्यता के घोर विरोधी थे जो मानव के वास्तविक स्वभाव का हनन कर देती है वे कहते हैं, 'हमें उस मानवीय प्रकृति को तुच्छता नहीं प्रदान करनी चाहिये जो मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है क्योंकि कोई भी विचार उसकी महत्ता का अवमूल्यन नहीं कर सकता। वह प्रभु की सत्ता की प्रतिच्छाया है, उसकी अनन्तता का द्योतक है। उसके विस्तार और व्यापकता को सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। थोरो कहते थे कि मनुष्य को अपने परिश्रम से अर्जित वस्तुओं से अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करके संतुष्ट रहना चाहिये जिससे वह आत्मनिर्भर एवं स्वतन्त्र रह सके। वे सोचते थे कि परिश्रम करने वाले व्यक्ति को एक मशीन की भाँति अतिरिक्त समय नहीं मिलता। भौतिक आवश्यकताओं की दौड़ ने मानव को शक्तिशाली लोगों का दास बना दिया है। वे कहते हैं, 'आधुनिक औद्योगिक सभ्यता के विषय में सोचें तो पायेंगे कि हम रेल की पटरियों पर नहीं दौड़ते अपितु पटरियाँ ही हमारे ऊपर चढ़ जाती हैं। आगे वे कहते हैं कि पटरी का प्रत्येक स्लीपर एक आदमी हो गया है। रेल तो उन पर ही बिछायी जाती है और उन्हें रेत से ढक दिया जाता है, जिन पर गाड़ी आराम से दौड़ती है।'

'थोरो' का मत है कि सादगी ब्रह्माण्ड के उन मधुर गीतों के रहस्य को उद्घाटित करती है जो मनुष्य को एक कवि बना देती है। वे आगे पूछते हैं कि 'मनुष्य ने अपने रहने का आवास निर्मित कर लिया, अपने और अपने परिवार के लिए खाद्य पदार्थों

का सादगी और ईमानदारी से प्रबन्ध कर लिया तो काव्य प्रतिभा का प्रस्फुटन स्वतः हो गया। आप देखते हैं कि पक्षियों के व्यस्त रहने पर भी उनका गायन चलता रहता है।

थोरो ने दीनता को इतना महिमामंडित किया है कि वे कबीर और गाँधी के प्रारूप प्रतीत होने लगते हैं। वे कहते हैं बाह्य दीनता के विपरीत उसी मात्रा में आन्तरिक वैभव का उदय होता है। भारतीय ऋषियों की भांति वे कंद-मूल-फल पर ही अपना जीवन निर्वाह करते थे—मूँगफली, पौधों की जड़ों का वे बड़े चाव से आनन्दपूर्वक सेवन करते थे।

थोरो एक दार्शनिक और एक आदिवासी की सादगी का अन्तर बताते हुए कहते हैं, 'एक दार्शनिक की सादगी एक बाह्याडम्बर है लेकिन अन्तर्द्वन्द्व भी है। आदिवासी की सादगी बाह्य और आन्तरिक दोनों ही समान हैं।'

मौन एवं एकान्त—थोरो आत्मदर्शन एवं आत्म-साक्षात्कार के लिए मौन को अत्यन्त महत्त्व देते हैं। भारतीय शास्त्रों का यह उद्घोष है कि जहाँ वाणी प्रभावकारी नहीं होती वहाँ मौन अत्यन्त प्रभावोत्पादक हो जाता है। उसी सांस में थोरो आगे कहते हैं कि वाणी बधिर व्यक्तियों की सुविधा हेतु होती है। अपनी आत्मा के आन्तरिक गायन को सुनने हेतु मनुष्य के लिए एकान्त सेवन ही उपाय है जैसा कि भारत के ऋषि-मुनियों द्वारा किया जाता था। थोरो कहते हैं, 'जब मेरे पास कोई नहीं आता है उस समय मुझे अधिक संग का अनुभव होता है।' थोरो के लिए एकान्त आत्मविश्वास उत्पन्न करता है एवं उसके अस्तित्व का बोध कराता है तथा प्रकृति की प्रचुरता एवं ज्ञानमय अज्ञानता को उद्घटित करता है।

निरामिषत्व (शाकाहारीपन)—थोरो कहते हैं, 'मेरी अपनी जो भी आदत या व्यवहार हो मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि मानव मात्र की यह नियति है और इसी के क्रमिक विकास का परिणाम है कि उसने पशुओं का भक्षण छोड़ दिया, जिस प्रकार आदिमानव ने एक दूसरे मानव का भक्षण भी, जब वह सभ्य समाज की सभ्यता के सम्पर्क में आया, छोड़ दिया।' थोरो के इस विश्वास में भगवान बुद्ध या महावीर या कबीर अथवा गाँधी का स्पष्ट उद्घोष प्रतिध्वनित हो रहा है।

प्रकृति का ईश्वरत्व—थोरो सर्वेश्वरवादी थे, जो प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर का स्वरूप देखते थे। वे पूछते हैं, 'क्या हम ईश्वर का साक्षात्कार नहीं कर सकते? या हम प्रतीक कथाओं में वर्णित अमूर्त की भावना से ही आनन्दित होते रहेंगे? वास्तव में क्या हम उस प्रकृति को, जो उस ईश्वर का ही प्रतीक मात्र है, मानने से असहमत रहेंगे? भारतीय चिन्तकों का पुरुष को प्रकृति में सन्निहित मानना भी एक अत्यन्त शुभ साधना है।'

संगीत और काव्य—थोरो की दृष्टि में काव्य मानव का एक स्वतःस्फूर्त सत्य का दिग्दर्शन है और संगीत आन्तरिक अनुभूति की साधना है। थोरो कहते हैं, 'काव्य पूर्ण सत्य की अभिव्यक्ति है। दर्शनशास्त्र उसके एक अंशमात्र को ही उद्घाटित करता है।' आगे वे कहते हैं, 'मैं जो भी वस्तु देखता हूँ जो पूर्ण है, वह काव्य है'। वे ध्वनियाँ जिन्हें मैं अपनी इन्द्रियों के द्वारा अप्रत्याशित अथवा ज्ञात रूप से सुनता हूँ वे अर्थपूर्ण संगीत हैं। वे ही सुने भी जाते हैं।' एक अन्य स्थान पर थोरो कहते हैं, 'मनुष्य का जीवन एक वैभवशाली यात्रा की तरह संगीत को सुनने हेतु होना चाहिये।' यह विचार भारतीय कवि की संकल्पना से अत्यन्त मिलता-जुलता है—उस कवि की तरह, जो शब्दों को केवल छंद-बद्ध ही नहीं करता वरन्, उस मनीषी की तरह जो उस परम सत्य ईश्वर का द्रष्टा होता है।

आधुनिक सभ्यता—थोरो पाश्चात्य सभ्यता के कटु आलोचक थे। गाँधी की तरह वे भी मशीनी कारोबार के घोर विरोधी थे, जिसने मानव को मशीन की भाँति गर्दनतोड़ प्रतिस्पर्धा हेतु यंत्रवत् बना दिया है, जिसने उसे वस्तुओं की तरह व्यापार में आदान-प्रदान करने की ही वस्तु बना दिया है। थोरो व्यंग्य करते हैं : आज का सभ्य मानव एक सभ्य आदिवासी मात्र हो गया है। अपने एक अत्यन्त तीखे भाषण में थोरो पश्चिम के व्यापारीकरण के घोर विरोधी दीखते हैं। वे कहते हैं—यह व्यापारीकरण काव्य के प्रति अपराध ही है।

दर्शनशास्त्र का उद्देश्य-आत्मबोध—भारतीय चिन्तन की भाँति ही थोरो दर्शनशास्त्र को एक अटकलबाजी या उसका विश्लेषण मात्र ही नहीं मानते बल्कि उसे जीवनशैली को संवारने की विधा मानते हैं। भारतीय मनीषी की भाँति दर्शनशास्त्र को 'आत्मदर्शन' के उच्चतम आदर्श की प्राप्ति में थोरो भी भौतिक सुख को खोजने वालों को सचेत करते हैं। अपने अनुभव एवं चरित्र के द्वारा भौतिकवादी दौड़ के खतरों एवं नवीन आविष्कारों से आगाह करते हुए थोरो वर्तमान में लौट आने की सलाह देते हैं। थोरो अपने रोजनामचा में बड़े ही रोचक ढंग से कहते हैं, 'मैं स्वयं से बात करता हूं।' अपने आप से बात करने की यह विधा वास्तव में भारतीय ही है। गीता कहती है अपना उद्धार अपने आप करो। बुद्ध का भी यही उद्घोष है 'अत्ताहि अत्तनो नाथो' अर्थात् आत्मा ही आत्मा का स्वामी है अतः स्वयं प्रकाशपुंज बनो, ऐसा कहा गया है।

श्रद्धा—थोरो कहते हैं, 'हम जो देखते हैं, वही है। श्रद्धा ही ज्ञान दृष्टि है'। यह गीता के वचनानुसार भी 'यह पुरुष श्रद्धामय ही है जैसा वह श्रद्धा से जानता है, वही है।' यह मानव श्रद्धा का ही मूर्तरूप है। जैसी उसकी श्रद्धा है वैसा ही उसका स्वरूप होता है।

ब्राह्ममुहूर्त में जागना—भारतीय परम्परानुसार ब्राह्म मुहूर्त में जागने को थोरो भी अत्यन्त महत्त्व (बल) देते हैं। 'वाल्डन' नदी के किनारे भारतीय ऋषियों की तरह नन्ही-सी कुटिया में निवास करते हुए थोरो उषा के नक्षत्रों से बातें करते हैं, पक्षियों और मीनों से, प्रकृति के सभी तत्त्वों से वार्तालाप करते हैं। इस प्रकार उनसे सम्पृक्त हो जाते हैं जैसे महान् रहस्यवादी व्यावहारिक रूप से रम जाता है। आत्मिक जागृति के लिए ब्राह्ममुहूर्त में उठना आलस्य भरी निद्रा की अपेक्षा अत्यधिक उपयोगी होता है। थोरो कहते हैं, 'यह प्रक्रिया राष्ट्र को समुन्नत करती है। हम दिन-प्रतिदिन प्रातः जागरण से उत्तरोत्तर स्वस्थ, धनवान एवं बुद्धिमान होते जायेंगे।' इसको एक आध्यात्मिक बोध देते हुए कहते हैं, 'जब ही जागें तभी सवेरा'। हमारे भीतर ही उषाकाल है। निद्रा से जाग जाना ही चारित्रिक सुधार का सोपान है। उपनिषद् के शक्तिशाली उद्‌घोष 'उत्तिष्ठत् जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' (उठो, जागो एवं उत्तम गुणों का आधान करो)। भारत का प्रत्येक सुधारक चारित्रिक जागृति का पोषक रहा। पाँच शताब्दी पूर्व गुरु नानक गाया करते थे, 'जागो रे जिण जागणा, अब जागण की बार, फेर के जागो नानका, जब सोवण पाँव पसार।' अर्थात् जागृति-जागरण के इच्छुक व्यक्तियों को आज और अभी जागना है क्योंकि अभी वह समय है, जब टाँग फैलाकर पड़े रहोगे तो फिर कैसा जागना। महात्मा का प्रिय भजन जिसे प्रातःकाल गाया करते थे, 'उठ जाग मुसाफिर भोर भई अब रैन कहाँ जो सोवत है, जो जागत है सो पावत है जो सोवत है वह खोवत है।'

वसन्त ऋतु आध्यात्मिक जागृति का प्रतीक—थोरो शीतऋतु को आध्यात्मिक समाधि का प्रतीक मानते हैं और वसन्त ऋतु को आध्यात्मिक जागृति का प्रतीक। यह प्रतीकत्व भी भारतीय चिन्तन ही है। थोरो के शब्दों में, 'यदि वे वसन्त के निर्झरों के प्रभाव की अनुभूति प्राप्त करते हैं तो उन्हें लोकोत्तर आनन्द की प्राप्ति होगी। 'मधुवाता ऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धवः' अर्थात् वायु मधु की वर्षा करते हैं और क्षार समुद्र मधु का प्रवाह करता है।' चरित्रवान संस्कार के व्यक्ति के लिए वसन्त के दृश्य प्रकृति के सामंजस्य एवं सहयोग के भाव प्रकट करते हैं। थोरो शुद्धता पर अत्यधिक बल देते हैं जो अमरीका की अपेक्षा भारतीय जीवनमूल्यों को ही प्रतिपादित करते हैं।

सांसारिकता से विरक्ति और आत्मा में आसक्ति—थोरो के अनुसार मनुष्य जितना अधिक सांसारिकता से विरक्त होगा उतना ही आत्मा की वास्तविकता के प्रति जागृत होगा। एक व्यावहारिक रहस्यवादी की भाँति वे मानते हैं—जब तक हम तिरोहित नहीं हो जाते हैं अर्थात् जब तक हम संसार से विदा नहीं हो जाते और अनन्त सत्य को प्राप्त नहीं कर लेते तब तक गीता के स्थितप्रज्ञ दर्शन की पुनरावृत्ति

ही पाते हैं। 'आत्मन्ये-वात्मना तुष्टः, स्थित-प्रज्ञस्-तदोच्यते'।। (गीता 2/55) जब मनुष्य अपनी कामनाओं का और संसार का परित्याग कर देता है तो उसका मन स्वयं से संतुष्ट होने लगता है। वही स्थितप्रज्ञ कहलाता है।'

प्राची का प्रकाश—भारतीय ज्ञान से थोरो इतने अधिक प्रभावित थे कि उनका सतत उद्घोष था कि प्रकाश प्राची दिशा से ही आता है। आज भी अध्येताओं का जीवन आदर्श यही है कि Ex-oriento Lux, प्रकाश पूर्व दिशा से ही आता है।

मनुस्मृति : भारत की महान् विधि-संहिता—मनुस्मृति से थोरो अत्यन्त प्रभावित थे। वे लिखते हैं, 'मैं ऐसी किसी पुस्तक के बारे में नहीं जानता हूँ जो इसकी (मनुस्मृति) शान की बराबरी का दावा कर सके क्योंकि वह अवैयक्तिक और निष्कपट होते हुए न तो किसी की भावना को चोट पहुँचाती है और न हास्यास्पद ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसका प्रणयन प्राची के अत्यन्त उच्च शिखर से शान्त वातावरण से युक्त ब्राह्म वेला में किया गया है। इसका अध्ययन किसी सुरम्य घाट के चबूतरे पर बैठकर ही किया जा सकता है। मरुस्थल की हवाओं के गान, गंगा की तरंगों और हिमालय के उच्च शिखरों से भी वरीयान है। अंगरेजी साहित्य ने अत्यन्त परिश्रम किया है परन्तु हिन्दू ज्ञान की सहज अभिव्यक्ति की तुलना नहीं कर सकता। जब हम इसके पृष्ठों को पलटते हैं तो उनमें पुष्पों की पंखुड़ियों की भाँति स्वतःस्फुटन अनायास अचम्भित कर देते हैं। ज्ञान की इन कणिकाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हें बहुत ही साधारण अनुभवों से प्रणीत किया गया होगा परन्तु समुद्र की गहराई में पड़े हुए मोती की भांति अवस्थित हैं। इंग्लैण्ड की नवीन दृष्टि अथवा वर्तमान के आधुनिक ज्ञान की तुलना में ऐसा प्रतीत होता है कि वे पहले से आप्त हो चुके हैं। इन गगनचुम्बी आदर्शों को निरपेक्ष भाव से प्रदूषित भी नहीं किया जा सकता। इसकी (मनुस्मृति) गम्भीरता, निष्कपटता एवं महत्ता का अस्तित्व जब तक आकाश रहेगा, तब तक बना रहेगा।

भगवद्गीता—आधुनिक अमरीका में थोरो श्रीमद्भगवद्गीता के अनन्य, अग्रगण्य प्रशंसकों में से एक हैं। वे नित्य प्रातः भगवद्गीता के स्वर्गिक सरोवर में गोता लगाया करते थे। वह ज्ञानामृत, जो अनन्त है, का पान किया करते थे। इस अनुवाद की (सन् 1785 में प्रकाशित) प्रस्तावना भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स द्वारा लिखी गई थी। गीता को श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए थोरो कहते हैं, 'यह निर्विवाद रूप से पवित्र एवं आदरणीय अभिलेख है जिसे हमने पाया है। पुस्तकों के महत्त्व का आकलन उसके विषयों की महानता, न कि उनकी लेखन शैली, से किया जाना ही समीचीन होता है। पश्चिम के लिए गीता पढ़ने की संस्तुति करते हुए वे कहते हैं, 'धार्मिक पुस्तकों के पाठकों को बताना चाहता हूँ कि

यदि अच्छी पुस्तक का अध्ययन करना हो तो कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास प्रणीत महाभारत के एक पर्व का अध्ययन करें जो लगभग चार हजार वर्ष पूर्व लिखा गया था और चार्ल्स विल्किन्स अथवा अन्य किसी द्वारा अनुवादित किया गया है। इसे अत्यन्त आदरपूर्वक पढ़ना चाहिये। 'Yankees (अंगरेजों)' द्वारा भी इन्हें धार्मिक समाज की कृतियाँ समझकर पढ़ना चाहिये। बुद्धिमान हिब्रू को भी अपनी धर्मनिष्ठ पुस्तकों की तरह इसका भी रसास्वादन करना चाहिये क्योंकि गीता में भी उच्चतम आदर्शों का प्रतिपादन हुआ है।'

हितोपदेश—थोरो भारतीय नीति कथाओं में 'हितोपदेश' के बड़े प्रशंसक और पसंद करने वाले थे। वे कहते हैं, 'हितोपदेश कथायें ज्ञान की दृष्टि से समाज के आगे और पीछे भी दृष्टि डालती हैं। ये जीवन के अन्तिम दिनों की आत्मनिर्भरता एवं उत्तम स्वास्थ्य पर अधिक बल देती हैं। मानसिक संतुलन की प्रतिज्ञा जिस पुस्तक में न हो उसका प्रभाव उसी पर परिलक्षित होता है। इस पुस्तक की कहानियों एवं नीति कथाओं की प्रत्येक पंक्ति मरुस्थल में ऊँट के पदचिह्नों को आबद्ध करती प्रतीत होती है, जो 'मोरजक' और 'डारफर' के अन्तर को भी स्पष्ट करती हैं। आधुनिक पुस्तकों पर ये टीका-टिप्पणी भी करती हैं। पाठक एक सोपान से दूसरे सोपान पर अग्रसर होता जाता है जब वह एक वाक्य पढ़कर उत्तरोत्तर आगे पढ़ता है। कहानी में अग्रेतर बढ़ते रहने का प्रवाह सा प्रतीत होता है।

गाँधी जी कहते हैं, 'थोरो के मुख से भारतीय ऋषि की आत्मा ही बोल रही है।' क्या पूरब के युवा पश्चिम के इस महान् संत के प्राच्य संस्कृति की अभिव्यक्ति को महत्त्व देंगे?

मैं चुनौती देता हूँ कि कोई भी आकर यह दिखा दे कि भारत के जातीय जीवन के अमुक युग में ऐसे अध्यात्मिक दिग्गज नहीं हुए जो पृथ्वी को आन्दोलित न करे सके हों... संसार पर उसका प्रभाव तो सर्वदा उस मृदु ओस की तरह रहा है जो न तो सुनाई पड़ता है और न दिखता ही है, पर जो धरती की सुंदर से सुंदर कलियों को खिला देता है—ऐसा प्रभाव जो स्वभावतः ही मृदु है, स्वदेश की सीमा लाँघ कर विदेशों में पहुँचने के लिए अवश्य कुछ अनुकूल परिस्थितियों की अपेक्षा रखता है, यद्यपि स्वदेश की सीमा में उसका असर सदा ही जारी रहा।

—स्वामी विवेकानन्द

विश्वशांति की कहानी

भूमिका तथा महत्त्व

विश्व में शांति की कहानी अति प्राचीन है। वेद संसार के प्राचीनतम साहित्य की महानतम निधि हैं, उनमें त्रिकालज्ञ ऋषियों द्वारा गायी हुई शांति की महिमा अति अनूठी है। सृष्टि के आदिकाल में ही शांति-पाठ द्वारा शांति का स्तवन किया गया।

ॐ द्यौः शान्ति-रन्तरिक्ष (गं) शान्तिः पृथिवी शान्ति-रापः
शान्ति-रोषधयः शान्ति। वनस्पतयः शान्तिर्-विश्वे-
देवाः शान्तिर्-ब्रह्मशान्तिः सर्व (गं) शान्तिः शान्तिरेव
शान्तिः सा मा शान्तिरेधि। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

सर्वत्र शांति का ही पाठ होता है—इस पृथ्वीतल पर जब से मानव ने जीवन पाया तभी से उसने शांति की महत्ता को स्वीकार किया, उसकी अभ्यर्थना की, आराधना की तथा उसे विश्व की सर्वोच्य प्राप्तव्य वस्तु के रूप में माना। गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा है—

शांतिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ।—6/15/2

अर्थात्—तू मेरे में स्थिति रूप परमानंद पराकाष्ठा वाली शांति को प्राप्त होगा।

इससे यह विदित होता है कि समस्त ब्रह्माण्ड की एकमात्र संचालक शक्ति (परमब्रह्म परमेश्वर) भी शांति स्वरूप ही हैं तथा इस प्रकार की परम शांति को प्राप्त करना मानव जीवन का सर्वोत्कृष्ट ध्येय हो सकता है। वेद-मंत्रों के अंत में जो तीन बार शांति का उच्चारण 'ॐ शान्ति, शान्ति, शान्ति' होता है उसका अर्थ यह है कि शान्ति स्वरूप भगवान हमें त्रिविध शांति (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक शान्ति) प्रदान करें।

शान्ति का महत्त्व—यह तो स्पष्ट ही है कि शांति अनादिकाल से हमारे लिए एक अभिलषित प्राप्तव्य एवं अभीष्ट वस्तु रही है। किन्तु तब शांति को इतनी महत्ता देने का कारण क्या था, यह जान लेना आवश्यक है। मानवता के विकास काल में शांति नितान्त आवश्यक थी। विकसित होते हुए पुष्प को शांति चाहिए, निर्मित होते हुए एक भवन के लिए भूचाल की नहीं शांति की अत्यधिक आवश्यकता है।

शांति के बिना बच्चे का माता की कोख में विकास नहीं हो सकता, फूल खिल नहीं सकता तथा भवन निर्माण नहीं हो सकता। मानव समाज की प्रगति के लिए भी शांति परम आवश्यक है। देश में शांति का अभाव होने पर कोई काम-धंधा नहीं चल सकता, जनता का मन संत्रस्त रहता है तथा इस मानसिक अशांति के कारण कोई भी कार्य सफलता से नहीं हो सकता। अतः मनुष्य के अस्तित्व के लिए, उसके जीवन के लिए, उसके निर्वाह के लिए, उसकी प्रगति के लिए शांति परमावश्यक है।

शान्ति-प्रचार के लिए सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रयत्न

1. विश्व के इतिहास में जिस महामानव ने सर्वप्रथम शांति का संदेश सुनाया वह आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व इस भारत भूमि पर जन्म पाने वाले महात्मा बुद्ध थे। आपने मानव को मानव बनने का पाठ पढ़ाया तथा अहिंसा एवं शांति का उदात्त आदर्श प्रस्तुत किया। एक बार तो सारा संसार ही महात्मा बुद्ध का मतानुयायी बन गया।
2. श्री महावीर जिन ने अहिंसा धर्म को मानकर शांति की नींव को सुदृढ़ बना दिया।
3. चीन में कन्फ्यूशियस, बुद्ध के समकालीन थे जो मानवतावाद तथा शांति के समर्थक थे ।
4. ईरान में महात्मा जूरास्त्र (Zoaraster) मानवता की महान विभूति तथा शांति के सच्चे देवता थे।
5. 2400 वर्ष पूर्व ग्रीस (यूनान) में सुकरात ने मानवता को सत्य, न्याय तथा शांति का संदेश दिया।
6. 1951 वर्ष पूर्व पैलेस्टाइन में ईसा (Jesus Christ) ने मानवता को प्रेम तथा शांति का संदेश देते हुए कहा—'Love thy neighbour as thyself'.
7. रूस में टालस्टाय शांति के अग्रदूत थे।
8. भारत में महात्मा गाँधी शांति धर्म के प्रचारक तथा मानवतावाद के प्राण थे।
9. विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे शांत-गंभीर तपस्वी ने विश्व को शांति का संदेश सुनाने के लिए 'शांति निकेतन' नामक शांति के पावन निकेत की स्थापना की।

शांति के तीन प्रकार

1. मानसिक अथवा आध्यात्मिक शांति—वेदों तथा धर्म पुस्तकों में केवल इस शांति का महत्त्व बताया गया है।

2. राज्य में शांति—इसके लिए प्रत्येक देश में पुलिस तथा न्यायालय (दण्ड विधान) की व्यवस्था होती है।
3. विश्वशांति—इसके लिए तीन मुख्य प्रयत्न किए गए।
   (i) पंचायती न्यायालय (1899 ई. से 1907 ई.) हेग में केन्द्रीय कार्यालय स्थापित किया।
   (ii) राष्ट्रसंघ (1919 ई., League of Nations)
   (iii) संयुक्त राष्ट्रसंघ (U.N.O.) स्थापना सन् 1945 जनवरी में सानफ्रांसिस्को में केन्द्रीय कार्यालय स्थापित हुआ।

आज शांति की समस्या क्यों ?

1. शांति का शत्रु युद्ध है। आज का युद्ध प्राचीनकाल के युद्धों से अधिक भयंकर हो गया है।
2. प्राचीनकाल में युद्ध के नियम थे—निःशस्त्र या नारी पर आक्रमण नहीं किया जाता था।

   संध्या से प्रभात तक युद्ध नहीं होता था। महाभारत में 18 दिन के भीषण युद्ध के पश्चात् पूर्ण शांति स्थापित हो गई। युद्ध के समय में भी शेष स्त्री-बच्चे-वृद्ध आदि शांति से रहते थे।

   विक्रमादित्य के काल में हूणों-शकों से भीषण युद्ध होते हुए भी किसान खेत में हल चलाते। अतः समाज में शांति रहती थी।
3. प्राचीनकाल में यातायात के साधन उपलब्ध न होने के कारण युद्ध विशेष प्रदेश तक ही सीमित रहता था। शेष देशों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। आज यातायात के तीव्रगामी साधनों के कारण दो देशों का युद्ध विश्वयुद्ध बन जाता है।
4. ज्यों-ज्यों राज्यों का विस्तार हुआ अर्थात् साम्राज्य बने युद्ध की भीषणता भी बढ़ती गयी।
5. विज्ञान की उन्नति के कारण युद्ध के भयंकर साधन निर्मित हो गए हैं। जैसे विमान, बम, विषैली-गैसें इत्यादि।
6. शांति की समस्या कभी सैनिकों के लिए नहीं होती। वे तो स्वेच्छा से लड़ने-मरने के लिए युद्ध में जाते हैं। शांति की समस्या तो सर्व-साधारण जन समाज के लिए है जो युद्ध से बहुत दूर अपने गांव-नगरों में सुख-शांति से जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। यदि भीषण से भीषण अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग केवल सैनिकों पर किया जाता तो कोई समस्या न थी किन्तु आज

निःशस्त्र और निर्दोष नागरिक, जनता पर निःसंकोच रूप से प्रहार किया जाता है। गांवों को आग की भेंट किया जाता है, बमवर्षा से कल-कारखाने तथा नगर ध्वस्त और असंख्य बालक-बालिकाओं, स्त्री-पुरुषों के निर्दोष प्राण अकारण ही नष्ट किए जाते हैं।

7. अणु बम का आविष्कार मानवता के नाश की सूचना देता है। यह बम नागासाकी व हिरोशिमा (जापान) पर सन् 1945 में फेंका गया। एक ही अणुबम आज तक सारे संसार के कलेजे को कंपा रहा है अतः आज के सामान्य जन-समाज की शांति संकट में है। आज शांति की समस्या इसलिए है कि सारा मानव समाज उसके लिए चीत्कार कर रहा है।

शांति के लिए राजनैतिक प्रयत्न

(क) छोटे-छोटे प्रयत्न—यूनान तथा रोम में संघ राज्य स्थापित हुए थे। वे शांतिपूर्वक कार्य चलाते थे। किन्तु आज तो युद्ध की विषमता को देखकर शांति की महा आवश्यकता प्रतीत होती है।

(ख) प्रमुख प्रयत्न

1. पंचायती न्यायालय—अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों के निबटारे के लिए पंचायती न्यायालय स्थापित किया गया। यह निर्धारित हुआ कि दो देशों के झगड़ों का फैसला पंचायती न्यायालयों से कराया जाए तथा युद्ध न किया जाए।
सन् 1899 में हेग (हालैंड) में बड़े राष्ट्रों का सम्मेलन हुआ।
सन् 1907 में हेग में दूसरा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ।
सन् 1909 लंदन में प्रमुख यूरोपीय देशों तथा जापान और अमरीका का सम्मेलन हुआ। 10 साल में 133 संधियाँ की गई।

2. शांति का महान तिरस्कार—(प्रथम विश्वयुद्ध, सन् 1914)।

प्रथम विश्वयुद्ध में सर्विया का राजकुमार आस्ट्रिया में मारा गया। जर्मनी की मित्रराष्ट्रों से डाह तथा आस्ट्रिया से मित्रता थी। दो दल बन गए।

मित्र राष्ट्र	केन्द्रीय राष्ट्र
इंग्लैण्ड, अमरीका, फ्रांस, इटली, चीन	जर्मनी, आस्ट्रिया, टर्की
भारत, जापान, सर्विया-बेल्जियम	हंगरी (रूस)

अंत में जर्मनी पददलित हुआ। विल्सन की शांति योजना ठुकरा कर वार्साई की संधि की गई। 400 कठोर शर्तें मनवाई गई। 18 जून 1919 को जर्मनी ने हस्ताक्षर किये—

(क) जर्मनी का 1/8 भाग छीन लिया गया।

(ख) अलसिस तथा तार के कोयले के क्षेत्र 15 वर्ष के लिए फ्रांस को दे दिए गए।

(ग) जर्मनी के सब्र खनिज पदार्थ तथा जर्मनी के अफ्रीका में उपनिवेश (Colonies) छिन गए।

(घ) 14 अरब रुपया 4 वर्ष में देना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त युद्ध का पूरा हर्जाना भी देना होगा।

(ङ) सेना का निःशस्त्रीकरण कर दिया गया। अधिक से अधिक 1 लाख स्थल सेना तथा 15 हजार नौ सेना की अनुमति दी गई।

3. राष्ट्रसंघ (League of Nations) की स्थापना—राष्ट्रपति विल्सन के प्रयत्नों से राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई।

(क) उद्देश्य—युद्ध को रोकना तथा सब राष्ट्रों की स्वाधीनता तथा समानता का ध्यान रखना।

निःशस्त्रीकरण करना।

(ख) ढांचा (Structure)—

एक असेम्बली—जिसमें सब देशों के प्रतिनिधि थे। एक कौंसिल जिसमें मुख्य-मुख्य राष्ट्रों के प्रतिनिधि थे।

प्रधान कार्यालय—स्विट्जरलैण्ड की राजधानी जेनेवा में बना। उच्चाधिकारी Secretary General थे। एक अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना की गई।

'नियम'—विश्वशांति की स्थापना के लिए यह सब से प्रथम तथा प्रमुख प्रयत्न कहा जाता है।

(i) विश्व में युद्ध का खतरा संपूर्ण राष्ट्रसंघ की चिंता का विषय होगा। राष्ट्रसंघ के सदस्य झगड़े का निबटारा स्वयं नहीं करेंगे। अपितु अंतर्राष्ट्रीय पंचायत के सामने उपस्थित करेंगे।

(ii) जब पंचायत निर्णय न कर सकेगी तो उस मामले को कौंसिल के सामने उपस्थित किया जाएगा। कौंसिल झगड़े को तय करने का प्रयत्न करेगी। यदि झगड़ा तय न हो सका तो कौंसिल अपनी सिफारिशों सहित रिपोर्ट प्रकाशित करेगी। जो राष्ट्र इस रिपोर्ट को मान लेगा वह राष्ट्रसंघ का मित्र माना जायेगा, किन्तु यदि कोई इसकी अवहेलना कर युद्ध छेड़ दे तो राष्ट्रसंघ के सभी सदस्य उसके विरुद्ध खड़े हो जायेंगे।

राष्ट्रसंघ की विफलता के कारण (Causes of the Failure of League of Nations)—

(i) वास्तव में राष्ट्रसंघ का संगठन सब देशों की स्वाधीनता और समानता के आधार पर नहीं हुआ था। (जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी आदि से बदला लेने की भावना थी।)

(ii) अंतर्राष्ट्रीयता की भावना का पूर्ण रूप से प्रचार नहीं था।

(iii) राष्ट्रसंघ में बड़े राज्यों का ही बोलबाला था । वे अपने स्वार्थ में लगे हुए थे।

(iv) साम्राज्यवाद की हीन भावना सब के मन में समायी हुई थी।

(v) अंदर ही अंदर सब एक-दूसरे से जलते थे।

(vi) निःशस्त्रीकरण सम्मेलनों में बड़े-बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधि लंबे-चौड़े प्रस्ताव रखते थे। किन्तु छिपे-छिपे अपने शस्त्रास्त्रों को बढ़ाते रहते थे।

(vii) राष्ट्रसंघ में इतनी शक्ति नहीं थी कि किसी शक्तिशाली राष्ट्र के विरुद्ध कोई कार्यवाही करे। (जापान ने मंचूरिया के मकदन पर कब्जा किया, इटली ने एबीसीनिया पर चढ़ाई की किन्तु राष्ट्रसंघ देखता रहा।)

(viii) जर्मनी में हिटलर खड़ा हो गया। उसकी नाजी पार्टी की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। सन् 1919 में जर्मनी को निःशस्त्र बनाया गया। पर 20 वर्ष के अंदर-अंदर संसार में सबसे अधिक शस्त्रीकरण कर लिया।

नवीनतम आविष्कार—आटोमैटिक बमवर्षक विमान, तारपीडो इत्यादि तैयार हो गए थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध

(i) सन् 1935 में जर्मनी ने फ्रांस से अपने कोयले के क्षेत्र वापस मांगे। फ्रांस ने यह मांग अस्वीकार कर दी।

(ii) जर्मनी ने सन् 1935 में अपने देश से सभी यहूदियों को मार भगाया तथा एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया।

(iii) सन् 1938 में जर्मनी ने बिना किसी सैनिक संघर्ष के मतनिर्वाचन द्वारा आस्ट्रिया को जीत लिया।

(iv) सन् 1939 में युद्ध प्रारम्भ हुआ। जर्मनी ने पौलेण्ड पर आक्रमण कर दिया।

(v) सन् 1940 में जर्मनी ने नार्वे, डेनमार्क, हालैण्ड, बेल्जियम, फ्रांस को जीत लिया।

(vi) जर्मनी के साथ जापान, हंगरी, रूमानिया, स्लोवाकिया मिल गए।

(vii) जर्मनी तथा रूस में पहले नान-एग्रेशन पेक्ट (Non Aggression Pact) हो चुका था। बाद में भंग हो गया।

(viii) मित्रराष्ट्रों में—इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि थे। बाद में रूस तथा अमरीका भी आ मिले।

(ix) सन् 1940 में चेम्बरलेन को हटाकर चर्चिल को ब्रिटेन का प्रधानमंत्री बनाया गया। चर्चिल की युद्धनीति सफल थी। क्रिप्स को रूस में बातचीत करने के लिए भेजा गया। अतः ब्रिटेन तथा रूस मिल गए।

(x) सन् 1941 में युद्ध का प्रभाव अफ्रीका पर भी पड़ा। मिस्र तथा लीबिया में भी युद्ध का क्षेत्र बन गया। सन् 1941 में जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया, जर्मनी ने लैनिनग्राड तथा स्टालिनग्राड भी जीत लिया।

अंत में मास्को पर हारा। सन् 1942 में जापान युद्ध क्षेत्र में कूद पड़ा। अमरीका ने जापान तथा जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया।

(xi) सन् 1942 में जापान ने सिंगापुर तथा बर्मा के कई भाग जीत लिए। आजाद हिंद फौज का निर्माण हुआ। अगस्त 1942 में भारत में Quit India Movement हुआ। भारतीय मंत्रिमंडल की इच्छा के विरुद्ध भारत को युद्ध में भाग लेने वाला घोषित कर दिया। साम्यवादियों ने द्रोह किया तथा कांग्रेसी नेताओं की धर-पकड़ हुई।

(xii) सन् 1943 में इटली ने युद्ध की घोषणा कर दी। मुसोलिनि नेता थे। इटली पर आक्रमण हुआ। इटली हार गया।

(xiii) सन् 1944 में फ्रांस तथा बेल्जियम पुनः स्वतंत्र। यूनान भी स्वतंत्र। जर्मनी की सीमाओं पर युद्ध होने लगा। अमरीकन फौज का फिलिपाइन द्वीपसमूह (शांत महासागर) में जापानी सेनाओं से युद्ध हुआ। सन् 1945 में हिरोशिमा और नागासाकी पर अणुबम फेंका गया। जापान का अंत तथा जर्मनी की पराजय हुई।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना, United Nation Organisation (U.N.O.)

1. अणुबम के प्रयोग ने शांति की समस्या को और भी जटिल बना दिया। अतः संसार के सब नीतिज्ञों ने पुनः शांति-शांति की पुकार की। बातचीत सन् 1945 में शुरू हुई और स्थापना सन् 1946 में हुई।
2. जहाँ पंचायती न्यायालय में निश्चय था कि युद्ध रोकने के लिए युद्ध नहीं किया जाएगा। वहाँ संयुक्त राष्ट्रसंघ में निश्चय किया कि युद्ध रोकने के लिए सैनिक शक्ति का भी उपयोग किया जायेगा। U.N.O. का सानफ्रांसिस्को में कार्यालय स्थापित हुआ।

असफलता के कारण

(i) इजराइल, कश्मीर और बर्लिन की समस्याएँ बनी हुई ही हैं, कुछ ठीक नहीं हुई।

(ii) यहाँ पर भी दो दल हैं।

(iii) राजनीति का अखाड़ा है, संसार दो दलों में बंट गया है।

(iv) स्वार्थ अभी बना हुआ है। गत युद्ध में अमरीका ने ही अणु बम का प्रयोग किया और उसी ने सच्चा बनने के लिए विश्वशांति के लिए आवाज उठाई। आज भी सानफ्रांसिस्को में दिखाने को सभाएं हो रही हैं। परंतु प्रयोगशालाओं में अणु बम, परमाणु बम तथा उद्रजन बम बन रहे हैं। रूस ने भी जन-संहारक बम बनाने आरंभ कर दिये हैं।

(v) संयुक्त राष्ट्रसंघ का निर्माण तीसरे विश्वयुद्ध की सूचना दे रहा है।

विश्वशांति के उपाय

विश्वशांति का भविष्य अंधकारमय है। पिछले तीनों प्रयत्नों में त्रुटियाँ थीं। विश्वशांति के लिए अंतर्राष्ट्रीय भावना का प्रचार आवश्यक है।

1. प्रारंभिक शिक्षा में संसार के सभी बड़े-बड़े महापुरुषों के जीवन-चरित्र, बड़े-बड़े साहित्यकारों की कृतियाँ समानरूप से सभी देशों में पढ़ाई जाएं। मुसलमानों को केवल कुरान ही न पढ़ाकर, गीता-रामायण आदि भी पढ़ाई जाए।
2. विश्व बंधुत्व—'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना का प्रचार होना चाहिए।
3. साम्राज्यवाद का अंत होना चाहिए। सभी पराधीन देशों को एकदम स्वाधीन किया जाए। किसी साम्राज्यवादी देश को विश्वसंघ का सदस्य न बनाया जाए।
4. संयुक्त राष्ट्रसंघ में छोटे देशों को भी शामिल किया जाए।

5. भारत जैसे विशाल एवं शान्तिप्रिय देश को स्थायी सदस्य की मान्यता दी जाए।

6. शांति के प्रयत्न केवल आडम्बर के लिए न हों। विश्व के प्रत्येक नागरिक के मन में शांति के लिए आदर तथा प्रेम का भाव उत्पन्न किया जाए।

7. यह भी सुझाव है कि विश्वराज्य स्थापित किया जाए। किन्तु यह असंभव प्रतीत होता है। विश्वराज्य स्थापित करने के पीछे बड़े-बड़े राज्यों की विश्व साम्राज्य स्थापित करने की कलुषित भावनाएं छिपी हुई हैं। रूस ने साम्यवाद के नारे पर संसार के भिन्न राष्ट्रों को संगठित करना प्रारंभ कर दिया है। उसका विश्वराज्य प्रायः एक-चौथाई संसार में फैल चुका है। यदि इसी प्रकार का एक विश्वराज्य बनाने के लिए अमरीका आधे संसार को अपनी ओर मिला ले और दो भिन्न आदर्शों पर चलने वाले विश्वराज्यों में अगर कभी युद्ध छिड़ जाए तो समस्त मानव समुदाय युद्ध में उतर जायेगा तथा इसीसे मानवता का महान नाश हो जाएगा।

8. अतएव केवल किसी राजनीतिक प्रयत्न के द्वारा विश्व में शांति स्थापित नहीं होगी क्योंकि राजनीति में सदा छल-कपट तथा आडम्बर भरा रहता है। इसके पीछे शांति के लिए एक सांस्कृतिक तथा सामाजिक प्रयत्न की आवश्यकता है। महात्मा बुद्ध तथा ईसा ने एक बार समस्त संसार को अनुयायी बना लिया। महात्मा ईसा के प्रभाव से ईसाइयों की संख्या बौद्ध धर्म को छोड़, अन्य सब धर्मों से आज भी अधिक है। किन्तु केवल मुख से शांति का नाम लेने से तथा मन में साम्राज्यवाद की कुत्सित भावनाएं छिपाकर रखने से कभी शांति स्थापित नहीं होगी। अतः हम मन, वाणी तथा कर्म तीनों से शांति की चेष्टा करें। जब मन में शांति का संकल्प हो, मुख से शांति का पवित्र पाठ हो तभी हम विश्व में कर्म के द्वारा सच्ची शांति की प्रस्थापना कर सकते हैं।

।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

विज्ञान और प्रविधि के विकास के साथ हो सकता है कि बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक सारा संसार अमरीका के प्रभाव क्षेत्र में आ जाए। किन्तु इक्कीसवीं शती में, जब विज्ञान का स्थान अध्यात्म लेगा तथा तकनीक का स्थान धर्म लेगा तब भारत ही सारी मानव-जाति का आध्यात्मिक गुरु होगा।

—ब्रिटिश इतिहासकार डॉ. अरनाल्ड टोयनबी

नेपाल

1. संसार का एकमात्र हिन्दू राष्ट्र।
2. राजवंश परम्परा में वाड से।
3. पशुपतिनाथ का महान् शिव तीर्थ।
4. अर्जुन को पाशुपतास्त्र की प्राप्ति।
5. पाटन में श्रीकृष्ण का स्वर्ण मन्दिर।
6. भात गांव में भगवती के स्वर्ण मन्दिर।
7. नीलकंठ में शेषशायी की विशालतम मूर्ति।
8. भगवान बुद्ध की जन्म-भूमि लुंबिनी।
9. संसार का सर्वोच्च पर्वत सरग माथा।
10. दत्तात्रेय एवं गोरखनाथ की तपस्या भूमि।
11. भानुभक्त की रामायण, तुलसी रामायण।
12. जाति गोरखा, व्रत गोरक्षा।
13. हनुमान ढोका का मंडप।
14. त्रिवेणी।
15. वाल्मीकि आश्रम, सीता वनवास, लवकुश की जन्म-भूमि।
16. जनकपुरधाम सीता पितृगृह।
17. पाण्डवो के अज्ञातवास का स्थान विराटनगर।

चीन

36. ई.पू. चीन में भारतीय ग्रंथ प्रवेश।

251. ई. वाल्मीकि रामायण का चीनी अनुवाद।

400. ई. चीनी यात्री फाहियान द्वारा भारत यात्रा एवं ग्रंथ संग्रह—दशरथ जातक कथा, अनामक जातक।

472. ई. दशरथ निदान का चीनी अनुवाद

6वीं-7वीं शती में इत्सिंग, ह्वेनत्सांग की भारत यात्रा।

936. ई. तक चीनी लोग भारत को सुखावती (वैकुण्ठ) मानकर पुण्य यात्रा करते थे।

16 वीं शती चीनी भाषा में वानर (हनुमान) उपन्यास।

1936 ई. तक चीन में भारतीय ग्रंथों का अनुवाद पुण्यकृत्य।

1936 ई. चीन में कम्यूनिस्ट पार्टी।

जापान पर भारत की छाप

1. जापान के धर्म, सभ्यता और रीति-रिवाज के प्रत्येक पृष्ठ पर भारत की छाप है। जापान पूरा हिन्दू देश है।
2. जापान के लोग भारत की तरह मानते हैं कि आत्मा अमर है और जैसे व्यक्ति चोला बदलता है, उसी प्रकार आत्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है। चीन और जापान देश में आत्मा के चोला बदलने की अनेक घटनाएं प्रचलित है।
3. देवालय—जापान में ऐसे देवालय हैं जिसे बुत्सुदप्न कहते हैं। बुद्ध के पुजारी इसमें बुद्ध मूर्ति रखते हैं। शिन्तोयत धर्म के मानने वाले अपने 5-6, पूर्वजों के नाम लकड़ी की तख्ती पर लिखकर उस मंदिर में रखते हैं। कई ईसाई शिन्तो लोग भी बुद्ध की मूर्ति रखते हैं।
4. श्राद्ध—सब जापानी पितृ-पूजा में पक्का विश्वास रखते हैं और श्राद्ध का त्योहार बड़ी धूमधाम से श्रावण के (जुलाई) महीने में मनाते हैं। यह प्रथा बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ-साथ सनातन धर्म का भी प्रचार हुआ। 3 दिनों में परिवारों के अन्दर सच्ची आत्मिक भक्ति, पितृ प्रेम और आनन्द के दृश्य देखने में आते हैं। घरों को सजाया जाता है, रोशनी की जाती है, घर के लोग समाधि पर जाते हैं, फूल चढाते हैं। मृत सम्बन्धियों की आत्मायें भोज के लिये बुलाई जाती है। नदियों पर आतिशबाजी की जाती है।
5. कार्तिक स्नान—कड़ी सर्दी में भी नदियों में एवं झरनों के नीचे स्नान करते तथा मंदिरों की यात्रा करते हैं। कई लोग 10 महीने तक सारे देश के प्रसिद्ध मंदिरों की यात्रा करते हैं। पड़ोसी उनको मिठाइयाँ एवं पैसा भेंट करते हैं। यात्री लौटने पर पड़ोसियों के लिये प्रसाद एवं स्मृति योग्य वस्तुएं लाते हैं।

6. कुछ सौ वर्ष पूर्व तक जापान के लोग भारत की ओर कभी पीठ करके नहीं चलते थे।

7. ऐसे मत भी है जो ॐ की पूजा करते हैं। तांबे की एक बहुत बड़ी प्लेट पर ओऽम् शब्द लिखा होता है।

रोम

1. पलमिरा और सिकंदरिया के रास्ते भारत एवं रोम के बीच भारी व्यापार तीसरी शती तक चलता है।

2. ई. की प्रथम तीन शतियों में भारतीय राजाओं ने रोम सम्राटों के पास कम से कम 9 बार दूत मंडल भेजे।

3. भारत से निर्यात मसाला, सुगंध, औषध, रंग, मोती, हीरा, नीलम और वैदूर्य आदि मणियाँ, चमड़ा, सूती कपड़ा, रेशमी धागे, मलमल, नील, हाथी-दांत, चीनी मिट्टी के बर्तन, कच्छप पृष्ठ।

4. बाहर से आयात—कपड़ा, सुगंध, औषध, शीशा के बर्तन, सोना, चाँदी, ताँबा, टीन, सीसा, रांगा, रंग, मणि, मूंगा।

5. व्यापार का मूल्य प्लिनी के उस कथन से आंका जा सकता है 'भारत प्रति वर्ष रोम साम्राज्य से 50,00,000 (पचास लाख) सेस्टसेस दूह लेता।'

6. भारत में रोमन-सम्राटों के अनेक सिक्के प्राप्त हुए हैं।

ब्रिटिश इतिहासकार डा. अरनाल्ड टोयनबी ने सम्पूर्ण मानव जाति की यात्रा कथा का सर्वेक्षण करने के बाद यह लिखा—'यह बिल्कुल स्पष्ट होता जा रहा है कि उस अध्याय का अन्त भारतीय उपसंहार से ही होगा जिसका प्रारंभ पाश्चात्य है। यदि मानव जाति का आत्म विनाश में अन्त न होना हो तो यहाँ हमारे पास वह दृष्टिकोण और भावना है जिससे मानव जाति के लिए एक परिवार के रूप में विकास की सम्भावना है और इस आणविक युग में सर्वनाश का यह एकमात्र विकल्प है।

यहाँ टोयनबी इन शब्दों में भारतीय प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रतिपादित 'वसुधैव-कुटुम्बकम् अर्थात् समस्त विश्व एक परिवार है, के आदर्श का प्रतिनिधित्व कर रहा है।

दो इतिहास दुर्लभ विभूतियों के मिलन का दुर्लभ चित्र



दानवीर बाबू युगल किशोर बिड़ला एवं कर्मवीर महात्मा गाँधी

प्रस्तोता : प्रो० हरवंश लाल ओबराय, निदेशक, संस्कृति विहार, अपर बाजार, राँची ।

धर्मप्राण बाबू युगल किशोर बिड़ला आधुनिक युग के महानतम दानवीर हुए हैं तथा महात्मा गाँधी बीसवीं शताब्दी के महानतम महापुरुष।

दोनों महाविभूतियों का आलिंगन-बद्ध मिलन-धर्म और राजनीति, दानशीलता एवं कर्मशीलता, संस्कृति एवं स्वाधीनता की गंगा यमुना के मिलन तीर्थ के तुल्य पावन था।

जहाँ गाँधी जी देश के लिए तनमन उत्सर्ग करने वाले महापुरुष थे वहाँ बिड़ला जी देश-हितार्थ सर्वाधिक धन समर्पित करने वाले अनोखे दानी थे।

गाँधी जी धर्म को जीवन का प्राणवायु मानते थे तथा बिड़ला जी का समस्त जीवन धर्म हितार्थ ही लगा था। गाँधी जी निष्काम कर्मयोगी थे तथा बिड़ला जी अनासक्त तपस्वी उद्योगी।

जहाँ गाँधीजी सत्ता एवं वैभव के प्रति विमुख थे वहाँ बिड़ला जी महानतम वैभव के बीच भी निर्लिप्त संत के समान थे।

गाँधी जी का आदर्श सरल जीवन एवं उच्च विचार था तथा बिड़ला जी सरलता एवं सौम्यता की प्रतिमूर्ति ही थे।

गाँधी जी निजी घर से विहीन अनिकेत संत थे तथा उन्हें निकेत यदि मिला भी तो बिड़ला जी के प्रेम से प्रस्तुत बिड़ला भवन में ही। वहीं उनके बलिदान से वह भवन इतिहास-तीर्थ बन गया।

गाँधी जी का स्वप्न था एक विशाल उदार हिन्दू मन्दिर जिसके द्वार सभी वर्णों के लिए खुले हों बिड़ला जी ने गाँधी के सपनों की परिपूर्ति हेतु लक्ष्मी नारायण मन्दिर (बिड़ला मन्दिर) नई दिल्ली का निर्माण करवाया, जिसका उद्घाटन १८ मार्च १९३९ में स्वयं महात्मा गाँधी जी ने ही किया।

उस अवसर पर मंदिर के स्वप्न द्रष्टा एवं निर्माता—गाँधी जी एवं बिड़ला जी के हृदय आनन्दातिरेक से समरस हो गये।। यह दुर्लभ चित्र उसी ऐतिहासिक क्षण का है।

अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन का हार्दिक अभिनन्दन ।

संस्कृति विहार : ACADEMY OF INDIAN CULTURE अपर बाजार, राँची। (दूरभाष : २३६५०) द्वारा प्रकाशित।

ཨོཾ་བྷཱུར་བྷུ་བ་སྭ །

ས་ཏཏུ་ས་བི་ཏུ་རེ་ཁ་རེ་ཎན།

བ་རེ་ལྷུ་མེ་བ་ཀྲེ་ཏེ་ན་ཀྲེ་ཧུ།

ཕུ་ན་ཕྲུ་རྫུ་ན་ཡ་ཏུ །

तिब्बत में गायत्री मंत्र

GAYATRI MANTRA IN TIBET

तिब्बत, चीन, मंगोल देश, मंजुश्री (मंचूरिया) शिविर देश (साईबेरिया) निपुण देश (जापान), कोरिया आदि देशों में जहाँ महायान बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ वहाँ गायत्री मन्त्र, अवतार सिद्धांत आदि अनेक भारतीय जीवनमूल्य भी प्रचारित हुए।

—:०:—

संस्कृति विहार : Academy of Indian Culture,
ऊपर बाजार, राँची (दूरभाष : २३६४०) द्वारा प्रकाशित।



पूर्णाकुम्भधारी द्वारपाल, श्रीलंका

Temple Guard With Purna Kumbha
CEYLON

संस्कृति विहार : (Academy of Indian Culture)
राँची द्वारा प्रकाशित



थाई देश के मुद्रापत्रों पर भगवान राम

LORD RAMA ON CURRENCY NOTES OF THAILAND

१ थाई देश (श्याम) राम राज्य आदर्श विभूषित देश है।

२ प्राचीन राजधानी द्वारावती नगर में थी। १३५० में श्याम-नरेश रामाधिपति ने अयोध्या नामक नगरी बसाई जो सर्व प्रसिद्ध राजधानी बन गई।

३ थाई देश के राजाओं के नाम 'राम' उपाधि से विभूषित है, यथा रामखम्हेंद, श्री सूर्यवंश राम, रामराज, रामाधिपति, देवनगर राम, महावज्र राम, बुद्धराम, महामंत्रक राम, सुखदेव राम, रामामात्य, रामभुवन, रामपुत्र।

४ थाई देश के नगरों के नाम है—सुखोदय, स्वर्गलोक, इन्द्रपुरी, लवपुरी, प्राचीन पुरी, सुरेन्द्रपुरी, धर्मराज।

५ भगवान राम की मूर्ति के चित्र वहाँ के मुद्रापत्रों, डाक-टिकटों एवं बस टिकटों पर आज तक छपते हैं।

६ छाया चित्र लीला (नाँग) में चलती फिरती कठपुतलियों द्वारा रामलीला प्रस्तुत की जाती है तथा मुखौटा लीला (खोन) में नर्तक भिन्न-भिन्न पात्रों के मुखौटे लगाकर लीला नृत्य करते हैं।

—:o:—

संस्कृति विहार : ACADEMY OF INDIAN CULTURE अपर बाजार, राँची। (दूरभाष : २३(४०) द्वारा प्रकाशित।



धनुर्धारी राम, राष्ट्रीय संग्रहालय थाई देश

Lord Rama Wielding a Bow
National Museum Thailand

१ थाई देश (श्याम) राम राज्य आदर्श विभूषित देश है।

२ प्राचीन राजधानी द्वारावती नगर में थी। १३५० में श्याम-नरेश रामाधिपति ने अयोध्या नामक नगरी बसाई जो सर्व प्रसिद्ध राजधानी बन गई।

३ थाई देश के राजाओं के नाम 'राम' उपाधि से विभूषित हैं, यथा रामखम्हेङ्, श्री सूर्यवंश राम, रामराज, रामाधिपति, देवनगर राम, महाराज राम, वृद्धराम, महामङ्गल राम, सुखदेव राम, रामामात्य, रामसुवन, रामपुत्र।

४ थाई देश के नगरों के नाम हैं—सुखोदय, स्वर्गलोक, इन्द्रपुरी, लवपुरी, प्राचीन पुरी, सुरेन्द्रपुरी, धर्मराज।

५ भगवान राम की मूर्ति के चित्र वहाँ के मुद्रापत्रों, डाक-टिकटों एवं बस टिकटों पर आज तक छपते हैं।

—१०१—

संस्कृति विहार : ACADEMY OF INDIAN CULTURE अपर बाजार, राँची। (दूरभाष : २३६४०) द्वारा प्रकाशित।



सुग्रीव, छाया चित्र लीला थाई देश

SUGRIVA, SHADOW PLAY [NANG] THAILAND

१ थाई देश (स्याम) राम राज्य आदर्श विभूषित देश है।

२ प्राचीन राजधानी द्वारावती नगर में थी। १३५० में स्याम–नरेश रामाधिपति ने अयोध्या नामक नगरी बसाई जो सर्व प्रसिद्ध राजधानी बन गई।

३ थाई देश के राजाओं के नाम 'राम' उपाधि से विभूषित हैं, यथा रामखम्हेंद, श्री सूर्यवंश राम, रामराज, रामाधिपति, देवनगर राम, महावज्र राम, बुद्धराम, महामर्त्य राम, सुखदेव राम, रामामात्य, रामसुवन, रामपुत्र।

४ थाई देश के नगरों के नाम हैं—सुखोदय, स्वर्गलोक, इन्द्रपुरी, लवपुरी, प्राचीन पुरी, सुरेन्द्रपुरी, धर्मराज।

५ भगवान राम की मूर्ति के चित्र वहाँ के मुद्रापत्रों, डाक-टिकटों एवं बस टिकटों पर आज तक छपते हैं।

६ छाया चित्र लीला (नांग) में चलती फिरती कठपुतलियों द्वारा रामलीला प्रस्तुत की जाती है तथा मुखौटा लीला (खोन) में नर्तक भिन्न-भिन्न पात्रों के मुखौटे लगाकर लीला नृत्य करते हैं।

—:०:—

संस्कृति विहार : ACADEMY OF INDIAN CULTURE अपर बाजार, राँची। (दूरभाष : २३६५०) द्वारा प्रकाशित।



किष्किन्धा में वाली एवं तारा
छाया चित्र, लीला थाई देश

BALI & TARA IN KISHKINDHA SHADOW PLAY (NANG), THAILAND

१ थाई देश (स्याम) राम राज्य आदर्श विभूषित देश है।

२ प्राचीन राजधानी द्वारावती नगर में थी। १३५० में स्याम-नरेश रामाधिपति ने अयोध्या नामक नगरी बसाई जो सर्व प्रसिद्ध राजधानी बन गई।

३ थाई देश के राजाओं के नाम 'राम' उपाधि से विभूषित हैं, यथा रामखम्हेंग, श्री सूर्यवंश राम, रामराज, रामाधिपति, देवसार राम, महावज्र राम, वृद्धराम, महामंत्र'क राम, सुखदेव राम, रामामात्य, रामसुवन, रामपुत्र।

४ थाई देश के नगरों के नाम हैं—सुखोदय, स्वर्गलोक, इन्द्रपुरी, लवपुरी, प्राचीन पुरी, सुरेन्द्रपुरी, धर्मराज।

५ भगवान राम की मूर्ति के चित्र यहाँ के मुद्रापत्रों, डाक-टिकटों एवं बस टिकटों पर आज तक छपते हैं।

६ छाया चित्र लीला (नांग) में चलती फिरती कठपुतलियों द्वारा रामलीला प्रस्तुत की जाती है तथा मुखौटा लीला (खोन) में नर्तक भिन्न-भिन्न पात्रों के मुखौटे लगाकर लीला नृत्य करते हैं।

—:०:—

संस्कृति विहार : ACADEMY OF INDIAN CULTURE अपर बाजार, राँची। (दूरभाष : २३६५०) द्वारा प्रकाशित।



लव कुश हनुमान युद्ध:अश्वमेध यज्ञ के अश्व का प्रतिरोध छाया चित्र, लीला, थाई देश

LAVA KUSHA HANUMAN DUEL.OBSTRUCTION TO THE ASHWAMEDHA HORSE.SHADOW PLAY (NANG), THAILAND

१ थाई देश (श्याम) राम राज्य आदर्श विभूषित देश है।

२ प्राचीन राजधानी द्वारावती नगर में थी। १३५० में श्याम-नरेश रामाधिपति ने अयोध्या नामक नगरी बसाई जो एक प्रसिद्ध राजधानी बन गई।

३ थाई देश के राजाओं के नाम 'राम' उपाधि से विभूषित हैं, यथा रामखम्हेंग, श्री सूर्यवंश राम, रामराज, रामाधिपति, देवनगर राम, महावज्र राम, बुद्धराम, महामंगल राम, सुखदेव राम, रामामात्य, रामसुवन, रामपुत्र।

४ थाई देश के नगरों के नाम हैं—सुखोदय, स्वर्गलोक, इन्द्रपुरी, लवपुरी, प्राचीनपुरी, सुरेन्द्रपुरी, पर्वगाव।

५ भगवान राम की मूर्ति के चित्र वहाँ के मुद्रापत्रों, डाक-टिकटों एवं वन टिकटों पर आज तक छपते हैं।

६ छाया चित्र लीला (नांग) में चलती फिरती कठपुतलियों द्वारा रामलीला प्रस्तुत की जाती है तथा मुखौटा लीला (खोन) में नर्तक भिन्न-भिन्न पात्रों के मुखौटे लगाकर लीला नृत्य करते हैं।

—161—

संस्कृति विहार : ACADEMY OF INDIAN CULTURE अपर बाजार, रांची। (दूरभाष : २३६५०) द्वारा प्रकाशित।



भगवती सीता, छाया चित्र, लीला, थाई देश

BHAGWATI SITA SHADOW PLAY [NANG] THAILAND

१ थाई देश (स्याम) राम राज्य आदर्श विभूषित देश है।

२ प्राचीन राजधानी द्वारावती नगर में थी। १३५० में स्याम-नरेश रामाधिपति ने अयोध्या नामक नगरी बसाई जो सर्व प्रसिद्ध राजधानी बन गई।

३ थाई देश के राजाओं के नाम 'राम' उपाधि से विभूषित है, यथा रामखम्हेङ, श्री सूर्यवंश राम, रामराज, रामाधिपति, देवनगर राम, महावज्र राम, [illegible], महामंत्र [illegible] राम, सुखदेव राम, रामामात्य, रामसुवन, रामपुत्र।

४ थाई देश के नगरों के नाम हैं—सुखोदय, स्वर्णलोक, इन्द्रपुरी, लवपुरी, प्राचीनपुरी, सुरेन्द्रपुरी, धर्मराज।

५ भगवान राम की मूर्ति के चित्र यहाँ के मुद्रापत्रों, डाक-टिकटों एवं बस टिकटों पर आज तक छपते हैं।

६ छाया चित्र लीला (नांग) में चलती फिरती कठपुतलियों द्वारा रामलीला प्रस्तुत की जाती है तथा मुखौटा लीला (खोन) में नर्तक भिन्न-भिन्न पात्रों के मुखौटे लगाकर लीला नृत्य करते हैं।

—:०:—

संस्कृति विहार : ACADEMY OF INDIAN CULTURE अपर बाजार, राँची। (दूरभाष : [illegible]) द्वारा प्रकाशित।



भगवान राम, छायाचित्र-लीला, थाईदेश

LORD RAMA,

SHADOW-PLAY (NANG), THAILAND

१ थाई देश (श्याम) राम राज्य आदर्श विभूषित देश है।

२ प्राचीन राजधानी द्वारावती नगर में थी। १३५० में श्याम-नरेश रामाधिपति ने अयोध्या नामक नगरी बसाई जो सर्व प्रसिद्ध राजधानी बन गई।

३ थाई देश के राजाओं के नाम 'राम' उपाधि से विभूषित हैं, यथा रामखम्हेंग, श्री सूर्यवंश राम, रामराज, रामाधिपति, देवअमर राम, महाधम राम, बुद्धराम, महामंगल राम, सुखदेव राम, रामामात्य, रामनुजन, रामपुत्र।

४ थाई देश के नगरों के नाम हैं—सुखोदय, स्वर्गलोक, इन्द्रपुरी, लवपुरी, प्राचीनपुरी, सुरेन्द्रपुरी, धर्मराज।

५ भगवान राम की मूर्ति के चित्र यहाँ के मुद्रापत्रों, डाक-टिकटों एवं बस टिकटों पर आज तक छपते हैं।

६ छाया चित्र लीला (नाँग) में चलती फिरती कठपुतलियों द्वारा रामलीला प्रस्तुत की जाती है तथा मुखौटा लीला (खोन) में नर्तक भिन्न-भिन्न पात्रों के मुखौटे लगाकर लीला नृत्य करते हैं।

संस्कृति विहार : ACADEMY OF INDIAN CULTURE अपर बाजार, राँची। (दूरभाष : ३३६४०) द्वारा प्रकाशित।



इन्दोनीज़िया में महाभारत
MAHABHARATA IN INDONESIA

१ यह इन्दोनीज़िया की बालीलिपि में संस्कृत-निष्ठ कवि भाषा में, लोनतार (तालपत्र) पर लिखित महाभारत के श्रीमद्भगवद्गीता-गर्भित भीष्मपर्व की प्राचीन पाण्डुलिपि है।

२ यह ताळपत्र ग्रन्थ इन्दोनीज़िया के महागुरु पुर्वचरक ने स्वर्गीय आचार्य रघुवीर जी (संस्थापक-निदेशक, सरस्वती विहार, नई दिल्ली) को उपहार स्वरूप भेंट किया था।

३ प्रथम पंक्ति का देवनागरी रूपान्तर इस प्रकार है -

> ॥ यज्ञशेषो शिवः शान्तः मुच्यते सर्व्वा किल्बिषैः।
> कहते स्वधाम्पापः ये च ऽत्यात्म कारणात् ॥

> यज्ञशेष भिनुक्ति निर सं महापुरुष ङ.रनिर ।
> मलन्य नूतन् वने सर्व्वमल सिर । कुन इकं व्वड-नङः केवल मिर्कां शरीर

४ इनका अर्थ इस प्रकार है-

(क) यज्ञ-शेष भोजन करने वाला शिव एवं शांत होता है, वह सब पापों से मुक्त होजाता है। जो केवल अपने लिये कमाते खाते हैं वे पाप ही खाते हैं।

(ख) यज्ञशेष भोजन करनेवाला महापुरुष होता है। जो केवल शरीर पोषण के लिए स्वार्थवश खाता है वह सब मल ही खाता है।

५ श्रीमद्भगवद्गीता में मूल श्लोक इस प्रकार हैं।

> (क) यज्ञशिष्टाशिनः संतो, मुच्यन्ते सर्व किल्बिषैः।
> भुञ्जते ते त्वघं पापा, ये पचंत्यात्म कारणात् ॥

यज्ञ के शेष बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से छूटते हैं, और जो पापी लोग अपने शरीर पोषण के लिए ही पकाते हैं वे तो पाप ही खाते हैं। गीता अ० ३। श्लोक १३

> (ख) यज्ञशिष्टामृतभुजो यांति ब्रह्म सनातनम्।
> नायं लोकोऽस्ति अयज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥

यज्ञ [समाजोपयोगी सेवा कर्म] के पश्चात् बचे हुए अन्न रूपी अमृत को भोगने वाले लोग सनातन ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। जो यज्ञ करके नहीं खाता उसका तो यह लोक भी नहीं बनता तो फिर परलोक कहाँ से बनेगा? गीता अ० ४। श्लोक ३१

संस्कृति विहार ACADEMY OF INDIAN CULTURE, अपर बाजार, राँची (दूरभाष २१६४०) द्वारा प्रकाशित (चित्र सरस्वती विहार, नई दिल्ली के सौजन्य से)



Tarian - Tarian

dalam

Sendratari

RAMAYANA

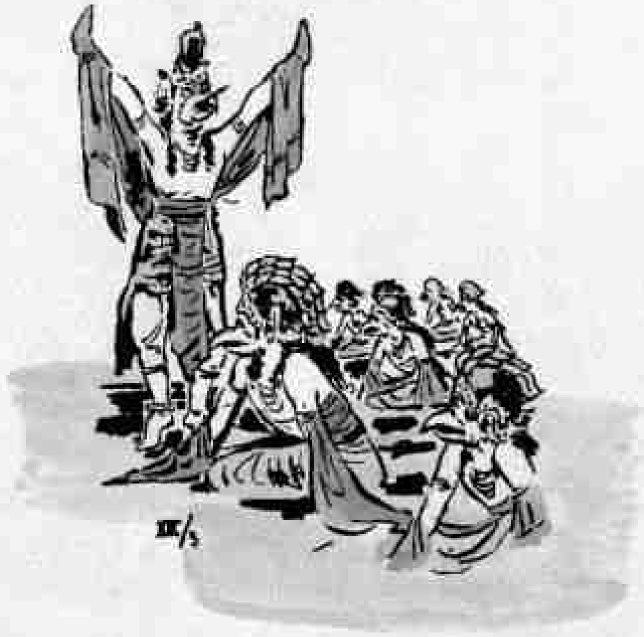
द्वीपान्तर भारत (इंदोनीज़िया) में रामलीला नवरात्रि नृत्य नाट्य

RamLila a Colourful Dance-Drama National Festival of Indonesia

१. रामलीला इन्दोनीज़िया का राष्ट्रीय महोत्सव है।
२. सन् १९७१ में वहां अन्तराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन सम्पन्न हुआ।
३. राजधानी जोग्याकर्त्ता का मूल नाम अयोध्याकर्त्ता है।
४. प्रंबनम रामकथा पर अद्वितीय मूर्ति-शिल्प तीर्थ है।

॥०॥

संस्कृति विहार : Academy of Indian Culture,
ऊपर बाजार, राँची (दूरभाष : २३६४०) द्वारा प्रकाशित।



जटायु सम्पाति गृद्ध परिवार, रामलीला, द्वीपान्तर भारत (इंदोंनीज़िया)

Jatayu Sampati, 'Vulture' Family Ram Lila, Java, Indonesia

—:o:—

संस्कृति विहार : Academy of Indian Culture,
ऊपर बाजार, राँची (दूरभाष : २३६४०) द्वारा प्रकाशित।



बा. द्वीप (इंदोनीज़िया) में हिन्दू पूजा पद्धति

Hi du Puja System in Bali (Indonesia)

PUBLISHED BY:

संस्‌ त विहार : ACADEMY OF INDIAN CULTURE.

MA. VIR CHOWK, UPPER BAZAR, RANCHI (INDIA).



भगवती सीता की अग्नि परीक्षा, लवदेश

BHAGWATI SITA'S ORDEAL LAOS

१। लवदेश की राम कथा का नाम है 'फा लक फा लाम' अर्थात श्रीलक्ष्मण, श्रीराम।' इसका अत्यधिक प्रसार है।

२। लवदेश की दूसरी राम-कथा का नाम है 'फोम्म-चक' अर्थात 'ब्रह्मजात' (जो रावण का नाम है) यह बौद्ध भिक्षुओं की कृति है। इसमें राम को गौतम बुद्ध रावण को देवदत्त और सीता को यशोधरा का रूपान्तर माना गया है।

३। राजधानी लुआंग प्रबंग के मन्दिरों के भित्ति चित्रों में रामकथा के सुन्दर चित्र शोभायमान है।

४। लवदेश में भी माँ-गंगा (मेकांग) नदी है, जिसके अनेक स्थलों का वर्णन लवदेश की रामायण में हैं।

संस्कृति विहार : Academy of Indian Culture,
ऊपर बाजार, रॉंची (दूरभाष : २३६४०) द्वारा प्रकाशित।



भगवान राम की धनुर्भंग लीला
लवदेश (लाओस)
RAMA'S BOW BENDING
LAOS

१। लवदेश की राम कथा का नाम है 'फा लक फा लाम' अर्थात श्रीलक्ष्मण, श्रीराम।' इसका अत्यधिक प्रसार है।

२। लवदेश की दूसरी राम-कथा का नाम है 'फोम्म-चक' अर्थात 'ब्रह्मजात' (जो रावण का नाम है) यह बौद्ध भिक्षुओं की कृति है। इसमें राम को गौतम बुद्ध, रावण को देवदत्त और सीता को यशोधरा का रूपान्तर माना गया है।

३। राजधानी लुआंग प्रबंग के मन्दिरों के भिति चित्रों में रामकथा के सुन्दर चित्र शोभायमान हैं।

४। लवदेश में भी मा-गंगा (मेकांग) नदी है, जिसके अनेक स्थलों का वर्णन लवदेश की रामायण में हैं। -O-

संस्कृति विहार : Academy of Indian Culture,
ऊपर बाजार, राँची (दूरभाष : २३६४०) द्वारा प्रकाशित।



उड़नशील गरुड़, लवदेश

FLYING GARUDA, LAOS

१। लवदेश की राम कथा का नाम है 'फा लक फा लाम' अर्थात श्रीलक्ष्मण, श्रीराम।' इसका अत्यधिक प्रसार है।

२। लवदेश की दूसरी राम-कथा का नाम है 'फोम्म-चक' अर्थात 'ब्रह्मजात' (जो रावण का नाम है) यह बौद्ध भिक्षुओं की कृति है। इसमें राम को गौतम बुद्ध, रावण को देवदत्त और सीता को यशोधरा का रूपान्तर माना गया है।

३। राजधानी लुआंग प्रवंग के मन्दिरों के भित्ति चित्रों में रामकथा के सुन्दर चित्र शोभायमान हैं।

४। लवदेश में भी माँ-गंगा (मिकांग) नदी है, जिसके अनेक स्थलों का वर्णन लवदेश की रामायण में हैं।

५। राम कथा में गरुड़ नागपाश को काटने वाले हैं।
एशिया भर में गरुड़ की प्रतिष्ठा है।

संस्कृति विहार : Academy of Indian Culture,
ऊपर बाजार, राँची (दूरभाष : २३६४०) द्वारा प्रकाशित।



वाली वध, प्रम्बनम, यवद्वीप

Rama Killing Vali, Prambanam,

JAVA, INDONESIA : 9th Century

"Prambanam is a unique shrine of excellent plastic art on the Ramayana theme. This 'Murti Shilpa Tirtha' of the Ramayana has thousands of tableaux on Rama's adventures carved in a manner unequalled by anything found in India."

- Prof. H L Oberai,
Director, Academy of Indian Culture, *Ranchi*,

" प्रम्बनम रामकथा पर उत्कृष्ट मूर्तिकला का अद्वितीय पुण्यस्थल है। रामायण के इस मूर्तिशिल्प तीर्थ में रामचरित पर हजारों मूर्ति-पटल इस सुन्दर शैली में उत्कीर्ण किए गए हैं कि उसकी भारत में भी किसी वस्तु से तुलना नहीं हो सकती।"

- प्रो० हरवंश लाल ओबराय

संस्कृति विहार : (Academy of Indian Culture)
राँची द्वारा प्रकाशित



कम्बुज में खड़्गधारी हनुमान

HANUMAN WITH SWORD CAMBODIA

१. कम्बुज राजर्षि कम्बु द्वारा संस्कारित देश है।
२. वहां की रामकथा 'रामकीर्ति' अत्यन्त रोचक एवं प्रेरक है।
३. अंकुर वट मन्दिरों का विशालतम नगर है जहां की भित्तियों पर रामायण महाभारत के चित्र सुशोभित हैं।

संस्कृति विहार : Academy of Indian Culture,
ऊपर बाजार, राँची (दूरभाष : २३६४०) द्वारा प्रकाशित।



मंगोल देश में संस्कृत मंत्र शिक्षा के लिए अक्षरमाला
ALPHABET FOR TEACHING SANSKRIT MANTRAS IN MONGOLIA

१ प्राचीन काल से ही मंगोल देश भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित रहा है।

२ वहाँ भारतीय आचार्य उडुम्बसेन ने स्वयंभू लिपि का प्रचार किया। आचार्य मतिध्वज ने मंगोल लिपि का आविष्कार किया।

३ नालंदा के आचार्य अभयाकरगुप्त ने वहाँ बौद्ध धर्म का विपुल प्रकाश फैलाया।

४ वहाँ चतुर्मुखी सरस्वती, गरुड, धन्वन्तरि, गणेश, धृतराष्ट्र, कुबेर, महाकाल, कालभैरव आदि की मूर्तियों का बाहुल्य है।

५ सातवीं शती में भी वहाँ महाभारत के 'हिडिम्ब वध' पर नाटक खेले जाते थे।

६ १३वीं शती में दक्षिण भारत के १७ वर्षीय ब्राह्मण शाक्य पंडित ने आधी दुनिया को विजय करने वाले पराक्रमी राजा कुबलाई खाँ (कैबन्य खाँ) को महायान बौद्ध धर्म की दीक्षा दी।

७ वहाँ अभी तक गायत्री मंत्र का भी विशेष प्रचलन है।

८ वहाँ योग एवं तन्त्र का विशेष प्रसार रहा। तदर्थ संस्कृत ज्ञान अनिवार्य था।

९ प्रस्तुत चित्र में ऊपर की पंक्ति में संस्कृत अक्षर माला, नीचे तिब्बती तथा उसके नीचे मंगोल लिपि दी हुई है।

संस्कृति विहार : ACADEMY OF INDIAN CULTURE अपर बाज़ार राँची (दूरभाष : २३६४०) द्वारा प्रकाशित (सरस्वती विहार, नई दिल्ली के सौजन्य से)



जापानी पांडुलिपि, (१०३५ ई०) में महर्षि वसिष्ठ

MAHARSHI VASISHTHA IN JAPANESE MANUSCRIPT (1035 A. D.)

निपुण देश (जापान) में भारत के सभी देवताओं की प्रतिष्ठा है। वहाँ वसिष्ठ को वसुसेन उच्चारण किया जाता है।

॥०॥

संस्कृति विहार : Academy of Indian Culture,
ऊपर बाजार, राँची (दूरभाष : २३६४०) द्वारा प्रकाशित।



भारतीय संत, बोधिसेन भारद्वाज

जापानी जन-लिपि 'कथाकणा' के आविष्कारक
जापान के सम्राट शोमा द्वारा 736 ई० में राजधानी नारा में
इनका अभिनन्दन।
८वीं शती का चित्र, राष्ट्रीय संग्रहालय नारा, जापान।

BODHISENA BHARDWAJ

Inventer of Japanese Script for Masses—Kathakana
Honoured by Emperor Shoma in Capital Nara
in 736 A.D.
8th Century Painting National Treasure Hall
Nara, Japan.

संस्कृति विहार : (Academy of Indian Culture)
राँची द्वारा प्रकाशित



चतुर्मुख ब्रह्मा, जापान

FOUR HEADED BRAHMA
Japan, 11th Century

—o—

" All the gods you see in Japan are the gift of India. We have no claim to local production. "

Prof. NIKI KIMURA
(Formerly of Calcutta University)

" जापान में जितने देवता आप देखते हैं वे सभी भारत की देन हैं उनके जापान में विकसित होने के विषय में हमारा कोई दावा नहीं है ॥"

-प्रो० निकी किमूरा

संस्कृति विहार : (Academy of Indian Culture) राँची
द्वारा सप्रेम भेंट



वीणावादिनी सरस्वती जापान

SARASWATI [BENZAITEN] PLAYING ON VEENA
Japan, 11th Century

—o—

" All the gods you see in Japan are the gift of India. We have no claim to local production. "

Prof. NIKI KIMURA
(Formerly of Calcutta University)

" जापान में जितने देवता आप देखते हैं वे सभी भारत की देन हैं। उनके जापान में विकसित होने के विषय में हमारा कोई दावा नहीं है ॥"

-प्रो० निकी किमूरा

संस्कृति विहार : (Academy of Indian Culture) राँची
द्वारा सप्रेम भेंट



भगवान शिव, जापान

LORD SHIVA, JAPAN

—o—

" All the gods you see in Japan are the gift of India. We have no claim to local production. "

Prof. NIKI KIMURA
(Formerly of Calcutta University)

" जापान में जितने देवता आप देखते हैं वे सभी भारत की देन हैं उनके जापान में विकसित होने के विषय में हमारा कोई दावा नहीं है ॥"

-प्रो० निकी किमूरा

संस्कृति विहार : (Academy of Indian Culture) राँची द्वारा सप्रेम भेंट



थर्मोपिलो "यूनान" में भारतीय धनुर्धरों की विजय

Victory of Indian Archers in Thermopylae, Greece

१ ईसा से ४९० वर्ष पूर्व ईरान के सम्राट् धारयवसु ने यूनान पर आक्रमण किया। मेराथन के युद्ध में ईरानी सेना परास्त हो गई। ४८५ ई० पूर्व में सम्राट् धारयवसु का देहान्त हो गया।

२ सन् ४८० ई० पूर्व में धारयवसु के पुत्र ईरानी सम्राट् खयार्श (जेरक्सेज Xerxes) ने एक विशाल सेना लेकर यूनान पर चढ़ाई की। उसकी सेना में इस बार भारतीय तीरन्दाजों का एक शक्तिशाली दल था, जिनके तीरों का फल इस्पात का बना हुआ था।

३ सम्राट् खयार्श की सेना के इन वीर भारतीय धनुर्धरों ने मिस्र, अरब, सीरिया, फ़लस्तीन, मेसोपोटामिया, तुर्की, आर्मेनिया, अफगानिस्तान आदि में इस्पात वाले तीक्ष्ण तीरों के फलस्वरूप विजय प्राप्त की थी।

४ यूनान में गर्म पानी के स्रोतों के लिए प्रसिद्ध थर्मोपिली की कठिन घाटी में विश्व-इतिहास का एक चिरस्मरणीय युद्ध हुआ, जिसमें भारतीय धनुर्धरों के फौलादी तीरों के सम्मुख यूनानी वीर पराजित हो गये।

५ तबतक पश्चिम के किसी देश को इस्पात का ज्ञान ही न था। संस्कृत के अयस् शब्द से ही आयरन (IRON) शब्द बना है।

६ तीसरी शती ई० पूर्व में, पंजाब की जेहलम नदी के तट पर जब सिकन्दर की यहां के राजा पुरु (पोरस) से सन्धि हुई तो पोरस ने उसे १० सेर इस्पात भेंट किया। उस धातु को देख कर सिकन्दर चकित हो गया था।

संस्कृति विहार *Academy of Indian Culture* ऊपर बाजार, राँची (दूरभाष २३६४०), द्वारा प्रकाशित।



रोम की चाँदी की थाली में भारतमाता का चित्र

(प्रथम शती)

Bharat Mata Engraved in a Silver Plate Rome (First Century A. D.)

१ इस चित्र में प्रथम शती के रोम के स्वर्णरत्न कलाकार ने चाँदी की स्थाली के केंद्र में भारतमाता के चित्र को उत्कीर्ण कर भारत और उन सब वस्तुओं को चित्रित किया है जो भारत से रोम तथा यूरोप के अन्य देशों में निर्यात होती थीं ।

२ भारतमाता के शीष पर गंधमुकुट है जो हमामदस्त-निर्मित तथा सुगंधि-पूरित होता था। इसे पहिनने से शिरोवेदना तुरंत दूर होती थी ।

३ गंधमुकुट में ईख की दो पोरें भी खुसी हुई दिखाई है। भारत माता के वाम हस्त में ईख का एक धनुष रूप में दर्शाया गया है। विश्व में ईख और शक्कर भारत की ही देन है।

४ भारतमाता का दक्षिण हस्त विश्व कल्याण की भावना से आशीर्वाद मुद्रा में उठा हुआ है।

५ भारतमाता के अंग पर भारत की उस महीन मलमल की साड़ी है जो रोम में सोने के साथ समतोल कर के बिकती थी।

६ भारतमाता का आसन शाकवन [सागवान] की लकड़ी का बना है तथा उसके पावे हस्तिदन्त [इभःरदीय – IVORY] के बने हैं। ये दोनो वस्तुएं भारत से निर्यात होती थीं।

७ चित्र में चितकबरा मुर्गा, तोता, शिकारी कुत्ता, लंगूर तथा मदारी सहित दो शिकारी चीते दिखाए गये हैं। ये सभी तथा अन्य अनेक वस्तुएँ २००० वर्ष पूर्व भारत से रोम को निर्यात होती थीं।

८ यह चाँदी की दुर्लभ स्थाली [तश्तरी] आजकल तुर्की के लेम्पेस्कास नगर के संग्रहालय में है।

प्रकाशक:—प्रो॰ हरवंश लाल ओबराय, निर्देशक, संस्कृति विहार(Academy of Indian Culture)अपर बाजार, रांची।



शिव और गणेश, पीरू (द० अमेरिका)

SHIVA & GANESHA, PERU
[SOUTH AMERICA]

—o—

संस्कृति विहार : (Academy of Indian Culture)
राँची द्वारा प्रकाशित



हनुमान : ग्वेटेमाला

[गौतम अहल्या, मध्य अमेरिका]

HANUMAN
Guatemala
[CENTRAL AMERICA]

—o—

संस्कृति विहार : (Academy of Indian Culture)
राँची द्वारा प्रकाशित



सूर्य प्रतिमा, जर्मनी

SUN IDOL : GERMANY

1596 A.D.

“ The Cult of Mitra (the Sun) was taken to Rome in 67 BC. Mithra's Cult rapidly spread in Europe ”

- PLUTARCH

“ सूर्य पूजा रोम में 67 ई० पूर्व में पहुँची। यह मित्र पूजा शीघ्र सारे यूरोप में फैल गई।

- प्लूटार्क

“ If the growth of Christianity had been stopped early in its history, the world would have been Mithraic. ”

- ERNEST RENAN

“ यदि अपने इतिहास के उषाकाल में ही ईसाइयत का प्रसार रुक जाता तो सारा संसार सूर्य पूजक होता॥”

- अरनेस्ट रेनन

संस्कृति विहार : (Academy of Indian Culture]
राँची द्वारा प्रकाशित